भारतेन्दु
और
अन्य सहयोगी कवि

✣

किशोरीलाल गुप्त

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
बनारस।

भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि

उपक्रम

भारतेंदु उन महाकवियों में हैं जो अपनी पूर्व परंपरा पर चलते हुए स्वयं अपनी भी एक परंपरा छोड़ जाते हैं। वे हिंदी के पूर्ववर्ती साहित्य से पूर्ण प्रभावित हैं। पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य की प्रायः सभी धाराओं का प्रतिनिधित्व उनके काव्य में मिल जाता है। वीर गाथा काल की झलक 'विजयिनी विजय वैजयंती' तथा 'विजय वल्लरी' आदि रचनाओं में मिलती है। भक्ति काल की कृष्णाश्रयी एवं रामाश्रयी दोनों सगुण धाराओं, तथा ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा का प्रतिबिंब उनके भक्ति काव्य में हमें मिलता है। प्रेमाश्रयी निर्गुण धारा प्रबंध काव्यों की धारा है; भारतेंदु ने इस शैली की कोई प्रेम कहानी नहीं लिखी है। उनके भक्ति काव्य में कबीर, सूर, तुलसी की झलक है। कबीर एवं तुलसी से वे उतने प्रभावित नहीं हैं, जितने सूर से। भारतेंदु के संत काव्य एवं राम काव्य का परिमाण बहुत कम है। वस्तुतः भक्ति काव्य के क्षेत्र में सूर ही उनके आदर्श हो सकते थे। भारतेंदु वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव थे, इसलिए उन्होंने कृष्ण काव्य की ही प्रचुर मात्रा में सृष्टि की है। वे अष्टछाप के कवियों द्वारा प्रारंभ की हुई कृष्ण काव्य की अंतिम महान कड़ी हैं। अष्ट छाप के कवियों में सूर के अतिरिक्त कोई भी कवि भारतेंदु के सामने नहीं ठहर सकता। भक्ति काल के अनंतर रीति काल आता है। भारतेंदु का बचपन इसी काल में बीता था, इसी काल में उन्होंने साँस ली थी, इस लिए इसके प्रभाव से बच निकलना असंभव था। उन्होंने रीतिबद्ध रचनाएँ न कर रीति-मुक्त रचनाएँ ही की हैं। केशव, भूषण, मतिराम, देव, दास, पद्माकर आदि का अनुकरण न कर घनानंद, रसखान, ठाकुर, बोधा, आलम आदि स्वच्छंद कवियों का पथानुसरण उन्होंने किया और शृङ्गार रस की जो स्फीत वाग्धारा बहाई, वह कोई क्या बहा सकेगा। फिर भी उनके अनेक कवित्त सवैये रीति-परंपरा पर हैं और नायक नायिकाओं के अच्छे उदाहरण हो सकते हैं। परकीया के विरह का जो स्वाभाविक एवं सरस चित्रण उन्होंने अपने काव्य में किया है, वह केवल घनानंद में सुलभ है। विरह का अस्वाभाविक अत्युक्ति पूर्ण ऊहात्मक वर्णन उन्होंने नहीं किया है। इस प्रकार वे पद लिखने वाले भक्त कवियों में विद्यापति एवं मीरा के समकक्ष तथा सूर को छोड़ अष्ट

छाप के अन्य सभी कवियों से बढ़कर हैं ; कवित्त सवैया लिखनेवाले शृङ्गारी कवियों में वे देव, पद्माकर, ठाकुर, घनानंद एवं रसखान की कोटि के हैं ।

जहाँ तक आधुनिक काव्य का सम्बन्ध है, वे उसके प्रवर्तक हैं । रीति-काल में हिन्दी साहित्य जन-जीवन से अलग हो गया था । भारतेन्दु को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने साहित्य और जीवन का संपर्क स्थापित कर इस विच्छेद की गहरी खाईं को पाट दिया । हिन्दी के समर्थ आलोचकों ने भारतेन्दु की इस दृष्टि से भूरि भूरि प्रशंसा की है । जो काम भूषण सा समर्थ कवि भी न कर सका था, भारतेन्दु ने उसे कर दिखाया । इसीसे उनका महत्व आँका जा सकता है । भारतेन्दु ने देश-भक्ति, राज-भक्ति, समाज-सुधार स्वदेशीयता, हिन्दुत्व, हिन्दी-प्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिख काव्य की संकीर्ण-सीमा का विषय-विस्तार किया और अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया ।

हास्य रस के क्षेत्र में भी उनकी देन अत्यधिक है । उनके पहले हास्य रस प्रायः अछूता ही रहा है । भारतेन्दु हास्य-रस के पहले बड़े कवि हैं । उनका हास्य निरर्थक न होकर सोद्देश्य है, उसके द्वारा वे सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करते हैं ।

प्रकृति के क्षेत्र में यद्यपि वे बहुत ऊँचे नहीं उठ सके, फिर भी उसे काव्य का आलम्बन बनाकर उन्होंने एक बहुत बड़ा काम किया । गंगा वर्णन, यमुना वर्णन, प्रात-समीरन आदि में प्रकृति का वर्णन आलम्बन की दृष्टि से हुआ है । इस प्रकार प्रकृति-काव्य को एक कदम और आगे बढ़ाने का श्रेय उन्हें है ।

लोक गीतों को भी साहित्योपयोगी बनाकर उन्होंने अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय दिया है । अभी तक गाने मुसलमान गायकों की ही कृति थे, हिन्दी के किसी भी कवि ने इस ओर दृष्टिपात नहीं किया था । भारतेन्दु पहले बड़े हिन्दू कवि हैं जिन्होंने प्रचुर मात्रा में रस से सराबोर गानों का प्रणयन किया । इस दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य भारतेन्दु का ऋणी है और वे अपने इस अभिनव क्षेत्र में अद्वितीय हैं ।

जहाँ तक काव्य-रूपों का सम्बन्ध है, भारतेन्दु ने हिन्दी में अंग्रेजी के ढंग पर सर्वप्रथम निबन्ध काव्यों, कथा-काव्यों एवं संबद्ध-मुक्तकों का सर्जन कियो और प्रबन्ध काव्यों को छोड़ पहले से चले आते हुए प्रायः सब प्रकार के मुक्तकों की सृष्टि उन्होंने की । ये नए काव्य रूप भारतेन्दु की बहुत बड़ी देन हैं, जिनका आगे चलकर प्रचुर अनुकरण हुआ ।

अभी तक हिन्दी के आलोचक भारतेन्दु के नाटकों एवं उनकी गद्य-सेवा को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए उनका महत्व अंकित करते आये हैं। उनके कवि रूप की सर्वथा उपेक्षा ही हुई है, बहुत हुआ तो उनकी आधुनिक काव्य धारा की कविताओं का थोड़ा बहुत विवेचन कर दिया गया है। उनका प्राचीन-धारा का काव्य परिमाण में बहुत है, उसकी ओर अभी तक दृष्टिपात नहीं हुआ था। किसी आलोचक ने आज तक यह देखने का प्रयास नहीं किया कि केवल कवि की दृष्टि से भारतेन्दु का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान हो सकता है?—क्या वे हिन्दी नवरत्नों की श्रेणी में आ सकते हैं? सूर और तुलसी को छोड़िये, वे कवियों के कवि हैं;—चंदबरदाई, विद्यापति, कबीर, जायसी, केशवदास, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, घनानंद किसी भी कवि से भारतेन्दु कम नहीं हैं। यदि ऊपर के कवि अपने अपने क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ हैं, तो भारतेन्दु भी अपने क्षेत्र में अतुलनीय हैं। पूर्ववर्ती कवियों ने जहाँ केवल एक शैली में प्रवीणता प्राप्त की है, भारतेन्दु ने प्रायः प्रत्येक पूर्ववर्ती काव्य शैली में सफलता प्राप्त की है, साथ ही नवीन काव्य शैलियों को जन्म दिया है।

भारतेन्दु व्रजभाषा के कवि हैं, पर आधुनिक खड़ी बोली का जान बूझ कर सर्वप्रथम उन्होंने परीक्षात्मक प्रयोग किया। उनके भी पहले यत्र तत्र खड़ी बोली काव्य की झलक मिल जाती है, पर वह जागरूक प्रयास नहीं है। गद्य की भाषा उनके द्वारा जब निखार पर आ गई, तब उन्हीं के समय में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि गद्य और पद्य की दो भिन्न भाषाएँ कहाँ तक समीचीन हैं। इस अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए उन्होंने खड़ी बोली में काव्य-लेखन-प्रयोग किया। यद्यपि वे सफल नहीं हुए, फिर भी उनका दूरदर्शी दृष्टिकोण यहाँ दिखाई देता है और खड़ी बोली काव्य के इतिहास में उनका भी नाम आदर पूर्वक लिया जाना चाहिए।

यदि सूर 'सूर' हैं और तुलसी 'ससी' हैं, तो भारतेंदु भी बालेंदु हैं। उनकी पुस्तकों पर बालेंदु अंकित भी हुआ करता था। उनकी गणना उडुगनों एवं खद्योतों में नहीं हो सकती। भारतेंदु के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए आवश्यक है कि उनकी पदावली, कवितावली, निबंध काव्य तथा अन्य चुनी रचनाओं के सुंदर संकलन प्रकाशित किए जायँ। श्री व्रजरत्नदास जी द्वारा संपादित 'भारतेंदु-सुधा' में अश्रृङ्गारी भारतेंदु के ही दर्शन होते हैं और केवल इस संकलन के बल पर हम भारतेंदु को बहुत ऊँचा दर्जा नहीं दे सकेंगे। भारतेंदु में जो कुछ श्रेष्ठतम है उसीका संकलन होना चाहिए था। यह संग्रह

साधारण कोमल-मति विद्यार्थियों के उपयोग की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

इस ग्रंथ में उद्धरण अधिक प्रतीत हो सकते हैं, ऐसा जानबूझकर किया गया है। आलोचना सत्साहित्य के प्रचार के लिए है। यदि उदाहरण न देकर संकेत मात्र दे दिया जाता तो यह उद्देश्य पूरा न होता, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि कोई इस ग्रंथ का अध्ययन करने के लिए भारतेंदु की सारी काव्य रचनाओं को भी लेकर बैठे।

ग्रंथ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में भारतेंदु के एवं उत्तरार्द्ध में उनके सहयोगी कवियों के कवि रूप पर विचार किया गया है। पूर्वार्द्ध में चार खंड हैं—पहले में भारतेंदु, भारतेंदु काव्य, भारतेंदु काव्य पर आलोचना साहित्य का रचना क्रम से परिचय दिया गया है। दूसरे में प्राचीन काव्य धारा एवं तीसरे में आधुनिक काव्य धारा का विवेचन तथा चौथे में शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अंत में कई परिशिष्ट हैं। विभिन्न अध्याय समान आकार के नहीं हो सके हैं क्योंकि उन अध्यायों की आलोच्य सामग्री ही एक परिमाण की नहीं है। उत्तरार्द्ध में भारतेंदु के संपर्क में आने वाले कवियों पर संक्षिप्त विचार हुआ है।

यह ग्रंथ आज से प्रायः सात वर्ष पूर्व सितंबर १९४९ में पूर्ण हुआ था और 'सुकवि भारतेंदु' नाम से लिखा गया था। तब इसमें 'भारतेंदु और उनके पूर्ववर्ती कवि' शीर्षक एक और अध्याय भी था, जिसको मैंने कतिपय अन्य निबंधों के साथ 'भारतेंदु तथा उनके पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवि' नाम से अलग स्वतंत्र पुस्तक रूप में साहित्य रत्न भंडार, आगरा, से प्रकाशित करा दिया, इस भय से कि ग्रंथ बहुत बड़ा न हो जाय। पर 'अन्य सहयोगी कवि' (रचना-काल सितंबर १९५५) जुड़ जाने पर यह आशा से बड़ा हो ही गया, जिसके लिए उत्तरदायी प्रकाशक महोदय हैं।

शब्दों के द्वारा आभार स्वीकार करना प्रदर्शन ही होगा, अतः इस संबंध में मौन रहना ही उचित होगा।

अक्षयतृतीया, सं० २०१३

किशोरीलाल गुप्त
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
शिबली नेशनल कालेज,
आजमगढ़।

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध

सुकवि भारतेन्दु

पूर्वार्द्ध

सुकवि भारतेंदु

प्रथम खण्ड

परिचय

१

जीवन वृत्त

भारतेंदु बाबू का जन्म काशी के चौखंभा मुहल्ले के एक अत्यंत समृद्ध एवं प्रसिद्ध अग्रवाल कुल में, मिती भाद्रपद शुक्ल ५ संवत १९०७ विक्रमी, तद्नुसार ९ सितंबर १८५० ई०, चंद्रवार को हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचंद्र स्वयं उच्च कोटि के कवि थे और गिरिधरदास के नाम से काव्य रचना करते थे। इनकी माता का नाम श्रीमती पार्वती देवी था। पितृकुल के समान मातृकुल भी प्रतिष्ठित एवं विद्याव्यसनी था। इनके मामा एवं नाना फारसी भाषा के विद्वान थे। इस प्रकार पितृ एवं मातृ दोनों पक्षों से भारतेंदु को विद्या का अंश मिला।

बाबू गोपालचंद्र का विद्यानुराग अत्यंत प्रबल था। उन्होंने अलभ्य एवं अमूल्य ग्रंथ रत्नों को संग्रह कर एक सरस्वती भवन बनाया था, जिसका मूल्य भारतेंदु बाबू के समय में एक लाख तक मिल रहा था। इनके दरबार में कवियों का बड़ा सम्मान होता था। कोई कवि विमुख नहीं लौटता था। पंडित ईश्वरीदत्त (ईश्वर कवि), सरदार कवि, दीनदयाल गिरि, कन्हैया लाल, पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्याणदास, माधोरामजी गौड़, गुलाबराम नागर तथा बालकृष्ण टेकमाली आदि कवि और विद्वान उनके सभासद थे। भारतेंदु बाबू का बचपन इसी विद्वत्समाज के बीच बीता था। यह दरबार उनकी साहित्यिक अभिरुचि एवं संस्कार का मूल कारण है। पाँच वर्ष की ही अवस्था में, जब उन्हें अक्षराभ्यास भी नहीं था, उन्होंने यह दोहा कहा था—

लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनुरुद्ध सुजान।
बानासुर के सैन को, हनन लगे भगवान॥

उस समय बाबू गोपालचंद्र 'बलरामकथामृत' में ऊषाहरण का प्रकरण लिखवा रहे थे—इसी प्रसंग में भारतेंदु ने यह दोहा कहा था। पिता ने इस दोहे को सुनकर बालक हरिश्चंद्र को छाती से लगाया, इसे अपनी पुस्तक में स्थान दिया और कहा तू एक दिन मेरा नाम बढ़ावेगा। पिता की यह भविष्य वाणी अक्षरशः सिद्ध हुई।

इसी प्रकार लड़कपन ही में उन्होंने अपनी विचित्र बुद्धि का एक बार और परिचय दिया था। एक दिन इनके पिता अपने कवि दरबार में बैठे हुए थे और स्वरचित 'कच्छपकथामृत' के इस सोरठे—

'करन चहत जस चारु, कछु कछुवा भगवान को'

का अर्थ पूछ रहे थे। किसी ने अर्थ किया 'भगवान का कुछ-कुछ यश'; और किसी ने कहा 'कछुवा भगवान का कुछ यश'। भारतेंदु बाबू ने इसका वह अर्थ किया जो कवि के भी मस्तिष्क में न आया था। उन्होंने कहा, 'बाबू जी आप उस भगवान का यश वर्णन करना चाहते हैं जिसको आपने कुछ-कुछ छू लिया है।' इस नए अर्थ पर सभी चकित रह गए।

पाँच वर्ष की अल्पवय ही में इन्हें मातृ एवं दश वर्ष की वय में पितृ वियोग सहना पड़ा। फलतः ये स्वच्छन्द हो गए और पढ़ने में मन नहीं लगाते थे। परंतु इनको ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा प्राप्त थी और एक बार पढ़ने से ही सब कुछ याद हो जाता था, इसीसे कभी अनुत्तीर्ण नहीं हुए। प्रारंभ में इनकी शिक्षा घर पर ही हुई; बाद में क्वींस कालेज में नाम लिखाया गया। ग्यारह वर्ष की वय में सपरिवार जगन्नाथ जी गए और तभी से पढ़ना लिखना सब छूट गया। इसी यात्रा से इन्हें ऋण लेने का दुर्व्यसन लगा। इसी यात्रा में जाते समय वर्द्धमान में भारतेंदु ने 'विधवा विवाह' नामक वंग भाषा का नाटक मोल लिया और अटकल से ही उसे पढ़ लिया। इस प्रकार भारतेंदु का बँगला-भाषा का अध्ययन प्रारंभ हुआ। इसके पहले वे हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी का अध्ययन करते रहे थे।

जगदीश यात्रा से लौटने के पश्चात ही भारतेंदु के मन में देश-सेवा की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। देश-सेवा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम उन्होंने हिंदी का उद्धार एवं अँगरेजी का प्रचार समझा। जब वह एक निश्चय पर पहुँच गए और उस निश्चय को कार्यान्वित करना प्रारंभ किया, तब कोई ऐसी शक्ति न थी जो उन्हें अपने पथ से विचलित कर सकती। सर्वप्रथम उन्होंने एक प्राइमरी पाठशाला खोली, जो उनके जीवन काल में 'चौखंभा स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध थी और अब 'हरिश्चन्द्र कालेज' के रूप में वर्द्धमान है।

भारतेंदु के पहले समाचार पत्रों की बड़ी दुर्दशा थी। उनकी भाषा 'अजब ऊटपट' थी। इसलिए भारतेंदु ने निश्चय किया कि कोई ऐसा पत्र निकाला जाय जो वस्तुतः हिंदी का पत्र कहा जा सके। भाद्रपद १९२६ में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पहला मासिक पत्र निकाला। प्रारंभ में इसमें पुराने कवियों की कविताएँ ही प्रकाशित होती थीं। देव का 'अष्टयाम', दीनदयाल

गिरि का 'अनुरागबाग', जायसी की पदमावत, कबीर की साखी, बिहारी के दोहे, गिरिधरदास का नहुष नाटक आदि अनेक ग्रंथ इसमें क्रमशः प्रकाशित हुए थे। पीछे भारतेंदु बाबू ने सोचा कि बिना गद्य के हिंदी की उन्नति नहीं हो सकती, इसलिए कविवचनसुधा को उन्होंने पाक्षिक कर दिया और उसमें विभिन्न विषय-संबंधी गद्य लेख भी छपने लगे। कुछ काल के अनंतर इसे साप्ताहिक कर दिया गया। यह एक प्रसिद्ध एवं सर्व-जन-प्रिय पत्र था। इसकी भाषा शुद्ध और आदर्श होती थी। इसके विषय अत्युत्तम एवं रोचक होते थे। पहले सरकार भी इसकी २०० प्रतियाँ लेती थी, पर कालांतर में इसकी भाषा-नीति से चिढ़कर इसका लेना बंद कर दिया। गोस्वामी राधाचरण जी, बाबू गदाधर सिंह, पं० बापूदेव शास्त्री, बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवासदास, पं० सरयू प्रसाद मिश्र, पं० मदनमोहन मालवीय, बाबा संतोष सिंह, पं० दामोदर शास्त्री, बाबू तोताराम, बाबू नवीनचंद्रराय, पं० रामशंकर व्यास, पं० बालकृष्ण भट्ट प्रभृति इसके सम्मान्य लेखक थे। समय पर न निकाल सकने के कारण एवं पंडित चिंतामणि के आग्रह से, भारतेंदु ने इसका सारा भार इन पंडित जी को दे दिया और कालांतर में इससे अपना संबंध-विच्छेद भी कर लिया। सन् १८८५ में यह दिवंगत हो गई।

अक्टूबर १८७३ ई० (१९३० वि०) से भारतेंदु ने एक दूसरी पत्रिका 'हरिश्चंद्र मेगज़ीन' निकालनी प्रारंभ की। आठ अंकों के अनंतर इसका नाम बदलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' रख दिया गया। कविवचनसुधा और हरिश्चंद्र मेगजीन के प्रकाशन काल में प्रायः चार वर्षों का अंतर है। इन चार वर्षों में उन्होंने अनेक सुलेखक तयार कर लिये थे। इनके सहयोग से यह पत्रिका चमक उठी। इसमें भी प्राचीन अप्रकाशित काव्य छपा करते थे। इस चंद्रिका का प्रकाशन बहुत दिनों तक लोगों को आह्लादित करता रहा। सन् १८८० के प्रारंभ में पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने आग्रह कर इसका भार अपने कंध पर ले लिया, पर यह शीघ्र ही अस्त हो गई। सन् १८८४ में भारतेंदु ने इसे 'नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका' के नाम से पुनः प्रकाशित करना प्रारंभ किया। इसके केवल दो अंक निकल पाये थे कि भारतेंदु स्वयं अस्त हो गए।

१८७४ ई० से स्त्री शिक्षा के निमित्त सरकार की इच्छा से भारतेंदु ने 'बाला-बोधिनी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसमें अन्य प्रकार के लेख भी प्रकाशित हुआ करते थे। मुद्राराक्षस के कई अंक इसमें निकले थे। सरकार इसकी भी १०० प्रतियाँ लेती थी, पीछे इसकी भी खरीद बंद हो गई। चार वर्ष बराबर प्रकाशित होकर यह भी चिर मौन हो गई।

'अपने निजी पत्रों को प्रकाशित करने के अतिरिक्त भारतेंदु बाबू ने अपने मित्र सुकवियों को भी प्रेरणा दी। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप चौधरी बद्री नारायण 'प्रेमघन' ने मिर्जापुर से 'आनंद कादंबिनी', बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग से 'हिंदी प्रदीप', प्रतापनाराण मिश्र ने कानपुर से 'ब्राह्मण' निकाला। इनके अतिरिक्त काशी पत्रिका, आर्य मित्र, मित्र विलास, भारत मित्र आदि प्राचीन हिंदी पत्रों के जन्म के प्रधान कारण भारतेंदु बाबू ही हुए। वे लेखों से बराबर इनकी सहायता किया करते थे।

हिंदी प्रचार के निमित्त इन्होंने हिंदी में एक परीक्षा भी कुछ काल के लिए प्रचलित की थी। एक हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना भी उनके मस्तिष्क में थी। पर असमय देहावसान से सभी योजना हवा हो गई। सं० १९२७ (१८७० ई०) में इन्होंने 'कविता वर्द्धिनी' सभा स्थापित की। पारितोषिक एवं प्रशंसा पत्र देकर नए कवियों का उत्साह बढ़ाना इस सभा का प्रमुख उद्देश्य था। १८७३ ई० में उन्होंने 'पेनी रीडिंग क्लब' की स्थापना की। सुलेखक गण हिंदी भाषा में उत्तम उत्तम लेख लिखकर लाते और इस क्लब में पढ़ते थे। जो जो मनोहर लेख हरिश्चंद्र मेगजीन एवं चंद्रिका में छपे हैं, प्रायः सभी इसमें पढ़े गए थे।

श्रावण शुक्ल १३, बुधवार सं० १९३० (१८७३ ई०) को भारतेंदु बाबू ने "तदीय समाज" संस्थापित किया। इसका उद्देश्य धर्म एवं ईश्वर प्रेम था! किंतु अन्य उत्तम कार्य भी इसके द्वारा सम्पादित हुए। मद्यपान एवं मांस-भक्षण-निषेध के लिए इस सभा ने सतत प्रयत्न किया। सहस्रों लोगों से लिखित प्रतिज्ञा लेकर उन्होंने इस प्रकार समाज सुधार का अपने ढंग का प्रथम प्रयत्न किया था। सन् १८७७ ई० में गो-रक्षा के निमित्त साठ हजार मनुष्यों से हस्ताक्षर कराकर दिल्ली दरबार में आवेदन पत्र भेजा था। समाज ने यथाशक्य स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की भी प्रतिज्ञा कराई थी। भारतेंदु स्वयं आजीवन इस नियम का पालन करते रहे। ये सब बातें कांग्रेस-जन्म के पहले की हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखने से भारतेंदु हमारी दृष्टि में और भी ऊँचे हो जाते हैं।

भारतेन्दु ने १८ वर्ष के अल्प साहित्यिक जीवन में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की। गद्य, पद्य, नाटक, इतिहास, कथा, कहानी, निबन्ध, जीवन-चरित्र, आलोचना, पुरातत्व आदि सभी प्रकार की कृतियाँ उन्होंने प्रस्तुत कीं। उनके देहावसान के अनन्तर 'हरिश्चन्द्र कला' के नाम से छः भागों में, प्रायः उनकी समस्त कृतियों के बृहत संग्रह, खड्ग विलास प्रेस पटना से, प्रकाशित हुए थे। पहले खण्ड में उनके मौलिक, अनूदित, पूर्ण, अपूर्ण सभी प्रकार के १७ नाटक

एवं 'नाटक' नामक गद्य ग्रंथ संकलित हैं। द्वितीय खण्ड में इतिहास की १३ पुस्तकें, तृतीय खण्ड में राजभक्ति सम्बन्धी १२ कविताएँ, चतुर्थ खण्ड में भक्ति सम्बन्धी २० गद्य पद्य रचनाएँ, पञ्चम खण्ड में छोटे बड़े २८ काव्य ग्रन्थ हैं; छठे खण्ड में भारतेन्दु की विविध रचनाएँ हैं जो संख्या में कम हैं, परन्तु यह खण्ड अपेक्षाकृत बृहत्काय है, क्योंकि इसमें भारतेन्दु द्वारा सम्पादित एवं संकलित ग्रंथ भी एकत्र हैं। भारतेन्दु की कृतियों की एक बृहत सूची बा० ब्रजरत्नदास ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' के परिशिष्ट 'इ' में दे दी है।

भारतेन्दु बाबू केवल हिन्दी के कवि न थे; वे संस्कृत, उर्दू, बँगला, गुजराती, पंजाबी, मारवाड़ी के भी कवि थे। दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं को छोड़, उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के वे जानकार थे। पुरानी भाषाओं में वे प्राकृत मे पूर्ण अभिज्ञ थे। विदेशी भाषाओं में वे अँगरेजी से परिचित थे।

भारतेन्दु बाबू एक बार लिखकर फिर उसका संशोधन नहीं करते थे। वही हस्तलिपि छपने को भेजी जाया करती थी। 'प्रूफशीट' को भी मूल से नहीं मिलाते थे। लिखने की गति अत्यन्त द्रुत थी। अन्धेर नगरी, बलिया वाला लेक्चर एक एक दिन में लिखे गये थे। विजयिनी विजय वैजयंती सभा होने के दिन रची गई थी। उनकी लिपि अत्यन्त सुन्दर थी। वे बातें करते जाते थे और लिखते जाते थे। हिन्दी ही नहीं, उर्दू, अँगरेजी, महाजनी, गुजराती भी इसी शीघ्रता से लिखते थे। उनका अधिकांश समय लिखने पढ़ने ही में व्यतीत होता था। लिखने की सामग्री सदैव साथ रखते थे। रात रात जब जी में आया, लिखने लगते थे। बढ़िया कागज कलम की परवाह उन्हें न थी। तिनके से कलम का और कोयले से पेंसिल का काम ले लेते थे। इन्होंने स्वप्न में भी कुछ रचनाएँ की थीं। वे आशु कवि थे। तुरन्त समस्या पूर्ति करना तो उनके बायें हाथ का खेल था।

भारतेन्दु पक्के समाज सुधारक थे। वे बाल विवाह के विरोधी एवं विधवा-विवाह तथा स्त्री शिक्षा के पक्षपाती थे। विवाह में अपव्यय को अनुचित समझते थे। अपनी कन्या के विवाह में गाली बन्द करा दी थी। वे मदिरा, मांस, फैशन, अदालत, खुशामद, फूट, डाह, स्वार्थपरता, पक्षपात, निर्बलता आदि को समाजोन्नति में बाधक मानते थे और विलायत-यात्रा के पक्षपाती थे। समाज-सुधार की भावना से उन्होंने लोक साहित्य में भी बहुत कुछ योग दिया।

भारतेन्दु बाबू सौन्दर्य के अनन्य प्रेमी थे। वे प्रकृति सौन्दर्य, वस्तु सौंदर्य, काव्य सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य सभी के पुजारी थे। संगीत उन्हें प्रिय था, उनका कण्ठ भी सुरीला था। वे स्वयं ताल और झाँझ अच्छा बजाते थे। सितार, मृदग,

तबला आदि भी बजाते थे, पर इनमें उतनी दक्षता न प्राप्त थी। बुढ़वामंगल के अवसर पर बड़ी मस्ती लेते थे। कबूतर-कौतुक भी उन्हें प्रिय था। वे ताश शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे। वे अत्यन्त परिहास प्रिय थे और पहली अप्रैल को प्रायः 'फ़ूल डे' मनाया करते थे। उन्हें फोटो का शौक था और वे स्वयं अच्छा फोटो खींचते थे। विचित्र वस्तुओं के संग्रह में भी उनकी अभिरुचि थी।

भारतेन्दु प्रारम्भ से ही राजभक्त थे; पर १९३० के लगभग किसी कारण से उनमें राष्ट्रीयता का भी उदय हुआ। राष्ट्रीयता का यह स्वर १९३७ से अत्यंत प्रबल हो गया, तब से वे अँगरेज अफसरों के भक्त न रह गए और उनकी आलोचना से न चूके; हाँ, वे विक्टोरिया के अंत तक भक्त बने रहे।

भारतेन्दु बाबू परम वैष्णव थे। वे काशी के सुप्रसिद्ध गोस्वामी श्री गिरिधर महाराज की कन्या तथा गोपाल मन्दिर की अधिष्ठात्री श्री श्यामा बेटी जी से तीन वर्ष की अवस्था में वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। वे धर्म को विश्वास मूलक मानते थे, प्रमाणमूलक नहीं। बाह्याडम्बर को दूर ही से प्रणाम करते थे, इसीलिए बहुत से लोग उन्हें नास्तिक तक समझते थे। वे कृष्ण के सखा तथा राधारानी के गुलाम थे; पर अन्य देवी देवताओं से घृणा नहीं करते थे, यहाँ तक कि जैन मन्दिर में जाना भी बुरा नहीं समझते थे। गंगा, यमुना, दशावतार, राम सीता पर अनेक रचनाएँ उन्होंने की हैं। वैष्णव सुलभ उदारता उनमें थी।

भारतेन्दु का कद लम्बा, बदन इकहरा, नाक सुडौल, आँखें छोटी, कान बड़े, ललाट उन्नत, बाल घुँघराले और सूरत साँवली सलोनी थी। रूप आकर्षक और वाणी अत्यन्त मधुर थी। दयालुता, गुण-ग्राहिता, शील, सत्यता, मसखरापन उनमें कूट कूट कर भरे थे। वे आरम्भ-शूर थे, किसी भी कारण से शिथिलता आने पर कार्य अधूरा ही रह जाता था।

भारतेन्दु बाबू को हिन्दी प्रेमियों ने ही सम्मानित नहीं किया, बल्कि सभी ने उनको सदा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा। सन् १८७० ई० में ये आननेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए थे। छह वर्ष तक म्यूनिसिपल कमिश्नर रहे। १८७३ ई० से वर्षों तक पंजाब विश्वविद्यालय की एफ० ए० आदि परीक्षाओं के संस्कृत के परीक्षक थे। काश्मीर, ग्वालियर, रीवाँ, मेवाड़ के राजाओं, लार्ड लिटन एवं प्रिंस आफ़ वेल्स आदि द्वारा वे सम्मानित हुए थे। काशी नरेश से तो उनका स्नेह-संबंध ही था। श्रीमान् महाराजकुमार विजयानगरम्, राजा वेंकटगिरि, राजा छत्रपुर, महाराजा डुमराँव तो इनके घर पर जाजाकर मिला करते थे। इनकी गोष्ठी के लोग तो इन्हें भारतेंदु कहा ही करते थे; पर जब राजा शिवप्रसाद को 'सितारे हिंद' की पदवी

सरकार से मिली, तब सन् १८८० ई० के २७ सितम्बर के 'सार सुधानिधि' पत्र में श्री रामशंकर व्यास जी ने इनको भारतेंदु की पदवी देने के लिए प्रस्ताव किया। इस पर विभिन्न पत्रों के संपादकों एवं विद्वानों ने एक सम्मत होकर यह पद उन्हें प्रदान किया।

"एक तो ये स्वाभाविक उदार, दूसरे रसिकता के आगार एवं सदैव रसिक समाज के साथ व्यवहार, तीसरे सदैव गुणियों का सत्कार, चौथे देश-सुधार एवं परोपकार का विचार, पाँचवें अर्थ-लोलुप विश्वास घातियों की भरमार"—इन कारणों से अपने अंतिम दिनों में भारतेंदु बाबू को द्रव्याभाव से अत्यंत दुखी रहना पड़ा, पर वे सत्य पर अडिग रहे।

भारतेंदु बाबू का दो रमणियों से प्रेम संबंध था—यह संबंध गुलाब में काँटे की भाँति है। ये हैं मल्लिका एवं माधवी। मल्लिका एक विदुषी बंगाली महिला थी, उसने 'चंद्रिका' नाम से कुछ रचनाएँ भी की हैं। माधवी पहले हिन्दू थी, फिर वह मुसलमान वेश्या हो गई। संपर्क में आने पर भारतेंदु ने उसे शुद्धकर फिर हिन्दू बना लिया था। यह भी सुकवि थी। इन दोनों की कुछ रचनाएँ भारतेंदु ग्रंथावली द्वितीय भाग में पाई जाती है।

भारतेंदु बाबू सन् १८८२ ई० में मेवाड़ यात्रा से बीमार होकर लौटे, तब से वे कभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हुए, निरंतर रुग्ण बने रहे। छह जनवरी १८८५ को इनका देहावसान हो गया। उनके अंतिम शब्द थे—

'श्री कृष्ण! श्री राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं मुख दिखलाओ'

निम्नलिखित कवित्त में भारतेंदु ने स्वयं अपना परिचय दिया है—इसके विना यह जीवनवृत्त अधूरा ही रह जायगा—

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुनगानी के
सीधन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकन सों,
'हरीचंद' नगद दमाद अभिमानी के
चाहिबे की चाह, काहु की न परवाह,
नेही नेह के, दिवाने सदा सूरत निवानी के
सर्बस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के

२

काव्य-ग्रंथ

भारतेंदु के प्राय: सभी ग्रंथ उनके जीवन काल में पहले तो कविवचन सुधा और हरिश्चंद्र चंद्रिका आदि पत्रिकाओं में, फिर स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके थे। उनकी मृत्यु के अनंतर वे सभी छह खंडों में 'हरिश्चंद्र कला' के नाम से तथा अलग अलग भी खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर पटना से प्रकाशित हुए। भारतेंदु अर्द्धशताब्दी महोत्सव के अवसर पर १९३५ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने उनके समस्त पद्य ग्रंथों का संकलन 'भारतेंदु ग्रंथावली द्वितीय भाग' के नाम से प्रकाशित किया। हरिश्चंद्र कला के तृतीय खंड में राजभक्ति संबंधी कविताएँ, चतुर्थ में भक्ति संबंधी गद्य एवं पद्य ग्रंथ एवं पंचम में उनके इतर काव्य ग्रंथ संकलित हुए थे। सभा की ग्रंथावली में सभी काव्य-ग्रंथ एक साथ मिल जाते हैं। हाँ, कुछ स्फुट रचनायें इसमें भी संकलित होने से रह गई हैं, जैसे आत्म-परिचय वाला कवित्त और दशरथ-विलाप नामक खड़ी बोली की कविता। इस ग्रंथावली में २१ काव्य ग्रंथ और ४८ छोटे काव्य तथा अनेक स्फुट रचनाएँ हैं। भारतेंदु-काव्य के अध्ययन के लिए यह ग्रंथ एक मात्र आधार है। इसी के अनुसार आगे भारतेंदु की काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है, क्योंकि साधारण तौर पर लोग उनकी काव्य-पुस्तिकाओं के नाम तक नहीं जानते।

१. भक्त सर्वस्व : १९२७.

भक्त सर्वस्व का दूसरा नाम है 'श्री चरण चिन्ह वर्णन'। इसमें श्रीकृष्ण एवं राधा जी के चरण चिह्नों का विशद वर्णन किया गया है। ये चरण भक्तों के लिए परमपद हैं, उनके सर्वस्व हैं। इसीलिए इस ग्रंथ का नाम भक्त सर्वस्व है। यह भारतेंदु की प्रथम पद्य पुस्तिका है, जो उनके बीस वर्ष की वय में लिखी गई। यह सर्व प्रथम मेडिकल हाल के छापाखाने में सन् १८७० ई० में छपी। भारतेंदु के अनुसार ही "इसकी कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है", तथापि कवि को इसका शोक नहीं, क्योंकि उसने इस ग्रंथ की रचना अपनी काव्य प्रतिभा प्रकट करने के लिये नहीं, बल्कि अपनी वाणी पवित्र करने एवं प्रेमरंग में रँगे हुए वैष्णवों के आनंद के हेतु की थी। यह ग्रंथ दोहा छंदों में है, बीच बीच में सात छप्पय भी हैं, जिनमें चिह्नों

की सूची मात्र है। दोहों में एक एक चिह्न पर गम्योत्प्रेक्षा के रूप में काव्या-त्मक, कल्पित, भक्त-उर-सुखदायक कारण लिखे गए हैं, यथा—

स्वस्तिक चिन्ह भाव वर्णन

जे निज उर मैं पद धरत, असुभ तिन्हैं कहुँ नाहिं।
या हित स्वस्तिक चिन्ह प्रभु, धारत निज पद माहिं ॥

वस्तुतः इन सभी दोहों में हेतूत्प्रेक्षा है, जिसका वाचक शब्द 'मानों' किसी भी दोहे में नहीं दिया गया है। ऐसा कर देने से भक्त का विश्वास भगवान के चरणों में और भी दृढ़ हो जाता है, क्योंकि वह इन कारणों को काल्पनिक न मानकर सत्य मान लेता है। इस ग्रंथ में सब मिलाकर ३०१ दोहे हैं, इनमें से प्रथम २१ मंगलाचरण एवं अंतिम ३१ उपसंहार रूप में हैं, शेष २६९ में चिह्नों का भाव-वर्णन है। यह ग्रंथ मुख्यतया भागवत का अनुगामी है (भूमिका), पर १९ वें दोहे के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य के वंशज गोस्वामी हरिराय जी का भी अनुसरण भारतेंदु ने किया है।' इनके अतिरिक्त श्री गोपाल तापिनी श्रुति, भक्त मंजूषा, तुलसी शब्दार्थ प्रकाश, गर्ग संहिता, श्री राधिका सहस्रनाम, हयग्रीव संहिता, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, स्कंद पुराण, मत्स्य पुराण आदि ग्रंथों से भी सहायता ली गई है। अनुप्रासों की सकीर्णता से इसमें तुकों की पुनरुक्ति बहुत है। अंत में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य एवं श्री रामचंद्र जी के चरण-चिह्नों पर भी भाव-वर्णन हैं। वस्तुतः यह संप्रदाय-निष्ठ काव्य है, और काव्य की श्रेणी में नहीं आता।

२. प्रेम मालिका : १९२८

प्रेम मालिका सं० १९२८ वि० में प्रकाशित हुई। ऐसा बाबू ब्रजरत्नदास का मत है, यद्यपि इसका कोई प्रमाण ग्रंथावली में उन्होंने नहीं दिया है। बाबू शिवनंदन सहाय भी इस विषय में मौन हैं। इसका समर्पण अँगरेजी में है और यह प्रेम को प्रेमपूर्वक समर्पित है। 'विजयते जीवितेशः' के रूप में इसकी एक छोटी सी भूमिका भी है। इस छोटे से ग्रंथ में १०० पद हैं, हरिश्चंद्र ने भूमिका में इन्हें कीर्तन कहा है। वे लिखते हैं—"इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनाए कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन एकत्र किए गए हैं। इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं—एक तो लीला संबंधी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव के हैं।" इससे स्पष्ट है कि १९२८ तक हरिश्चंद्र ने पर्याप्त पद-रचना की थी, पर उनमें से कुछ को ही प्रेम मालिका में स्थान दिया। हरिश्चंद्र का साहित्यिक जीवन 'विद्यासुंदर' के अनुवाद से (१९२५) प्रारंभ होता है। इस नाटक में १२ कविताएँ हैं, जिनमें ८ पद हैं। इस प्रकार हम

देखते हैं कि पद-रचना की ओर उनका झुकाव प्रारंभ से ही रहा है। लीला एवं दैन्य संबंधी पद परंपरा-भुक्त हैं, किन्तु परम प्रेममय अनुभव के पद परंपरा-मुक्त हैं और ये विशुद्ध शृंगार की रचनाएं हैं जिनमें आत्माभिव्यक्ति प्रधान है। इन्हें कीर्तन कहने में कुछ संकोच लगता है। इनकी संख्या भी अपेक्षाकृत कम है। ५२, ५३ संख्यक रचनाएँ कवित्त हैं; २९, ३०, ३१ संख्यक पद राजस्थानी में हैं। इस ग्रंथ में अनेक अत्यन्त उच्चकोटि के पद भी हैं, जो चन्द्रावली में भी रख दिये गये हैं, यथा—पद ५०, ६७, ७०, ८१, ८२। प्रायः सभी पदों का राग भी सूरसागर एवं विनयपत्रिका की पद्धति पर दे दिया गया है। प्रेम मालिका यद्यपि भारतेंदु की प्रारंभिक रचनाओं में है, फिर भी यह एक उच्चकोटि की कृति है।

३. वैशाख माहात्म्य : १९२९.

यह ग्रन्थ भारतेंदु बाबू की अत्यंत प्रारभिक कृतियों में है। संभवतः इसके प्रथम संस्करण में प्रकाशन-काल नहीं दिया है, इसीलिए ग्रन्थावली में इसे १९२९ (?) माना गया है, परतु बाबू शिवनंदन सहाय ने स्पष्ट शब्दों में इसका निर्माण-काल १८७२ ई० (१९२९) दिया है। यह पुस्तक दोहों में है। भारतेंदु का निम्नलिखित प्रसिद्ध मंगलाचरण सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ के प्रारंभ में दिखाई पड़ता है—

भरित नेह नव नीर सों बरसत सुरस अथोर
जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मन मोर

इसको छोड़कर इसमें ९३ दोहे हैं। 'गुरु आयसु निज सीस धरि' एवं 'सुमिरि सच्चिदानन्द' तथा 'निरनय सिंधु' और 'भगवद्भक्ति विलास' ग्रंथों का पारायण कर यह ग्रन्थ एक दिन में लिखा गया था। इसमें माधव मास में माधव का भजन करना बतलाया गया है, क्योंकि—

रमत माधवी कुंज, करि प्रेम माधवी पान
माधव रितु, सँग माधवी, लै माधव भगवान २

इसके अनुसार चैत्र कृष्ण एकादशी अथवा पूर्णिमा से स्नान प्रारंभ करना चाहिए। जिस तीर्थ में स्नान करे उसका नाम ले, तुलसी दल अर्पण करे, पीपल को जल दे प्रदक्षिणा करे; गऊ की पीठ सहलाए, एकाहारी रहे, तारा देखकर भोजन करे, ब्रह्मचर्य रहे, धरणी-शयन करे, गंगास्नान करे, पौसरा स्थापित करे, चटाई छाता पंखा जूता छड़ी एवं सूक्ष्म परिधान दान करे, तो वैकुंठ प्राप्त हो। फिर अक्षय तृतीया, गंगा सप्तमी, वैशाख शुद्ध द्वादशी, नृसिंह चतुर्दशी, पूर्णिमा के विधान एवं माहात्म्य आदि का वर्णन है। अंतिम पाँच दोहे उपसंहार रूप हैं।

इनसे इस ग्रन्थ की रचना के विषय में कुछ बातें ज्ञात होती हैं। 'भक्त सर्वस्व' के ढंग का यह अत्यन्त साधारण कोटि का एक संप्रदाय-निष्ठ पद्य ग्रंथ मात्र है। कार्तिक कर्म विधि, कार्तिक नैमित्तिक कृत्य, मार्गशीर्ष महिमा, माघस्नान विधि, पुरुषोत्तम मास विधान आदि गद्य ग्रंथ इसी प्रणाली के हैं। वस्तुतः वैशाख माहात्म्य को भी एक गद्य ग्रंथ होना चाहिए था।

४. फूलों का गुच्छा : १९२९.

बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं—"१८७२ ई० में काशी में बनारसी लावनीबाजों की लावनियों की बड़ी चर्चा थी। उसी समय उन्होंने फूलों का गुच्छा' नामक लावनियों का एक ग्रंथ बनाया था। प्रतीत होता है कि १८८२ ई० में उस पुस्तक की कोई नूतन आवृत्ति हुई थी, क्योंकि खड्ग विलास में जो संस्करण हुआ है उसमें हमारे चरित नायक की १९३९ संवत की लिखी हुई भूमिका देखी जाती है।" इस समर्पण की तिथि है १४ सितंबर १८८२ (१९३९ व०)। इसीलिए बाबू व्रजरत्नदास ने इसे १९३९ की रचना मान लिया है। विकास की दृष्टि से यह ग्रंथ १९२९ की ही कृति होनी चाहिए।

इस गुच्छे में उर्दू की १३ लावनियाँ हैं। रचनाएँ अत्यन्त साधारण एवं सदोष हैं। प्रायः प्रत्येक लावनी में स्थान-स्थान पर सकता (गति भंग दोष) है, जो सारा मज़ा किरकिरा कर देता है। अन्त्यानुप्रास भी बड़े बुरे हैं यथा झूठा, शिक्वा; लिखा, गिला; चले, कहै; रहे, गले आदि। ये सभी रचनाएँ लावनी की निर्गुन रहस्यवादी परंपरा का अनुसरण करती हैं।

५. जैन कुतूहल : १९२९

यह सर्व प्रथम १८७३ ई० के फरवरी की 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' में प्रकाशित हुआ। व्रजरत्नदास जी ने ग्रंथावली में इसका समय १९३० दिया है। गणना से फरवरी १८७३ सं० १९२९ में ही पड़ती है; क्योंकि मार्च के अंत या अप्रैल के आदि में विक्रम संवत प्रारंभ होता है।

भारतेंदु बाबू एक बार किसी जैन मंदिर में गए और 'हाथी द्वारा मारे जाने पर भी जैन मंदिर में न जाना चाहिए' के अनुसार लोग इनकी निंदा करने लगे कि ये तो नास्तिक हैं। उस समय उन्होंने इस 'जैन कुतूहल' की रचना की। इसमें भारतेंदु की उदार धर्म भावना की स्पष्ट झलक है। इसके मुख पृष्ठ पर संस्कृत के प्रसिद्ध समन्वयवादी श्लोक का निम्न अंश उद्धृत है—

'अर्हन्नित्यपि जैन शासन रताः'

भारतेंदु बाबू जैनों को भी विशाल हिंदू धर्म का एक अंग मानते थे और अरहंत को भी परमात्मा के अनन्त नामों में से एक नाम। इसमें ३६ पद हैं।

प्रथम सात पदों में किसी न किसी प्रकार जैन सिद्धांत, जैन तीर्थंकर, अहिंसा, वेद निंदा, आदि आ गये हैं; पर शेष २९ पदों का संबंध जैन धर्म से कुछ भी नहीं। ये सभी धार्मिक उदारता के पोषक दैन्य भाव के पद हैं।

६. प्रेम सरोवर : १९३०.

प्रेम सरोवर ४१ दोहों का प्रेम निरूपण संबंधी अनूठा ग्रंथ है। इसकी समर्पण तिथि है—अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल ३, सं० १९३०, मंगल। यह सर्व प्रथम १८७३ ई० के अक्टूबर की हरिश्चन्द्र चंद्रिका में प्रकाशित हुआ। समर्पण का पूर्वार्द्ध गद्य-काव्य का अत्यंत सुन्दर उदाहरण है। वैशाख के पवित्र मास में स्नान करने के लिए यह परम पवित्र प्रेम सरोवर बनाया गया है। यह मियाँ रसखान के प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रेम वाटिका' के आधार पर निर्मित हुआ है।

७. प्रेमाश्रु वर्षण : १९३०.

प्रेमाश्रु वर्षण की समर्पण तिथि है 'सावन हरिआरी अमावस गुरु पुष्य सं० १९३०'। मुख पृष्ठ पर घनानंद जी का प्रसिद्ध सवैया 'पर कारज देह को धारे फिरौ' है; फिर दूसरे पृष्ठ पर समर्पण है, जिसका तत्व है, "लो इस वर्षा से जी बहलाओ, पर प्यारे तुम भी कभी बरसो।" इसमें ४६ पद हैं। इनमें प्रेम के आँसुओं की वर्षा की गई है। प्रायः प्रत्येक पद में प्रावृट की कोई न कोई अनोखी झलक—मोर, दामिनी, हिंडोला, भींगना, नदियाँ, झींगुर-झनकार, चकचौंधी, घन-गर्जन, बदली का चाँद—अवश्य आ गई है। वर्षा की अनूठी छटा दिखाते हुए कवि ने कृष्ण प्रेम के संयोग एवं वियोग संबंधी सरस पद कहे हैं।

८. प्रेम फुलवारी : १९३०

बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं—

"इसी १८७३ में 'प्रेम फुलवारी' नाम की एक अपूर्व आनन्ददायिनी पुस्तक की अवतारणा हुई। पहिले 'कविवचन सुधा' में यह कई मास तक थोड़ी थोड़ी करके क्रमशः छपती रही, फिर पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। इसको कई एक संस्करण हुए। १८८३ ई० में भी एक संस्करण हुआ था और १८९० ई० में भी खड्ग विलास प्रेस से इसकी एक आवृत्ति हुई।

बाबू ब्रजरत्नदास को संभवतः १८८३ वाली प्रति मिली थी जो मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित हुई थी, इसीलिए वे इसे १९४० की कृति मान बैठे हैं। प्रारम्भ में इसमें ८० पद थे, अब ९३ पद हैं। ८१ से ९१ तक के पद 'नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में नवम्बर १८८४ में छपे, इनमें श्री स्वामिनी जी की स्तुति है, और यह बाद की रचना है।

इसके मुख पृष्ठ पर इश्क़ हक़ीक़ी सम्बन्धी दो दोहे और 'प्रेम प्रीति को बिरवा' नामक प्रसिद्ध बरवै का उत्तरार्द्ध उद्धृत है; फिर समर्पण है, जिसमें प्यारे से प्रार्थना की गई है कि वह कभी-कभी भूले-भटके इस फुलवारी में भी आ निकला करे। इसमें प्रारम्भ में मंगलाचरण सम्बन्धी ३ दोहे भी हैं। इस प्रेम फुलवारी को पाँच भागों में बाँटा गया है—(१) प्रेम फुलवारी का भूमि—इसमें तेरह पद (१–१३) दैन्य भाव के हैं। (२) प्रेम फुलवारा के वृक्ष—इसमें ४५ पद (१४–५८) विरह सम्बन्धी हैं, इसमें भ्रमरगात एवं नयनों को दान दशा भी है। (३) प्रेम फुलवारी के फूल—इसमें प्रीति के नौ पद (५९–६७) हैं। (४) प्रेम फुलवारी के फल—इसमें १३ पदों में (६८–८०) युगल-स्वरूप का ध्यान है। (५) श्री स्वामिनी जी की स्तुति—इसमें ११ पदों में (८१–९१) श्री राधा जी की महिमा गाई गई है। अन्त में दो पद (९२, ९३) श्रीकृष्ण-स्तुति सम्बन्धी भी हैं।

प्रेम फुलवारी पदों की विशुद्ध शैली में लिखित भारतेंदुजी के ग्रन्थों में अत्यन्त श्रेष्ठ एवं प्रौढ़ है। इसके अनेक पद चन्द्रावली में भी हैं, यथा २६, ३०, ४२, ४५ संख्यक पद।

९. भक्तमाल उत्तरार्द्ध : १९३३.

इस ग्रन्थ की सूचना कविवचनसुधा २७-३-१८७६ में निकली और

उनइस सै तैंतीस वर संवत भादों मास
पूनो सुभ ससि दिन कियो भक्त चरित्र प्रकास

इस दोहे के अनुसार मिती भादों पूर्णिमा, सं० १९३३, सोमवार को यह ग्रन्थ पूरा हुआ। यह हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में १८७६–७७ में क्रमशः प्रकाशित हुआ। प्रारम्भ में २३ दोहों में मंगलाचरण, १४ दोहों में भक्त परम्परा—कृष्ण, राधिका, गोपीजन, शिव, नारद, व्यास, शुक, विष्णु स्वामी, गोपीनाथ, बिल्व मंगल एवं वल्लभाचार्य—है, फिर १० दोहों में उपक्रम है। नाभा जी महाराज ने दयालु होकर भक्तमाल विरचा। उनके पीछे और जो भक्त हुए उनका वर्णन इस ग्रन्थ में उन्हीं की शैली में हुआ है। इसीलिए इसका नाम उत्तरार्द्ध भक्तमाल रखा गया है। है भी यह उक्त भक्तमाल का पूरक ग्रंथ। उपक्रम के पश्चात् सात-आठ दोहों में कवि ने स्ववंश वर्णन किया है। केवल इसी काव्य ग्रन्थ में भारतेन्दु ने अपने विषय में कुछ कहा है। अन्त में भी १४ दोहे एवं एक श्लोक है। मध्य में १४१ छप्पय हैं। एक छप्पय में एक ही भक्त का वर्णन है, पर ६२, ६४, ६५, ६६, १७३-४, १७५, १७६, १८१, १८५, १८९ १९३, १९४, १९५, १९६ संख्यक छप्पयों में अनेक भक्तों का उल्लेख एक साथ हुआ है।

प्रारम्भ के छप्पयों में अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णु स्वामी, निम्बादित्य, रामानुज, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, चैतन्य महाप्रभु एवं अष्टछाप के भक्त कवियों का वर्णन है। छप्पय संख्या ८३ से चौरासी वैष्णव प्रसंग प्रारम्भ होता है। ये चौरासी वैष्णव महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे, जिनकी वार्ता ब्रजभाषा गद्य में स्वयं गोकुलनाथ जी ने लिखी है। अन्त में जिन भक्तों की चर्चा की गई है, उनमें तुलसीदास (१७२), नागरीदास (१७८), नानक (१८२), नाभा (१८४), कुन्दनलाल (१८७), गिरिधरदास (भारतेंदु के पिता, १८८) प्रमुख हैं। ध्यान देने की बात है कि भारतेंदु बाबू गोसाईं तुलसीदास को अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास जी का बड़ा भाई ही समझते थे। तुलसीदास जी के वर्णन में वे उन्हें नन्ददास का अग्रज लिखते हैं—

नन्ददास अग्रज द्विजकुल मति गुन-गन पंडित १७२

और नन्ददास के वर्णन में उन्हें तुलसीदास का अनुज कहते हैं—

तुलसिदास के अनुज सदा विट्ठल-पद-चारी ८०

१०. प्रेम तरंग : १९३४.

बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार प्रेम तरंग का प्रकाशन १८७४ ई० (१९३१) में हुआ, परन्तु बाबू ब्रजरत्नदास के अनुसार कवि वचन सुधा ९-४-७७ में इसका प्रकाशन सर्वप्रथम हुआ। सप्रमाण होने के कारण पीछे वाली तिथि ही ठीक जँचती है।

पहले जो प्रेम तरंग निकला था, उसमें ६४ पृष्ठ और २६१ पद थे। इसमें से २३ पद भारतेन्दुजी के पिता बाबू गिरिधरदास के, २०४ हरिश्चन्द्र के और ३४ चन्द्रिका के थे। चन्द्रिका के पद बँगला भाषा में हैं। बाबू ब्रजरत्नदास को इसकी एक और प्राचीनतर प्रति मिली है जिसमें केवल १८० पद है, इसमें बँगला पद एकदम नहीं हैं। भारतेन्दु ग्रंथावली द्वितीय भाग में जो प्रेम तरंग प्रकाशित हुआ है, उसमें १४८ पद हैं। पहले १०० पद हैं, फिर आगे के पदों की संख्या १०१, १०२ आदि न देकर केवल १, २ आदि दी गई है। इनमें से ४७ पद बँगला भाषा के हैं (पद ७१, अन्त के १ से ४६ तक) अन्त में 'रसा' उपनाम से उनकी दो गजलें हैं। १४ बँगला पदों (७, १४, १८, १९, २८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९) एवं तीन हिन्दी पदों (९५, ९६, ९७) में चन्द्रिका नाम की छाप है। शेष बँगला रचनाओं (२९, ४१,४२) में हरिश्चन्द्र का नाम आया है; शेष पद सम्भवतः चन्द्रिका को ही हैं।

इस ग्रन्थ में चन्द पदों के अतिरिक्त शेष सभी खेमटा, पूर्वी, दादरा, लावनी तथा गजलें हैं। प्रारम्भ में ७८ तक दादरा आदि गाने हैं। इनमें ७१ संख्यक पूर्वी

बँगला में और ७२ संख्यक पद पंजाबी में है। ७९ से ८९ तक ११ लावनियाँ हैं। इनकी भाषा खड़ी बोली मिश्रित ब्रज भाषा है। लावनी संख्या ७९, ८३ उर्दू में है। फिर ९० से ९८ तक गाने हैं। इनमें से ९५, ९६, ९७, की रचयिता चन्द्रिका है। ९९, १०० उर्दू के रेखता हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में ब्रज भाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बँगला, पंजाबी आदि कई भाषाओं की रचनाएँ हैं।

प्रेम तरङ्ग का मूल स्रोत साधारण एवं लौकिक प्रेम है। इसकी अधिकांश रचनाओं का सम्बन्ध भारतेन्दु के आराध्य श्रीकृष्ण एवं राधा से नहीं है। इन रचनाओं में भक्ति का अभाव है। इसमें दैन्य एवं लीला के पद इने-गिने ही हैं। इसकी रचनाएँ अधिकांश में आत्माभिव्यञ्जन करती हैं। साधारण जनता में प्रचलित अनेक प्रकार के लोकगीतों को यहाँ साहित्यिक रूप दिया गया है, इसलिए इनमें ग्रामगीतों की सरलता एवं सरसता है। कोई भी गीत भाव एवं भाषा की गम्भीरता से बोझिल नहीं। भावनाएँ स्पष्ट रूप से, बिना किसी गोपन का सहारा लिए हुए, बिना हिचक एवं झिझक के अङ्कित की गई हैं। इसकी ८७ संख्यक लावनी सपने में बनाई गई थी। वस्तुतः यह ग्रन्थ पदों का नहीं है, गानों का है, और हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा है। भारतेन्दु के पहले और किसी हिन्दू कवि ने गाने लिखे ही नहीं थे, यह काम मुसलमान संगीतज्ञ कवियों ने ले रक्खा था। भारतेन्दु ने इन गानों के द्वारा एक अभाव की पूर्ति की है।

११. प्रेम प्रलाप : १९३४

सर्वप्रथम हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में सन् १८७७ ई० में प्रकाशित। इसमें सब मिलाकर ७६ कविताएँ हैं; जिनमें दो लावनियाँ (५४, ५६), एक संस्कृत अष्टपदी (५७), दो गुजराती गरबो (५८, ५९), ग्यारह कवित्त-सवैये (६०–६१, ६८–७६), एक खड़ी बोली मिश्रित संत काव्य (६७) एक बन्ना का गीत (५३) तथा शेष ५८ पद हैं। इस ग्रन्थ में कवि भगवान को खोटा (खुटाई पोरहि पोर भरी, २) निरदय (चरित सब निरदय नाथ तुम्हारे, ३) नखरेबाज (नखरा राह-राह को नीको, १) कहने में नहीं झिझका है। इसकी ८० प्रतिशत रचनाएँ दैन्य भाव की हैं, जिनमें कवि ने अनेक प्रकार से अपने नाथ गोपीपति गोपाल को रिझाने का प्रयास किया है। लीला के पद प्रायः नहीं के बराबर हैं। ४८ से ५२ तक के पाँच पद श्रीवल्लभ एवं श्रीविट्ठल के प्रति हैं। ६९,७०,७१ में सुदामा का द्वारका से लौटने पर अपनी जीर्ण कुटी के स्थान पर मणिमय प्रासाद खड़ा देख प्रलाप करना अंकित हुआ है। अंत में कवि ने कहा है—

'चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन टँटिन ऊपर फेंट कसी है।'

१२. गीत गोविंदानन्द : १९३५

'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' खण्ड ५–६ में नवम्बर १८७७ ई० से अक्तूबर १८७८ ई० तक क्रमशः प्रकाशित। यह मधु-वच, राधा-गुन-गायक, जयदेव के सुप्रसिद्ध अमृत-वर्षी काव्य 'गीत-गोविंद' का हिंदी पद्यानुवाद है। प्रारम्भ में भूमिका रूप में ७ दोहे भारतेन्दु कृत हैं; आठ से पन्द्रह तक के छन्द जयदेव कृत मंगलाचरण के अनुवाद हैं; १४ से ३७ तक जयदेव की २४ अष्टपदियों का अनुवाद है। अन्त में तीन दोहे उपसंहार स्वरूप हैं। इनमें भारतेन्दु ने गीत गोविन्द को हिन्दी में भाषान्तरित करने के लिए क्षमा प्रार्थना की है, क्योंकि अनुवादक की दृष्टि में अष्टपदियाँ गुप्त मन्त्र के समान हैं। इसमें राधा-कृष्ण की विविध केलियों का कलामय वर्णन है। अनुवाद सरस, सरल एवं सफल है।

१३. सतसई सिंगार : १९३५

'सतसई सिंगार' 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में (खण्ड २ संख्या ८ से खण्ड ६ संख्या ५, सन् १८७५ से सन् १८७८ तक) क्रमशः प्रकाशित हुआ। इसमें भारतेन्दु बाबू ने बिहारी सतसई के ८५ दोहों पर कुंडलियाँ लगाई हैं। किसी किसी दोहे पर कई-कई कुण्डलियाँ हैं; पर इस प्रयत्न को भारतेन्दु ने व्यर्थ और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग समझ उसे छोड़ दिया। कुण्डलियाँ तीन वर्षों में धीरे-धीरे लिखी गई थीं। ग्रंथावली में मिलान करने के लिए बिहारी रत्नाकर की दोहा संख्या भी दे दी गई है। एक विषय के दोहों पर लगाई हुई कुण्डलियाँ एक स्थान पर हैं। प्रारम्भ में मंगलाचरण सम्बन्धी इन दोहों पर कुंडलियाँ हैं—

(१) मेरी भवबाधा हरौ...

(२) सीस मुकुट कटि काछनी....

(३) मोहन मूरति स्याम की...

(४) तजि तीरथ हरि राधिका...

१४. होली : १९३६

सर्वप्रथम हरिप्रकाश यन्त्रालय में सं० १९३६ में मुद्रित। प्रारम्भ में गद्य में एक छोटा-सा समर्पण। ग्रन्थारम्भ में 'भरित नेह नव नीर नित...' का मंगलाचरण। इसके अतिरिक्त इस लघु ग्रन्थ में ७९ छन्द हैं। 'होली' होलियों का संग्रह है और होली की सारी मस्ती इनमें उँड़ेल दी गई है। शब्द-चयन में भी पूर्ण स्वच्छन्दता ली गई है, मानों कवि को सब कुछ कहने का 'लाइसेंस' मिल गया हो। प्रेमतरङ्ग की ही भाँति इसमें भी आत्माभिव्यञ्जन प्रधान है और कृष्ण-

भक्ति से इसका भी कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। 'समधिन मधुमास' की गाली इसीमें है (४३)। दो कविताएँ 'माधवी' की हैं (६१,६८)।

१५. मधुमुकुल : १९३७

बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार "१८८० ई० में 'मधु मुकुल माला' की सुगन्ध ने रसिकों के मन को आमोदित किया।" ग्रंथावली के अनुसार बनारस लाइट यन्त्रालय में सन् १८८१ ई० में यह मुद्रित हुआ। इसके समर्पण की मिती है फागुन कृष्ण १ सं० १९३७। 'होली' की ही भाँति इसके भी मूल में प्रेम है और यह भी होलियों का संग्रह है। इसमें सब ८१ रचनाएँ हैं। इनमें से १२ रचनाएँ 'होली' में भी हैं। मधुमुकुल की ३१,४१,५८,६५, ६६,६७,६८,७७,७८,७९,८०,८१ संख्यक रचनाएँ क्रमशः होली की ७८ ६७, २३,२,१२,१७,१८,६२,६३,६४,६५,७९ संख्यक रचनाएँ हैं। इस प्रकार मधुमुकुल में केवल ६९ नई रचनाएँ हैं। इसमें दो होलियाँ हैं जो राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत हैं—

(१) जुरि आए फाँकेमस्त होली होय रही (९)

(२) भारत में मची है होरी (४७)

इसी साल भारतेन्दु बाबू ने 'भारत दुर्दशा' लिखा। इन दोनों होलियों की विचारधारा भारत-दुर्दशा की विचार-धारा से पूर्ण मेल खाती है।

इस ग्रन्थ में ४८ संख्या पर 'होली लीला' नामक ३१० पंक्तियों की एक विस्तृत वर्णानात्मक कविता है, जो ग्रन्थावली के १२ पृष्ठों में आई है और लम्बाई की दृष्टि से कार्तिक स्नान, वैशाख माहात्म्य, प्रेम सरोवर, जैन कूतूहल आदि काव्य ग्रन्थों से बड़ी है और स्वतः एक पुस्तक-सी है, जो नवम्बर १८७४ ई० (१९३१) में हरिश्चंद्र चंद्रिका में अकेली छपी भी थी। इसमें होली लीला का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंकन किया गया है।

होलियों के अतिरिक्त इसमें पूरबी (५४), होली की लावनी (५६), होली की ग़ज़ल (५७) भी है। एक संस्कृत रचना भी (७४) राग वसंत में है। ६०, ६१, ६२ संख्यक रचनाएँ राजस्थानी में, ६४ संख्यक रचना पंजाबी में है। ६९, ७० संख्यक होलियाँ बन्दर सभा का अंग हैं।

'ग्रंथावली' एवं 'कला' के मधुमुकुलों में पर्याप्त अंतर है। ग्रंथावली में ८१ और 'कला' में ८८, वस्तुतः ९०, छद हैं। कला के मधु मुकुल की निम्न २२ रचनाएँ ग्रंथावली के मधु मुकुल में नहीं हैं—२,३,४,५,६,७,९,१०,११, १२,१३,१४,१५,२३,२८,६६,६७.८२,८५,८६,८७,८८। इनमें से २३,२८ 'होली' की ७६, ४४ संख्यक रचनाएँ हैं; ६६, ६७ बंदर सभा ८ और ८२

बंदर सभा ७ हैं तथा ८५, ८७, ८८ स्फुट पद और गीतों के अंतर्गत ३९, ४१, ३४ संख्यक रचनाएँ हैं। इस प्रकार केवल १४ रचनाएँ ग्रंथावली में नहीं हैं। ग्रंथावली के मधु मुकुल की निम्न १५ रचनाएँ कला में नहीं मिलतीं—९,३१,४१, ४७,५५,५८,६५,६६,६७,६८,७७,७८,७९,८०,८१। इन पंद्रहों में से १२ होली में हैं। केवल ९, ४७, ५५ होली में नहीं हैं, प्रथम दो (९, ४७) राष्ट्रीय रचनाएँ हैं और ५५ संख्यक रचना 'माधवी' जी की है। इस प्रकार कला के मधु मुकुल को ही ज्यों का त्यों ग्रंथावली में ले लेना अधिक समीचीन होता।

१६. वर्षा विनोद: १९३७

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' और 'मोहन चंद्रिका' खंड २ सं० २–६ में, सं० १९३७ में सर्व प्रथम प्रकाशित। इसमें सब १३० पद हैं। साधारण तौर पर इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है। पूर्वार्द्ध में प्रथम ६९ छंद एवं उत्तरार्द्ध में शेष ६१ छंद। पूर्वार्द्ध 'होली' एवं 'मधुमुकुल'-सा ही उच्चकोटि का है। इसका अधिकांश मलार और कजलियाँ हैं, जो रस से सराबोर हैं। दो एक लावनियाँ भी हैं जो कजली के ढंग पर ढली हुई हैं। ४२, ४६, ४९, ५०, ५१ संख्यक रचनाएँ राष्ट्रीय कजलियाँ हैं, जिनमें भारत की वर्तमान दुर्दशा (४२, ४५), जयचंद का विभीषणत्व (४९), सोमनाथ मंदिर टूटने पर शोक (५०) तथा पूर्व गौरव पर हर्षोल्लास (५१) वर्णित हैं। दो कजलियाँ संस्कृत में भी हैं (१७, १८)। इस ग्रंथ में दो सुंदर बारहमासे हैं (६१, ११५)। उत्तरार्द्ध के अधिकांश में चंद्रावली, बलराम, कृष्ण और राधा के जन्म पर बधाई के पद हैं। भक्तों को इनमें पूर्ण रस की प्रतीति हो सकती है। विशुद्ध काव्य-रसिकों को संभवतः यहाँ रस न मिलेगा। 'चमक से बर्क की उस बर्क-वश की याद आई है'—यह प्रसिद्ध तरजीहबंद यहीं है (२५)।

१७. प्रेम माधुरी : १९३७

बाबू शिवनंदन सहाय के अनुसार 'प्रेम माधुरी' ३१ मई, १८८० ई० से 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई। बाबू ब्रजरत्नदास के अनुसार 'कविवचनसुधा' अक्टूबर १८७५ ई० में इसका प्रकाशन हुआ। जो हो, यह भारतेंदु बाबू की सर्वश्रेष्ठ काव्य कृति है। इसके विषय में बाबू ब्रजरत्नदास लिखते हैं—

"भारतेंदु जी ने प्रेम की सारी माधुरी 'प्रेम माधुरी' के दो दोहों तथा एकसौ बाईस सवैयों में भर दी है। वाग्जाल तथा अलंकार से लदी फदी कविता के अन्वेषकों को इनमें उनके मनोनीत आस्वादन चाहे न मिले, पर स्वच्छ स्वाभाविक निर्मल वाग्धारा के प्रेमियों को इनमें वह स्वाद तथा मधुरिमा मिलेगी जो

सर्वदा उनके जिह्वाग्र पर रहा करेगी। भारतेंदुजी को अपनी काव्य-रचनाओं में यह सबसे अधिक प्रिय थी और यह इस योग्य है। जैसी स्वच्छ भाषा है, वैसे ही उमड़ते हुए भाव भी व्यक्त किए गए हैं, जिन्हें समझने में टीका, कोष आदि किसी की सहायता वांछनीय नहीं है। सभी सवैये एक से एक बढ़ कर हैं।"

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ १८७

ग्रंथावली में प्रकाशित 'प्रेम माधुरी' में २ दोहे, ४६ कवित्त और ८५ सवैये हैं। भारतेंदु के कवित्त सवैयों का यह एक मात्र संग्रह है। उनके कुछ और भी कवित्त सवैये हैं, जो यत्र-तत्र अन्य पुस्तकों में विकीर्ण हैं। इस पुस्तक के द्वारा भारतेंदु बाबू अपने को रीतिकालीन कवियों की परंपरा से जोड़ते हैं, उनमें भी विशेष कर उक्त युग के प्रसिद्ध स्वच्छन्द कवि घनानंद, ठाकुर, बोधा रसखान से। इस ग्रंथ में प्रेम और विरह की अत्यंत सुंदर अभिव्यंजना हुई है।

१८. विनय प्रेम पचासा : १९३८.

ग्रंथावली के अनुमान के अनुसार यह ग्रन्थ संभवतः १९३८ में प्रकाशित हुआ। इसमें नाम के अनुकूल विनय की ५० कविताएँ हैं, इनमें ३६ पद, एक छप्पय (२०), ३ कवित्त (२१, २४, २५), दो सवैये (२२, २३), एक गजल (३८), और खड़ी बोली मिश्रित संत काव्य परम्परा की छह रचनाएँ (३९, ४२, ४३, ४८, ४९, ५०) हैं। छन्द संख्या २ में छह दोहे हैं। ग्रन्थ साधारण है।

१९. कृष्ण चरित : १९४०.

ग्रन्थावली के अनुमानानुसार यह ग्रन्थ सम्भवतः १९४० में प्रकाशित हुआ। इसमें ४७ पद, एक कवित्त (३१) तथा तीन सवैये (३२, ५०, ५१) हैं। इसमें सात पदों में गंगा की स्तुति (१९, २०, ३३—३७) और छटें पद में यमुना की स्तुति है। शेष रचनाएँ कृष्ण चरित से सम्बन्ध रखती हैं। इसमें भी अनेक रचनाएँ विनय सम्बन्धी हैं। रथ यात्रा सम्बन्धी भी कई पद इसमें हैं। यह कृष्ण चरित सम्बन्धी कोई प्रबन्ध काव्य नहीं है जैसा कि नाम से भ्रम हो सकता है। यह स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। घटनाओं के तारतम्य पर कोई ध्यान नहीं रखा गया है। पद परम प्रौढ़ हैं।

२०. कार्तिक स्नान : १९४१.

बाबू ब्रजरत्नदास कार्तिक स्नान को १९२९ की रचना अनुमानते हैं, परंतु बाबू शिवनन्दन सहाय इसे १९४१ की कृति मानते हैं। वे लिखते हैं—

"१८८४ ई० में अस्वस्थ होने के कारण यह कार्तिक स्नान नहीं कर सके, किन्तु प्रति दिन एक एक पद की रचना करते गए थे। उन्हीं पदों के संग्रह का नाम 'कार्तिक स्नान' रक्खा गया। इसमें २५ भजन हैं जिससे अनुमान

होता है कि केवल २५ दिन यह स्नान करने के योग्य नहीं थे।"

—हरिश्चन्द्र पृ० १४०.

पदों के पहले ग्रंथारम्भ में १९ दोहे, १ सोरठा, २ सवैये हैं। इन सब रचनाओं एवं प्रथम छह पदों का तात्पर्य है—

कोऊ जप संजम करौ, करौ कोइ तप ध्यान
मेरे साधन एक हरि, सपनेहु रुचत न आन (१३)

पद ७, ८ लीला सम्बन्धी हैं। शेष १७ पदों में किसी न किसी रूप में दीपावली, दीप-शिखा आदि का नाम अवश्य आ गया है। इस पुस्तक में कार्तिक स्नान की कोई बात नहीं है; हाँ, कृष्ण भक्ति का मानसिक स्नान इससे अवश्य हो जाता है। इसके भी पद अत्यन्त प्रौढ़ हैं।

२१. राग संग्रह : १९४१.

बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार राग सग्रह १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ। इसका कुछ अंश 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' एवं 'मोहन चन्द्रिका' में सं० १९३७ में प्रकाशित हुआ था; सम्भवतः इसीलिए प्रमादवश ग्रंथावली में इसका प्रकाशन काल १९३७ मान लिया गया है। यद्यपि आकार-प्रकार से भारतेन्दु का यह सबसे बड़ा काव्य ग्रंथ है, इसकी पद संख्या १४१ है, पर ग्रन्थ साधारण है। इसमें गाने योग्य अनेक राग-रागिनियों के पद हैं। जो विशेष अवसरों, तेवहारों, उत्सवों पर कृष्ण मन्दिरों में गाने के लिए लिखे गए हैं। वल्लभकुल के लोगों पर भी इसमें प्रभूत पद हैं।

छोटे प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक रचनाएँ

भारतेन्दु ग्रंथावली के अन्त में ४८ विभिन्न छोटे कथा एवं निबन्ध काव्य तथा सबके अन्त में 'स्फुट कविताएँ' के अन्तर्गत सैकड़ों फुटकर मुक्तक रचनाएँ संकलित हैं। छोटे निबन्ध एवं कथा काव्यों को सुविधा के लिए हम निम्न लिखित तीन विभागों में बाँट सकते हैं—

(क) राजभक्ति संबंधी काव्य—

(१) स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अंतर्लापिका—१९१८
(२) श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र—१९२६
(३) सुमनोऽञ्जलि—१९२७
(४) काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु—
(५) सन् १८७१ में श्रीमान प्रिंस आफ् वेल्स के पीड़ित होने पर कविता-१९२८
(६) मुँह दिखावनी—१९३१

(७) श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन—१९३२.

(८) भारत भिक्षा—१९३२.

(९) मानसोपायन—१९३३

(१०) मनोमुकुलमाला—१९३४

(११) भारत वीरत्व—१९३५

(१२) विजय वल्लरी—१९३८

(१३) विजयिनी विजय पताका या वैजयंती—१९३९ (१९ सितंबर १८८२)

(१४) जातीय संगीत—१९४१

(१५) रिपनाष्टक.—१९४१.

१,४,७ को छोड़कर शेष १२ रचनाएँ हरिश्चंद्र कला तृतीय खंड (राजभक्ति) में संकलित हुई हैं। इनका विशद वर्णन राजभक्ति नामक अध्याय में किया गया है।

(ख) भक्ति काव्य—•

(१) कृष्ण काव्य—देवी छद्म लीला, तन्मय लीला, दान लीला, रानी छद्म लीला, क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हो, प्रबोधिनी, श्री पंचमी, वेणु गीति, मान लीला फूल बुझौवल।

(२) राम काव्य—रामलीला।

(३) स्तोत्र—प्रातः स्मरण मंगल पाठ, दैन्य प्रलाप, उरहना, संस्कृत लावनी, स्वरूप चिंतन, सर्वोत्तम स्तोत्र, निवेदन पंचक, अपवर्ग पंचक, पुरुषोत्तम पंचक, श्री सीता वल्लभ स्तोत्र, भीमस्तवराज।

(ग) विविध—

(१) श्री जीवन जी महाराज

(२) चतुरंग

(३) वसंत होली

(४) उर्दू का स्यापा

(५) प्रात समीरन

(६) बकरी बिलाप

(७) हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

(८) मूक प्रश्न

(९) बंदर सभा

(१०) नए जमाने की मुकरी

३

भारतेन्दु काव्य पर आलोचना साहित्य

भारतेंदु काव्य पर स्वतंत्र रूप से अभी तक कोई पुस्तक नहीं निकली है। विभिन्न ग्रंथों में प्रसंग-वश उनके काव्य पर भी कुछ कह दिया गया है। इस अध्याय में हम प्रकाशन-क्रम से भारतेंदु काव्य पर आलोचना साहित्य की समीक्षा करेंगे और देखेंगे कि केवल कवि की दृष्टि से भारतेंदु का कहाँ तक अध्ययन हो चुका है। शिवसिंह हिंदी के प्रथम इतिहासकार माने जाते हैं, वे भारतेंदु के समकालीन थे। हम उन्हीं से प्रारंभ करते हैं :—

१. शिवसिंह : १८७७ ई० (सं० १९३४)

शिवसिंह सरोज १९३४ में तयार हुआ। उस समय तक भारतेंदु की पर्याप्त पुस्तकें निकल चुकी थीं, पर शिवसिंह जी को उनकी कोई जानकारी नहीं थी। वे भारतेंदु के विषय में जो कुछ लिखते हैं, सब यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"हरिश्चंद्र बाबू बनारसी, गोपालचंद्र साह उपनाम
गिरधरदास के पुत्र। वि०।

यह विद्या के प्रचार में रात दिन लगे रहते हैं। सब विद्याओं की पुस्तकें अपने सरस्वती भंडार में इकट्ठी की हैं। सब प्रकार के गुणीजन इनकी सभा में विराजमान रहते हैं। यह भाषा और उर्दू दोनों ज़बानों के कवि हैं। 'सुंदरी तिलक' नामक बहुत ही ललित संग्रह छपवाया है, और जो ग्रंथ इन्होंने बनाए हैं, उनके हालात से हम नावाक़िफ़ हैं।"

—शिवसिंह सरोज पृष्ठ ५०९-१०

शिवसिंह जी भारतेंदु द्वारा संकलित 'सुंदरी तिलक' से ही परिचित थे और सरोज के प्रणयन में इस ग्रंथ की सहायता को भी उन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है। सरोज के पृष्ठ ३७१-७२ पर 'सुंदरी तिलक' से दो सवैये उद्धृत किए गए हैं, जो क्रमशः 'प्रेम माधुरी' के ४६, १०८ सख्यक सवैये हैं।

२. श्री रामशंकर व्यास : १८८५ ई०

'चंद्रास्त' प्रायः २० पृष्ठों की एक छोटी पुस्तिका है। भारतेंदु की मृत्यु के बाद दूसरे ही दिन यह छपकर वितरित हुई थी। इसके लेखक हैं भारतेंदु के अनन्य मित्र श्री रामशंकर जी व्यास, जो मृत्यु के समय भारतेंदु की शय्या के पास बैठे हुए थे। इस ग्रंथ में भारतेंदु का संक्षिप्त जीवन चरित है। 'हरिश्चंद्र

शोकावली' में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, विद्वानों एवं कवियों की शोकांजलियों का संकलन हुआ है। इसके भी प्रारंभ में 'चंद्रास्त' जुड़ा हुआ है। इन ग्रंथों में आलोचना के लिए कोई स्थान हो ही नहीं सकता।

३. राधाकृष्णदास : १९०४ ई०

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई श्री राधाकृष्णदास जी ने भारतेंदु का एक विस्तृत जीवन चरित्र १९०० में 'सरस्वती' में छपवाया। चार वर्ष के पश्चात् उसको कुछ परिवर्द्धित करके स्वतंत्र पुस्तकरूप में भी प्रकाशित कराया। 'राधाकृष्णदास ग्रंथावली' प्रथम भाग में यह १९३० ई० में पुनर्मुद्रित हुआ। इसमें अठपेजी आकार के १३४ पृष्ठ हैं। यह भी कोई आलोचना ग्रंथ नहीं है, जीवन चरित ही है। बाबू शिवनंदन सहाय एवं बाबू व्रजरत्नदास द्वारा प्रणीत भारतेंदु के जीवन चरितों पर इसका पर्याप्त प्रभाव है। इस ग्रथ के ५६ पृष्ठों में भारतेन्दु के पिता और उनके पूर्वजों का उल्लेख है, शेष ७८ पृष्ठों में ३६ विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत भारतेन्दु का चरित लिखा गया है।

४. श्री शिवनन्दन सहाय: १९०५ ई०

श्री शिवनन्दन सहाय जी ने १९०५ ई० में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का एक वृहत जीवन चरित प्रकाशित कराया। मूल ग्रंथ में ३६४ पृष्ठ हैं,। इसके अतिरिक्त ५० पृष्ठों का एक परिशिष्ट भी अंत में दिया हुआ है जिसमें भारतेंदु की लिखी हुई चिट्ठियों तथा अनेक सनदों के उद्धरण हैं। इस जीवन चरित में २८ परिच्छेद हैं। निम्न छह परिच्छेदों के ८० पृष्ठों में भारतेंदु की कविता का भी विवेचन हुआ है—(१) कविता शक्ति (अध्याय ६; २० पृष्ठों में), (२) काव्य ग्रंथों की समालोचना (अध्याय ७, २१ पृष्ठों में), (३) परिहास और व्यंग (अध्याय ११; ४ पृष्ठों में), (४) अन्य भाषा की कविता (अध्याय १३; ७ पृष्ठों में) (५) राजभक्ति (अध्याय १९; २० पृष्ठों में) (६) धर्म (अध्याय २०; ७ पृष्ठों में)। इनमें भी प्रथम दो अध्याय हमारे विशेष काम के हैं।

'कविता शक्ति' वाले अध्याय में संक्षेप में निम्न बातों का विचार किया गया है—

(१) भारतेंदु अल्पायु से ही काव्य रचना करने लगे थे—१२ वर्ष की आयु से ही उन्होंने हिंदी एवं संस्कृत में समस्यापूर्ति करनी प्रारम्भ कर दी थी। इसके निम्न कारण हैं–(अ) जन्म जात प्रतिभा (ब) कविता का उनकी पैतृक संपत्ति होना (स) काशी निवास (द) ग्यारह वर्ष की ही अवस्था से देशाटन (य) रसिक मित्र-

मंडली (फ) स्कूल में पढ़ते समय कक्षाध्यापक सुयोग्य कवि पं० लोकनाथ जी से काव्य सीखने का सुयोग।

(२) सर्वमान्य नवरसों के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति एवं आनन्द नामक चार अन्य रसों का पुष्ट तर्कों द्वारा प्रतिपादन।

(३) अपने पिता के अपूर्ण ग्रंथ 'रस रत्नाकर' को पूर्ण करने का अधूरा प्रयास और नायिका भेद के क्षेत्र में नई उद्भावना।

(४) कृत्रिमता और अतिशयोक्ति से दूर प्रकृत काव्य जिसमें भाषा की सरलता, भाव की गंभीरता, रुचि की निर्मलता एवं हृदयग्राहिता पाई जाती है।

(५) वीर रस की कविता भी सरल, उत्तेजक और हृदयग्राहिणी—द्वित्व एवं कटुवर्णों के द्वारा कृत्रिम ओज उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं।

(६) नेत्रों के सम्मुख चित्र खड़ा कर देने वाले, सुंदर एवं असुंदर दोनों प्रकार के दृश्यों के चित्रण की अपूर्व क्षमता।

(७) सभी रसों की कविता के उत्तम उदाहरण भारतेंदु काव्य में उपलब्ध।

'काव्य ग्रंथों की समालोचना' में धर्म 'एवं राजभक्ति संबंधी ग्रंथों को छोड़ शेष काव्य ग्रंथों का संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। ग्रंथों के काल निर्णय में इस अध्याय से विशेष सहायता मिलती है। इसके अंतिम दो पृष्ठों में भारतेंदु की खड़ी बोली कविता पर भी विचार किया गया है।

५. मिश्रबन्धु: १९१० ई०

मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' के ६० पृष्ठों (६३७ से ६९६ तक) में भारतेंदु का विवेचन किया है; नौ पृष्ठों में जीवनचरित, १५ पृष्ठों में 'हरिश्चंद्र कला' के छहो भागों का परिचय, ५ पृष्ठों में भारतेंदु साहित्य की विशेषताएँ, ३१ पृष्ठों में भारतेंदु के गद्य एवं पद्य के उदाहरण हैं। आलोचना की दृष्टि से इन ६० पृष्ठों में से केवल ५ पृष्ठ हमारे क़ाम के हैं। मिश्रबंधुओं के अनुसार भारतेंदु काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) भारतेंदु के काव्य में जातीयता के पीछे सबसे अधिक और बढ़िया वर्णन प्रेम का है। इनमें ईश्वरीय तथा सांसारिक दोनों प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था।

(२) भारतेंदु अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। जो जो बड़ी घटनाएँ इनके समय में हुईं, प्रायः उन सभी पर इन्होंने कविता की। उस समय भारतवर्ष को जिन जिन बातों की आवश्यकता थी, उसमें जो जो दोष थे, उन सबका इन्होंने सविस्तर वर्णन किया है। ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधिकवि भाषा साहित्य में एक भी नहीं हुआ।

(३) इनको हिंदूपन और जातीयता का सदैव बड़ा ध्यान रहता था। इतना अधिक स्वदेशाभिमान शायद ही किसी में उस समय हो। भारतेंदु के बराबर हिंदोस्तान के दोषों पर आँसू बहानेवाला एवं उसके महत्व पर अभिमान करनेवाला कोई भी अन्य कवि हिंदी साहित्य में न होगा। हास्य तक के ग्रंथों में इन्होंने देश-हित-चिन्तन नहीं छोड़ा।

(४) इनकी कविता में हास्य की मात्रा भी अधिक रहती थी। इन्होंने उसका प्रयोग ऐसी रीति से किया है कि वह कविता बहुत ही उत्कृष्ट मालूम होती है।

(५) इनके काव्य में जोरदारी (force) भी बहुत अधिक है। भाषा कवियों में से बहुत कम की रचना में इतना जोर पाया जाता है।

(६) इनमें विविध विषयों को यथावत् प्रकार से वर्णन करने की शक्ति बहुत प्रबल थी। इन्होंने प्राकृतिक तथा अन्य सभी प्रकार के वर्णन बहुत ही प्रकृष्ट किए हैं। सौंदर्य के तो यह उपासक ही थे। अतः प्रत्येक विषय में सुन्दरता पर इनकी निगाह पहुँच जाती थी।

(७) इन्होंने अपनी कविता में रूपकों का समावेश भी विशेष किया है।

(८) इन महाशय ने पुरानी प्रथा के नायिका, अलंकार, छंद, रीति विषयों पर एक भी ग्रंथ नहीं बनाया।

(९) इन्होंने राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों पर भी बहुत कुछ बातें लिखी हैं।

(१०) इन्होंने पद्य में ब्रजभाषा का विशेष आदर किया, यद्यपि उर्दू, खड़ी बोली, माड़वारी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी, मराठी, राजपूताना, बनारसी, अवधी आदि सभी भाषाओं में इन्होंने सरस काव्य किया है। जितनी भाषाओं में इन महाकवि को काव्य रचना करने की क्षमता थी, उतनी भाषाओं में काव्य रचने की शक्ति हमारे अन्य किसी भी एक कवि में नहीं है, और न कभी थी ही।

(११) इन्होंने भक्ति, तीर्थ, व्रत, धर्म, वीर, शृङ्गार, हास्य, करुण, बीभत्स, राजनीति, समाज, प्राकृतिक दृश्य आदि अनेकानेक विषयों पर कविता की और सबमें इनको सफलता प्राप्त हुई।

(१२) पद्य का पद्य में रोचक अनुवाद करना इन्हींका हिस्सा था।

(१३) इनमें आशु कविता करने की शक्ति अत्यंत प्रबल थी।

(१४) इनकी कोरी कविता भाषा के प्रशंसनीय कवियों की रचनाओं की समता नहीं कर सकती, परंतु नाटकों को भी मिला देने से इनका पद बहुत ऊँचा हो जाता है।

६. रामचन्द्र शुक्ल : १९१०

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, संख्या १० (१९०९ ई०), भाग १५, संख्या १० (१९१० ई०) में शुक्ल जी ने भारतेन्दु पर दो विवेचनात्मक निबंध लिखे थे। बाद में दोनों को मिलाकर उन्होंने एक रूप दे दिया है। इसी सम्मिलित रूप में यह 'चिन्तामणि' प्रथम भाग में उपलब्ध है। आगे चलकर उन्होंने 'भारतेन्दु साहित्य' नामक एक संकलन ग्रन्थ प्रस्तुत किया जिसमें भारतेन्दु के विभिन्न नाटकों से कतिपय अंश और अंत में दो तीन निबन्ध एकत्र कर दिए गए हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका में भी इन निबन्धों का उपयोग हुआ है। संवत् १९८६ ई० (१९२९ ई०) में शुक्ल जी का इतिहास निकला। इसमें भी उक्त निबन्ध की सारी सामग्री स्वीकार कर ली गई है। आवश्यकतानुसार परिवर्तन परिवर्द्धन भी कर लिया गया है। तुलसी, सूर, जायसी पर लिखी गई आलोचनाओं की भाँति यह निबन्ध भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यद्यपि उतना विशद नहीं। वस्तुत: भारतेन्दु पर लिखी गई यह पहली विद्वत्तापूर्ण विवेचना है, जिसका आगे के आने वाले आलोचकों ने पूर्ण उपयोग किया है। भारतेन्दु के प्रति शुक्ल जी की स्थापनाओं को हम आगे संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं—

(१) **काव्य भाषा परिष्कार**—"उन्होंने देखा कि बहुत से ऐसे शब्द, जिन्हें बोलचाल से उठे कई सौ वर्ष हो गए थे, कविताओं में बराबर लाए जाते हैं जिससे वे सर्वसाधारण के लगाव से कुछ दूर पड़ते जाते हैं। 'चककवै', 'ठायो', 'करसायल', ईठ', 'दीह', 'ऊनो', 'लोय' आदि के कारण बहुत से लोग हिंदी कविता को अपने से कुछ दूर की चीज़ समझने लगे थे। दूसरा दोष जो बढ़ते बढ़ते बहुत बुरी हद तक पहुँच गया था, वह शब्दों का तोड़ मरोड़ था। भाषा की सफ़ाई पर बहुत कम ध्यान रहता था। बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा इन बातों का भी बहुत कुछ सुधार—चाहे जान में या अनजान में हुआ। इस प्रकार काव्य की ब्रज भाषा के लिए भी उन्होंने बहुत अच्छा रास्ता दिखाया। अपने रसीले कवित्त और सवैयों में उन्होंने चलती भाषा का व्यवहार किया है, इसी कारण उनकी कविता का प्रचार देखते देखते हो गया।"

(२) **जीवन और साहित्य का पुनर्संबन्ध स्थापन**—"यद्यपि देश में नए नए विचारों और भावनाओं का संचार हो गया था, पर हिन्दी उनसे दूर थी। लोगों की अभिरुचि बदल चली थी, पर हमारे साहित्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था। बात यह थी कि जिन लोगों के मन में नई शिक्षा के प्रभाव से नए विचार उत्पन्न हो रहे थे, जो अपनी आँखों काल की गति देख रहे थे और देश की आवश्यकताओं को समझ रहे थे, उनमें अधिकांश तो ऐसे

थे जिनका कई कारणो से—विशेषतः उर्दू के बीच मे पड़ जाने से—हिन्दी साहित्य से लगाव छूट सा गया था और शेष–जिनमें नवीन भावों की कुछ प्रेरणा और विचारों की कुछ स्फूर्ति थी–ऐसे थे जिन्हें हिन्दी साहित्य का क्षेत्र इतना परिमित दिखाई देता था कि नए नए विचारों को सन्निविष्ट करने के लिए स्थान ही नहीं सूझता था। उस समय एक ऐसे सामंजस्य पटु, साहसी और प्रतिभा संपन्न पुरुष की आवश्यकता थी जो कौशल से इन बढ़ते हुए विचारों का मेल देश के परपरागत साहित्य से करा देता। ऐसे ही पुरुष के रूप मे बाबू हरिश्चन्द्र साहित्य क्षेत्र में उतरे। उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा दिया। बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने हमे बचाया।"

(३) **प्राचीन और नवीन का अपूर्व सामंजस्य**—"वे सिद्ध वाणी के अत्यंत सरस-हृदय कवि थे। इससे एक ओर तो उनकी लेखनी से शृंगार रस के ऐसे रसपूर्ण और मर्मस्पर्शी कवित्त सवैये निकलते थे जो उनके जीवन काल में ही इधर उधर लोगों के मुँह से सुनाई पड़ने लगे थे और दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम से भरे हुए उनके लेख और कविताएँ चारों ओर देश के मंगल का मंत्र सा फूँकतीं थीं। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर वंग देश के मधुसूदनदत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी मे; एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाल गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी-बगला-भगतो की हँसी उड़ाते तथा स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के रूप मे खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए नए या बाहरी भावो को पचाकर इस ढग से मिलाना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें। प्राचीन और नवीन के उस सन्धिकाल मे जैसी शीतल और मृदुल कला का सञ्चार अपेक्षित था वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं।"

(४) **राष्ट्रीयता**—"कविता की नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। नीलदेवी, भारतदुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आई हुई कविताओं मे देश-दशा की जो मार्मिक व्यञ्जना है, वह तो है ही; बहुत सी स्वतन्त्र कविताएँ भी उन्होंने लिखी जिनमे कहीं देश की अतीत गौरव गाथा का गर्व, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता इत्यादि अनेक पुनीत भावो का सञ्चार पाया

जाता है...'भारत दुर्दशा' में आलस्य आदि को लाकर इस कवि ने देश दशा को इस ढंग से झलकाया है कि नए और पुराने दोनों ढाँचों के लोगों का मन लगे। इस कलाकार में बड़ा भारी गुण यह था कि इसने नए और पुराने विचारों को अपनी रचनाओं में इस सफाई से मिलाया कि कहीं से जोड़ मालूम न हुआ। पुराने भावों और आदर्शों को लेकर इन्होंने नए आदर्श खड़े किए।"

(५) प्रकृति वर्णन—"वस्तु वर्णन में उन्होंने मनुष्य की कृति ही की ओर अधिक रुचि दिखाई जैसे 'सत्य हरिश्चन्द्र' के गंगा के (इस) वर्णन में। ...'चन्द्रावली' नाटिका में एक जगह यमुना के तट का वर्णन आया है पर वह भी परम्परा भुक्त ही है। उसमें उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि की भरमार इस बात को सूचित करती है कि कवि का मन प्रस्तुत प्राकृतिक वस्तुओं पर रमता नहीं था, हट हट जाता था।"

शुक्ल जी के अनुसार भारतेन्दु में विशुद्ध प्राकृतिक वर्णनों के अभाव के निम्न कारण हैं–(१) वे प्रकृति के उपासक न थे। (२) वे अपने भाव 'दस तरह के आदमियों के साथ उठ बैठकर' प्राप्त करते थे। इसी से मनुष्यों की भीतरी बाहरी वृत्तियाँ अंकित करने में ही वे तत्पर रहे हैं और नाटकों की ओर उन्होंने विशेष रुचि दिखाई। (३) वे उर्दू कविता के भी प्रेमी थे जिसमें बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की चाल ही नहीं और जिसमें कल्पना के सामने आनेवाले चित्रों के बीभत्स और घिनौने होने की कुछ परवा न कर भावों के उत्कर्ष ही की ओर ध्यान रखा जाता है।

(६) कुछ अन्य मंतव्य—(१) भारतेन्दु जी ने हिन्दी काव्य को केवल नए नए विषयों की ओर ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया।

(२) गद्य को जिस परिमाण में भारतेन्दु ने नए नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया उस परिमाण में पद्य को नहीं। उनकी कविताओं के विस्तृत संग्रह के भीतर आधुनिकता कम ही मिलेगी।

७. श्याम सुन्दर दास: १९२७.

'हिंदी साहित्य' (१९३०) के ग्यारहवें अध्याय में बाबू श्याम सुन्दरदास जी ने प्रायः छह पृष्ठों में भारतेन्दु काव्य पर विचार किया है। इसमें उन्होंने उनकी राष्ट्रीयता एवं प्रकृति वर्णन पर ही विचार किया है। इसके तीन वर्ष पहले १९२७ में वे भारतेन्दु नाटकावली की भूमिका में, जो अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई है, भारतेन्दु पर अपने विचार प्रकट कर चुके थे। नाटकावली की प्रस्तावना में 'व्यापक भाव' उपशीर्षक के अंतर्गत श्यामसुन्दरदास जी ने 'देश-

हितैषिता' ही को भारतेन्दु का मुख्य प्रेरक भाव माना है। 'साहित्यिक-समीक्षा' उप-शीर्षक के अन्तर्गत भारतेन्दु के काव्य भाषा परिष्कार एवं उनके प्रकृति प्रेम के अभाव पर विचार किया गया है। इस प्रसंग में उन्होंने शुक्लजी के तत्संबंधी विचारों को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है, स्वयं कोई मौलिक विचार नहीं प्रस्तुत किया है। शुक्लजी पहले आलोचक थे जिसने भारतेन्दु की राष्ट्रीयता पर जोर दिया। उनके पहले भारतेन्दु के सभी जीवन चरित लेखक तथा अन्य लोग उनकी राज भक्ति पर ही जोर देते थे। राष्ट्रीयता का वे नाम भी नहीं लेते थे। भारतेन्दु के जीवन काल में सरकार को उनकी राजभक्ति पर सन्देह हो गया था—उसी सन्देह को दूर करने का लोग १९०५ तक बराबर प्रयास करते आए। शुक्लजी द्वारा भारतेन्दु की राष्ट्रीयता दृढ़ता के साथ प्रतिपादित हो गई, परन्तु श्यामसुन्दर दास जी को उसकी सत्यता में सन्देह था—'हिंदी साहित्य' में वे लिखते हैं—

"हम यह स्वीकार करते हैं कि भारतेंदु में उत्कट देश प्रेम और प्रगाढ़ समाज हितैषिता के भाव थे, परन्तु साथ ही हम यह भी मान लेते हैं कि उनका देशानुराग, जाति प्रेम आदि बाह्य परिस्थितियों के फल-स्वरूप थे, उन्हें उन्होंने जीवन के प्रवाह के भीतर से नहीं देखा था। अनेक अवसरों पर तो उन्होंने राजा शिवप्रसाद आदि के विरोध में स्वदेश प्रेम का व्रत धारण किया था। इसी कारण उनकी तत्संबंधिनी रचनाएँ विशेष तन्मयता की सूचना नहीं देतीं, कहीं कहीं तो बँगला आदि के अनुवादों के रूप में ही व्यक्त हुई हैं।"

न जाने किस चश्मे से बाबू साहब ने भारतेन्दु की राष्ट्रीयता और देश-भक्ति को देखा है कि उन्हें उनमें सत्यता का आभास नहीं मिलता। यहाँ केवल इतना कह देना अलम् होगा कि भारतेन्दु की राष्ट्रीयता तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल थी और उसमें आज की राष्ट्रीयता को ढूँढ़ना उनके साथ अन्याय करना है; साथ ही जो भारतेन्दु कांग्रेस के जन्म के पूर्व, स्वदेशी वस्त्र एवं वस्तुओं का प्रतिज्ञापूर्वक प्रयोग करते रहे, उनकी देश भक्ति की सत्यता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। यह एक थोथी दलील है कि कोई सत्यवादी इसलिए सत्य बोलता है, क्योंकि उसका विरोधी झूट बोलने का आदी है। फिर भी श्याम सुन्दरदास जी भारतेन्दु की राष्ट्रीय कविताओं का महत्व स्वीकार करते हुए अत्यन्त ओजस्वी भाषा में लिखते हैं:—

"हिंदी की ह्रासकारिणी श्रृंगारी कविता के प्रतिकूल आंदोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक के प्रारम्भ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहाने को आमंत्रित किया—

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई"

"रीति कविता की शताब्दियों से चली आती हुई गन्दी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा-पूरा प्राप्त है...भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का वास्तविक महत्व परिवर्तन उपस्थित करने में और साहित्य को शुद्ध मार्ग से ले चलने में है । उच्चकोटि की काव्य रचना करने में उतना नहीं है ।...शृंगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिंदी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समर्थ नहीं हुए थे, भारतेन्दु उसमें पूर्णतः सफल हुए । इससे भी उनके उच्च पद का पता लग सकता है ।"

भारतेन्दु काव्य के आलोचकों की आँखें उनकी नवीन ढंग की रचनाओं से कुछ इतनी चौंधिया हो गई हैं कि उन्हें भारतेन्दु में और कुछ सूझता ही नहीं । शुक्लजी एवं श्यामसुन्दरदास जी ने भारतेन्दु की प्राचीन धारा की कविताओं के प्रचुर परिमाण पर अवश्य ध्यान दिया है, परन्तु उसके साथ न्याय नहीं किया है । दो-चार पंक्तियों में चलते-चलते योंही एक सस्ती स्थापना कर गए हैं । श्यामसुन्दर दास जी की इन पंक्तियों से हम सहमत नहीं— 'व्यापकता और स्थायित्व की दृष्टि से विशेष उत्कृष्ट श्रेणी के साहित्य की उन्होंने सृष्टि नहीं की ।'

८. ब्रजरत्नदास : १९३५.

भारतेन्दु बाबू के दौहित्र, बाबू ब्रजरत्नदास जी ने हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग के अनुरोध से भारतेन्दु बाबू का एक ३५० पृष्ठों का बृहत, सर्वाङ्गपूर्ण एवं सुन्दर जीवन चरित्र १९३५ ई० में उक्त संस्था द्वारा प्रकाशित कराया । इस ग्रन्थ में पाँच भाग हैं । प्रथम में भारतेन्दु के पूर्वजगणों का और द्वितीय में स्वयं भारतेन्दु का जीवन चरित है; तृतीय में उनकी रचनाओं का परिचय, चतुर्थ में आलोचना एवं पंचम में विविध परिशिष्ट हैं । केवल चतुर्थ खंड हमारे काम का है । इसके विविध अध्यायों की सूची है—भाषा तथा शैली, नाट्यशास्त्र-ज्ञान, चरित्र चित्रण, प्राकृतिक वर्णनों की कमी, गीतिकाव्य, खड़ी बोली तथा उर्दू, भाषा सौंदर्य, लोकोक्ति, अनुवाद, नवीन रस, अलंकार, प्रेम, ईश्वरोन्मुख प्रेम या भक्ति, देश प्रेम, आरसी, नेत्र, आँसू, विरह-वर्णन, संयोग शृंगार, हिन्दी साहित्य में स्थान । इनमें से प्रथम तीन अध्यायों को छोड़ शेष सभी भारतेन्दु काव्य से ही सम्बन्ध रखते हैं । भारतेन्दु काव्य की इतनी विशद आलोचना अभी तक किसी ने न की थी । ये सभी निबन्ध अधिकांश में परिचयात्मक हैं ।

'गीतिकाव्य' में भारतेन्दु के पदों पर विचार किया गया है । अभी तक

किसी ने उनके पदों पर एक दो वाक्य लिखने के अतिरिक्त अधिक नहीं लिखा था। इस अध्याय का सार है—

"गीतिकाव्य की परंपरा के प्रायः अंतिम कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही हुए हैं। इन्होंने लगभग डेढ़ सहस्र के पद बनाए हैं, जिनमें अधिकतर श्री कृष्ण लीला के पद हैं। इनमें विनय के पद, श्रीकृष्ण जी की बाल लीला तथा गोपियों के प्रेम संबंधी तीन प्रकार के भजन हैं। कुछ साधारण मानव संबंधी भी पद हैं। इन पदों के मुख्य रस श्रृंगार तथा वात्सल्य ही हैं, पर वीर, शांत, करुण आदि रस भी कुछ पदों में आ गए हैं। श्रृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्ष लिए गए हैं।"

निश्चय ही भारतेंदु बाबू पद-परंपरा के अंतिम महान कवि हैं। परंतु पदों की संख्या का अनुमान भ्रांत है। भारतेंदु ने ८५० और ८७५ के बीच पदों का निर्माण किया है। यदि उनकी कजलियों, होलियों एवं अन्य गानों को भी भूल से पद मान लिया जाय तो भी यह संख्या १२५० से अधिक नहीं जाती। भारतेंदु के पदों को दो ही प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है विनय और कृष्ण चरित। कृष्ण चरित में भी बाल लीला संबंधी पद बहुत कम हैं। गोपियों के प्रेम का ही यहाँ प्राधान्य है। पदों के मुख्य रस हैं शांत एवं श्रृंगार—श्रृंगार में भी संयोग को प्रमुखता है। ब्रजरत्नदास जी ने इन पदों का केवल सीमा-विस्तार बताया है। हाँ, भारतेंदु के पदों के अध्ययन का श्रीगणेश उन्होंने कर दिया जिसे रामरतन जी भटनागर ने कुछ और अग्रसर किया।

'भाषा सौंदर्य' में शुक्ल जी के भाषा परिष्कार वाले विचारों को स्वीकार करते हुए निम्नांकित अन्य बातें भी कही गई हैं जिनके द्वारा भारतेंदु की भाषा का सौंदर्य बढ़ा है—(१) उर्दू के कवि होने के कारण भारतेंदु की ब्रजभाषा में जिंदादिली व्याप्त हो गई है। (२) इनकी भाषा में महावरों का बहुत प्रयोग हुआ है। (३) लोकोक्तियों तथा व्यंग्योक्तियों का भी सुचारु समावेश है। (४) वीर तथा रौद्र रस की कविताओं में ओज लाने के लिए शब्दों का तोड़ मरोड़ नहीं किया गया है। (५) भाषा सुव्यवस्थित, कहीं भी शिथिल नहीं, एक भी भर्ती के शब्द नहीं।

'भारतेंदु जी का विरह वर्णन' में स्वाभाविकता पर अधिक जोर दिया गया है और कहा गया है कि प्राचीन कवियों की अतिशयोक्ति पूर्ण रूढ़ि को भारतेंदु ने नहीं ग्रहण किया है।

जो हो, भारतेंदु काव्य के विविध अंगों पर इतना विशद विवेचन न पहले हुआ था और न आज तक किसी अन्य ने ही किया। इस दृष्टि से भी ब्रजरत्न दास जी की पुस्तक महत्वपूर्ण है। इस जीवन चरित के अतिरिक्त 'भारतेंदु नाटकावली' एवं 'भारतेंदु सुधा' में भी भारतेंदु पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

९. श्री गोपाल लाल खन्ना १९३...

'भारतेंदु जी की भाषा और शैली' नामक निबंध खन्ना जी ने हिंदी एम०ए० (बनारस हिंदू विश्वविद्यालय) के लिए प्रस्तुत किया था, जो बाद में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ और फिर संभवतः स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। इस निबंध में चार भाग हैं (१) विषय प्रवेश (२) भारतेंदु का उदय (३) भारतेंदु जी की शैली (४) भारतेंदु जी की भाषा का प्रभाव। भारतेंदु की भाषा और शैली पर जब भी कोई ठीक ठिकाने की पुस्तक लिखी जायगी वह दो भागों में होगी या दो अलग पुस्तकों के रूप में होगी। एक में गद्य भाषा और शैली का विवेचन होगा, दूसरे में पद्य भाषा और शैली का। तीसरे भाग को छोड़ इस निबंध में भी केवल गद्य-भाषा का विवेचन हुआ है परंतु न जाने कैसे तृतीय खंड में गद्य और पद्य दोनों का विवेचन लेखक ने किया है। यही नहीं, अनेक अप्रासंगिक विषयों का भी दीर्घ विवेचन यहाँ हुआ है। इस खंड के प्रमुख अंग हैं—(१) शैली क्या है (२) पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार शैली के दो गुण—प्रज्ञात्मक और रागात्मक (३) प्रज्ञात्मक गुण के अंतर्गत भारतेंदु की शैली में प्रसंगगर्भत्व और चित्रात्मकता नामक दो गुणों की भारतेंदु काव्य के उदाहरणों द्वारा स्थापना। (४) विषय एवं भाव के अनुकूल शैली में परिवर्तन, गद्य और पद्य दोनों के उदाहरण (५) नाटकों में पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग द्वारा वास्तविकता लाने का प्रयत्न (६) प्रकृतिवर्णन (७) काव्य भाषा परिष्कार (८) अलंकार (९) मुहावरों का प्रयोग और लोकोक्ति (१०) आशु कवित्व (११) विविध भाषा काव्य (१२) पद्यानुवाद (१३) समस्यापूर्ति। न जाने कैसे छठें से तेरहवें अंगों का विवेचन भारतेंदु की शैली के अंतर्गत किया गया है, फिर भी इन विषयों का काव्य से संबंध है और इस दृष्टि से ये हमारे लिए उपयोगी हैं।

'प्रकृतिवर्णन' में शुक्ल जी के मत के विरुद्ध भारतेंदु की संरक्षा का प्रयत्न करते हुए खन्ना जी लिखते हैं—

"भारतेंदु जीने प्रकृति वर्णन बहुत कम किया है, पर जो कुछ किया है वह अनूठा ही किया है। गंगा और यमुना की सुषमा का जो वर्णन किया है वह बहुत उत्तमकोटि का है। इसके वर्णन में उन्होंने उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकारों की सहायता ली है। और उनको भावपूर्ण बनाने की चेष्टा की है, इसलिए वह शुद्ध प्रकृति वर्णन नहीं है...'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में जिस गंगा का और 'चंद्रावली' नाटिका में जिस यमुना का वर्णन किया गया है, वह वही है, जिस रूप में उन्होंने उनको देखा और जैसा भाव उनके हृदय में आया, वैसी ही

वर्ग पुरुषों के साथ-साथ, सामाजिक कार्यों में हाथ न बँटा सकता था और न उनमें समता प्राप्त करने की लालसा ही थी वहाँ सतत हास्य की न्यूनता रही; हास्य की आत्मा का वहाँ सहज विकास संभव न हुआ। हास्य का सम्यक प्रस्फुटन वहीं संभव हो सकता था जहाँ स्त्री तथा पुरुषवर्ग कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन-पथ पर चलते; जहाँ मनुष्य की बर्बर भावनाओं का परिष्कार होता चलता; और जहाँ दोनों वर्गों की दृष्टि जीवन-सत्यों पर समरूप से एकाग्र रहती। जिन देशों में ऐसी परिस्थिति न थी वहाँ का हास्य कुण्ठित रहा। न तो उसका विकास ही हुआ और न उसे कोई श्रेष्ठता ही प्राप्त हो सकी। सफल हास्य-प्रदर्शन के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि समाज में समता का आदर्श प्रसारित हो; समाज का कोई भी वर्ग हीन तथा निम्नकोटि का न समझा जाय; जहाँ एक वर्ग में दूसरे वर्ग से बराबरी से टक्कर लेने की शक्ति हो। यदि ऐसा न होगा तो वहाँ का हास्य अशिष्ट, तथा अश्लील एवं क्रूर होगा। परन्तु पश्चिम में, हास्य प्रसार के लिए ऐसी असुविधाजनक परिस्थिति न थी। वहाँ के समाज में स्त्री तथा पुरुषवर्ग क़दम में क़दम मिलाकर चल सकता था; एक दूसरे की गति-विधि से भली-भाँति परिचित था; दोनों में समानता का आदर्श था; दोनों ही जीवन के यथार्थ की ओर सहज रूप में देखकर उसका आनन्द उठा सकते थे। इसी कारण हास्य का स्तर न गिरा और उसका संशोधन निरंतर होता रहा। दोनों वर्गों के जीवन-स्वातन्त्र्य के कारण ही यह विकास संभव हुआ। स्त्री-वर्ग के सामाजिक तथा मानसिक भाव-संसार के परिष्कार बिना श्रेष्ठ हास्य का निर्माण कठिन ही नहीं वरन् असम्भव होगा। पारिवारिक जीवन में व्यस्त, अपने निजी सुखों का सहर्ष त्याग करने वाली नारी जिसका जीवनादर्श केवल बलिदान था श्रेष्ठ हास्य के सफल निर्माण तथा प्रदर्शन में सहयोग न दे सकती थी, फलतः पूर्व के साहित्य में हास्यरस के साहित्य की न्यूनता बनी रही। और जब कभी हास्य प्रस्तुत भी हुआ तो न तो उसमें उच्चकोटि की श्रेष्ठता थी और न व्यापकता। वह हास्य निम्नकोटि का ही हो सका और जहाँ कहीं थोड़ी बहुत भी स्वतन्त्रता तथा सामाजिक समानता का आदर्श मान्य रहा, कुछ न कुछ मात्रा में, हास्य अवश्य प्रस्तुत हुआ परंतु वहाँ उच्चकोटि की शिष्टता दृष्टिगत न हुई। इस तथ्य का विस्तृत विवेचन हम आगामी प्रकरणों में प्रस्तुत करेंगे।

आधुनिक समाज में, यद्यपि शिष्ट तथा साहित्यिक हास्य प्रस्तुत करने के सुनहरे अवसर प्रस्तुत हैं और सामाजिक जीवन में स्वातन्त्र्य की भावना अत्यन्त व्यापक रूप में व्याप्त है फिर भी हास्य-साहित्य

की विशेष कमी है। इसमें सन्देह नहीं कि हास्य, जीवन का श्रेष्ठ संबल है क्योंकि इसके सहारे सांसारिक जीवन-पथ की अनेक कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं और हम कण्टकाकीर्ण मार्गों में हँसते-खेलते चले चलते हैं। इसके साथ ही साथ हमें आज के पूँजीवादी समाज में अज्ञान तथा तर्कहीनता, दम्भ, पाखण्ड इत्यादि के नित्य नवीन रूप दिखाई देते हैं जो सफल लेखक द्वारा हास्यपूर्ण रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। हमारे आजकल के समाज में विचित्र तथा अन्यान्य रहस्यपूर्ण विषमतायें तथा निदानहीन रोग व्याप्त हैं और इस समाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक रोगों के नये-नये चिकित्सक भी दिखलाई देते हैं और साथ ही साथ तर्क तथा ज्ञान, यथार्थ प्रियता तथा स्पष्ट-वादिता का इतना अधिक बोलबाला है कि कोई भी विषमता सरलता से मुंह नहीं छिपा सकती। तब फिर श्रेष्ठ हास्य-साहित्य की कमी क्यों है ? इस रहस्यपूर्ण कारण की ओर हम पहले संकेत दे चुके हैं। इसका कारण है—पाठक वर्ग की उत्तरदायित्त्वहीनता। हास्य जीवन के पाखण्ड और मूर्खताओं पर ही जीवित है; सुबुद्धि द्वारा ही वह अपने शिकार ढूंढ निकालता है और जब तक पाठक-वर्ग में अपने ऊपर स्वयं हंसने की शक्ति न हो; जब तक उनमें यथार्थ को परखते हुये भी मुस्कुराने की आदत न हो; और यथार्थ को परखकर भी उस ओर विमुख रहने की चेष्टा न हो तब तक हास्य-साहित्य की प्रगति न हो सकेगी। हास्य की तीक्ष्ण सुबुद्धि, कुशल तथा पैनी दृष्टि वाले शिकारी समान अपने शिकार के पीछे-पीछे मन्द-गति से चलती रहती है। शिकार चाहे कितना भी तेज़ क्यों न भागे उसे विश्वास रहता है कि उसका निशाना कभी ख़ाली नहीं जायगा और वह मनोनुकूल उसे धराशायी कर देगी। उसे न तो कभी क्रोध आता है और न वह कभी हताश होती है; घृणा और द्वेष से वह कहीं दूर रहती है। घृणा को तो वह घोर शत्रु समझती है क्योंकि घृणा के आवरण में स्वतः दंभ, आलस्य, संकुचित भावना इत्यादि छिपी रहती है। और जब यही अवगुण उसके शिकार हैं, तो वह भला स्वयं उन्हें कैसे अपना सकती है। मानवता तथा प्रेम से वह प्रेरणा ग्रहण करती है; सुबुद्धि से वह शक्ति पाती है और अज्ञान तथा मूर्खता के आखेट में अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करती है। मूर्खता जब ज्ञान का पाखण्ड बनाती हैं और पाखण्ड जब शुभेच्छा का आवरण पहनता है तो सुबुद्धि-पूर्ण हास्य की आत्मा अपने आखेट पर निकल पड़ती है।

कुछ लेखकों का विचार है कि श्लेष तथा हास्यपूर्ण शब्दावली प्रयोग करने वाले व्यक्ति ही सफल हास्य के परिचायक होंगे। यह धारणा भ्रममूलक है।

भाषा के अनेकरूपेण प्रयोग द्वारा प्रस्तुत हास्य, हास्य तो अवश्य है परन्तु वह श्रेष्ठ नहीं ; महत्वपूर्ण नहीं । शब्दों के उलट-फेर तथा अनर्गल प्रयोग और लम्बी शब्दावली की बहुलता हास्य प्रस्तुत कर तो देगी परन्तु उसमें विलम्ब होगा और विलम्ब श्रेष्ठ हास्य का घातक है । उसमें भी बिहारी के दोहों की शक्ति होनी चाहिये : 'देखत में छोटे लगें, घाव करें गंभीर' । हास्य की श्रेष्ठता इसी में है कि वह हमारे मानस में हास्य लहरी प्रवाहित करे और मानसिक हास्य ही उच्चकोटि का हास्य होगा ; अन्य वर्ग के हास्य उसकी श्रेष्ठता न ग्रहण कर सकेंगे ।

इस संबंध में हमें यह न विस्मृत करना चाहिये कि सुबुद्धि ही श्रेष्ठ हास्य की जननी है ; और अन्यान्य वर्गों का हास्य इसी पर आधारित है । पाश्चात्य देशों के साहित्य में कदाचित् अंग्रेज़ी साहित्यकारों का हास्य फ्रांसीसी तथा इटालियन लेखकों के हास्य से अधिक श्रेष्ठ है । यह सत्य है कि प्रायः अंग्रेज़ी साहित्यकार व्यंग्य के क्षेत्र में सर्वोपरि रहे और परिहास के क्षेत्र में उनकी मौलिकता प्रमाणित रही । वे स्वभावतः वाक्चातुर्य में पटु होते हैं परन्तु उनका समस्त भाव-संसार नैतिकता का आवरण पहने रहता है और यही कारण है कि व्यंग्य तथा परिहास क्षेत्र में अंग्रेज़ी साहित्य अद्वितीय है ।

श्रेष्ठ तथा सुबुद्धिपूर्ण हास्य के लिये यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति अथवा दृष्टिकोण एवं स्वभाव के प्रति हास्य प्रदर्शित किया जाय उसमें हमारी सहानुभूति तथा हमारा प्रेम भी संलग्न रहे । श्रेष्ठ हास्य-लेखक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसमें आत्मीयता की व्यापक भावना हो और जो कुछ भी संशोधन अथवा सुधार का संकेत वह दे उसका वह स्वंय भी भागी हो । हास्य जब सहानुभूति और आत्मीयता के स्तर से गिरता है तो व्यंग्य का स्वरूप ग्रहण करता है । जब लेखक अपने शिकार को चोट पहुँचाता हुआ उस पर अपने अश्रु भी बहाता चलता है और चोट की ओर से उसका ध्यान बटाने की चेष्टा करता है तो वह व्याजोक्ति का प्रसार करता है । और जब हास्य की भावना व्यापक रूप में अपने शिकार को कभी चोट पहुँचाती है, कभी उस पर आँसू बहाती है, कभी आत्मीयता का प्रकाश करती है, कभी करुणा का प्रदर्शन करते हुए उसका नग्न अथवा यथार्थ रूप प्रदर्शित करती है तो परिहास का अवतरण होता है । वास्तव में श्रेष्ठ हास्य की आत्मा हमारे दृष्टिकोण में ही निहित रहती है और दृष्टिकोण द्वारा ही वह अपने शिकार ढूंढती रहती है । जिस प्रकार से अविकिसित पुष्प को उसकी पत्तियां घेरे रहती हैं और उसके विकास में सहयोग देती हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ हास्य की भावना मानव

स्वभाव को घेर कर उसका विकास एवं परिष्कार करने की चेष्टा करती है। श्रेष्ठ हास्य हमारे मानसिक क्षेत्र में ही फूलता-फलता है ; वहीं से वह अपनी व्यापक प्रेरणा ग्रहण करता है। व्यंग्य-लेखक स्पष्टतः नैतिकता का पुजारी रहेगा और सामाजिक दोषों के पीछे सतत् पड़ा रहेगा। समाज-सुधार ही उसका प्रमुख लक्ष्य होगा। व्याजोक्ति-लेखक अपने चंचल मनोविकार का अनुसरण करता है। व्याजोक्ति व्यंग्य का परिहास रूप है और नैतिकता के आग्रह के अनुसार उसमें क्रोध और क्रूरता का अंश प्रस्तुत रह सकता है। परन्तु यह असंदिग्ध है कि जो व्यंग्य उच्छृंखल तथा आवश्यकता से अधिक स्पष्ट रहेगा श्रेष्ठ हास्य प्रदर्शन में विफल होगा। श्रेष्ठ हास्य-लेखक की सहज भावनायें विचित्र रूप में अनुरंजित रहती हैं ; वैषम्य को वे सहज ही पहिचान लेती हैं और अपने रंग से उसे भी मनोनुकूल अनुरंजित करती चलती हैं। हृदय और मस्तिष्क दोनों ही के सहयोग द्वारा जो हास्य प्रस्तुत होगा उसकी श्रेष्ठता अद्वितीय होगी। सुखांत तथा दुःखांत भावना का सहज सम्मिश्रण जहाँ संभव होगा वहीं श्रेष्ठ हास्य-लेखक का जन्म होगा और उच्चतर हास्य-साहित्य की अवतारणा होगी।

श्रेष्ठ हास्य-लेखक मानव की आदि बर्बरता को जब सभ्यता का वाह्याडम्बर अपनाते देखता है तो कार्यशील हो उठता है। जिस प्रकार रात्रि के अंधकार में जन-पथ के पहरेदार अपनी चोरबत्तियों के प्रकाश में खुली खिड़कियाँ और दरवाज़े देखकर सावधान रहने का आदेश देते हैं उसी प्रकार परिष्कार की नैतिक भावना की चोरबत्ती मानवी आडम्बरों के प्रति हमें सजग रहने का आदेश देती है। प्रायः हास्य-लेखक के प्रति हम अपनी अश्रद्धा रखते हैं और उसके विरचित साहित्य को हीन समझते हैं। और वह केवल इसीलिये होता है कि न तो हम श्रेष्ठ हास्य-लेखक के आदर्श से परिचित रहते हैं और न उसके द्वारा प्रदर्शित हास्य का ही ठीक-ठीक अर्थ लगा पाते हैं। हम उसे मानव चरित्र को वीभत्स रूप देने का अपराधी ठहराते हैं ; उसके हास्य द्वारा हमें सर्प-दंश की पीड़ा का अनुभव होता है और हम उस पर सतत् यह आरोप लगाते हैं कि वह मानव-जीवन को ओछा, हीन तथा निकृष्ट रूप देता है ; वह ग़रीबी और दरिद्रता को भी निकृष्ट तथा हीन प्रमाणित करने में कुछ उठा नहीं रखता। यह विचार भ्रामक है और ये आरोप प्रमाणहीन हैं। श्रेष्ठ हास्य-लेखक मानव चरित्र को अपना शिकार नहीं बनाते वरन् उसके वाह्याडम्बर की ओर संकेत करते हैं ; वे मानवता को नहीं वरन् उसका आवरण पहने हुए बर्बरता को हास्यास्पद रूप देते हैं। हास्य की

श्रेष्ठ आत्मा तो निकृष्टता को छू भी नहीं सकती। हीन वस्तुएं उसकी दृष्टि में अग्राह्य हैं। दुःख और अभाग्य के पास वह फटकती ही नहीं; उस पर हँसने की बात तो दूर रही। वह दरिद्रता तथा दीनता को हास्यास्पद नहीं बनाती; हास्यास्पद वह तभी बनती है जब दरिद्रता राजतिलक का स्वप्न देखती है और दीनता बिना अपनी शक्ति परखे किसी अन्य बड़ी शक्ति से टक्कर ले बैठती है। श्रेष्ठ हास्य की सफल अभिव्यक्ति हमारे मानसिक क्षेत्र में ही संभव है और मुस्कान उसका सफल माध्यम है।

किसी भी देश की सभ्यता का माप हम उस देश के हास्य-लेखकों के साहित्य को पढ़कर सहज ही लगा सकते हैं। देश जितना ही असभ्य होगा उतना ही उसका हास्य क्रूर, बर्बर तथा तुमुलनादयुक्त होगा। और जो देश जितना ही सभ्यता के पथ पर अग्रसर रहेगा उतना ही उसका हास्य सरस, सहानुभूतिपूर्ण, मानवी तथा मुस्कानपूर्ण रहेगा। बर्बरता शरीर के माध्यम से हँसती है, सभ्यता मानसिक रूप में मुस्कान प्रदर्शित करती है। बर्बर देश के हास्य में मध्यान्ह के सूर्य की तीक्ष्णता रहेगी, सभ्य देश के हास्य में शुभ्र चन्द्रिका का आभास मिलेगा। जिस प्रकार विशाल सागर के वक्षस्थल पर पक्षी कलरव करते हुए अपना शिकार चुपचाप ढूँढ निकालते हैं और सागर पुनः शांत हो जाता है उसी प्रकार हास्य की व्यापक भावना जीवन-सागर पर उमड़ती हुई अपना शिकार ढूँढकर मुस्कान रूप ले शांत हो जाती है। मानव जीवन में जहाँ कहीं भी दम्भ तथा पाखण्ड होगा, ईर्ष्या तथा द्वेष प्रसारित रहेगा, गर्व, आडम्बर, वितण्डावाद का प्रदर्शन होगा; जहाँ तर्कहीनता होगी, निर्लज्जता होगी, डींग और शेखी होगी, अभिमान और दर्प होगा, घृणा तथा विद्वेष होगा, तुच्छता तथा उद्दण्डता होगी, असंगति तथा मूर्खता का साम्राज्य होगा वहीं हास्य को प्रेरणा मिलेगी; वहीं उसे जीवन मिलेगा और वहीं सरस तथा मानवी हास्य का प्रसार होगा। जो समाज श्रेष्ठ हास्य की आत्मा को पहिचान कर उसका अभिवादन कर सकेगा वह न तो कभी आशाविहीन रहेगा और न उसका जीवन ही नीरस हो पायेगा। श्रेष्ठ हास्य की आत्मा समस्त मानव समाज को एक अपूर्व मंगल-सूत्र में बाँधे रहती है; उसकी व्यापक छत्र-छाया के नीचे सहानुभूति तथा सुख का अविरल प्रवाह रहता है। वह मावता की परिचायक है; मानवता की पोषक है।

इसमें संदेह नहीं कि जिस प्रकार संसार की अनेक वस्तुओं का दूषित प्रयोग हुआ है अथवा हो रहा है उसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में भी हास्य की मर्यादा गिरा दी जा सकती है क्योंकि मानव-समाज के आदिकाल के क्रूर

एवं बर्बर हास्य से हम आज तक परिचित हैं। परंतु जैसा हम सिद्धांत रूप में कह चुके हैं कि हास्य की आत्मा श्रेष्ठता तभी ग्रहण कर पायेगी जब उसमें सहज गाम्भीर्य होगा और केवल मुस्कान द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होगी। मरुभूमि में इधर-उधर छिपी हुई हरित भूमि को देखकर जिस प्रकार यात्री अपरिमित आनंद का अनुभव करते हैं उसी प्रकार नीरस जीवन-क्षेत्र में बिखरी हुई हास्य की आत्मा अपरिमित रूप में आनंददायिनी होगी। श्रेष्ठ हास्य की परख सभ्य समाज का चिन्ह है; और जो समाज श्रेष्ठ हास्य का संबल लिये चलेगा वह अन्ततोगत्वा श्रेष्ठता के पद पर सहज ही आसीन हो जायेगा।

प्रस्तुत विवेचन में मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण से हास्य की आत्मा का विवेचन आगामी पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा और उसकी समीक्षा के उपरान्त हास्य के अन्यान्य नैसर्गिक तथा मनोवैज्ञानिक आधार; उसका सामाजिक महत्व ; उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति तथा उसकी उपयोगिता पर विचार किया जायगा। मानव-समाज के व्यक्तियों मे प्रेमावरोध; उनका जड़वत कार्य; (एकांगी दृष्टिकोण; व्यक्तिगत दोष जो समस्त समाज को दूषित कर सकते है; असामाजिक कार्य; असाधारण आचार-विचार; पक्षपात; व्यक्तिगत भाव-भंगी; ढोंग तथा मानसिक असंगति; विस्मरणशीलता) जीवन का वैषम्य तथा जीवन की क्रीड़ा प्रियता—समस्त हास्यात्मक रचनाओं का नैसर्गिक आधार रहा है और भविष्य में भी रहेगा। हो सकता है कि कोई दोष ऐसा भी हो जो दुखान्तकी की परिधि में भी आ जाय परन्तु उस परिधि से, हास्य की आत्मा, उसे सहज ही बाहर ले आती है और उस दोष को अपने माध्यम से प्रदर्शित करती है। साधारणतया हमें यह न भूलना चाहिये कि वैज्ञानिक दृष्टि से केवल दोष हास्यास्पद नहीं होते अनेक गुण भी ऐसे हैं जो हास्यास्पद हो जायंगे और यह इसीलिये होगा वे गुण साधारण स्तर के न होकर अतिशयोक्ति की परिधि में पहुँच जाते हैं; अथवा उस गुण का कोई तत्व विशेष ऐसा होता है जो हास्य की परिधि में आ जाता है। धन-संचय गुण है परन्तु कृपणता अवगुण; न्याय प्रियता गुण है परन्तु जब वह दूसरों के लिए भी हो तभी तक। प्रायः मानवी दोष इतने अधिक हास्यास्पद नहीं हो पाये है जितने गुण हास्यास्पद हुए है: जड़वत गुणों से बढ़कर और कौन सी वस्तु अधिक हास्यास्पद हो सकती है ?

इससे यह भ्रामक अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि गुणों का आधिक्य अथवा उनकी अपरिमितता स्वतः हास्यास्पद होगी। वे हास्यास्पद तभी होंगे जब समाज से उनका सामंजस्य न बैठ पायेगा। गुणों का अतिक्रम भला दोष-

पूर्ण कैसे होगा जब गुण स्वतः हास्यास्पद नहीं ? परन्तु ये गुण जब समाज की मांग से कहीं आगे बढ़ जायंगे और समाज की आत्मा पीछे रह जायगी तो वे अवश्य ही हास्यास्पद होंगे। गुणवान होना ही पर्याप्त नहीं: सामाजिकता की रक्षा करते हुए गुणवान होना अपेक्षित है। और जब कभी भी इस सिद्धान्त की अवहेलना होगी हास्य की सृष्टि होगी। फलतः यह सिद्धान्त भी स्वतः सिद्ध है कि हास्य-प्रदर्शन की फलप्रद सामग्री हमारे आचार-विचार क्षेत्र से ही एकत्र होगी। मानवी दोषों की अनैतिकता नहीं वरन उनकी सामाजिक असंगति ही हास्य का प्रधान कारण प्रतीत होगी। परन्तु स्मरण रहे कि ये मानवी-दोष ऐसे न हों जो हमारी सहानुभूति जाग्रत करें; हमें करुणार्द्र करें; हमें भयभीत करें। यदि वे कहीं ऐसा कर बैठे तो हास्य की झलक कहीं दूर से भी नहीं मिलेगी। अतएव हास्य की आत्मा हमारे मानसिक क्षेत्र में ही पल्लवित पुष्पित होती दिखलाई देगी—भावना-क्षेत्र से उसका संबंध न तो अपेक्षित है और न फलप्रद।

फलतः यह स्पष्ट है कि जब लेखक अथवा कलाकार हमारे भावना-क्षेत्र को अछूता रखेगा और उसे सुप्त कर देगा तभी हास्य का आविर्भाव होगा। हम किसी गंभीर घटना को देखते हुये भी उसे गंभीर मानने पर तैयार न होंगे; और हास्यास्पद पात्र अथवा हास्यास्पद कार्य हम अपनी मानसिक दृष्टि से ही देखेंगे; वह हमारे भावना क्षेत्र से कहीं दूर होगा; हमारे सम्मुख वह कठपुतली ही रहेगा।

इसी प्रकार हमारी शारीरिक भावभंगी भी हास्य का प्रसार करेगी। शारीरिक भाव-भंगी द्वारा हम अपनी भावनायें प्रकाशित करते रहते हैं; वह हमारी मूक भावनाओं की भाषा है; किसी दृष्टिकोण विशेष का संकेत है। परन्तु इस भावभंगी का कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं: वह अचानक अपने आप ही प्रदर्शित होने लगती है; हमारी इच्छा-शक्ति से उसका कोई स्पष्ट संबंध नहीं। ये शारीरिक संकेत शारीरिक कार्यों से विभिन्न रहेंगे: टहलने के समय हमारे हाथ विचित्रतापूर्वक अनिच्छित रूप में आगे-पीछे होने लगते हैं; कुछ व्यक्ति अपनी आँखे विचित्र रूप में अकारण ही मिचकाते हैं और कुछ व्यक्ति कुर्सी पर बैठे हुये अकारण बाइसिकिल सी चलाया करते हैं। कार्य सतत इच्छित होंगे: भावभंगी अथवा संकेत अनिच्छित रहेंगे। कार्य करने में व्यक्ति का समस्त शरीर संलग्न रहता है परन्तु भावभंगी अथवा संकेत-प्रदर्शन व्यक्ति के किसी अंग विशेष द्वारा हो हुआ करेगा और व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर अथवा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से उसका कोई संबंध न रहेगा। इसके

साथ-साथ यह भी विचारणीय है कि भावों के अनुपात में ही कार्य का प्रदर्शन होगा और धीरे-धीरे दोनों में अन्योनाश्रय प्रस्तुत हो जायगा। जिस अनुपात में भावना तीव्र होती है उसी अनुपात में कार्य में संलग्न-शक्ति भी तीव्र रहती है तत्पश्चात् कार्य में संलग्न शक्ति उसी अनुपात में कार्यरत हो जाती है जिस अनुपात में उसे भावना प्रेरित करती है। शारीरिक संकेत में एक विचित्र आकस्मिकता निहित रहती है : (लड़ते-झगड़ते हुये व्यक्ति एकाएक अपनी असाधारण तथा अनिच्छित भाव-भंगी बना लेते हैं) परन्तु उनका सतत यही आग्रह रहता है कि हम न तो उस घटना को ही गंभीर समझें और न उस परिस्थिति को ही कुछ महत्व दें। और ज्यों-ज्यों हमारी दृष्टि शारीरिक संकेत अथवा भाव-भंगी पर केन्द्रित होने लगती है त्यों-त्यों हास्य की आत्मा भी प्रस्फुटित होने लगती है। इसी सिद्धान्त पर आदर्श सुखान्तक भावना भी आधारित रहेगी। हमें यह आभास मिलने लगता है कि कदाचित इस व्यक्ति के लिये कोई परिस्थिति-विशेष आवश्यक नहीं; वह किसी भी परिस्थिति में रह कर इसी प्रकार की भाव-भंगी प्रस्तुत करेगा और हास्य की सफल सृष्टि होगी। हास्यास्पद व्यक्ति के लिये परिस्थिति की विशेषता आवश्यक नहीं। वह स्वतः हास्यास्पद है। प्रायः सुखान्तक अथवा हास्य-पूर्ण नाटकीय पात्र का सम्पूर्ण व्यक्तित्व सतत् इसीलिये हास्य का प्रसार करेगा कि उसका किसी विशेष परिस्थिति से प्रेम नहीं : यदि वह कृपण है तो प्रत्येक परिस्थिति में वही गुण अथवा दोष प्रदर्शित करेगा और यदि वह ढोंगी है तो सभी परिस्थितियाँ उसके गुण-दोष के प्रकाश में प्रयुक्त हो सकती हैं। स्पष्ट है कि नाटकीय पात्र की सामाजिक असंगति तथा दर्शक की तटस्थता और सहानुभूति में ही हास्य का मूल स्रोत निहित रहेगा।

हम यह भी संकेत दे चुके हैं कि पात्र की विस्मरणशीलता भी हास्य प्रदर्शन का फलप्रद आधार रही है। विस्मरणशीलता जितनी गहरी होगी, हास्य उतना ही व्यापक होगा। परन्तु व्यक्ति चाहे कितना भी विस्मरणशील क्यों न हो वह हास्य तभी प्रस्तुत कर पायेगा जब वह अपने व्यक्तित्व के केवल किसी एक या दो विशेषताओं से अनभिज्ञ रहेगा। सम्पूर्ण विस्मरणशीलता प्रलाप मात्र होगी। वह तभी फलप्रद रूप में हास्य प्रस्तुत करेगी जब वह एकांगी[1] हो : पात्र को उसका ध्यान भी न आये।

---

१. प्रायः वही संवाद अत्यन्त हास्यपूर्ण हुये हैं जिनमें किसी व्यक्ति की एकांगी विस्मरणशीलता प्रदर्शित रही है। अतः मधुपान करती हुई पत्नी से जब स्वयं

प्राय: श्रेष्ठ हास्य-पूर्ण नाटकों तथा प्रहसनों में ऐसे ही पात्रों का प्रयोग हुआ है जो अपनी विरुद्धमति तथा मानसिक असंगति के शिकार रहे हैं। सत्य की सराहना करता हुआ असत्यवक्ता, ईश्वर की निंदा करता हुआ पुजारी; मांस की निंदा करता हुआ सामिष भोजी; दान की महत्ता घोषित करता हुआ कृपण इत्यादि सफलतापूर्वक हास्य प्रस्तुत करेंगे। इन सब पात्रों में हम व्यक्ति की एकांगी विस्मरणशीलता का परिचय पायेंगेः उन्हें समाज से विमुख रह कर कार्य करते देखेंगे। विस्मरणशीलता व्यक्ति को असामाजिक बनाती है और इसीलिये हास्य का अविर्भाव होता है। मनुष्य के जड़वत कार्य इसके प्रमाण हैं कि वह सबकी ओर से विमुख है; विस्मरणशील है ; हास्यास्पद है। उसके जड़वत, कठपुतली समान कार्य हमें उनका अनुकरण करने पर बाध्य करते हैं। क्योंकि मनुष्य जन्म से अनुकरणशील प्राणी है। इन्हीं दोषों के कारण ऐसे हास्यापद व्यक्ति अपना वर्ग विशेष बना लेते हैं ; अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व ग्रहणकर लेते हैं। इसी जड़ता, विस्मरणशीलता, असामाजिकता तथा अनुकरणात्मक प्रेरणा देने के फलस्वरूप व्यक्ति हास्यास्पद होता रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। समाज अपनी सुव्यवस्था स्थायी रखने के लिये इन दोषों का सतंत निराकरण करता रहेगा और हास्य की आत्मा, मानवी आत्मा के समान ही अमर रहेगी।

समस्त हास्य-क्षेत्र के पर्य्यवेक्षण के पश्चात् हमें यह प्रतीत होगा कि प्राय: चार मूल सिद्धान्तों के अन्तर्गत ही हास्य के आत्मा की परख हो सकेगी और ये सिद्धान्त मूलतः मनस्तल शास्त्र तथा मनोविज्ञान से संबंधित रहेंगे। श्रेष्ठ विचारकों की विचारधाराओं के अवगाहन पश्चात् हमें यह प्रमाण मिलने लगेगा कि समस्त मानवी-हास्य इन्हीं चार मूल सिद्धान्तों द्वारा प्रमाणित होगा और केवल एक सिद्धान्त के आधार पर ही मानवी हास्य की व्यापक आत्मा की रूप-रेखा पहिचानी नहीं जा सकेगी। मनस्तलशास्त्रियों ने मानवी प्रेम-व्यापार में अवरोध की भावना द्वारा हास्य का आर्विभाव देखा; मनोविज्ञानज्ञों ने जड़वत कार्यों की पुनरावृत्ति में ही हास्य का मूल-स्रोत प्रमाणित किया और दूसरे सामाजिक विचारकों ने वैषम्य की भावना तथा सहज क्रीड़ा प्रवृत्ति द्वारा

नशे में चूर पति यह कहता है कि "प्रिये ! तुमने अत्यधिक शराब पी ली; अब न पीयो क्योकि तुम्हारा चेहरा मुझे बिलकुल धुंधला दिखाई दे रहा है"—तब एकांगी विस्मरणशीलता प्रस्तुत होगी। एकांगी विस्मरणशीलता ही सफल हास्य की जननी है।

ही हास्य की सृष्टि के दर्शन किये। सभी विचारकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में तर्कपूर्ण उदाहरणों को एकत्र कर प्रमाण प्रस्तुत किये। परन्तु सबसे अधिक विचारणीय तत्व यह है कि सबके प्रमाण एवं उदाहरण एक से नहीं; उनमें बहुत गहरी विभिन्नता दृष्टिगत होगी। कभी-कभी तो ऐसा ज्ञात होगा कि ऐसे हास्यपूर्ण कार्य जो सिद्धान्त विशेष की परिधि में नहीं आ सके, जान-बूझकर अलग कर दिये गए और वे ही उदाहरण ढूँढ़ निकाले गये जो विचार-विशेष की पुष्टि करें। यदि समस्त विचारक एक ही आधार पर और समान उदाहरणों द्वारा अपने सिद्धान्त प्रमाणित करते तो विवेचन की कठिनाई बहुत कुछ दूर हो जाती और क्रम से हम एक सिद्धान्त के अन्तर्गत हास्य-प्रदर्शन के समस्त आधारों को हृदयंगम कर लेते। परन्तु उदाहरणों की असामानता तथा सिद्धान्तों की अपूर्व मौलिकता एवं नवीनता इस विवेचन-प्रणाली में अव्यवस्था प्रस्तुत करेगी। अतः विवेचन की स्पष्टता की दृष्टि से एक सिद्धान्त के अन्तर्गत जितने उदाहरण थे प्रस्तुत कर दिये गये तत्पश्चात् दूसरे, तीसरे तथा चौथे सिद्धान्त विशेष की समीक्षा आरम्भ की गई है।

आधुनिक युग में, मनस्तत्वशास्त्र ने, हमारे मानवी जीवन की अनेक गुत्थियां सुलझाई हैं और अनेक विषमताओं को स्पष्ट किया है फलतः मनस्तत्व-शास्त्र द्वारा नियंत्रित सिद्धान्त को ही पहले पहल प्रश्रय दिया गया। मनो-विज्ञान ने भी मानव-मस्तिष्क का यथेष्ठ अवगाहन किया और उसके द्वारा भी नियंत्रित सिद्धान्त कम महत्वपूर्ण नहीं। समाज-शास्त्रियों ने भी मनुष्य के दैनिक क्रियाकलाप के अनुसंधान में समुचित विद्वत्ता तथा मानसिक सूझ का व्यवहार किया है। फलतः क्रम से इन चार विशिष्ट सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है जिनके अन्तर्गत अनेक हास्याधारों का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा। जैसा हम स्पष्टतः कह चुके हैं केवल एक सिद्धान्त के अन्तर्गत हास्य की व्यापक आत्मा की परख नहीं हो सकेगी और हमे अनेकरूपी हास्य के लिये अनेक विशिष्ट सिद्धान्तों का अध्ययन अपेक्षित होगा और तभी हम हास्य की सम्पूर्ण रूप-रेखा का प्रामाणिक अध्ययन कर पायेंगे।

प्रकरण—१

हास्य का वाह्यरूप तथा मानवी-आधार

यदि वाह्य रूप से देखा जाय तो हास्य, मानव मुखाकृति का वाह्य व्यवहार मात्र होगा। हंसते समय मुख थोड़ा बहुत खुल जायगा, होठ थोड़े फैल कर पीछे की ओर हो जायंगे और ऊपरी होठ कुछ ऊपर की ओर उठ जायगा; आँखों के चारो ओर कुछ सिकुड़न पड़ जायगी और उन में एक अपूर्व चमक झलक जायगी। हास्य का वाह्य रूप साधारणतः यही होगा। कुछ विशेष प्रकार के लोलुप हास्य में कदाचित नथुने फैल जायंगे और कभी-कभी मस्तक पर भी सिकुड़न प्रदर्शित हो जायगी। सम्यक रूप में हास्य प्रदर्शन के लिये यह अत्यावश्यक है कि मुख के दोनों ओर की मांस-पेशियों द्वारा हास्य प्रस्तुत हो; यदि मुख के एक ही ओर की मांसपेशियों, होठ तथा नाक कार्य-रत हुये तो उस प्रकार के हास्य का विवेचन कठिन होगा और उसका अर्थ लगाना भी सरल न होगा। प्रायः अपने मूल रूप में हास्य मुस्कान मात्र रहा होगा और कालान्तर में ही उसे नाद का सहयोग प्राप्त हुआ होगा। विकास-सिद्धान्त के अनुसार भी मुस्कान ही हास्य का आदि रूप रहा होगा। साधारणतः यह देखा गया है कि स्त्री-वर्ग तथा बालक हास्य के लिये ईकारान्त नाद तथा पुरुष वर्ग प्रायः आकारान्त तथा ओकारान्त नाद का प्रयोग करते हैं। साधारणतः ओष्ठ, आँख, कान, गाल, सिर, कन्धे इत्यादि हास्य प्रकाश में सहयोग देंगे; और अत्यन्त ज़ोर के हास्य के अवसर पर समस्त शरीर पीछे की ओर मुड़ेगा और कपकपी सी आयेगी; श्वास-क्रिया में व्यक्तिक्रम प्रस्तुत होगा और मुख और सिर की ओर रक्त का प्रवाह बढ़ जायगा। आखों की नसें भी रक्त से भर उठेंगी और प्रायः अश्रु का प्रवाह होने लगेगा। और कभी-कभी यह कहना कठिन होगा कि व्यक्ति हसँता अथवा रोता है। हास्य और रोदन में एक रहस्यपूर्ण मनोवैज्ञानिक - संबंध है।

एक प्रसिद्ध जीव शास्त्र विशारद का कथन है कि जब बालक की आयु ४० दिन की होती है तभी हास्य संभव होता है : और उसका पूर्व रूप केवल मुस्कान होगा। कुछ बालक ४५वें, ३०वें, १०वें तथा कभी १८० दिन पर मुस्काते देखे गये हैं जिससे प्रमाणित है कि यद्यपि मुस्कान ही हास्य का मूल रूप है, उसका समय परवर्तित्त होता रहता है। इस संबंध में हमें यह ध्यान में रखना होगा कि मुस्कान कहीं जड़-वत तो नहीं अथवा उसके कुछ

अस्पष्ट अर्थ भी हैं। कभी-कभी हम मुख की सरल आकृति के परिवर्त्तन को ही मुस्कान समझ बैठ सकते हैं परन्तु यह व्यवहारिक रूप में सत्य है कि जन्म होते ही बालक नहीं हँसते।

बालक किन-किन अवसरों पर मुस्काते अथवा हंसते हैं इसका विवेचन करते हुये विचारकों ने यह अनुभव किया है कि बालक अनेक इच्छित अथवा अनिच्छित अवसरों पर मुस्काते हैं। प्रायः माता को देख कर ही बालक मुस्काते हैं और जब उनका पेट पूर्ण रूप से भर जाता है तब भी वह मुस्कुराते हैं। जब कोई व्यक्ति उन्हें चुमकारता है अथवा उन्हे देख कर बार-बार सिर हिलाता है तो वे हाथ पैर फेकने अथवा पटकने लगते हैं जो उनके आनन्द का परिचायक होता है। जब कोई व्यक्ति कभी घूंघट की ओट मुँह छिपाये और फिर एकाएक उसे हटाये तो भी बालकों को हँसी आ जाती है। कभी-कभी कुतूहल-वश जब पिता बालक की ओर पीठ किये हुये आता है और उसके बहुत निकट पहुंच जाता है तो उसमें भय की भावना जागृत होती है परन्तु घूमकर देखते ही भय की भावना मुस्कान में परिणित हो जाती है। प्रायः बालकों के होठ छूने अथवा उनको गुदगुदाने से भी वह मुस्काते हैं और अवस्थानुसार खिल-खिला पड़ते हैं। साधारणतः कुछ विशेष नादों को उच्चारण करने के पश्चात् भी हंसी आती है। लुका-छिपी के खेल द्वारा भी वे मुस्कुरा उठते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि अपने आदि रूप मे हास्य का प्रस्फुटन तभी संभव हुआ जब उसका संबंध किसी व्यक्ति अथवा मनुष्य से प्रस्तुत हुआ। फलतः मानवी सम्बन्ध बिना हास्य संभव नहीं होगा; और यदि होगा तो वह अर्थहीन होगा।

मूल शारीरिक आधार

साधारणतः शारीरिक रूप में, गुदगुदी द्वारा हास्य प्रस्फुटित हो जाता है और जब कोई व्यक्ति किसी को धीरे-धीरे अथवा जल्दी-जल्दी गुदगुदाता है तो अनेक प्रकार से बचाव का प्रयत्न करते हुए भी वह व्यक्ति हँसता रहता है। परन्तु यह सिद्धान्त-रूप में मान्य नहीं क्योंकि कुछ बालक और व्यक्ति ऐसे भी देखे गये हैं जो पैरों को गुदगुदाते समय पैर झटक देते हैं अथवा उँगलियाँ सिकोड़ लेते हैं और हँसते नहीं। प्रायः तीन महीने से कम के शिशु को केवल गुदगुदी द्वारा हँसाना असंभव सा होगा और हमें अन्य उपकरण प्रयोग में लाने पड़ेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि गुदगुदी केवल किसी बाह्य उपकरण द्वारा ही प्रस्तुत की जा सकेगी और उसके लिये यह आवश्यक है कि उसमें कुछ न कुछ संशयात्मकता अवश्य हो। बालक अथवा व्यक्ति को यह निश्चित रूप से

ज्ञात न होना चाहिये कि गुदगुदी लाने का स्थान कौन सा होगा। इसी संशय की भावना के आधार पर हास्य और भी तीव्र-रूप में प्रस्तुत होगा। और यदि बालक, व्यक्ति, स्थान और उपकरण तीनों से परिचित हो गया तो वह सचेत रहेगा और हास्य का प्रस्फुटन संभव न होगा। इसी प्रकार जब हमें कोई ऐसा अनुभव होता है जो दैनिक अनुभव के अन्तर्गत नहीं और जो हमारे सम्मुख असाधारण अव्यवस्थित तथा असंतुलित रूप में अनायास प्रस्तुत हो जाता है तो हास्य का प्रसार होने लगता है। हमारे साधारण तथा सुव्यवस्थित मानसिक अनुभव-क्षेत्र में किसी अव्यवस्थित विचार अथवा तत्व का प्रवेश सहज ही हास्य का प्रस्फुटन करेगा। अव्यवस्था तथा अनपेक्षितता का तत्व भी हास्य के प्रस्फुटन के लिये अत्यावश्यक है। हाँ, इस संबंध में यह अवश्य ध्यान रहे कि गुदगुदी लाने के लिये व्यक्ति अथवा बालक का स्वस्थ होना भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि अस्वस्थ अवस्था में न तो गुदगुदी का अनुभव रुचिकर होगा और न हास्य ही प्रस्तुत होगा; भय तो यह है कि हास्य के स्थान पर पीड़ा का अनुभव होगा और बालक की विरोधी शक्तियाँ जाग्रत हो जायँगी।

वास्तव में, गुदगुदी द्वारा प्रस्तुत हास्य की समीक्षा जीव-शास्त्र सिद्धान्तों के आधार पर ही हो सकेगी। जीव-शास्त्र से सिद्धान्तों के परिचायकों[1] के अनुसार मानव की आदि अवस्था में जब युद्ध होते थे तो शरीर के कुछ स्थान ऐसे थे जिन पर आकस्मिक प्रहार करके क्षति पहुँचाई जा सकती थी। ये ही स्थान गुदगुदी लाने के लिये भी, प्रायः आगे चलकर, सहायक हुये। इसका प्रमाण यह है कि गुदगुदी लाने के समय बालक अथवा व्यक्ति अपने शरीर के वे स्थान विशेष हीं छिपाने अथवा बचाने का प्रयत्न करते हैं। यह भी संभव है कि गुदगुदी के स्थानों और उनकी गुदगुदी लाने की क्षमता, प्राचीन युग में, कुछ जंगली पशुओं की बाल-क्रीड़ा के अनुकरण के कारण, प्रस्तुत हो गई हो। कदाचित यह भी संभव है कि आदि अवस्था में जब मनुष्य पर कीड़ों-मकोड़ों का आक्रमण हुआ होगा, तो कुछ विशेष स्थानों पर ही क्षति की संभावना होती होगी और आदि मनुष्य उनसे बचने की कोशिश किया करता होगा। और ये ही स्थान गुदगुदी के विशेष स्थल प्रमाणित हुये। यह भी संभवतः विश्वास किया जा सकता है कि मनुष्य ने अपनी आदि सामाजिक अवस्था में प्रेमासक्त हो कुछ संकेत विशेष किये होंगे जिनके कारण वह उन्हीं शारीरिक स्थलों पर आकृष्ट होता चला आया है जो आगामी

---

१. रॉबिनसन

अंगों में गुदगुदी लाने योग्य प्रमाणित हुये। कुछ अन्य जीव-शास्त्र के विद्वानों[1] का विचार है कि स्पर्श-शक्ति ही, आदि काल से, भय इत्यादि का संकेत देने में प्रयुक्त होती थी और संकटावस्था में आदि मनुष्य-समाज, स्पर्श-मात्र से ही एक दूसरे को सचेत करता था; और जिन स्थलों को वह स्पर्श करता था वे ही गुदगुदी लाने योग्य प्रमाणित हुये। कुछ अन्य विचारकों का विश्वास है कि कदाचित मैत्री-भाव का प्रदर्शन करने के लिये और खेल-कूद में सहयोग देने के लिये स्पर्श मात्र से ही आमंत्रण दिया जाता था और वे स्थल ऐसे थे जो सहज ही गुदगुदी लाने में आज प्रयुक्त हो रहे हैं।

एक प्रसिद्ध लेखक[2] का विचार है कि गुदगुदी के अनेक स्थल सेक्स प्रोत्साहन देते हैं और प्रकृति के विशिष्ट नियमानुसार उन स्थलों को असमय स्पर्श से बचाना जीव का धर्म हो जाता है। गुदगुदी तथा सेक्स में घनिष्ट मनोवैज्ञानिक संबंध का संकेत मिलेगा।

उपरोक्त अनेक कारणवश हास्य की परिभाषा तथा उसके सिद्धान्तों का निर्माण करते समय विचारकों ने कभी उसके एक तथा किसी ने उसके दूसरे तत्वों पर ध्यान दिया अतएव उसकी सम्यक परिभाषा न बन पाई। कुछ विज्ञानज्ञों के विचारानुसार "हास्य साधारणतया आनन्द अथवा हर्ष की भावना की अभिव्यक्ति है[3]"। 'मुस्कान के समान ही हास्य भी किसी हर्षपूर्ण भावना की अभिव्यंजना है[4]।" 'हास्य, मनुष्य के सामूहिक शारिरिक व्यवहार की हर्षपूर्ण अभिव्यक्ति है'[5]। परन्तु हास्य के उद्गम का अध्ययन करने पश्चात् यह सहज ही कहना पड़ेगा कि अपने मूल रूप में हास्य की अभिव्यक्ति सुव्यवस्थित रूप में नहीं हो सकी और साधारणतः उसके प्रकाश में अनेक बाधायें उपस्थित रहीं। पिछले विवेचन के आधार पर हम, संभवतः, यह प्रामाणिक रूप में कह सकते हैं कि मुस्कान तथा हास्य जन्म के कुछ दिनों बाद ही प्रदर्शित होंगे और जब-जब हास्य की सृष्टि होगी तब-तब किसी परिस्थिति विशेष तथा किसी दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति की आवश्यकता अपेक्षित होगी। हम स्पष्ट कर चुके हैं कि जिस प्रकार गुदगुदी लाने के लिये किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता होती है उसीप्रकार बालक को हँसाने के लिये भी किसी दूसरे व्यक्ति की हास्य-पूर्ण भाव-भंगी आवश्यक होगी। परन्तु यह पुनः ध्यान रखना आवश्यक है कि गुदगुदी तभी सफलतापूर्वक लाई जा सकती है जब बालक स्वस्थ हो और उसकी मानसिक अवस्था गुदगुदी के प्रभाव को ग्रहण करने

---

१. हॉल : ऐलिन २. हैवलक इलिस ३. डार्विन
४. सली ५. वॉटसन

को तैयार हो और जो व्यक्ति गुदगुदी लाना चाह रहा हो, बालक उससे परिचित भी हो। अस्वस्थ बालक अथवा ऐसा बालक जो मानसिक रूप में गुदगुदी की प्रतिक्रिया के लिये तैयार नहीं, नहीं हँस सकेगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ बालक गुदगुदी लाने पर भी नहीं हँसते ; इसका कारण यह है कि उन्होंने गुदगुदी की हास्ययुक्त प्रतिक्रिया से अपने को विमुख रखा है और उनकी यह आदत सी हो गई है कि उन्हें गुदगुदी द्वारा हंसी नहीं आती; अथवा उन्होंने गुदगुदी की प्रतिक्रिया पर अंकुश जमा लिया है। इन विचारों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सेक्स तथा गुदगुदी समान प्रेम तथा हास्य में भी कुछ न कुछ मानसिक सम्बन्ध अवश्य है।

संसार के समस्त प्रणीमात्र में प्रेम—प्रदर्शन का मूल आधार स्पर्श रहा है और इसका प्रमाण हम मानवसमाज तथा पशुओं के जीवन में सर्वत्र पायेंगे।

हास्य तथा प्रेम

स्त्री तथा पुरुष, बालक तथा बलिका सभी स्पर्श मात्र से प्रेम संदेश देते हैं। बालकों द्वारा पाले हुये कुत्ते उनके चरणों पर बार-बार लोटते हैं और उन्हें पथथपाने का प्रेमादेश देते हैं।'कभी वे हाथ-पैर चाटते हैं और कभी चारो ओर तेज़ी से दौड़कर पैरों के पास पुनः लेट जाते हैं और सिर, गरदन तथा पेट को सहलाने का आग्रह करते हैं। कुत्ते की माता अपने छोटे-बच्चे को चाटकर साफ़-सुथरा बना देतीं है, बिल्लियों तथा गाय-बैल इत्यादि का भी ऐसा ही स्वभाव होता है। बिल्लियों में तो स्पर्श का आग्रह इतना अधिक होता है कि प्रायः दरवाजों तथा दीवालों पर वे अपना शरीर रगड़ती हुयी दिखाई देंगी। प्रायः ये सभी जीवधारी अपने अगले पैर फैला देते हैं और स्पर्श के लिये लालायित हो उठते हैं। ये शारीरिक आचरण, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, बाल्यावस्था की स्मृति द्वारा आविर्भूत होते हैं; मनस्तल में छिपे रहते हैं और अवसर पाकर कर विकसित होने लगते हैं।

मनुष्य समाज में, बालक को स्पर्श का पहला ज्ञान माता द्वारा प्राप्त होता है। जब माता नव-जात शिशु को थपकाती है, गले लगाती है, चुमकारती तथा चूमती है तो उसका स्पर्श-ज्ञान संग्रहीत होने लगता है। और इस स्पर्श कार्य में मूलतः मुँह, गाल तथा जीभ ही प्रयुक्त होंगे। युवावस्था के प्रेम-व्यवहार इत्यादि में इन्हीं पूर्व भावनाओं की प्रगति प्रकाशमान होती रहती है; और प्रेम के आवेश में प्रायः युवा-युवती वे ही क्रिया-कलाप सहज रूप में करते हैं जिनकी मूल-रूपरेखा उनके बाल्यकाल की स्मृति में निहित रहती है। उसी अंकुर से समस्त मानवी प्रेम-व्यापार परिचालित तथा परिपक्व होता है। प्रेम-व्यापार के लिये स्पर्श का आधार इसलिये नितान्त आवश्यक

होगा कि मानव-समाज में किसी अमूर्त, अदृश्य तथा स्पर्श से परे जीव अथवा वस्तु के आधार पर प्रेम-व्यापार नहीं पनप सकता। स्पर्श से परे होना प्रेम के लिये हितकर नहीं। शिशु को वही वस्तु सर्वप्रिय होगी जिसे वह स्पर्श कर सकेगा; मुँह में रख सकेगा अथवा अपने नन्हें हाथों से कस कर पकड़ सकेगा। सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने वाले शिशु के हाथ वस्तु को मुँह के पास जब तक नहीं ले जा पाते तब तक अकनाते रहते हैं और उनकी तुष्टि तबतक नहीं होती जबतक वे अपनी प्रिय वस्तु को अपने होठों से पकड़ नहीं लेते। बाल्यावस्था में भी बालक वे ही वस्तु प्रिय समझते हैं जिन्हें वे अपना सकें; अपने हृदय से लगा सकें; हिला-डुला सकें; उसका होठों से स्पर्श कर सकें। युवा के लिये भी स्वाभाविक तो यही है परन्तु इस मूल भावना का परिष्कार कर, उसे उदात्त बना कर, वह मन्दिर में मूर्ति के चरण छूता है; गिरजे में 'क्रॉस' को हृदय से लगाता है; उसका होठों से स्पर्श करता है और मस्जिद में प्रार्थना करते हुये अपना ही शरीर बार-बार छूता रहता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार प्रेम, उत्कर्ष के क्षण में, प्रेमी से गला घोंट देने का आग्रह भी करता है। इस सम्बन्ध में यह कहना भी अत्युक्ति नहीं कि प्रेम-व्यवहार में श्वास-नली की क्रिया-प्रतिक्रिया में भी महान परिवर्तन हो जायगा; उसमें व्यतिक्रम आयेगा और यदि उस में थोड़ी बहुत और बाधा प्रस्तुत हुई तो सेक्स का आग्रह बहुत कुछ बढ़ जायगा। प्रायः ऐसी परिस्थिति में लम्बी साँस और ठण्डी साँस एकाएक चलेगी और कुछ ऐसे नादों का उच्चारण होगा जो हममें बाल्यावस्था की स्मृति जगायेंगे। जिस प्रकार बाल्यकाल तथा शैशवावस्था में बालक चीखते हैं और प्रेमातुर हो सिसकते हैं वही दृश्य प्रेम-व्यापार रूप में, युवावस्था में, पुनः प्रस्तुत होने लगता है।

लुका-छिपी के खेल में भी, इसी सिद्धान्त के अनुसार, बालक का हास्य इसीलिये प्रस्तुत होता है कि जब किसी व्यक्ति का मुख अनायास छिप जाता है तो बालक की परिकल्पना[१] में बाधा पहुँचती है और उस बाधा का निराकरण करने के लिये अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता पड़ने लगती है। बाधा के निराकरण के पश्चात् यह अतिरिक्त शक्ति थोड़ी बहुत मात्रा में बच रहती है जो हास्य रूप में प्रस्फुटित हो जाती है। प्रत्येक परिस्थिति में ऐसा ही होता है और स्मरण-शक्ति के कोष में सुरक्षित जिन-जिन भावनाओं की पुनरावृत्ति होती रहेगी, हमें हँसाती रहेगी। बालक जब किसी का मुख छिपते

---

१. देखिये—'काव्य की परख'

उपास्य की ही पूजा है। चतुर्भुजदास जी ने जब सूरदास जी से कहा था कि आपने 'बहुत भगवत् यश वर्णन कियो पर श्री आचार्य जी महाप्रभून को वर्णन नाहीं कियो;' तब सूरदास जी ने उत्तर दिया था, 'मैं तो सब श्री आचार्य जी महाप्रभुन को ही यश वर्णन कियो है कछू न्यारो देखूँ तौ न्यारो करूँ।' परमानन्ददास अपने एक पद में 'वल्लभ भेष मुरारि री' कहते हैं[1]; चतुर्भुजदास 'पुरुषोत्तम अवतार'[2], तथा छीत स्वामी—'हरि सकल जीव उद्धार हित प्रकट वल्लभ सदन दनुजहारी'[3] ऐसा लिखते हैं।

भारतेन्दु बाबू ने राधा कृष्ण के संयोग शृंगार का पूर्ण रूप से वर्णन किया है और इस रहस्य की अविकार जानकारी को वल्लभ पदकी अमित कृपा का प्रभाव कहा है—

(१) श्री वल्लभ-पद-रज प्रताप सों यह लीला कहि गाई

—मधु मुकुल ४८.

(२) 'हरीचन्द' मंगलै वल्लभ-पद जा बल विहरत बिना विकार

—प्रेमाश्रु वर्षण ११.

(३) 'हरीचन्द' मंगल वल्लभ-पद जा बल जुगल बिहार भए

—प्रेमाश्रु वर्षण १२.

(४) 'हरीचन्द वल्लभ-पद बल वै अवगाहत सोइ आली

—प्रेमाश्रु वर्षण १९.

(५) 'हरिचन्द तेहि अवगाह किय वल्लभ कृपा-अधार

—प्रेमाश्रु वर्षण २३.

भारतेन्दु बाबू प्रातः उठकर गुरुस्मरण करना अपना धर्म समझते थे। 'प्रातः स्मरण स्तोत्र' के ११ वें छप्पय में वल्लभ-कुल के ११ गुरुओं तथा उसी कुल की लक्ष्मी, रुक्मिणी, पद्मावती आदि नारी-रत्नों का स्मरण किया भी है। विशेषकर वल्लभाचार्य उनके लिए प्रातः स्मरणीय हैं—

'प्रात समय उठतहि श्री वल्लभ यह मंगल मय लीजे नाम'

—रागसंग्रह ७२.

प्रातः गुरु स्मरण करना भी वल्लभ संप्रदाय का एक अंग प्रतीत होता है क्योंकि अष्टछाप के कवियों ने भी अपने पदों में प्रातः गुरु स्मरण करने की आज्ञा दी है—

---

१. २. ३.—अष्टछाप पदावली—पृष्ठ १४०,२०४,२२५

(१) 'प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिय नाम।

—नंददास, अष्टछाप पदावली

(२) प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुन्य पवित्र विमल जस गाऊँ

—नंददास—अष्टछाप पदावली

(३) विसद सुजस श्री वल्लभ सुत को प्रात उठत अनुदिन तब गाऊँ

—छीत स्वामी—अष्टछाप पदावली

'प्रातःस्मरण मंगल पाठ' के २६ छप्पयों में से अंतिम १७ छप्पयों में वल्लभाचार्य का ही गुणानुवाद है—चौदहवें छप्पय में उनका रूप वर्णित है; पंद्रहवें में सर्वमान्य नवरसों तथा स्वमान्य भक्ति, सख्य, आनंद आदि रसों का निवास उनमें सिद्ध किया गया है; पचीसवें में महाप्रभु का जीवन चरित और अंतिम, छब्बीसवें, छप्पय में महाप्रभु के प्रातःस्मरण का फल दिया गया है।

निम्नलिखित दो दोहों में रूपकों के सहारे महाप्रभु वल्लभाचार्य की महिमा का अपूर्व वर्णन हुआ है—

(१) तम पाखंडहिं हरत, करि जन मन जलज विकास
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति पथ करन प्रकास

(२) मायावाद-मतंग मद, हरत गरजि हरि-नाम
जयति कोऊ सो केसरी, वृंदावन वन धाम

—उत्तरार्द्ध भक्तमाल २३,२२.

वल्लभाचार्य संबंधी पदों में—

(१) हम तो श्री वल्लभ ही को जानैं

—प्रेम मालिका ३३.

तथा

(२) श्री वल्लभ प्रभु मेरे सरबस

—प्रेम प्रलाप ५२ रागसंग्रह १२४.

श्रेष्ठतम हैं।

६

विनय-पदावली

भारतेंदु के विनय संबंधी पदों की संख्या ३१४ है। इनमें से २९ पदों में उन्होंने वल्लभ एवं वल्लभ-कुल की प्रशंसा की है। इन पदों का विवेचन संप्रदाय-निष्ठ काव्य के अंतर्गत किया जा चुका है। लगभग ५७ पदों में विभिन्न अवतारों का वर्णन है, ८ पदों में गंगा की महिमा है, 'जैन कुतूहल' के ३६ पदों में सब धर्मों का उदार सामंजस्य स्थापित किया गया है। शेष पौने दो सौ के लगभग पद विशुद्ध विनय के हैं जिनमें अनुनय, दैन्य आदि का प्राधान्य है। ये पद सूर के विनय संबंधी पदों एवं तुलसी की 'विनय-पत्रिका' की परंपरा में हैं।

सगुणोपासना—

सूरसागर प्रथम स्कंध के द्वितीय पद में सूरदास ने सगुणोपासना का कारण बताया है—

अविगत-गति कछु कहत न आवै।

× × ×

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥

इसी प्रकार भारतेंदु भी निम्नलिखित पद में हरि-चरित बड़ाई करने का कारण लिखते हैं—

हरि लीला सब विधि सुखदाई।
कहत सुनत देखत जिय आनत देहि भगति अधिकाई।
प्रेम बढ़त, अघ नसत, पुन्य-रति जिय मैं उपजत आई॥
याही सों 'हरिचंद' करत सुनि नित हरि-चरित बड़ाई।

—रामलीला १

इस पद को हम भारतेंदु-पदावली की भूमिका मान सकते हैं।

भक्त वत्सलता—

सूर को भगवान की भक्त वत्सलता का पूर्ण विश्वास है। इस प्रसंग में उन्होंने अनेक पद लिखे हैं। इन पदों में उन विभिन्न अंतर्कथाओं का समावेश हुआ है, जिनके द्वारा भगवान की भक्त वत्सलता चरितार्थ होती है। उनके अनुसार प्रभु का सर्वदा एक स्वभाव है और—

तिनका सों अपने जन को गुण मानत मेरु समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद तुल्य भगवान॥
—सूरसागर १।८

भगवान किसी के कुल की ओर नहीं देखते—व्याध अजामिल सभी को तार देते हैं—

काहू के कुल तन न विचारत।
अविगत की गति कहि न परति है व्याध अजामिल तारत॥
—सूरसागर १।१२

तुलसीदास भी राम को 'गरीब नेवाज' कहते हैं और उनके 'सील सुभाउ' का ही उन्हें भी भरोसा है—

जो पै हरि जन के अवगुन गहते।
तौ बहु कल्प कुटिल तुलसी से सपनेहु सुगति न लहते॥
—विनय पत्रिका ९७

भारतेंदु को भी भगवान की रीझ, उसकी भक्त वत्सलता पर अनन्य विश्वास है। वे भगवान की रीझ पर बलिहार जाते हैं क्योंकि महा पतितों से भी प्रेम करनेवाला उनके अतिरिक्त अन्य कोई देव नहीं दिखाई देता—

रावरी रीझ की बलि जैए।
महा पतित सों प्रीति पियारे एक तुमहिं में पैए॥
—प्रेम मालिका ७४

प्रेम मालिका ७८, प्रेम फुलवारी ९, विनय प्रेम पचासा ८ आदि पदों में भी भगवान की इसी रीझ का वर्णन है। भारतेंदु के इन सभी पदों में पर्याप्त नवीनता है। इनमें आत्म-विभोरता की मात्रा सूर के तत्संबंधी पदों (सूर सागर १।५-१८) से अधिक है।

भक्त महिमा—

भगवान की भक्तवत्सलता तो महान है ही—भक्त भी इसी के साथ-साथ महान है, कारण भगवान उसपर द्रवित होता है। उसके समान कुलीन, सुंदर और कोई नहीं—

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ो सुंदर सोइ, जिनपर कृपा करै॥
—सूरसागर १।३५

भारतेंदु भी भक्त महिमा के कायल हैं, वे गोपियों की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक कह जाते हैं कि उनके चरण सभी भक्तों के सिर पर छत्र होने योग्य हैं—

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोरयो हरि-रस माहीं।।
जिन निज बस कीने नँदनंदन विहरीं दै गलबाहीं।
सब संतन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छाहीं।।
—चंद्रावली

भारतेंदु के अनुसार ये गोपियाँ भक्तों के लिए श्रद्धेय हैं, क्योंकि वे उनके लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श उपस्थित करती हैं।

धार्मिक उदारता—

भारतेंदु के आत्म-निवेदन संबंधी पद अधिक हैं। इस आत्म-निवेदन के पूर्व उनका हृदय सभी भक्तों की भाँति अत्यंत उदार हो जाता है। धार्मिक उदारता संबंधी रचनाएँ 'जैन कुतूहल' में संकलित हैं। वे जैन धर्म और हिंदू धर्म में कोई अन्तर नहीं मानते थे और सभी धर्मों को एक ही भगवान के पास जाने के विभिन्न मार्ग समझते थे। इसी उदारता के कारण वे अर्हंत एवं पार्श्वनाथ आदि को भी विष्णु का ही रूप समझते हैं—

(१) पियारे दूजो को अरहंत।
—जैन कुतूहल १

(२) तुमहि तौ पार्श्वनाथ हो प्यारे।
—जैन कुतूहल ३

विभिन्न धर्मों ने ईश्वर को विभिन्न रूपों में देखा है, भारतेंदु के अनुसार वे सभी रूप एक ही परमात्मा के हैं; इसीलिए वे अपने प्रिय को 'बहुरूपिया' कहते हैं—

कंत है बहुरूपिया हमारो।
—जैन कुतूहल १६

उनकी धार्मिक उदारता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे कह बैठते हैं कि ईश्वरता केवल वेदों की ही वस्तु नहीं है—

नहिं ईश्वरता अँटकी वेद में।
तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मत-भेद में।।
—जैन कुतूहल ६

और वे तत्कालीन मान्यता के विरुद्ध जैनों को परम आस्तिक मान लेते हैं—

जैन को नास्तिक भाखे कौन।
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन।
—जैन कुतूहल ७

उनका कहना है कि हरि झगड़ों में नहीं हैं, इसलिए विभिन्न धर्मों का परस्पर द्वेष व्यर्थ है और धार्मिक वादविवाद भी उचित नहीं है—

जो पै झगरेन मैं हरि होते
तौ फिर श्रम करि कै उनके मिलिबे हित क्यों सब रोते ?

—जैन कुतूहल ११.

वे सभी मतों को अपना ही समझते हैं इसलिए खण्डन-मण्डन में उनका तनिक भी विश्वास नहीं है—

खंडन जग में काको कीजै
सब मत तो अपने ही हैं, इनको कहा उत्तर दीजै

—जैन कुतूहल १२

वे सबको श्वेत चश्मा लगाने की राय देते हैं, जिससे ज्यों का त्यों सूझे; रङ्गीन चश्मा वस्तु को अपने रंग में रँग लेता है और वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाता—

लगाओ चसमा सबै सफेद
तब सब ज्यों के त्यों सूझैगो, जैसो जाको भेद

—जैन कुतूहल १७.

द्वैतवाद में विश्वास—

भारतेन्दु एक भक्त थे इसलिए सहज ही वे अद्वैतवाद के विरोधी थे। जीव और ब्रह्म दोनों की अलग-अलग सत्ता के स्वीकरण पर ही भक्ति खड़ी होती है, इसलिए वे दोनों की अभेदता को स्वीकार नहीं करते—और अद्वैत-वादियों की माया-लिप्सा पर उन्हें फटकारते भी हैं—

शिवोहं भाखत सबही लोग
कहँ शिव, कहँ तुम कीट अन्न के, यह कैसो संयोग
आध अङ्ग मैं पारवती हू शिवहिं न काम जगावै
तुमको तो नारी के देखत अङ्ग गुदगुदी आवै

—जैन कुतूहल २२.

वे कहते हैं कि यदि सभी ब्रह्म ही हैं तो जोरू और जननी में कोई भेद ही नहीं रह गया—

तो तुम जोरू जननी मानौ एक भाव सों दोय

—जैन कुतूहल २३.

वे अद्वैतवाद के 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' सिद्धान्त को भी नहीं मानते। उनके अनुसार यदि ईश्वर सत्य है, तो उसकी सृष्टि भी सत्य है—

जो पै ईश्वर साँचो जान
तो क्यों जग को सारे मूरख झूठो करत बखान
जो करता साँचो है तो सब कारजहू है साँच
जो झूठो ईश्वर है तो सब जगहू जानौ काँच

—जैन कुतूहल २४.

बाह्याडंबर व्यर्थ—

भारतेन्दु बाह्याडंबरों में विश्वास नहीं करते थे। अपने 'वैष्णवता और भारतवर्ष' नामक निबन्ध में उन्होंने बड़े जोरों से प्रतिपादन किया है कि बाह्याडंबर नगण्य हैं, हृदय ही भक्ति का आगार है, इन बाह्याडंबरों का तिरस्कार करके ही सभी हिंदू एक सूत्र में बँध सकते हैं और देश का कल्याण इसी में है। कभी-कभी वे बाह्याडंबरों पर कबीर की भाँति टूट भी पड़ते हैं—

लखो हरि तीन ताग मैं लटक्यो
रीझि रह्यो प्रानी चाटन पै करम जाल मैं अँटक्यौ
हाथ नचावत सोर मचावत अगिन कुंड दै पटक्यौ
'हरीचन्द' हरजाई बनि कै फिरत लखहु वह भटक्यौ

—जैन कुतूहल ३१.

प्रेम में ही प्रिय—

भारतेन्दु भगवान को केवल प्रेम में पाते हैं; बाह्याडंबर, खंडन-मंडन, ज्ञान-ध्यान, करम-कुल-नेम, महाभारत, रामायण, वेद, मनुस्मृति, झगड़ा, मुक्ति, मत-वाद, मन्दिर, पूजा, घण्टा आदि में नहीं—

'पियारो पैए केवल प्रेम में'

—जैन कुतूहल १३.

संसार नश्वर—

भारतेन्दु संसार को नश्वर मानते हैं, जहाँ कूच का डंका निरन्तर बजा करता है। यह संसार चार दिनों का मेला है। यह एक सराय है जिसे हरि की माया भटियारी ने बनाया है। संसार की नश्वरता संबंधी पदों में कबीर की अक्खड़ता है। ऐसे पदों का विवेचन एक अलग अध्याय में पीछे किया जा चुका है।

मन—

सूर ने सूर-सागर के प्रथम स्कंध के ३०६ से ३३६ तक के पदों में मन को प्रबोध दिया है। प्रायः प्रत्येक भक्त कवि ने मन को समझाने का प्रयत्न किया है। भारतेन्दु ने भी मन पर अनेक सुन्दर पदों का प्रणयन किया है।

उन्हें खेद है कि उनका मन कहीं भी विश्राम नहीं पाता, तृष्णातुर होकर इधर-उधर दौड़ता फिरता है, कभी स्त्री की ओर, कभी कुटुम्ब की ओर, कभी धन की ओर—

मन मेरो कहुँ न लहत विश्राम
तृष्णातुर धावत इत ते उत पावत कहुँ नहिं ठाम

—कृष्ण चरित्र ३०.

गोसाईं तुलसीदास जी को भी अपने मन से यही शिकायत है—

कबहुँ मन विश्राम न मान्यो—
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इन्द्रिन्ह तान्यौ

—विनय पत्रिका ८८.

यह मन पारे से भी अधिक चंचल है। अभी अभी ज्ञान की बात सोचता है और तत्काल कामिनी के कुच-कलशों का ध्यान करने लगता है—

यह मन पारदहू सो चंचल
एक पलक मैं ज्ञान विचारत दूजे मैं तिय अंचल

—कृष्ण चरित्र ४३.

मन की अभिलाषाएँ तृष्णा, हविश सभी अकूल हैं—एक से अनेक हो जाना उनके लिए सहज है—

(१) नाहिंनै या आसा को अंत

—विनय प्रेम पचासा १५

(२) मिटत नहिं या मन के अभिलाख

—विनय प्रेम पचासा २८

(३) मिटत न हौंस हाय या मन की

— कृष्ण चरित्र ४०

परिणाम यह होता है कि इन अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं हो पाती और सारी जिन्दगी दुख में रोते-रोते बीत जाती है

(१) उमरि सब दुखही माँहि सिरानी

—विनय प्रेम पचासा १४

(२) बैस सिरानी रोअत रोअत

—विनय प्रेम पचासा १५

गोसाईं तुलसीदास भी जीवन के इसी प्रकार बीत जाने पर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे थे—

(१) जनम गयो वादिही वर बीति
कहे न सुने गुन गन रघुवर के भइ न राम पद प्रीति
—वि० पत्रिका २३४.

(२) ऐसेहि जनम समूह सिराने
प्राननाथ रघुनाथ सो प्रभु तजि सेवत चरन विराने
—वि० पत्रिका २३५.

अन्तिम अवस्था में सूर का भी यही अनुभव है—

जनम तो वादिहि गयो सिराइ
हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुवन बस्यो न जाइ
—सूरसागर १।१५५.

अभिलाषा—

भारतेंदु अपने मन की चंचलता एवं लोलुपता को भली भाँति जानते हैं। इसीलिये उनका यह अभिलाषा है कि राधा-कृष्ण की रूप माधुरी का पान करते हुए किसी भी रूप में ब्रजवास करें, तभी उन्हें चैन मिल सकता है, क्योंकि इस जीवन में—

स्वाद मिल्यो न मजूरी को, सिर टूट्यो बोझा ढोअत
'हरीचंद' नहीं भरयो पेट, पै हाथ जरे दोउ पोअत
—विनय प्रेम पचासा १५.

वे ब्रज के लता पत्र, यहाँ तक कि गोपी-पद-रज भी, होना पसद करते हैं—

ब्रज के लता पता मोहिं कीजै
गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै
श्री राधे राधे मुख यह वर 'हरीचंद' को दीजै
—प्रेम मालिका ६७.

नाम—

अपनी इस कामना पूर्ति के लिये हरि-नाम स्मरण आवश्यक समझते हुए वे अपनी रसना से कहते हैं—

रसने रटु सुंदर हरि नाम
मंगल करन, हरन सब असगुन, करन कल्प-तरु काम
तू तौ मधुर सलोनो चाहत प्राकृत स्वाद मुदाम
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों कृष्ण अमृत अभिराम
—प्रेम मालिका ३९.

गोस्वामी तुलसीदास जी भी अपनी जिह्वा को बारबार राम राम रटने के लिए प्रेरित करते हैं, (विनय पत्रिका ६५) ।

अपने को महान पापी समझना—

भगवान को द्रवित करने के लिए सभी भक्तों की भाँति भारतेंदु भी अपने को बहुत बड़ा पापी कहते हैं। उनके पाप इतने अधिक हैं कि चित्रगुप्त की बही भर गई. फिर भी वे पूर्ण रूप से न लिखे जा सके।

> बही मैं ठाम न नेकु रही
> भरि गई लिखत लिखत अघ मेरे बाकी तबहु रही
> चित्रगुप्त हारे अति थकि कै बेसुध गिरे मही
> जमपुर में हरताल परी है कछु नहिं जात कही
> जम भागे कछु खोज मिलत नहिं सबही बही बही

—प्रेम मालिका ८७.

उनकी कुचाल लोक वेद दोनों से परे है वे पुण्य को हेम-हथकड़ी मात्र समझते हैं—

> मेरी देखहु नाथ कुचाली
> लोक वेद दोउन सों न्यारी हम निज रीत निकाली
> पुन्यहिं हेम हथकड़ी समझत तासों नहीं बिस्वासा
> दयानिधान नाम की केवल या 'हरिचंद'हि आसा

—प्रेम प्रलाप ६.

उन्हें अपने में ऐसी कोई कसर नहीं दिखाई देती, जिससे वे किसी भी अर्थ में अपने को अजामिल आदि से छोटा पापी समझें और अपने को मुक्ति का योग्य अधिकारी न मानें। वे समझते हैं कि और पापियों को संभवतः दो-दो सींगें थीं, मुझमें यही एक कसर है, और कोई कसर तो दिखाई नहीं देती—

> हममें कौन कसर प्रिय प्यारे
> अजामेल मैं का अवगुन जो नहिं तन माहिं हमारे
> जानी और पतित के माथे सींग रही है भारी
> ता बिन हमहिं देखि नहिं तारत वृंदा-विपिन-विहारी

—स्फुट पद २७.

भारतेंदु अपने को 'पतित पति' (स्फुट २७) और 'पतितन के सरदार' (प्रेम मालिका ७८) कहते हैं, । सूरदास भी अपने को 'पतितन को टीकौ' (१।१३८),'पतितन को राव'(१।१४५),'पतित शिरोमणि'(१।१३९),'पतितन पतितेश'

(१।१४१), 'पतितन को राजा' (१।१४४), 'पतितन को नायक' (१।१४६), 'महापतित' (१।१४९), 'मोसों पतित न और गुसाईं' (१।४७), 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' (१।१४८), कहते हैं। तुलसी भी अपने पापों को इतना अधिक समझते हैं कि उनकी समझ से शारदा भी उन्हें नहीं गिन सकतीं (विनय पत्रिका ९२)। वस्तुत: अपने को सबसे बड़ा पापी और तुच्छ समझना भक्ति की पहिली सीढ़ी है और भारतेंदु इस सीढ़ीपर सफलता पूर्वक चढ़ सके हैं।

निज विरद की ओर देखने का निवेदन—

भक्त को भगवान की रीझ पर अनन्य विश्वास होता है, भारतेंदु को भी है। कवि हरि से निवेदन करता है कि हे भगवान मेरे बड़े पापों की ओर न देखिए, अपने विरद की ओर देखिए, अन्यथा मेरा तरना असंभव हो जायगा। जन के अवगुण की ओर तो आपने कभी भी ध्यान नहीं किया था, अब मेरी ही बार यह नई रीति क्यों निकाली है—तुम्हारे गुणों से मेरे अघ बड़े नहीं हैं—फिर कैसी देर?

> नाथ तुम अपनी ओर निहारो
> हमरी ओर न देखतु प्यारे निज गुन गनन विचारो
> अब लौं तौ कबहूँ नहिं देख्यो जन के औगुन प्यारे
> तब अब नाथ नई क्यों ठानत भाखहु बार हमारे
> तुव गुन छमा दया सों मेरे अघ नहिं बड़े कन्हाई
> तासों तारि लेहु नँदनंदन 'हरीचंद' को धाई
>
> —प्रेम प्रलाप ५.

ललकार—

इतने पर भी जब भगवान का रुख नहीं मिलता, तब कवि उन्हें ललकारता है कि वे अपने विरद की रक्षा करें। आज देखना है कि कौन हारता है, मैं अघ करने से या आप मुझे तारने से। आज बाजी लगी है, देखें कौन अपनी प्रतिज्ञा से हटता है—

> आजु हम देखत हैं को हारत
> हम अघ करत, कि तुम मोहिं तारत, को निज बानि बिसारत
> होड़ पड़ी है तुमसों हमसों, देखैं को प्रन पारत
> 'हरीचंद' अब जात नरक मैं, कै तुम धाइ उबारत
>
> —प्रेम मालिका ८३.

या तो दीन बंधु कहलाने की अपनी प्रतिज्ञा टाल दीजिए या मुझे तार

दीजिए (प्रेम मालिका ८४); यदि मुझे नहीं तार सकते तो वेदों पर हरताल लगा दीजिए (प्रेम मालिका ८५)। सूर ने भी श्याम को ललकारा था—

'कै हमहीं कै तुमहीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं' १।१३४

प्रलोभन—

जब भगवान इतने पर भी नहीं सुनते, तब भारतेंदु उन्हें बच्चों की भाँति बहलाते हैं, फुसलाते हैं, प्रलोभन देते हैं कि मैं जो अपने को तारने की बात कह रहा हूँ उसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, उसमें आपका ही भला है :—

तुम्हारे हित की भाखत बात
कोउ विधि अबकी तार देहु मोहिं नाहीं तो प्रन जात
बूँद चूकि फिरि घट ढरकावत रहि जैहो पछितात
बात गए कछु हाथ न ऐहे क्यों इतनो इतरात
चूक्यो समय फेरि नहिं पैहो यह जिय धरि कै तात
तारि लीजिए 'हरीचंद' को छाँड़ि पाँच अरु सात

—प्रेम फुलवारी ८.

मुझे तार लो नहीं तो तुम्हारी बड़ी हँसी होगी। मेरा दोष कोई न देखेगा, सब तुम्हें ही दोषी समझेंगे, वेद-पुरानों की ही साख उठ जायगी, (प्रेम फुलवारी १६)। तुम्हें बड़ा अपयश मिलेगा और फिर कोई भी तुम्हें 'पतित उधारी' न कहेगा, (प्रेम फुलवारी ७)। तरने में मेरा कोई लाभ तो है नहीं—सोच के देख लो, तुम्हारे ही हित की कह रहा हूँ, (स्फुटपद २८)। मैं स्वय अपने लिए नहीं पछता रहा हूँ, मुझे तो इस बात का शोच है कि बिना मेरे तारे स्वयं तुम्हारी बात जा रही है—अजामिलादि को तारने से जो विख्याति हुई थी, वह अब नष्ट हुआ चाहती है, (प्रेम मालिका ९०)।

अचूक मार्ग—

इतना करने पर भी जब उन्हें संतोष नहीं होता, तब वे वह मार्ग पकड़ते हैं, जिसका अवलंबन तुलसीदास को भी—'कबहुँक अंब अवसर पाइ', 'वि० पत्रिका ४१—लेना पड़ा था। वे अपनी बात उन लोगों के द्वारा भगवान तक पहुँचाना चाहते हैं, जो उनके पास आहार-विहार में निरंतर लगे रहते हैं—

'सखियो याद दिवावति रहियो
समय पाइकै दसा हमारिहु कबहुँ जुगल सों कहियो

—प्रेम फुलवारी ७५.

अवतार—

सूरदास का सागर भागवत को आधार मानकर चला है, इसलिए उसमें चौबीस अवतारों का वर्णन है। भारतेंदु ने केवल चार अवतारों का वर्णन किया है। ये हैं:—नृसिंह, वामन, राम और कृष्ण। नृसिंह पर केवल एक दीर्घाकार पद (राग संग्रह ७) है, जो अत्यंत ओजपूर्ण है। सूरसागर के सातवें स्कंध के प्रारंभिक छह पदों में नृसिंहावतार का वर्णन हुआ है। इन छहों पदों में से किसी में भी वह ओज नहीं है, जो भारतेंदु के उक्त पद में है। सूरसागर के अष्टम स्कंध के तीन पदों में (११, १२, १३) वामन अवतार का वर्णन है। इस प्रसंग पर भारतेंदु के चार पद हैं। ये चारों पद (राग संग्रह ८२, ८३, ८४, ८५) सूर के तत्संबंधी पदों से बहुत अच्छे हैं। इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है। राम की प्रशंसा में एक पद राग संग्रह (पद ३९) में; राम-विरह संबंधी छह पद 'रामलीला' में है। इनका विवेचन रामकाव्य के अन्तर्गत किया गया है। वस्तुतः सूर की ही भाँति भारतेन्दु का भी मन कृष्ण और राधा ही में रमता था। उन्होंने कृष्ण-स्तुति सम्बन्धी ९ पद (कार्तिक स्नान २, ५, ६, प्रेम प्रलाप २३, ५५, राग संग्रह ३२, प्रेम फुलवारी ६१,९२,९३) और राधा-स्तुति सम्बन्धी ३२ पद (कार्तिक-स्नान १,२,४, प्रेम तरंग १, प्रेम प्रलाप ३१, होली ११, मधुमुकल १, राग संग्रह ३३, ३७, ३८, १०३, १३६, वर्षा विनोद ३५, १२७, १३०, विनय प्रेम पचासा १, प्रेम फुलवारी १,६०,६९,७४, ८०, ८९, ९९) लिखे हैं। राधा की प्रधानता भारतेन्दु पदावली में सर्वत्र द्रष्टव्य है—

> राधे सब विधि जीति तिहारी
> अखिल लोक-नायक रस-सरबस तिनकी दृग उँजियारी
> तजि कै जुवति सहस्र रहत तुव दिसि टक एक निहारी
> 'हरीचन्द' आनन्द कंद आनन्द दान करति बलिहारी
>
> —प्रेम फुलवारी ९०.

भारतेन्दु अपने को कृष्ण का सखा, किन्तु राधा का गुलाम कहते थे—

> (१) सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के
> (२) हम चाकर राधा रानी के
>
> —होली ११.

दशावतारों का भी उल्लेख मात्र दो कीर्तनों (सती प्रताप में) हो गया है।

गंगा-यमुना

वल्लभियों के लिए यमुना-स्तुति भी आवश्यक है। इसलिए अष्टछाप के

प्रत्येक कवि ने यमुना पर अनेक पदों का विरचन किया है। भारतेन्दु बाबू का केवल एक पद (कृष्ण चरित ६) यमुना-स्तुति सम्बन्धी है जो 'अष्टछाप-पदावली' में संकलित तत्सम्बन्धी सभी पदों से श्रेष्ठ है। वल्लभीय होने के नाते जहाँ भारतेन्दु ने एक पद यमुना पर लिखा, वहाँ काशी-वासी होने के नाते उन्होंने गंगा पर आठ पद (कृष्ण चरित १९, २०, ३३-३६; स्फुट पद ६१) लिखे हैं। इन पदों के अतिरिक्त उन्होंने 'सत्य हरिश्चन्द्र' में गंगा का तथा 'चंद्रावली' में यमुना का विस्तृत छन्दोबद्ध वर्णन किया है। गंगा-यमुना सम्बन्धी इन पदों में भारतेन्दु की वृत्ति पूर्ण रूप से रमी है। इन पदों की भाषा अपेक्षाकृत जटिल हो गई है क्योंकि ये संस्कृत की समास शैली में, विनय-पत्रिका की प्रणाली पर, लिखे गये हैं और इनमें कभी कभी संस्कृत के अप्रयुक्त शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे निरय, मकरंदी, विपाक, गलित, सीमंतिनी, नक्र, कारंड, कल्हार, काश, हस्ति आदि शब्द तो अकेले 'कृष्ण चरित्र' के बीसवें पद में हैं। गंगा के लिए कवि कहता है—

शिव-जटा-जूट-गह्वर-सघन-वन-मृगी
विधि-कमंडल-दलित-नीर-रूपे
कपिल हुंकार भस्मीभूत निरयगत
स्पर्श तारित सगर-तनुज भूपे

—कृष्ण चरित्र २०.

७

कृष्ण-पदावली

महाकवि सूरदास ने सूरसागर के दशमस्कंध में प्रायः चार सहस्र पदों में कृष्णचरित का वर्णन किया है जिनमें वात्सल्य, संयोग एवं वियोग श्रृंगारों की अपूर्व धारा बहाई गई है। भारतेंदु बाबू ने भी पाँच सो से कुछ अधिक पदों में कृष्णचरित का वर्णन किया है। उनका उद्देश्य संपूर्ण कृष्णचरित प्रस्तुत करने का नहीं था, इसलिए अनेक प्रसंगों को उन्होंने छोड़ दिया है। उमंग में आकर किसी-किसी प्रसंग पर कभी-कभी कुछ पदों का निर्माण कर दिया है। भारतेंदु ने सूरसागर का पारायण किया था, फलतः उनकी कृष्ण-पदावली पर उसका प्रभाव पड़ा है। आगे भारतेंदु रचित कृष्ण-चरित संबंधी पदों का विवेचन विभिन्न उपशीर्षकों के अंतर्गत किया जा रहा है।

१. जन्म

भारतेंदु बाबू ने १ पद में बलराम का, ११ पदों में कृष्ण का, ३८ पदों में राधा का तथा ३ पदों में चंद्रावली का जन्म वर्णन किया है। सूरसागर में केवल कृष्ण का जन्मवर्णन है, जो ३७ पदों में अत्यंत विशद है। सूर ने कृष्ण जन्म का कारण, मथुरा के कारागार में उनका जन्म, देवकी वसुदेव का मोहभरा वार्तालाप, भादों की विकट अँधियारी तथा भगवान की उस भक्त वत्सलता का वर्णन जिसके द्वारा वसुदेव की बेड़ियाँ स्वयं कट गईं, वसुदेव का कृष्ण को ले गोकुल जाना, बढ़ी यमुना आदि सभी का वर्णन सूरसागर में–पद ४ से १२ तक–किया है। किस प्रकार सोते से जगकर यशोदा ने कृष्ण को अपनी गोद में पाया और उनके मानस में आनंद की प्रतिक्रिया हुई, यह सब भी सूरसागर में मिलता है। भारतेंदु में इन सब का एकांत अभाव है। वे कृष्ण के ब्रज में प्रकट होने का ही वर्णन करते हैं?

> **प्रगटे रसिक जनन के सरबस।**
> **जसुमति उदर अलौकिक वारिधि श्याम कलानिधि निधि-रस॥**
> **पसरित चंद्र कला सो पूरब उज्ज्वल विमल विसद जस।**
> **'हरीचंद' ब्रजवधूचकोरी सहजहि कीन्हीं निज बस॥**

—राग संग्रह ५७

समाचार जैसे ही व्याप्त हुआ, समस्त व्रजमंडल में आनंद सागर उमड़ पड़ा—

आनँद सागर आज उमड़ि चल्यो ब्रज में प्रगटे आइ कन्हाई।
नाचत ग्वाल करत कौतूहल हेरी देत कहि नंद दुहाई॥
छिरकत गोपी गोप सबै मिलि गावत मंगलचार बधाई।
आनँद भरे देत कर तारी लखि सुर गन कुसुमन झर लाई॥
देत दान सन्मान नंद जू अति हुलास कछु बरनि न जाई।
'हरीचंद' जन जानि आपुने टेरि देत सब बहुत बधाई॥

—वर्षा विनोद ७२

सूर के यहाँ भी ग्वाल नाचते हैं, दूध दही छिड़कते हैं, तालियाँ बजाते हैं, देवता लोग कुसुम वर्षा करते हैं और नन्द यशोदा अमित दान देते हैं।

कन्हैया के जन्म लेते ही व्रजमन्डल में कोलाहल मच गया। गोपियाँ बधाई देने के लिए नन्द-यशोदा के पास जाने को उतावली हो गईं और इस उत्सुकता में वे दौड़ भी पड़ीं—

आए व्रज जन धाय धाय
नाचत, करत कोलाहल सब मिलि, तारी दै दै गाय गाय

—वर्षा विनोद ९०

वे आकर नन्द यशोदा को बधाई देती हैं और कुँवर कन्हैया के चिर जीवन की शुभ कामना प्रकट कर आशीर्वाद देती हैं—

चिरजीवो जब लौं जमुना-जल गंगा-जल सब देवा
जब लौं धरा अकास और है जब लौं हरि की सेवा

—वर्षा विनोद १०४.

भारतेन्दु बाबू का यह कृष्ण जन्म-वर्णन सूर के ही अनुसार है, इसमें कोई भी नूतनता नहीं है। सूर का वर्णन अनूठा है। वहाँ पर कृष्ण जन्म के पूत उपलक्ष में एक सोहर भी है, (पद २८।६४६) सूर का ढाढ़ी रूप तो अपूर्व है, (पद ३५।६५३—३८।६५६ तक)।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के समय में पुष्टिमार्ग में राधा को विशेष महत्व नहीं मिला था, महाप्रभु के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने संप्रदाय में राधा को प्रमुखता दी। सूरदास महाप्रभु जी के शिष्य थे, संभवतः इसीलिए सूर ने राधा-जन्म-वर्णन नहीं किया है। राधा के अनन्य प्रेमी, भक्त और दास भारतेन्दु ने इस अभाव को देखा, समझा और अपनी कारयित्री प्रतिभा से इसे ३८ पदों में पूरा भी किया।

काले कन्हैया भादों की अँधियारी में हुए थे, गोरी राधा भादों की उजियारी में हुई—

आई भादौं की उँजियारी
आनँद भयो सकल व्रज मंडल, प्रगटी श्री वृषभानु दुलारी
कीरति जू की कोख सिरानी जाके घर प्यारी अवतारी
'हरीचन्द' मोहन जू की जोरी, विधना कुँवार सँवारी
—वर्षा विनोद ७९.

राधा के जन्मते ही व्रज में आनन्द की एक लहर फैल गई। ग्वालबालों ने गायों को बन में ले जाना स्थगित कर दिया और उनका अत्यन्त मनोरम शृंगार किया—

आजु वन ग्वाल कोऊ नहिं जाई
कहत पुकारि सुनौ री मैया कीरति कन्या जाई
लावहु गाय सिंगारि वच्छ सह सुबरन सींग मढ़ाई
मोर पंख मखतूल झूल करि अँग अँग चित्र कराई
आजु उदय साँचो सब गावहु मिलि कै गीत बधाई
'हरीचंद' वृषभानु बबा सों बहुत निछावरि पाई
—वर्षा विनोद ७४.

यह पद सूर के कृष्ण-जन्मोत्सव संबंधी—'आजु बन कोऊ वै जनि जाइ'—पद २०।६३८.—के अत्यधिक अनुकरण पर लिखा गया है। फिर क्या था—नौबत बजने लगी—

आजु बरसाने नौबत बाजै
बीन मृदंग ढोल सहनाई गृह गृह दुंदुभि गाजैं
सब व्रजमंडल सोभा बाढ़ी घर घर सब सुख साजैं
'हरीचंद' राधा के प्रगटे देव-वधू सब लाजैं
—वर्षा विनोद ८१.

देवताओं में एक उल्लास छा गया और नभ में विमानों की भीड़ लग गई। व्रजवासी इस भीड़ को देख चकित हो गए—

आजु कहा नभ भीर भई
सजनी कौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई?
बालक से चारहु को आए? तीन नयन को को है?
ओढ़ि बघंबर सरप लपेटे जटा धरे सिर सोहै?

तीन चार अरु पंच सप्त खट मुख के मिलि क्यों नाचैं ?
बडी जटा मुख तेज अनूपम को यह वेदहिं बाँचै ?
बीन बजावत कौन लुगाई हंस चढ़ी क्यों डोलै ?
को यह यंत्र बजाय रही है जै जै जै जै बोलै ?
को यह लिए तमूरा ठाढ़ी, को नाचै, को गावै ?
इत आवै, कोउ बात न पूछत, पुनि नभ लौं चलि आवै ?
अति आचरज भरीं सब तन मैं बात करैं ब्रज नारी
प्रगट भई वृषभानु राय घर मोहन प्रान-पियारी
आनँद बढ़यो, कहत नहिं आयो, कवि की मति सकुचाई
राधा-श्याम-चरन-पंकज-रज 'हरीचंद' बलि जाई

—वर्षा विनोद ८२.

देवताओं का इतना अधिक उल्लास कृष्ण जन्म पर न तो सूर ने दिखाया है और न भारतेंदु ने ही; उस समय वे केवल पुष्प वर्षा कर रह गए थे। इस पुष्प वर्षा का वर्णन भारतेंदु ने केवल दो पंक्तियों में कर दिया था। यहाँ राधा-जन्म के समय अमरों के इस उल्लास प्रदर्शन के लिए पूरा एक लंबा पद लिया गया है। भारतेंदु का यह पद एक दम अनूठा है।

बरसाने में 'दधि काँदों' मच गया। कृष्ण जन्म पर सूर और भारतेंदु दोनों ने इसका वर्णन दो चार पंक्तियों में कर दिया है, पर भारतेंदु ने इस प्रसंग को पूरा एक पद दिया है—

आजु दधि काँदो है बरसाने
छिरकति गोपी-गोप सबै मिलि काहू को नहिं माने
आनंदित घर की सुधि भूली हम को हैं नहिं जाने
दधि-घृत-दूध उँडेलै सिर सों फिरति अतिहि सरसाने
वह आनँद कापै कहि आवै भयो जौन महराने
श्री वल्लभ-पद-पद्म-कृपा सों 'हरीचन्द' कछु जाने

—वर्षा विनोद ८४.

कृष्ण-जन्म पर नन्द यशोदा के अतिरिक्त वृषभानु को जो भी हर्षोल्लास हुआ हो, उसका चित्रण भारतेन्दु ने नहीं किया है। सूर ने भी नहीं किया है, हाँ, एक पद में वृषभानु का जगा अवश्य नन्द का उदय सुनकर बधाई देने आया है, जिसे वृषभानु का अप्रत्यक्ष हर्षोल्लास कहा जा सकता है—

नन्द-उदौ सुनि आयौ हौ वृषभानु कौ जगा—३९।६५७

परन्तु भारतेन्दु ने राधा-जन्म पर नन्द के प्रत्यक्ष एवं क्रियात्मक हर्षोल्लास का पूर्णतः मौलिक वर्णन किया है—

नन्द बधाई बाँटत ठाढ़े
भई सुता बाबा भानु राय के प्रेम पुलक तन बाढ़े
काहू को सोना, काहू को रूपा, काहू के मनि गन दीनो
जिन जो माँग्यो, तिन सो पायो, कह्यो सबनि को कीनो
काहु को धेनु, बसन काहू को, दियो सबनि मन-भायो
आनँद भयो, कहत नहिं आवै, 'हरीचन्द' जस गायो

—वर्षा विनोद १०७.

फिर सज-बजकर गोपियाँ आती हैं और जिस प्रकार उन्होंने कुछ दिनों पहले यशोदा को बधाई दी थी, उसी प्रकार कीर्ति जी को बधाई देती हैं—

'महरानी तिहारो घर सुबस बसो'

—स्फुट ५४।८४३.

भारतेन्दु बाबू ने राधा-जन्म का अत्यन्त विशद वर्णन किया है। उनका यह वर्णन उनकी मौलिक कल्पना को उद्भावना स्वरूप है, फिर भी इस पर सूर का प्रत्यक्ष प्रभाव है, उदाहरण के लिए—

(१) हौं इक नई बात सुनि आई
महरि जसोदा ढोटा जायो, घर घर होत बधाई

—सूरसागर २१।६३९.

भटू इक बात नई सुनि आई
आजु भई कीरति के कन्या बाजत रंग बधाई

—वर्षा विनोद ११९.

(२) गोपी गावहिं मंगल चार बधायो ब्रजराज को

—सूरसागर (बम्बई संस्करण) दशम स्कन्ध २०.

गावो सखि मंगलचार बधायो वृषभानु को

—वर्षा विनोद ९७.

बलराम एवं चन्द्रावली के जन्म-सम्बन्धी पदों में कोई विशेषता नहीं है।

२. बाल लीला

सूरसागर में कृष्णचन्द्र की बाललीला का कई सौ पदों में अत्यंत विशद वर्णन हुआ है। यह दो प्रकार का है—लौकिक, अलौकिक। अलौकिक के अंतर्गत आते हैं—पूतना वध, श्रीधर-बामन-अंग-भंग, कागासुर, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुक, प्रलंब आदि का वध, यमलार्जुन उद्धार, ब्रह्मा का गोवत्सहरण, ब्राह्मणप्रस्ताव, कालियदमन, दावानल पान

इत्यादि। मिट्टी खाना, अंगुष्ठ-पान एवं दधि-मंथन आदि प्रसंगों में लौकिक और अलौकिक तत्त्वों का मिश्रण हुआ है। सूरसागर में बाललीला संबंधी वे ही प्रसंग सफल हैं जिनमें कोई अलौकिकता नहीं है। इन्हीं में सूर का सूक्ष्म निरीक्षण दिखाई देता है। भारतेंदु बाबू के बाललीला संबंधी केवल १६ पद हैं। एक भी पद में उन्होंने अलौकिकता को प्रश्रय नहीं दिया है। कृष्ण के वीर रूप पर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है, वह उनके सौंदर्य से ही अधिक प्रभावित हैं। बाल लीला संबंधी इन पदों की संख्या इतनी कम है कि हम भारतेंदु को वात्सल्य रस का कवि नहीं कह सकते। यहाँ भी भारतेंदु राधा को नहीं भूले हैं। सूर ने राधा की बाल-केलि का वर्णन नहीं किया है। सूरसागर में हमें राधा का दर्शन तब होता है, जब वे कृष्ण को पहली बार दिखलाई पड़ती हैं। भारतेंदु ने एक पद में राधा की बाल-क्रीड़ा का वर्णन किया है—

मनिमय आँगन प्यारी खेलै
किलकि किलकि हुलसत मनहीं मन, गहि अँगुरी मुख मेलै
बड़भागिनि कीरति सी मैया, मोहन लागी डोलै
कबहुँक लै झुनझुना बजावति, मीठी बतियन बोलै
अष्टसिद्धि नव निधि जेहि दासी, सो ब्रज सिसु-बपु धारी
जोरी अविचल सदा विराजे, 'हरीचंद' बलिहारी

—राग संग्रह ९०

भारतेंदु के बाल-कृष्ण संबंधी प्रायः सभी पद सूर के प्रभाव-क्षेत्र में हैं। जन्मोत्सव के अनंतर बाल लीला का सबसे पहले आनेवाला प्रसंग है पालना झूलन। सूर ने इस प्रसंग में प्रायः एक दर्जन पद लिखे हैं। झूला संबधी भारतेंदु के दो पद हैं, (राग संग्रह ११४, ११५), यद्यपि ये पद सूर के ही अनुसार हैं, फिर भी नवीनता से खाली नहीं, जैसे निम्नांकित पद में दुलहिन वाला सरस स्वाभाविक प्रलोभन—

वारी वारी हौं, तेरे मुख पै वारी, मैं तेरे लटकन पै वारी
पालना झूलो हो, हठ छाँड़ो, बलि बलि गइ महतारी
छोटी सी दुलहिनि तोहि ब्याहौं, अपने बाबा की दुलारी
तुम झूलो, हौं हरखि झुलावौं, 'हरीचंद' बलिहारी

—राग संग्रह ११४

सूर ने दो पदों में (११६।७३४; ११९।७३७) राम-कृष्ण को आँगन में साथ-साथ खेलते हुए दिखाया है। भारतेंदु ने भी दोनों भाइयों को एक पद में खेलते हुए चित्रित किया है। सूर कहते हैं—

भावत हरि को बाल-विनोद

श्याम-राम-मुख निरखि निरखि, सुख-मुदित रोहिनी जननि जसोद

—सूरसागर ११९।७३७

भारतेन्दु ने भी इसी अन्त्यानुप्रास से प्रारम्भ किया है—परन्तु जहाँ सूर ने छहों चरणों में इसी तुक का निर्वाह किया है, वहाँ भारतेन्दु ने केवल प्रथम दो चरणों में, शेष में विविध तुक हैं—

सखी री देखहु बाल-विनोद

खेलत राम कृष्ण दोउ आँगन किलकत हँसत प्रमोद

—प्रेममालिका ६.

सम्भवतः इस पद की प्रेरणा भारतेन्दु को सूर के उक्त पद से ही मिली है, परन्तु हम इसे सूर की कोरी नकल नहीं कह सकते। इसी प्रकार—

आजु गई हौं नंद-भवन मैं, कहा कहौं गृह-चैन री

—सूरसागर १३९।७५७.

से सम्भवतः प्रभावित होकर भारतेंदु ने निम्नांकित पद लिखा है—

आजु लख्यौ आँगन में खेलत, जसुदा जी को बारो री

—राग संग्रह १७.

इन दोनों पदों में कृष्ण का बाल रूप वर्णित है—रूपोत्कर्ष दिखाने के लिए दोनों कवियों ने उत्प्रेक्षा का आश्रय ग्रहण किया है, फिर भी दोनों पद एक ही नहीं हैं। दोनों अपनी अपनी विशेषताओं से युक्त हैं तथा भारतेन्दु का पद अंधानुकरण से सर्वथा मुक्त है।

सूरदास ने १५०।७६८, १५२।७७० संख्यक पदों में 'तनक' शब्द का क्रमशः १६, १९ बार प्रयोग किया है; पद १५१।७६९ का प्रथम चरण 'छोटी-छोटी' से प्रारम्भ हुआ है, पर इसे 'तनक' की भाँति बढ़ाया नहीं गया है—

छोटी छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,

नख ज्योती, मोती मानौ कमल दलनि पर

भारतेन्दु ने 'तनक' वाले पदों का अनुकरण कर, निम्नांकित पद में इस 'छोटे' शब्द को १७ बार प्रयुक्त किया है—ध्यान देने की बात है कि दोनों का छन्द भी एक ही है—

छोटो सो मोहन लाल, छोटे छोटे ग्वाल बाल,

छोटी-छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं

छोटे-छोटे भँवरा, चकई छोटी-छोटी लिए,

छोटे छोटे हाथन सों खेलैं, मन मोहैं

छोटे छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चढी ब्रजबाल छोटी छोटी छवि जोहैं
'हरीचंद' छोटे छोटे कर पै माखन लिए
उपमा बरनि सकै ऐसे कवि को हैं

—रागसंग्रह ३०.

श्रीकृष्ण को सुलाने के लिए सूर और भारतेन्दु दोनों ने एक एक पद कहे हैं। दोनों पदों में जितनी समानता नहीं है, उससे अधिक विभिन्नता है और इस विभिन्नता के कारण ही भारतेन्दु का पद अनुकरण-मात्र होने से बच गया है, यद्यपि दोनों का तुक भी बहुत कुछ मिलता-जुलता सा है। दोनों में कन्हैया से पौढ़ने का अनुरोध किया गया है, सूर में श्रीकृष्ण जननि यशोदा के केदारो को सुनते-सुनते सो भी गए हैं; भारतेंदु में केवल अनुरोध है, उसका परिणाम नहीं दिखाया गया है। मिलाइए—

पौढ़िए मैं रचि सेज बिछाई

× × ×

मधुरैं सुर गावत केदारो, सुनत श्याम चित लाई
'सूरदास' प्रभु नंद-सुवन कौं नींद गई तब आई

—सूरसागर २४२।८६०.

लालन पौढ़े हौं बलि जाऊँ

× × ×

मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को, करि मनुहार मनाऊँ
'हरीचंद' पौढ़ो प्रिय लालन हौं तेरे बलि जाऊँ

—राग संग्रह १०६.

सूर के जागरण संबंधी अनेक पद हैं, भारतेंदु ने इस प्रसंग में केवल दो पद (राग संग्रह ४०, ४१) लिखे हैं। ये सूर के किसी पद-विशेष के प्रभाव-क्षेत्र में नहीं हैं।

सूर की गोपियाँ जब कन्हैया को देखने आती हैं, उन्हें चिरंजीव होने का शुभाशीष देती हैं—

यशोदा तेरो चिर जीवहु गोपाल
बेगि वढ़ो वल सहित विरध लट, महरि मनोहर बाल

× × ×

झारत रज लागे मेरी अँखियन रोग-दोष-जंजाल

—सूरसागर १३८।७५६.

भारतेंदु की गोपियाँ भी एक पद में यही कहती हैं—

माई तेरो चिर जीवो गोविन्द
दिन दिन बढ़ो तेज बल धन जन ज्यों दूइज को चंद
× × ×
लगौं बलाय प्रान प्यारे की मम बैननि 'हरिचंद'
—राग संग्रह १००.

दोनों पदों में पर्याप्त समानता है।

जब कन्हैया कुछ बड़े हुए, तब वे गोचारण के लिए वृन्दावन जाने लगे। वन से लौटते समय का उनका रूप अत्यंत मोहक होता था—इस रूप के दो चित्र भारतेंदु ने राग संग्रह, पद २०, ४२, में अंकित किये हैं। दोनों चित्र सुंदर हैं। सूर ने इस प्रसंग का बड़ा मोहक अंकन किया है।

बाल-लीला संबधी पदों में निम्नांकित तीन पद पूर्णरूपेण अभिनव हैं और सूर के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर हैं—

(१) अरी हौं बरजि रही, बरज्यौ नहिं मानत
दौरि दौरि बार बार धूप ही मैं जाय
—प्रेम मालिका ६०.

(२) मेरो लाड़िलो गोपाल माई साँवरो सलोना
—राग संग्रह ९१.

(३) सुदामा तेरी फीकी छाक
—स्फुट ५।८२९.

तीसरा पद तो अपूर्व है। कृष्ण अपने सखाओं के साथ गो-चारण के लिए गए हुए हैं। मध्याह्न में सबके घरों से भोजन जाता है। एक दूसरे के भोजन की आलोचना करते हुए सभी साथी मिल जुलकर खाते हैं—

सुदामा तेरी फीकी छाक
मेरी छाक रोहिनी पठई मीठी और सुपाक
बलदाऊ को कोरी रोटी, मोको घी की दोनी
सो सुनि सुबल तोक उठि बैठे, मेरी बहुत सलोनो
जैसी तेरी मैया मोटी, तैसी मोटी रोटी
मेरी छाक भली रे भैया, जामें रोटी छोटी
बोलत राम पतौका लै लै बैठो भोजन कीजै
बच्यो बचायो अपनो जूठन, 'हरीचन्द' को दीजै

कन्हैया ने कहा, 'सुदामा, तुम्हारी छाक फीकी है, मेरी छाक सुपाक और मीठी, मेरे लिए घी दानी भी आई है, दाऊ के लिए कोरी, सूखी रोटी है।' वहाँ तो सभी का बराबरी का दरजा था; सुबल और तोक कन्हैया की इस आत्मश्लाघा को न सह सके और उबल पड़े—'मेरी छाक बहुत सलोनी है। कन्हैया, तुम्हारी रोटी तो बहुत मोटी है, और मोटी क्यों न हो, तुम्हारी यशोदा मैया भी तो मोटी हैं; जैसी वे मोटी वैसे उनके हाथ की बनी हुई रोटी मोटी।' सुबल और तोक ने क्या लाजवाब उपमा दी है, सुनकर कन्हैया का भी मुँह बन्द हो गया होगा। यहाँ वात्सल्य रस को हास्य रस की सहायता ने चमका दिया है। इसका सौंदर्य तो तब समझ पड़ेगा, जब हम ध्यान करें कि सुबल ने किस गम्भीरता के साथ अपना तर्क उपस्थित किया होगा। वस्तुतः उसके हँसने का कोई कारण नहीं, वह बेचारा तो अपने तर्क को अकाट्य समझकर ही सारी गम्भीरता के साथ उसे प्रस्तुत कर रहा था।

३. पूर्व राग

अ. नई लगन

कृष्ण जैसे जैसे बढ़ने लगे, उनका नट-खट रूप प्रकट होने लगा। ऐसे ही नट-खट रूप के प्रभाव-क्षेत्र में आकर एक अपरिचित गोपी—संभवतः राधा—अन्य गोपियों से पूछती है—

अरी यह को है, साँवरो सो लँगर ढोटा, ऐंड़ोई ऐंड़ो डोलै
काहू को कोहनी, काहू को चुटकी, काहू सों हँसी बोलै
काहू की गहि कंचुकि छोरत, काहू को घूँघट खोलै
'हरीचंद' सब लाज गँवाई, बात कहै अनमोलै

—प्रेम मालिका ४२.

कृष्ण के इस नटखट रूप ने राधा के हृदय में उनके प्रति एक स्निग्ध भाव उत्पन्न कर दिया। इस नई लगन में कुल की सकुच और लज्जा की जो बात होती है, दोनों ओर खींचाखींच की जो रस्साकशी होती है, उसका अत्यन्त मोहक वर्णन भारतेंदु बाबू ने इन दो पदों में किया है—

अरी हरि या मग निकसे आइ अचानक, हौं तो झरोखे रही ठाढ़ी
देखत रूप ठगौरी सी लागी, बिरह बेलि उर बाढ़ी
गुरु जन के भय संग गई नहिं, रहि गई मनहु चित्र लिखि काढ़ी
'हरीचंद' बलि ऐसी लाज मैं लगौ री आग, हौं बिरहा दुख दाढ़ी

—प्रेम मालिका ७.

अरी सखी गाज परौ ऐसो लोक लाज पैं, मदन मोहन सँग जान न पाई
हौं तो झरोखे ठाढ़ी देखत ही कछु, आए इतै मैं कन्हाई
औचक दीठ परी मेरे तन, हँसि कछु बंसी बजाई
'हरीचंद' मोहि छोड़िकै तन मन धन प्रान लीनौ सँग लाई
—प्रेम मालिका ८.

यह प्रेम की लगन एक पक्षीय नहीं है—'दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई'— कन्हैया को भी बेकली है। उनकी इस बेकली का प्रमाण राधा की यह उक्ति है—

मेरोई पौरि रहत ठाढो, टरत न टारे, नंदराय जू को ढोटा
पाग रही भुव ढरकि छबीली, जामैं बँध्यों है मंजुल चोटा
चितवत मो तन, फिरि फिरि हेरत, कर लै बेनु बजावत
धरि अधरन वह ललन छबीलो, नाम हमारोई गावत
सुंदर कमल फिरावत चहुँ दिसि, मो तन दृष्टि न टारै
'हरीचंद' मन हरत हमारो, हँसि हँसि पाग सँवारै
—प्रेम मालिका ४८.

इस पद में कन्हैया की राधा को आकर्षित करने की मुद्रा भी अत्यंत सुंदर अंकित की गई है।

राधा की सखी भी अपना कार्य सुचारु रूप से संपादित करती रहती है। अवसर आने पर कृष्ण के रूप-रस-पान के लिए उसे निरंतर प्रेरित करती रहती है—

नटवर रूप निहार सखी री, नटवर रूप निहार
गोहन लगी फिरत जाके हित, कुल की लाज बिसार
ललित त्रिभंग, काछनी काछे, अमल कमल से नैन
कर लै फूल फिरावत, गावत, मोहत कोटिक मैन
जग उपहास सहे बहु भाँतिन, जा दरसन के हेत
सो हरि नीके नैननि भरि के, काहे देखि न लेत
तुमरी प्रीति अलौकिक सजनी, लखि न परै कछु ख्याल
'हरीचन्द' धनि धनि तुम दोऊ, राधा अरु गोपाल
—प्रेम मालिका ४६.

ब. वंशी वादन

कृष्ण का शारीरिक सौन्दर्य तो अलौकिक था ही—उनकी मुरली और भी गजब ढाती थी। सूर ने मुरली पर कई सौ पद लिखे हैं। १८३४ से १९८५

तक के पद तो पूर्णतया मुरली से ही सम्बन्ध रखते हैं, जिनमें गोपियाँ मुरली को उपालंभ देती हैं, मुरली उनका उत्तर देती है, फिर गोपियाँ मुरली के सम्बन्ध में परस्पर वार्तालाप करती हैं। इन पदों के अतिरिक्त अन्यत्र भी मुरली-माधुरी से सम्बन्ध रखने वाले सैकड़ों पद बिखरे हैं। भारतेन्दु ने इस प्रसङ्ग में केवल छह पद लिखे हैं। सूर के मुरली सम्बन्धी पदों के सामने ये पद एकदम फीके पड़ जाते हैं। सूर की ही मुरली की भाँति भारतेन्दु की मुरली का प्रभाव अत्यधिक है जिसको सुन खग, मृग, देव, गन्धर्व, ऋषि, मुनि सभी आपा खो देते हैं, (स्फुट २५)। गोपियाँ भी मुरली माधुरी से मुग्ध हो जाती हैं। धीरे-धीरे वे उसे बैरिन समझने लगती हैं—सूर की भी गोपियाँ मुरली से बैर मानती थीं :—

(१) बैरिन बाँसुरी फेरि बजी

—स्फुट १८.

(२) बँसुरिया मेरे बैर परी
छिनहूँ रहन देत नहिं घर में, मेरी बुद्धि हरी
वेनु बंस की यह प्रभुताई, विधि-हर-सुमति छरी
'हरीचन्द' मोहन बस कीने, विरहिन-ताप-करी

—स्फुट १९.

अंत में गोपियाँ सोचती हैं, काश वे भी मुरली हुई होतीं—

सखी हम बंसी क्यों न भए
अधर सुधा-रस निसु दिनु पीवत प्रीतम रंग रए
कबहुँक कर मैं, कबहुँक कटि मैं, कबहूँ अधर धरे
सब व्रज-जन-मन हरत, रहत नित कुंजन माँझ खरे

—स्फुट २०.

स. नयन

परस्पर नोक-झोंक से जिस लगन का प्रादुर्भाव हुआ, उसका सबसे बुरा प्रभाव नयनों पर पड़ा। नयनों पर एक दर्जन पद भारतेन्दु बाबू ने लिखे हैं। सूरदास ने नयन पर प्रायः दो सौ पद लिखे हैं, ये सभी पद एक स्थान पर (पृष्ठ ३१९ से ३३७ तक) हैं। फिर भी नयन काव्य के नयन हैं और प्रत्येक कवि को नयन के सामने नमन करना पड़ता है। भारतेन्दु के ये कतिपय पद एक से एक बढ़कर हैं। कन्हैया की एक मुद्रा ने बेचारी राधा को बुरी तरह आकृष्ट किया है और उसके नेत्र उस छवि को भूलने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं—

नैना वह छबि नाहिंन भूले
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले
वह आवनि, वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि चित चोरै
वह बतरानि, मुरनि हरि की वह, वह देखन चहुँ कोरै
वह धीरी गति कमल फिरावनि कर लै, गायन पाछे
वह बीरी मुख, बेनु बजावनि, पीत पिछौरी काछे
पर बस भए फिरत हैं नैना, एक छन टरत न टारे
'हरीचंद' ऐसी छवि निरखत, तन मन धन सब हारे

—प्रेम मालिका २० (चन्द्रा०)

परिणाम यह होता है कि जहाँ भी कन्हैया दिखाई पड़ते हैं, ये उधर ही टूट पड़ते हैं, मानते नहीं—लोक लाज, गुरु-जन-भय, सब को तिलांजलि दे देते हैं—

नैना मानत नाहीं, मेरे नैना मानत नाहीं
लोक लाज सीकर मैं जकरे, तऊ उतै खिंच जाहीं
पचि हारे गुरुजन सिख दै कै, सुनत नहीं कछु कान
मानत कह्यो नाहिं काहू को, जानत भए अजान
निज चबाव सुनि औरहु हरखत, उलटी रीति चलाई
मदिरा प्रेम पिए पागल है, इत उत डोलत धाई
पर बस भए, मदन मोहन के रंग रँगे, सब त्यागी
'हरीचंद' तजि मुख कमलन, अलि रहैं कितै अनुरागी

—प्रेम मालिका ४

कन्हैया के मुख कमल पर ये नयन-अलि सहज ही रीझ जाते हैं, धीरे-धीरे रीझने की उनकी प्रकृति हो जाती है—

सखी री ये अँखियाँ रिझवारि
देखत ही मोहन सों रीझी, सब कुल कानि बिसारि
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों, नेकु न सकीं सम्हारि
सुंदर रूप विलोकत रपटीं, काँचे घट जिमि वारि
अब बिनु मिले होत हैं व्याकुल, रोअत निलज पुकारि
अपुने फल करि हमहिं कनौड़ी, और दिवावत गारि
लोक लाज कुल की मरजादा, तृन सम तजी विचारि
'हरीचंद' इनको को रोवै, बिगरीं जगहि बिगारि

—प्रेम फुलवारी ४३

केवल रीझने तक की बात होती, तब तो कोई बुराई न थी; ये नयन तो चकोर की भाँति मुख-चंद्र को एक टक देखने एवं रूप-मयूषों को पान करने में लीन हो जाते हैं, और किसी की परवा नहीं करते—

सखी मेरे नयना भए चकोर
अनुदिन निरखत श्याम चंद्रमा, सुंदर नंद किशोर
तनिक वियोग भए उर, बाढ़त बहु विधि नयन मरोर
होत न पल की ओट छिनकहूँ, रहत सदा दृग जोर
कोउ न इन्हैं छुड़ावनहारो, अरुझे रूप झकोर
'हरीचंद' नित छके प्रेम रस, जानत साँझ न भोर

—राग संग्रह ११६

सूर ने भी नयनों को दो पदों में चकोर बनाया है, (पृष्ठ ३२८)।

ऐसा हुआ कि चकोरत्व की दशा प्राप्त होते ही, इन नयनों को उलझने की बान पड़ गई और जब एक बार उलझन पड़ी, तब लाख लाख सुलझाने का प्रयास किया गया, पर यह उलझन न सुलझने की थी और न सुलझी—

सखी री ये उरझौंहैं नैन
उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत, सोचत समुझत हैं न
कोऊ नाहिं, बरजै जो इनको, बने मत्त जिमि गैन
'हरीचंद' इन बैरिन पाछे, भयो लैन के दैन

—प्रेम फुलवारी ४२ (चद्रा०)

धीरे धीरे ये विष बुझे छुरे हो गए और संसार की सारी बुराइयाँ इनमें घर कर गई—

सखी ये नैना बहुत बुरे
तब सों भए पराए, हरि सों जबसों जाइ जुरे
मोहन के रस बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे
मेरी सीख, प्रीत, सब छाँड़ी, ऐसे ये निगुरे
जग खीझ्यो, बरज्यो मैं, ये नहिं हठ सों तनिक मुरे
'हरीचंद' देखत कमलन से, विष के बुते छुरे

—प्रेम मालिका ७० (चंद्रा०)

और इनमें हठ की प्रबल वृत्ति जग गई, फल-स्वरूप ये आँखें बिगरैल बन गई—

भई सखि ये अँखियाँ बिगरैल
बिगरि परीं मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल

भई मतवार, धरत पग डगमग, नहिं सूझत कुल गैल
तजिकै लाज साज गुरुजन की, हरि की भई रखैल
निज चबाव सुनि औरहु हरखत, करत न कछु मन मैल
'हरीचंद' सब संक छाँड़ि कै, करहिं रूप की सैल

—प्रेम फुलवारी २६.

जहाँ एक बुराई आई, दूसरी अपने आप साथ चली आती है। आँखें बिगरैल क्या हुईं. विश्वासघाती भी हो गईं—

सखी री ये विसुवासी नैन
निज सुख मिले जाइ पहिले, पै अब लागे दुख दैन
दगा दई, ह्वै गए पराए, बिसराए सब चैन
'हरीचंद' इनके बेवहारन जानि नफा कछु है न

—प्रेम फुलवारी ४४.

सूर ने भी नयनों को 'विश्वासी' कहा है—(पृष्ठ ३२५)।

फिर क्या था, जब एक बार लगे और लगे हाथों दगा कमाया, तब लौटने का नाम भी नहीं लिया और बिथुरी अलकों में डँसे से फँसे रह गए—

नैन ये लगि कै फिर न फिरे
बिथुरी अलकन में फँसि फँसि कै रहि गए नहीं फिरे
पचि हारे गुरुजन सिख दैकै नाहिन रहत थिरे
'हरीचंद' प्रीतम सरूप मैं डूबे फिर न तिरे

—प्रेम फुलवारी ३८.

यहाँ तक तो बात अपने तक ही सीमित थी और गनीमत थी; पर यह लगौहीं चितवन और ही होती है और सब पर भंडाफोड़ हो जाता है—

लगौहीं चितवनि औरहिं होत
दुरत न, लाख दुराओ कोऊ, प्रेम झलक की जोति
निज पीतम को खोजि लेत हैं, भीरहु मैं भरि रंग
रूप सुधा छिपि छिपि कै पीयत, गुरु-जनहूँ के संग
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिकहूँ, अति ललचौहीं बानि
छिपत न क्योंहूँ 'हरीचंद' ये, अंत जात सब जानि

—प्रेम मालिका ८२ (चंद्रा०)

ये लगे नैन लाख छिपाने पर भी नहीं छिपते और उड़ती चिड़ियाँ पहिचानने वाले लोग इन चंचल खंजनों को तुरंत पहिचान लेते हैं, पकड़ लेते हैं—

छिपाए छिपत न नैन लगे
उघरि परत, सब जानि जात हैं, घूँघट में न खगे
कितनौं करो दुराव, दुरत नहिं, जब ये प्रेम पगे
'हरीचंद' उघरे से डोलत, मोहन रंग रँगे

—प्रेम मालिका ८१ (चंद्रा०)

ब्रज में 'हम देखने वालों की नज़र देखते हैं'—वाली प्रकृति के अनेक लोग उस समय रहते थे, जिनका यही काम था कि देखा करें, कौन किसे देख रहा है; फलतः बेचारी राधा के अपने कन्हैया को नैन भर देखने में भी लोगों की हानि होने लगी—

नैन भरि देखनहू मैं हानि
कैसे प्रान राखिए सजनी, नाहिं परत कछु जानि
या ब्रज के सब लोग चबाई, त्यौं बैरिन कुल कानि
देखत ही पिय प्यारे को मुख, करत चबाव बखानि
मिलिबो दूर रह्यो, बिन बातहिं बैठि करहिं सब छानि
'हरीचंद' कैसी अब कीजै, या ललचौहीं बानि

—प्रेम फुलवारी २२.

द. रहस्य-भेद

अब यह रहस्य सखियों के लिए रहस्य न रह गया और वे खोद खोद कर राधा को परेशान करने लगीं—

लाल के रंग रँगी तू प्यारी
याही तें तन धारत मिस कै सदा कसूँभी सारी
लाल अधर कर पद सब तेरे, लाल तिलक सिर धारी
नैननहू में डोरन के मिस झलकत लाल बिहारी
तनमै भई नहीं सुधि तन की, नखशिख तू गिरिधारी
'हरीचंद' जग विदित भई यह प्रेम-प्रतीति तिहारी

—प्रेम फुलवारी ७३.

राधा को भी अब छिपाने का कोई चारा नहीं रह गया था और उसने सहज ही स्वीकार कर लिया—

हम तौ मदिरा प्रेम पिए
अब कबहूँ न उतरिहै यह रँग ऐसो नेम लिए
भइ मतवार, निडर डोलत, नहिं कुल-भय तनिक हिए
डगमग पग कछु गैल न सूझत, निज मन मान किए

रहत चूर अपने प्रीतम पै, तिन पै प्रान दिए
'हरीचंद' मोहन छैला बिनु, कैसे बनत जिए
—प्रेम मालिका ९९.

सूरसागर में यह प्रसंग अत्यन्त विशद है। सखियाँ राधा पर संदेह करती हैं कि वह कृष्ण से प्रेम करती है और छिपे-छिपे मिलती है। एक छँटी की भाँति राधा साफ इनकार करती है—जितनी बार उसके सामने यह प्रश्न आता है, उतनी बार उतने प्रकार से इनकार करती है।

य. राधा का विरह

राधा को दुःख है कि उसके मर्म की पीड़ा को अनुभव करने वाला, उससे रंच भी सहानुभूति दिखानेवाला, कोई नहीं दिखाई देता—

मरम की पीर न जानै कोय
कासों कहौं, कौन पुनि मानै, बैठि रही घर रोय
कोऊ जरनि न जाननहारी, बे महरम सब लोय
अपुनो कहत, सुनत नहिं मेरी, केहिं समझाऊँ सोय
लोक लाज कुल की मरजादा बैठि रही सब खोय
'हरीचन्द' ऐसहि निबहैगी, होनी होय सो होय
—प्रेम फुलवारी ४५ (चंद्रा०)

कृष्ण के विरह में राधा की जो दशा हो गई है, उसका अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन भारतेन्दु बाबू ने—'क्यों कान्ह-कान्ह गोहरावति हो?'—तथा 'क्यों प्यारी फिरति दिवानी सी?' की क्रमशः १५, १० पूर्तियों में किया है। ये दोनों रचनाएँ विरह काव्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इसी कोटि का चन्द्रावली के अन्तर्गत आया हुआ यह पद है—

तू केहि चितवत चकित मृगी सी
केहि ढूँढ़त, तेरो कह खोयो, क्यों अकुलात, लखाति ठगी सी
तन सुधि कर, उघरत री आँचर, कौन ब्याधि तू रहति खगी सी
उत्तर देत न, खरी जकी ज्यों, मद पीए, कै रैनि जगी सी
चौंकि-चौंकि चितवति चारिहु दिसि, सपने पिय देखति उमगी सी
भूलि बैखरी मृग सावक ज्यों, निज दल तजि कहुँ दूर भगी सी
करत न लाज हाट-बारन की, कुल मर्यादा जाति डगी सी
'हरीचन्द' ऐसहि उरझी तो, क्यों नहिं डोलत संग लगी सी।
—स्फुट ५६ (चन्द्रा०).

राधा की विरह व्याधि कुछ इतनी बढ़ जाती है कि वे कृष्ण में तन्मय हो जाती हैं और स्वयं अपने को कृष्ण समझने लगती हैं। उन्हें चेत में लाना असंभव हो जाता है। वे राधा राधा कहकर बेज़ार हो जाती हैं। उसी समय कृष्ण उधर से निकलते हैं और कहते हैं प्यारे तुमने अपनी मुरली में मेरा नाम लेकर जो बुलाया, मैं आ गई हूँ।" सुनते ही राधा के नेत्र खुल गए और श्याम को साक्षात अपने सम्मुख पा उन्हें चेत हो गया और उनकी तन्मयता दूर हो गई। इस कथानक को लेकर 'तन्मय लीला' नाम से ७ पदों की एक छोटी सरस रचना भारतेन्दु ने प्रस्तुत की है। यह प्रबन्ध भारतेन्दु की मौलिक भाव-धारा का प्रतीक है।

फ. कृष्ण के प्रयत्न

कृष्ण भी राधा के प्रेम के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रयत्न का अंकन भारतेन्दु ने तीन पदों में किया है, जो भारतीय परम्परा के अनुकूल ही हुआ है। कृष्ण एक दूती के द्वारा अपना प्रेम पत्र राधा के पास भेजते हैं। दूती अकुशल है, वह जाकर राधा के गुरुजनों के सामने ही उसे वह पत्र देती है। राधा बेचारी पहले तो सकते में आ जाती है, परन्तु तत्काल उसकी प्रत्युत्पन्नमति उसकी सहायता के लिए आ उपस्थित होती है और वह कहती है, 'क्या बावली हो गई है, यह घर नहीं है, क्यों घुस आई, जिसके लिए तू पाती लाई हैं, वह तो और आगे रहती है। अथवा तू उसका नाम भूलकर मेरे पास पढ़ाने के लिए आई है, ब्रज में और भी पढ़ने वाले हैं, उनके पास क्यों नहीं जाती। ऐसा लगता है तू कोई भेद लेने आई है—ब्रज की लुगाइयाँ बड़ी कठिन हैं—बिना बात के बदनाम करती हैं—लगता है इन बैरिनों के पीछे ब्रज ही छोड़ देना पड़ेगा।' दूती को तत्काल अपनी भूल का ज्ञान हो जाता है और वह सत्वर भुल सुधार कर लेती है, (प्रेम मालिका १००)।

दूसरे पद में कृष्ण राधा को आकुल हो ढूँढ़ते फिर रहे हैं। इस ढूँढ़ने वाले का समाचार राधा की एक सखी उसे देती है—

> तुम्हें कोउ खोजत है हो राधे
> ना जानै कौन साँवरो सो ढोटा, पीरी कटि बाँधे
> बड़े बड़े नैन भरि रहे जल सों, बचन कहत आधे आधे
> बन बन पात पात करि खोजत, प्यारी प्यारी रट बाँधे
> कोमल मुख कुम्हलाइ रह्यो वाको, खरो प्रीति-पथ साधे
> 'हरीचन्द' सखी चलु न, दया करि, हरि विरहा की बाधे
>
> —प्रेम फुलवारी ७९.

जब कृष्ण की राधा तक पहुँच हो जाती है, तब वे अपने रथ पर बैठ उनकी गली का चक्कर काटने लगते हैं—और राधा भी अटा पर चढ़ी घनश्याम की छटा देखने लगती हैं—

लाल नहिं नेकौ रथहिं चलावैं
गली साँकरी, अटकि रह्यो रथ, नहिं कहुँ इत उत आवैं
उत वृषभानु कुमारि अटा पै ठाढ़ी, दृष्टि न टारैं
इत नँदलाल रसिकवर सुन्दर इक टक उतहिं निहारैं
ये हँसि हँसि के कमल फिरावत, वे दोउ नैन नचावैं
ये पीताम्बर लै जु उड़ावैं, वे मधुरे सुर गावैं
रीझे रसिक परस्पर दोऊ, 'हरीचंद' मन माहीं
ये इत अपनो रथ न चलावत, वे न अटा सों जाहीं

—राग संग्रह १०८

४. विविध लीलाएँ

अ. चीर हरण लीला

सूरसागर में चीर हरण संबधी ३४ पद (७६५।१३८३ से ७९८।१४१६ तक) हैं। ७००।१४१७ संख्यक पद चौपाई छंदों में कथात्मक ढग से इस प्रसंग का वर्णन करता है। भारतेंदु ने इस प्रसंग में केवल चार पद लिखे हैं। जो सूर के किसी विशेष पद को आधार मानकर नहीं लिखे गए हैं। एक पद में गोपियाँ यमुना में दीप-दान करते हुए, कृष्ण को पतिरूप में पाने की कामना करती हैं, (कार्तिक स्नान ९)। सूर की गोपियाँ भी शिव और सूर्य की प्रार्थना इसी उद्देश्य से करती हैं, (७६५।१३८३—७६८।१३८६)। भारतेंदु की गोपियाँ यमुना और देवी की प्रार्थना करती हैं जो शिव और सूर्य की प्रार्थना करने से अधिक समीचीन और युक्ति संगत प्रतीत होता है। यमुना में स्नान करते हुए, उत्तम अगहन मास में, हाथ जोड़ देवी से नंदलाल को पतिरूप में देने की प्रार्थना वे कर ही रही थीं कि कन्हैया चीर लेकर भाग गए, (स्फुट १२)। सूर की गोपियाँ भी यमुना में स्नान करती हुई सूर्य से यह प्रार्थना कर ही रही थीं कि कन्हैया जल के भीतर प्रकट हो सबकी पीठें मींजने लगे, (७६८।१३८६)। स्नान कर लेने के अनंतर गोपियाँ अपने वस्त्रालङ्कार न पा व्याकुल हो गईं—

खोजत बसन ब्रज की बाल
निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल
सुनत चंचल चित चहूँ दिसि चकित निरखत नारि

मधुर बैनानि हिओ फरकत, जानिके बनचारि
कदम पर तैं दरस दीनों, गिरिधरन घनश्याम
अङ्ग अङ्ग अनूप शोभा, मथन कोटिक काम
सिर मुकुट की लटक चटकत, बसन सोभित पीत
चरन तक बनमाल सोभित, मनहु लपटी प्रीत
फैलि रहि सोभा चहूँ दिसि, मन लुभावत पास
नैन तें 'हरिचंद' कै छवि टरत नहिं इक साँस

—स्फुट १३.

ब. गोवर्धन-धारण लीला

सूरसागर में गोवर्धन-धारण लीला अत्यंत विशद है और दो-दो बार गाई गई है, एक बार पदों में (१४२९ से १५०१ तक), दूसरी बार चौपाइयों में (१५०२ से १५६९ तक)। इसके आगे १६०१ संख्यक पद तक इस कथा का उपसंहार है। भारतेंदु ने इस कथा का उल्लेख मात्र तीन साधारण पदों में किया है। दो पद गोवर्धन धारण के अनंतर छाए उल्लास से संबंध रखते हैं। एक में (राग संग्रह ३) गोपों का उल्लास अंकित है, दूसरे में गोपियां कृतज्ञता-प्रकाश के लिए पुनः गोवर्धन-पूजन करने जा रही हैं—

घर तें मिलि चलीं ब्रज नारि
लसित कबरी, नैन घूमत, सजे सकल सिँगार
लिए पूजन साज कर मैं, कुटिल बिथुरे बार
कृष्ण गुन गावत, सुविहसत, 'हरीचंद' निहार

—स्फुट ११.

ऐसा ही एक पद सूर में भी है—

'चलीं घर घरनि तें ब्रज नारि'

—सूरसागर ८२९।१४४७.

एक पद में तो केवल उल्लेख मात्र हुआ है—

मंगल गिरि गोवर्धन धारयो, मंगल गिरिधर ब्रज के भूप

—स्फुट १०.

स. पनघट लीला

धीरे धीरे कृष्ण की गोपियों से छेड़छाड़ बढ़ जाती है। अब वे पनघट पर उनको प्रायः परेशान करने लगते हैं। यह प्रसंग पनघट लीला के नाम से प्रख्यात है। सूर सागर में पनघट लीला सम्बन्धी ६१ पद (२०१७-२०७७) हैं, भारतेन्दु पदावली में केवल ५। दो पदों में (स्फुट २३, राग संग्रह ४२) गोपियों की बढ़ती आसक्ति एवं कृष्ण की छेड़छाड़ का वर्णन है—

देखौ जू नागर नट, ठाढ़ो जमुना के तट—
पर, मग कोउ चलन न पावै
काहू को हरत चीर, काहू को गिरावै नीर,
काहू की इँडुरी दुरावै
श्याम बरन तन सीस टिपारो
सोभा कहि नहिं आवै
'हरीचन्द' हँसि हँसि नयनन आवत
तन मन सबहिं चोरावै.

—राग संग्रह ४९

दो पदों में गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती हैं, (प्रेम मालिका ९२, ९३)

बिनती सुन नंद-दाल, बरजो क्यों न अपनो लाल,
प्रातकाल आइ आइ, अंबर लै भागै
भोर होत जमुन तीर, जुटि जुटि सब गोप भीर
न्हात जबै विमल नीर, शीत अतिहि जागै
लेत वसन मन चुराइ, कदम चढ़त तुरत धाइ
ठाढ़ी हम नीर माँहि, नाँगी सकुचाहीं
'हरीचन्द' ऐसो हाल, करत नित्यप्रति गोपाल
व्रज में कहो कैसे बसैं, अब निबाह नाहीं

—प्रेम मालिका ९३.

सूरसागर में गोपियों ने कई पदों में अपनी शिकायत पेश की है। और यशोदा ने चुपचाप उनके आरोप को एक पद (२०४२) में स्वीकार कर लिया है—मैं जानती हूँ, कन्हैया ढीठ है; घर आने दो, देखो कैसी सजा करती हूँ। इस प्रसंग में सूर की यशोदा गम्भीर हैं; परन्तु भारतेन्दु की यशोदा में परिहास की प्रचुर मात्रा है। वे गोपियों की चुटकी लेती हैं—

बारो अति मेरो लाल, सोइ उठत प्रातकाल
कहा तीर, कैसो चीर, झूठही अँगराती।
चोरी लाइ छिनारो लावत,
तुम ग्वालिन मदमाती॥
इहि मिस नित उठि देखन आवत,
अपने मन क्यों नहिं समुझावति,
यौवन के रस चूर फिरत तुम,
घर घर में इतराती।

'हरीचंद' घरन जाहु, लालहिं मति दोष लाहु,
कहत बात क्यों बनाइ, कापै इठलाती।

—रागसंग्रह ७८.

दान लीला सम्बन्धी शिकायतों के उत्तर में सूर की यशोदा ने अवश्य इसी प्रकार का उत्तर दिया है (सूरसागर दशमस्कंध पूर्वार्द्ध १०५७—बम्बई संस्करण)।

द. दान लीला

सूर ने २९० पदों में (२०७८ से २३६७) दान-लीला का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। भारतेन्दु पदावली में इस प्रसंग पर केवल छह पद और एक अत्यन्त लघु विवरणात्मक काव्य है। ये सभी अत्यन्त सरस और मौलिक हैं। भारतेन्दु ने दान के लिए अत्यन्त पुण्य पर्व एवं सुपात्र की अवतारणा की है। यह भाव अभिनव है, और जहाँ सूर जैसे महाकवि ने इस प्रसंग पर इतने अधिक पद लिखे हैं, सम्भवतः वहाँ और किसी के लिए कोई भी बात छूट नहीं पाई है। ऐसी दशा में एकाध नए पदों का होना ही क्या कम है?

ग्वालिन दै किन गोरस दान
करु पुन्य यह गोवर्द्धन गिरि तीरथ सों बढ़ि मान
गहन चिकुर मुख पूरन विधु पै छाया सम लखु आन
बड़ो परब तुव भाग मिल्यो है करु न विलम्ब सुजान
सिसुता पूरि प्रकट प्रति पद नव जोवन संधि समान
'हरीचंद' कंचन अंगन दैं हरि सुपात्र पहिचान

—रागसंग्रह २४.

इस प्रसंग में दो प्रसिद्ध दान लेनेवालों की तुलना भारतेन्दु की गोपियों ने की है। एक तो हैं वामन, दूसरे हैं कन्हैया। यह तुलना भी नवीन है—

दान लेन द्वै ही जन जान्यो
कै तुम नंदराय के ढोटा, कै वामन जिन बलि छल ठान्यो
तीन पैर कहि छोटे पग सों, उन छल करिकै देह बढ़ाई
तुम गोरस के मिस कछु औरै रस लीनो, छलि कै व्रजराई
वे छोटे, कपटी, तुम खोटे, एकहि से विधि रचे सँवारी
'हरीचंद' वे तो बावन रहे, तुम छप्पन निकसे गिरिधारी

—रागसंग्रह ४७.

याचकपन में धृष्टता न होनी चाहिए, पर कृष्ण में वह धृष्टता भी पर्याप्त मात्रा में है, वे माँग कर भी अपने को छोटा नहीं समझते। इसपर गोपियाँ फिर फबती कसती हैं—

देखे आजु अनोखे दानी
जाचकपन में इती ढिठाई लाल कौन यह बानी
रार करत कै गोरस माँगत, सो कछु बात न जानी
'हरीचंद' कुल दीपक ढोटा कौन रीति यह ठानी

—रागसंग्रह ४८.

जब इतने पर भी कन्हैया पर कुछ असर नहीं पड़ा—वे तो चिकने घड़े हैं, तब बेचारी गोपी एक नया बहाना निकालती हैं—अभी बोहनी नहीं हुई है—

लाल यह बोहनियाँ की बेरा
हौं अबहीं गोरस लै निकसी, बेचन काज सबेरा
तुमतौ याही ताक रहत हौ, करत फिरत मग फेरा
'हरीचंद' झगरौ मति ठानौ, ह्वै है आजु निबेरा

—प्रेम मालिका ४१.

इस बोहनी की शरण एक पद में सूर की गोपियों ने भी ली है—

'बिनु बोहनी तनक नहिं दैहौं, ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो'

—सूरसागर २०८२.

कृष्ण अब और किसी प्रकार का बहाना सुनने के लिए तैयार नहीं, और उन्होंने तत्काल अंचल पकड़ लिया, तब बेचारी गोपी ने फिर गिड़गिड़ाना प्रारंभ किया, (प्रेम मालिका १५, १६)—

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब सँग की बाल,
काहे हरि गए आजु बहुतै इतराई।
सूधे क्यों न दान लेहु, अँचरा मेरो छाड़ि देहु,
जामैं मेरी लाज रहै, करो सो उपाई॥
जानत ब्रज प्रीत सबै, औरहू हँसैंगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़े ही चबाई।
'हरीचंद' गुप्त प्रीति, बरसत अति रस की रीति,
नेकहू जो जानै कोउ, प्रकटत रस जाई॥

—प्रेम मालिका १५.

भारतेंदु के दानलीला संबंधी पद अन्य लीला संबंधी पदों से अधिक सजीव हैं और इनमें मौलिकता भी अधिक है।

य. रासलीला

अन्य प्रसिद्ध लीलाओं की भाँति रासलीला का वर्णन भी भारतेंदु में नगण्य ही-सा है। उन्होंने इस प्रसंग में केवल ७ पद लिखे हैं, जिनमें अधिकांश साधारण हैं, केवल दो तीन अच्छे हैं।—सूरसागर में तो यह प्रसग कई सौ पदों में है। इस प्रसंग में भारतेंदु का सर्व श्रेष्ठ पद यह है—

> वृंदावन उज्जल वर जमुना तट नंदलाल,
> गोपिन सँग रहस रच्यो सरद जामिनी।
> निरतत गोपाल लाल, सँग में बृजबाल वनी,
> अद्भुत गति लेत कोक कलित कामिनी॥
> लाग डाँट सुर बँधान, गावत अचूक तान,
> ततथेइ ततथेइ थेई गति अभिरामिनी।
> गोपिन सँग श्याम सुंदर, मंडल मधि सोभित अति,
> बिहरत बहुरूप मानों मेघ दामिनी॥
> थाक्यो नभ चंद देखि, रैनि गति सिथिल भई,
> लखि हरि गजपति संग गज गामिनी।
> 'हरीचंद' सोभा लखि, देव मुनि नभ विथकित,
> मानी हरि साथ सबै ब्रज भामिनी॥
>
> —राग संग्रह ८१

इन पदों में नृत्य और संगीत के शास्त्रीय शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।† स्फुट पद ४९ में तो स नि ध प के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। सूर ने ही संभवतः इस पथ का भी निर्देश किया है—

> नँद नंदन सुघराई, मोहन बंशी बजाई।
> स रि ग मा प ध नि सा संसप्त सुरनि गाई॥
>
> —सूरसागर दशमस्कंध १७८३ (बंबई सं०)

५. राधा कृष्ण विवाह

सूरसागर में रासलीला का बहुत विस्तार है। उसके बीच-बीच में अनेक लीलाएँ आई हैं। रासलीला के प्रथम अवतरण के अनन्तर राधा कृष्ण का गांधर्व विवाह ५ पदों में वर्णित है। भारतेन्दु बाबू ने भी राधा कृष्ण का विवाह ११ पदों में सविस्तार वर्णन किया है। यहाँ फूलों की बहार है; यहाँ सभी कुछ या तो फूलों का है या फूलों-सा है। इस विवाह के अवसर पर फूलों की यह भाव-धारा पूर्णतः

---

† रागसंग्रह ७९, ८१, १०२, वर्षा विनोद ५९, स्फुट ४९।

मौलिक है। इस प्रसङ्ग में फूलों पर सूर ने केवल एक मुहावरे का प्रयोग किया है—

फूली फिरैं सहचरी आनँद उर न समाइ
—सूरसागर १०।१७६० (बं० संस्करण)

अन्यत्र कृष्ण जन्म के अवसर पर सूर ने भी फूलों का एक वातावरण बना दिया है, (३४।६५२)। बसन्त खेलते समय भी एक पद में फूलों का ही शब्द-शृंगार है,(२४५४ बम्बई सं०)। राधा कृष्ण विवाह के इस पुनीत पर्व पर भारतेन्दु ने चार-चार कुसुमित पदों का निर्माण किया है (राग संग्रह ११, ४६, ७३, ७५)। विवाहोपरान्त विहार बेला में दो पदों में कृष्ण ने स्वयं राधा का पुष्प-शृंगार किया है, (राग संग्रह १०, ७५)। राग संग्रह के पद ५५ में राधा को रूप-लता कहा गया है और यह वर्णन सांगोपांग भी है। इन पदों से भारतेन्दु का पुष्प-प्रेम प्रकट होता है। विवाह सम्बन्धी पुष्पित-पदों में से केवल एक उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

फूल्यो सो दूलह आजु, फूल ही को साजै साज,
फूल सी दुलही पाइ फूल्यो फूल्यो डोलै
केसरी बन्यो है बागो, मोतिन की कोर लागो,
फूल झरैं जब वह मुख बोलै
फूल को सिहरो सीस, फूलन की माल कंठ,
फूले फूले नयन दोऊ लगे अनमोलै
'हरीचन्द' बलिहारी, निज कर गिरिधारी,
कली सी दुलहिया को घूँघट खोलै
—राग संग्रह ७३.

विवाहोपरांत सखियाँ बधाई गाने के लिए आती हैं और कंकन छोड़ने के प्रसंग में उपयुक्त एवं समयोचित परिहास भी करती हैं—

फूलहु को कँगना नहिं छूटत, कैसे हो बलबीर जू
जानि परी सब आजु तुम्हारी, नामहिं के रनधीर जू
दूध पिवायो जसुदा मैया जा दिन कों, सो आयो
चोरि चोरि कै माखन खायो, सो बल कहाँ गँवायो
तारी दै दै हँसीं सखी सब, आजु परी मोहिं जानी
सुनिकै तिनकी बात दुलहिया घूँघट मैं मुसक्यानी
—राग संग्रह ७४.

सूर ने भी कृष्ण द्वारा कंकन न छूटने पर इसी प्रकार की फबतियाँ कसी हैं, (सूरसागर १०।१७५८ बम्बई सं०)

विवाह के अनन्तर गोपियाँ शुभ कामना प्रकट करती हैं—

चिर जीवो यह जोरी जुग जुग, चिर जीवो यह जोरी

—राग संग्रह २९.

६. रूप

अ. राधा-रूप

भारतेंदु सदैव राधा की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं। उन्होंने उनके रूप संबंधी १७ परमोत्कृष्ट पद लिखे हैं। ऐसे पद सूरसागर में भी खोजने पर मिलेंगे। भारतेंदु कृत राधा रूप के सभी चित्र मौलिक हैं। उन्होंने सूर की प्राचीन नख शिख प्रणाली का, जिसमें एक ही उपमान बार बार आते हैं और पाठक को उबा जाते हैं, ग्रहण नहीं किया है। कृष्ण के रूप पर भारतेंदु ने केवल चार-छह पद कहे हैं, जिनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं।

राधा छवि की राशि हैं। यह छवि की राशि मुद्रालंकार द्वारा अत्यंत सुंदर ढंग से बनाई गई है—

प्यारी छबि की राशि बनी
जाही विलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु जनी
नँद-नंदन सों बाहु मिथुन करि ठाढ़ी जमुना-तीर
करक होत सौतिन के छबि लखि सिंह कमरपर चीर
कीरति की कन्या जग धन्या अन्या तुला न वाकी
वृश्चिक सी कसकत मोहन हिय भौंहैं छबीली जाकी
धन धन रूप देखि जेहि प्रति छिन मकरध्वज तिय लाजै
जुग कुच कुंभ बढ़ावत सोभा मीन नयन लखि भाजै
वैस-संधि-संक्रौन-समय तन जाके बसत सदाई
'हरीचंद' मोहन बड़भागी जिन अङ्कम करि पाई

—प्रेम मालिका १.

भारतेंदु को राशियों पर मुद्रालंकार की क्रीड़ा करने का विशेष शौक था; सूरदास ने राशियों के साथ ऐसा मुद्रा-कौतुक नहीं किया है, पर 'राशि' शब्द का ढेर के अर्थ में उन्होंने राशि-राशि प्रयोग किया है—'देखि री देखि शोभा राशि' (१०।१३५९ बंबई सं०)। एक पद में उन्होंने श्याम को सुख-राशि, रस-राशि, रूप-राशि, गुण-राशि, यौवन-राशि, शील-राशि, यश-राशि, आनंद-राशि, दया-राशि, विद्या-राशि, बल-राशि, निर्दय-राशि, चतुरई-राशि, छल-राशि

और कल-राशि कहा है, (१०।१३३९ बंबई सं०)। हो सकता है भारतेंदु ने राशि शब्द को यहीं कहीं से पकड़ा हो और फिर अपनी चिर कांतिमती प्रतिभा द्वारा उसे एक अभिनव प्रभा दे दिया हो।

भारतेंदु एक पद में राधा को दीप-शिखा तुल्य बताते हैं, दूसरे पद में इस उपमा को अयोग्य सिद्ध करते हैं। ये दोनों पद भारतेंदु की काव्य-प्रतिभा के सुंदर प्रमाण हैं। दीप-शिखा सी बताते हुए वे कहते हैं—

साँचहि दीप-शिखा सी प्यारी
धूम केश, तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी
स्वयं प्रकाश अकुंठ सुहाई बिनु असार छबि छाई
सदा एक रस, नित्य अधिक यह, वासों चाल लखाई
भरत सुगंधन ब्रज कुंजन मग, शीतल तन कर वारी
प्रीतम-तन को बिरह मिटावत, 'हरीचंद' दुख जारी

—कार्तिक स्नान २५.

उसी ग्रन्थ में इस उपमा को अनुपयुक्त बताते हुए कहते हैं—

कविन सों साँचेहि चूक परि
दीप-शिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी
वह दाहत, यह अंग जुड़ावत; वह चंचल थिर येह
वह निज प्रेमिन परम दुखद, यह सदा सुखद पिय-देह
वामें धूम स्वच्छ अतिही, यह रैनि दिना इक रास
वह परिछिन्न बात-बस, यह निज-बस सर्वत्र प्रकाश
वह सनेह-आधीन और यह है सनेह भरपूर
'हरीचन्द' दीपक प्यारी की नहिं कोउ विधि सम तूर

—कार्तिक स्नान १८.

राधा-रूपांकन के लिए भारतेन्दु ने सांग रूपकों की प्रचुर सहायता ली है। निम्नांकित पद में उन्होंने राधा के रूप की अत्यन्त छावमयी एवं तरगित नदी प्रवाहित की है—

प्यारी रूप नदी छवि देत
सुखमा-जल भरि नेह तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत
नैन मीन, कर-पद-पंकज से, सोभित केस सिवार
चक्रवाक जुग उरज सुहाए, लहर लेत गलहार

रहत एकरस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेंटि
'हरीचन्द' बरसै साँवल घन बढ़त कूल-कुल मेटि
—प्रेमाश्रु वर्षण १८.

सूर ने भी कृष्ण को सोभा-सिन्धु सिद्ध किया है, (सूर सागर १०।१३५६ वें० सं०) ।

एक दूसरे पद में राधा नागरी को अत्यन्त सुन्दर ढंग से भारतेन्दु ने रूप-लता कहा है—

नागरी रूप-लता सी सोहै
कमल सो वदन, पल्लव सो कर पद, देखत ही मन मोहै
अतसी कुसुम सी बनी नासिका, जलज-पत्र से नयन
बिंब से अधर, कुंद दंतावलि, मदन-वान सी सयन
गाल गुलाब, कान झुमुका मनु करनफूल के फूल
बेनी मानों फूल की माला, लखि कै मन रह्यो भूल
बाहु सुढार मृनाल-नाल सम, फूल सरिस सब अंग
फूलन ओट लगे हैं द्वै फल, बाढ़त देखि अनंग
जानु बनी रम्भा की खंभा, सोभा होत अपार
गूलरि फूल सरिस कटि राजत, कवि जन लेहु-विचार
नारंगी सी एँड़ी राजत, पद तन मनहु प्रवाल
और आभरन विविध फूल बहु, कर पहुँची उर माल
चम्पे सी देह, दमक दवना सी, चमक चमेली रंग
मालति महक, लपट अति आवत, कोमल सब अँग अंग
रसिक सिरोमनि नन्दलाल सोइ भँवर भए हैं आइ
देखि देखि छवि राधा जू की 'हरीचन्द' बलि जाइ
—राग संग्रह ५५.

सूर ने राधा को 'अद्भुत एक अनूपम बाग' कहा है और अपनी उक्ति को रूपकातिशयोक्ति की दुरूह युक्ति से सिद्ध किया है। यद्यपि इस कार्यसिद्धि के लिए उन्होंने सुप्रसिद्ध उपमानों को ही ग्रहण किया है, फिर भी साहित्य के साधारण विद्यार्थी के लिए वह पद कहीं गूढ़ है। रसखान की भी एक नायिका, संभवतः राधा ही, अपने प्रिय को बाग में जाने से वर्जित करती और घर पर ही उन्हें रूप का सब्ज़ बाग दिखाकर बाग बाग कर देना चाहती हैं।

प्रात काल सोकर उठी हुई अलस राधा का एक मौलिक चित्र निम्नलिखित पद में अंकित हुआ है—

आजु उठि भोर वृषभानु की नंदिनी
फूल के महल तें निकसि ठाढ़ी भई
खसित सुभ सीस तें कलित कुसमावली
मधुप की मंडली मत्त रस ह्वै गई
कछुक अलसात सरसात सकुचात अति
फूल की बास चहुँ ओर मोदित छई
दास 'हरिचंद' छबि देखि गिरिधर लाल
पीत पट लकुट सुधि भूलि आनँद मई

—प्रेम मालिका १८.

राधा ने अपने अलौकिक रूप से सभी युवतियों का मान मर्दित कर दिया है। कौन ऐसी है जो उनकी श्री को देख विश्री न हो गयी हो ?—

श्री राधे सबको मान हरयौ
अरी सुहागिन मेरी तू जब सेंदुर तिलक धरयौ
गिरे गरब परबत जुवतिन के, रूप गरूर गरयौ
रीती सिद्ध भई रिसि गन की, देविन दरप दरयौ
शिव समाधि छूटी, शुक डोल्यो, रबि ससि तेज छरयौ
फूलन रूप रंग तजि दीनो, जग आनंद भरयौ
सबको भाग रूप अधरामृत इकलौ पान करयौ
'हरीचंद' हरि तोहि अङ्क लै, है निसंक बिहरयौ

—प्रेमाश्रु वर्षण १६.

राधा के कातिल तिल पर भी दो पद भारतेंदु ने प्रस्तुत किए हैं—

प्यारी जू के तिल पर बलि बलिहारी
जा मिस बसत कपोलन अनुछिन, लघु बनि पिय गिरिधारी
पिय की दीठ चीन्ह मनु सोहत, लागत अति ही प्यारी
'हरीचंद' सिंगार तत्व सी, लखि मोहन मन वारी

—प्रेम प्रलाप ४७.

इन पदों के अतिरिक्त कई और सुंदर पद राधा-रूप पर हैं, विस्तार-भय से उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

ब-युगल रूप.

भारतेंदु बाबू युगल-रूप के उपासक थे। इसलिए राधा-कृष्ण के सम्मिलित रूप का चित्रण उन्होंने अनेक पदों में किया है। संभवतः इसीलिए राधा-कृष्ण विहार उन्हें अत्यंत प्रिय रहा है और उसका वर्णन उन्होंने अत्यंत तल्लीनता से

किया है। वे राधाकृष्ण को 'हमारे बृज कै द्वै मनि दीप', (कार्तिक स्नान ११) तथा 'फूलि रही द्वै बेली श्री वृन्दावन', (प्रेम मालिका ६१), कहते हैं। युगल रूप का केवल एक भव्य चित्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

आजु तरनि-तनया निकट, परम परमा प्रगट,
ब्रज बधुन मिलि रची दीप-माला
जोति जाल जगमगत, दृष्टि थिर नहिं लगत
छूट छबि को परत अति बिसाला
खड़ी नवल बनिता बनी, चार दिसि छबि सनी,
हँसहिं, गावहिं, बिविध ख्याला
निरखि सखी 'हरिचंद' अति चकित सी ह्वै कहत,
जयति राधे, जयति नंदलाला

—कार्तिक स्नान १४.

७. युगल विहार

भारतेंदु बाबू ने राधा कृष्ण के संयोग का अत्यंत विस्तृत एवं ललित वर्णन किया है। वे युगल-विहार को अत्यंत मंगलमय समझते थे और इस रहस्य तक अपनी पहुँच को श्री वल्लभ की कृपा का फल समझते थे। इसीलिए वे बेझिझक राधा-कृष्ण के विविध विहारों का संश्लिष्ट चित्रण कर गए हैं—

मंगलमय सखि जुगल-विहार
बड़े प्रात ही कुंज ओट ते, क्यों चुपके नहिं लेत निहार
मंगल सेस भवन रस मंगल, तहाँ जुगल मंगल की खानि
मंगल बाहु बाहु मैं दीने, मंगल बलि अलसौंहीं बानि
मंगल जागत आलस पागत, मंगल नींद भरे जुग नैन
मंगल लपटि लपटि कै पुनि पुनि, कबहुँ उठत करि कबहूँ सैन
मंगल परिरंभन, आलिंगन, मंगल तोतरे शब्द-उचार
'हरीचंद' मंगल वल्लभ-पद, जा बल बिहरत बिना बिकार

—प्रेमाश्रु वर्षण ११

इस 'मंगल' की बहार भारतेंदु के कई पदों में है, (प्रेमाश्रु वर्षण १८, कृष्णचरित्र २७, राग संग्रह ९३)। कृष्ण के सान्निध्य से सभी कुछ मंगलमय हो जाता है। यह भावना अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों द्वारा अंकित हुई है। परमानंददास के 'मंगल माधो नाम उचार' पद में मंगल का बहुत प्रयोग हुआ है।

संयोग शृंगार के क्षेत्र में भारतेंदु बाबू ने नई नई अभिव्यक्तियाँ की हैं।

राधाकृष्ण के नेत्रों में बाजी लगती है, एक दूसरे की ओर अपलक देखने की। परंतु दोनों हारते हैं, दोनों जीतते हैं, क्योंकि प्रेम राज्य में हार ही में जीत है।

बाजी नैनन मैं लागी
रसिकराज इत, उत श्रीराधा, परम प्रेम-रस-पागी
दोऊ हारे, दोऊ जीते, आपुस के अनुरागी
'हरीचंद' निज जन सुखदायक, रहे केलि-निसि जागी

—कार्तिक स्नान ७

कृष्ण में केलि-विदग्धता प्रथम श्रेणी की है। वे राधा से कहते हैं, आओ हम तुम खड़े होकर देखें कि दोनों में कौन बड़ा है। राधा भोली थीं, छोटी भी थीं, वे सटकर खड़ी हो गईं और पंजे के बल खड़ी हो, उचककर अपने को बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगीं। इस प्रयत्न में उनका मुख स्वभावतः कृष्ण के मुख तक पहुँच गया और नागर कन्हैया ने, बिना झुके हुए ही, राधा का मुख चूम लिया और कहा, लो भाई, 'तुम जीतीं, मैं हारा'—

हममें कौन बड़ो री प्यारी
ठाढ़ी होउ बराबर नापैं, विहँसि कह्यो गिरिधारी
सुनत उठी वृषभानु नंदिनी, खरी भई समुहाई
पद अँगुरी-तल उचकि, पिया सों बढ़वन चहत उँचाई
सुंदर मुख आपुहि ढिग आवत, लखि चूम्यो पिय प्यारे
'हरीचंद' लजि हँसि भुव निरखत, पिया कह्यो हम हारे

—कार्तिक स्नान ८

केलि के समय दर्पण में प्रतिबिंब पड़ता है और बेचारी राधा लज्जा से सकुचती, सिमटती जाती है; परंतु कन्हैया को इसी में विशेष आनंद आता है—

प्यारी लाजन सकुची जात
ज्यों ज्यों रति प्रतिबिंब सामुहैं आरसि माँह लखात
कहत लाख यहि दूर राखिए, बल करि कर्षत गात
'हरीचंद' रस बढ़त अधिक अति ज्यों ज्यों तीय लजात

—राग संग्रह ६२.

युगल प्रेमी रस-केलि में इतने लीन रहते हैं कि सारी रात बीत जाती है, पता भी नहीं चलता—

रस बस में निसि जात न जानी
कहत सुनत कछु हँसत हँसावत, दृग जोरत छन-सरिस बिहानी
आलस बिबस जम्हात परस्पर, कहि बलिहार मधुर सुर बानी

रूप लालची दृग नहिं झपकत, जागत ही निसि सकल सिरानी
अरुझे प्रेम फंद नहिं सुरझत, मुख चूमत हरि राधा रानी
'हरीचंद' सखिगन सोइ गावत, जुगल प्रेम की अकथ कहानी
—राग संग्रह १०५.

प्रभात काल में शीतल पवन के मंद सुगन्ध झकोरे उन्हें थोड़ी देर के लिए सुला देते हैं, तब ललिता को बीन बजाकर इन्हें सचेत करना पड़ता है—(राग संग्रह ८०)। रति-श्लथ-जागरण एवं कलेऊ तथा भोजन के भी अनेक सुन्दर पद भारतेन्दु पदावली में हैं। निम्नांकित पद में श्यामा-श्याम साथ ही जगे हैं, उनका अलस रूप अत्यन्त भव्य है—

जागे माई सुंदर श्यामा-श्याम
कछु अलसात जँभात परस्पर, टूटि रही मोतिन की दाम
अधखुले नैन,प्रेम की चितवनि, आधे आधे बचन ललाम
बिलुलित अलक, मरगजे बागे, नख छत उरसि मुदाम
संगम गुन गावत ललितादिक, बाजत बीन तीन सुर ग्राम
'हरीचंद' यह छवि लखि प्रमुदित, तृन तोरत ब्रज बाम
—प्रेम मालिका २४.

बन्द घर के भीतर ही बँधे हुए क्रीड़ा करने में राधा-कृष्ण को सुख नहीं मिलता। वे स्वच्छन्द विहारी हैं, अतएव, कभी कुञ्जों में, कभी यमुना तटपर, कभी नाव में क्रीड़ा करते हुए विचरण करते रहते हैं। ये सभी पद अत्यन्त ललित हैं और भारतेन्दु की विलासी प्रवृत्ति इनमें खूब रमी है। कुंज विहारी सम्बन्धी पदों में यह पद सर्वश्रेष्ठ है—

आजु नव कुंज विहरत दोऊ रस भरे
प्रिया ब्रजचंद सँग चतुर चंद्रावली
सुरति श्रम स्वेद मुख, परस्पर बढ़यो सुख
टूटि रही उरसि मुकतानि हारावली
गिरत तन वसन, नहिं थिरत बेसरि तनिक,
खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली
सखी 'हरिचंद' लखि, मूँदि दृग दोउ रही
पाइ आनंद परम बुद्धि भई बावरी
—प्रेम मालिका २८.

दिन ही में यह कुंज बिहार नहीं होता था; श्यामा रजनी में भी श्यामा-श्याम रस-केलि मग्न रहते थे। प्रेम मालिका के ७२ वें पद में युगल चंद्रिका-स्नात

रजनी में कुञ्ज विहार करते दिखलाए गए हैं। त्रिविध पवन बह रहा है, वृक्ष की छाया लज्जावरोध करने में पूर्ण सक्षम सिद्ध हो रही है। सखियाँ इस विहार को चिर-विहार में परिणत कर देने की कामना से शशि से प्रार्थना करती हैं कि वह स्थिर हो जाय। प्रेम मालिका के ही ७६ वें पद में राधा-कृष्ण प्रगाढ़ तमिस्रा में केलि-रत अङ्कित किये गये हैं। परम अन्धकार में मुख चन्द्र का प्रकाश हो जाता है—हार उडुगनों की छवि हरते हैं। किंकिणी एवं चूड़ियों का शब्द होता है। सखियाँ ओट में खड़ी इस सुरति सुख का लाभ लेती हैं। कुंज विहार के लिए राधा कृष्ण कभी-कभी रथ पर भी बैठकर जाते हैं, (वर्षा विनोद ९५, १२२)।

ग्रीष्म में राधाकृष्ण यमुना-पुलिन पर प्रायः विहार करने जाते हैं, (राग संग्रह, १)। काशी में ग्रीष्म ऋतु में गंगा में नौका-विहार नित्य होता है। बनारसी भारतेन्दु को यह सरित्संतरण अत्यन्त प्रिय था, फलतः उन्होंने राधा कृष्ण को यमुना में नौका विहार करते हुए अङ्कित किया है—

> नाव चढ़ि दोऊ इत उत डोलैं
> छिरकत कर सों जल संचित करि, गावत हँसत कलोलैं
> करनधार ललिता अति सुन्दर, सखि सब खेवत नावैं
> नाव हलनि मैं पिया बाहु मैं, प्यारी डरि लपटावैं
> जेहि दिसि करि परिहास झुकावहिं सबही मिलि जल-यानै
> तेहि दिसि जुगल सिमिटि झुकि परहीं, सो छबि कौन बखानै
> ललिता कहत दाँव अब मेरो, तू मों हाथन प्यारी
> मान करन की सौंह खाइ तो हम पहुँचावैं पारी
> हँसत हँसावत, छींट उड़ावत, बिहरत दोऊ सोहैं
> 'हरीचन्द' जमुना-जल फूले जलज-सरिस मन मोहैं
>
> —राग संग्रह ४६.

ग्रीष्म विहार के प्रसंग में भारतेन्दु ने पानी के हौजों और फौव्वारों का भी वर्णन किया है—

> (१) मौज-भरे दोउ हौज किनारे बैठे करत प्रेम की बतियाँ
>
> —राग संग्रह ९७.
>
> (२) कोउ कर सों जल-जंत्र चलावत 'हरीचन्द' बलिहारी
>
> —कृष्ण चरित्र ३९.
>
> (३) एरी फुहारन के दोउ कौतुक में उरझाने
>
> —राग संग्रह ४.

वस्तुतः ये वर्तमान तथा मध्ययुगीन अमीरों के विलास के उपकरण हैं। सूरदास ने इनका उल्लेख कहीं नहीं किया है। नागरीदास में ये सभी उपादान विहार वेला में प्रयुक्त हुए हैं।

ग्रीष्म में राधा का पुष्प-शृंगार होता था। श्री कृष्ण स्वयं अपने हाथों रस ले-लेकर यह सुकुमार शृंगार करते थे, (रागसंग्रह १०, ७५)।

भारतेन्दु ने केवल ग्रीष्म विहार सम्बन्धी पदों का निर्माण नहीं किया है, उन्होंने प्रत्येक ऋतु में युगल-विहार का मनोरम वर्णन किया है। इनमें भी वर्षा एवं वसन्त विहार तो अपूर्व हैं। निम्नांकित पद में भींगते राधा-कृष्ण का चित्र अपूर्व है—

भींजत साँवरे सँग गोरी
अरस परस बातन रस भूली, बाँह बाँह मैं जोरी
कदम तरे ठाढ़े दोउ ओढ़े एकहि अरुन पिछौरी
चुअत रंग अँग बसन लपटि रहे, भींजि भींजि दुहुँ ओरी
जल कन स्रवत सगबगी अलकन, करत जुगल चित चोरी
गावत, हँसत, रिझावत, हिलि मिलि, पुनि-पुनि भरत अँकोरी
बरसत घेरि घेरि घन उमगे, चपला चमक मचोरी
बोलत मोर कोकिला तरु पर, पवन चलत झकझोरी
अति रस रहस वढ़्यो वृंदावन, हरित भूमि तरु खोरी
'हरीचंद' छवि टरत न दृग ते, निरखि भींजती जोरी

—वर्षा विनोद २७.

इस वर्षा में राधा कृष्ण के अंक में हिंडोले का आनंद लेती हुई चित्रित की गई है—

पिय की अँकोर रच्यो है हिंडोर
खंभ जाँघैं, अङ्क पटुली, मंद झुलनि झकोर
हार झूमर, पीत पट झालर लगी चहुँ ओर
सुक मोर पिक किंकिनि बदत, तन स्वेद बरसत जोर
तहँ रमकि झूलत प्रान प्यारी, उमगि थोरहि थोर
'हरीचंद' सखि श्रम-हरन बीजन रहत है तृन तोर

—प्रेमाश्रु वर्षन २२.

हिंडोले से संबंध रखने वाली अनेक रचनाएँ भारतेंदु बाबू ने की हैं। इनमें—'दोऊ मिलि झूलत कुंज वितान' (प्रेमाश्रु वर्षन २३) सबसे बड़ी है। इसमें १०० पंक्तियाँ है। यह गीतिकाव्य न रह कर वर्णनात्मक काव्य

हो गया है। इसमें वस्तुओं का वर्णन अत्यंत संश्लिष्ट है। सूर ने भी हिंडोले का एक दर्जन से अधिक पदों में (२२७७ से २२९० बंबई सं०) अच्छा वर्णन किया है। भारतेंदु ने वर्षा-विहार के अंतर्गत झूले का वर्णन तो किया ही है, अन्य क्रीड़ाओं का भी ग्रहण किया है। सूर ने केवल हिंडोला वर्णन किया है। भारतेंदु ने १७ पदों में हिंडोला वर्णन किया है। वर्षा विहार संबंधी अन्य पद संख्या में और भी हैं, जो 'प्रेमाश्रु वर्षण' एवं 'वर्षा विनोद' में संकलित हैं। वर्षा में कृष्ण का यह प्रसन्न चित्र चित्त को प्रसन्न कर देता है—

> नाचत ब्रजराज आज, साजे नटराज साज,
> पावस सों बदि बदि कै होड़ सी लगाई
> कोकिल कल वंसी धुनि, नृत्य कला मोर नटनि,
> पीत वसन चपला द्युति छीनत चमकाई
> ज्यों ज्यों बरसत सुवेस, त्यौं त्यौं रस बरसत हरि
> घन गरजत उत, इत रहे मृदंग बजाई
> 'हरीचंद' जीति रंग रह्यौ आजु ब्रज अखारैं
> हारे घन, रीझि देव कुसुमन झर लाई

—प्रेमाश्रु वर्षण ४६.

शरद एवं हेमंत संबंधी पदों की संख्या कम है। इन ऋतुओं के अंतर्गत आने वाले पर्वों पर भारतेंदु ने अच्छी पद रचना की है। शरद के अंतर्गत दीपावली का यह वर्णन देखिए—

> आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर
> परम शोभित भई दिव्य दीपावली
> मनहु नगराज निज नाम नग सत्य किय
> विविध मनि जटित तन धारि हारावली
> औषधीगन मनहु परम प्रज्वलित भईं
> किधौं ब्रजवास हित बसी तारावली
> दास 'हरिचन्द' मन मुदित छबि देखिकै,
> करत जै जै बरसि देव कुसुमावली

—कार्तिक स्नान १३.

हेमन्त के अन्तर्गत मकर पर उन्होंने कई पद लिखे हैं। राधा कृष्ण मिलकर इस अवसर पर खिचरी दान करते हैं, जिससे गोरी राधा साँवरे कृष्ण के साथ सदा मिली रहें—

करत दोउ यहि हित खिचरी दान
जामें सदा मिले रहें ऐसेहिं गौर श्याम सुख खान
चित्र वस्त्र धरि परम नेह सों जोरि पान सों पान
'हरीचन्द' त्योहार मनावत सखिजन वारत प्रान.

—राग संग्रह १९.

मकर को लेकर कई पदों में भारतेन्दु ने मुद्रालंकार द्वारा काव्य कौतुक भी किया है।

वसंत विहार के अंतर्गत वसंत पंचमी एवं होली संबन्धी अनेक पद हैं। ये पद 'होली' और 'मधु मुकुल' में हैं। सूर ने होली पर ७८ पद (२४८१ से २५५८ तक बं० सं०) लिखे हैं। भारतेन्दु के भी पद संख्या में इससे कम न होंगे। उन्होंने अनेक पदों में राधाकृष्ण को ही वसंत रूप में त्रिचित किया है, [मधुमुकुल (ह० कला) ४]। होली संबंधी पदों में एक अकृत्रिम उल्लास फूटा पड़ता है। राधा-कृष्ण की होली में हमारा मन रँग उठता है।—'मधुमुकुल' के अंतर्गत ३५० पंक्तियों की एक लम्बी रचना 'होली लीला' है, इसमें राधा-कृष्ण की होली का अत्यन्त विशद एवं संश्लिष्ट अंकन हुआ है।

कुंज बिहारी हरि सँग खेलत कुंज बिहारिनि राधा
आनँद भरी सखी सँग लीने मेटि विरह की बाधा
अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा
घूँघट मैं झुकि चूमि अंक भरि भेटति सब जिय साधा
कूजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ताधा
वृन्दावन-सोभा-सुख निरखत सुर पुर लागत बाधा
मच्यौ खेल बढ़ि रंग परसपर इत गोपी उत काँधा
'हरीचन्द' राधा-माधव-कृत जुगल खेल अवराधा

—मधु मुकुल ७१ (स्फुट ३७).

सूर ने कई होलियाँ आदि से अंत तक एक ही लम्बे तुक वाली—'ही फूल डोल' (२५५४), हो हरि होरी है, (२४५३), मिलि झूमक हो (२४४५), अति बने कन्हाई (२४४१), वारे कन्हैया (२४३०), रँग हो हो होरी (२४१०), मनोरा झूमक हो (२४०३), रँग भीने हो (२४०२), मदमाती हो (२४०१)—बम्बई संस्करण—लिखी हैं; भारतेन्दु ने भी एक होली इस प्रणाली पर लिखी है—

आए कहाँ सों आज प्रात रस भीने हो
अति जँभात अलसात लाल रस भीने हो

—होली ३२

सूर की सभी होलियाँ केवल होली का चित्रण करती हैं, भारतेन्दु की होलियाँ अन्य अनेक कोमल भावों को भी प्रश्रय देती हैं, जैसे ऊपर की होली में एक खण्डिता नायिका का चित्रण किया गया है।

८. खंडिता

कृष्ण बहु नायक थे। कभी कभी राधा को छोड़ वे अन्य गोपियों के यहाँ भी चले जाते थे और बेचारी राधा सारी रात उनकी बाट जोहती, खाट की पाटी पकड़े झींखती रह जाती थी और अपनी सखियों की खुशामद करती थी कि वे जाकर कृष्ण को बुला लावें—

सखी मोरे सैयाँ नहिं आए बीति गई सारी रात
दीपक जोति मैलिन भई सजनी होय गयो परभात
देखत बाट भई यह बिरियाँ बात कही नहिं जात
'हरीचंद' विन विकल बिरहिनी ठाढ़ी ह्वै पछतात

—प्रेम मालिका ९.

परंतु हज़रत सवेरा होने पर आते थे। राधा के इस खडिता रूप का भी चित्रण सात पदों में हुआ है और सुंदर हुआ है। सूरदास ने ललिता (६ पद), चंद्रावली (२७ पद), राधा (२९ पद), सुषमा (१८ पद), वृन्दा (१५ पद), प्रमदा (कई पद) को खंडिता रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार सूर के खंडिता संबंधी पद एक सौ के लगभग हैं। भारतेंदु के पदों से इन पदों की तुलना करने पर प्रकट होता है कि सूर की खंडिताएँ कुछ कड़े मिजाज़ की हैं, वे उतनी वाक्पटु नहीं हैं, उनमें उदारता की भावना बहुत कम है, वे कृष्ण को साफ फटकार देती हैं कि यहाँ अब क्यों आए हो, वहीं जाओ जहाँ रात बिताई है, एकाध ने तो दरवाजा भी बंद कर लिया है। भारतेंदु की खंडिता अत्यंत शिष्ट है, मृदुभाषिणी है। वह कहती है, आज तो बड़े सबेरे मेरे भाग्य जग गए, जो आपके दर्शन मिले—

आजु मेरे भोरहिं जागे भाग
आए पिया तिया-रस-भीने खेलत दृग जुग फाग
चलौ हमैं भूले तो नाहीं, राख्यो जिय अनुराग
साँझ भोर एकही हमारे तुव आवन की लाग

मंगल भयो भोर मुख निरखत मिटे सकल निसि दाग
'हरीचंद' आओ गर लागो साँचो करो सुहाग
—प्रेम प्रलाप ४३.

वह कहती है मुझसे कौन चूक हुई जो आँखे लाल किए हो, यह कह चतुराई से उनके सामने आरसी और झारी भर जल रख देती है—कन्हैया पानी पानी हो जाते हैं—

मोहन तिलक महावर कों सिर, लीलांबर कटि धारे
कौन सी चूक परी हरि हमसों नैन लाल क्यों प्यारे
लै आरसी सामुहें राखी जल लाई भरि झारी
'हरीचंद' उठि कंठ लगाई हँसि कै गिरिवरधारी
—प्रेम मालिका ६९.

वह कहती है रात्रि के श्रम से पैर थक गए होंगे, आइए उन्हें चाप दूँ—

सीरी पौन अरुन किरनावलि भए सहाय पियारे
धन्य भाग जो अजहूँ उठिकै आए भवन हमारे
आओ चरन पलोटों प्यारे सोइ रहो, स्रम भारी
हरीचंद सुनि बचन रचन तिय गर लाई बनवारी
—स्फुट २६.

वह कन्हैया के ऊपर न चिढ़ कर उनसे कहती है, हम और आप एक से हैं, कारण भले ही विभिन्न हों—

हम तुम पिया एक से दोऊ
मानो विलग न नेक साँवरो, घटि बढ़िके नहिं कोऊ
तुम जागे, हमहूँ निशि जागे; तिय सँग, जोहत बाट
खरे बिताई निसि हम दोऊ; मनवत, पकरि कपाट
सिथिल वसन तुमरे औ हमरे; भोगत, पछरा खात
थाकी गति दोउन की; आलस, इत उत आवत जात
अरुनारे दृग अञ्जन फैल्यो; बिलसत, होइ हरास
टूटे बंद कहा कंचुकि के; लपटत, लेत उसास
हम तुम एक प्रान मन दोऊ, यामैं कछू न भेद
'हरीचंद' देखहु बिन श्रम सों दोऊ के मुख स्वेद
—प्रेम प्रलाप ४४.

भारतेंदु के खंडिता संबंधी पद उच्चकोटि के हैं और सूरदास तथा नंददास

के तत्संबंधी पदों को छोड़कर अष्टछाप के शेष कवियों के पद उनकी तुलना में नहीं ठहर सकते।

९. मान

कृष्ण की बहुनायकता पर खीझकर राधा पहले तो उन्हें उलाहना देती हैं—

सजन तेरी हो मुख देखे की प्रीत
तुम अपने जोबन मद माते, कठिन बिरह की रीत
जहाँ मिलत तहँ हँसि हँसि बोलत, गावत रस के गीत
'हरीचंद' घर घर के भौंरा, तुम मतलब के मीत

—प्रेम मालिका ९७ (प्रेम तरंग ३२)

परंतु जब काले रंग पर किसी रंग का असर न पड़ा, तब लाचार हो राधा को मान करना पड़ा। भारतेंदु कृत मानलीला संबंधी सभी पदों में सखी मानिनी राधा को, मान मोचन करने के प्रयास में सब तरह से उलटा सीधा समझाती हुई, हमें मिलती हैं। वर्षा में वह उससे कहती है—

बरषा में कोउ मान करत है, तू कित होत सखी री अयानी
यह रितु पीतम गर लागन की, तू रूसत कित होय सयानी
देखु न कैसी यह अँधियारी, बरसि रह्यो रिमझिम लखु पानी
'हरीचंद' चलि मिलु पीतम सों, लूट न रति-सुख पिय मन-मानी

—वर्षा विनोद २८.

मकर संक्रांति के समय उसे समझाती हैं—

मकर संक्रोन सखी सुखदाई
मकर-कुंडल सों मकर-विलोचनि, क्यों न मिलत तू धाई
मकर-केतु को भय नहिं मानत, घर में रही छिपाई
वे तुव बिनु भे मकर बिना जल, व्याकुल मुकुरन पाई
मान मान तजु मान धरन कर, कर धरि लै गर लाई
'हरीचंद' तज मकर राधिके, रह त्योहार मनाई

—राग संग्रह ८८.

सखी के अनुसार वसंत ऋतु तो मान के और भी अनुपयुक्त है—

यह नव रितु वसंत की सुन्दर, मान न कीजै प्यारी
कर जोरे मनुहार करत हैं ठाढ़े श्री गिरिधारी
कहँ पिय, कहँ तू, कहँ यह औसर, उठि चलि कोप निवारी
भरि रँग सों पिय नवल लाल कों, लै कंचन पिचकारी

साँझ समै कोइल बन बोलै, फूल रही फुलवारी
गिरधिर पियहिं भेंट अंकम भरि 'हरीचन्द' बलिहारी

—मधु मुकुल (ह० कला) १०.

कभी कभी मनाते मनाते सबेरा भी हो जाता था—यह गुरु मान की अवस्था होती थी—

मनवत मनवत ह्वै गयो भोर
खसित निसा नायक पच्छिम दिसि, सोर करत तमचोर
पियहिं सबै निसि जागत बीती, खरे खरे कर जोर
आलस बस अब लरखरात पग, निरखत तुव दृग कोर
क्यों सखि प्रेमहिं लाज लगावति, करिकै वृथा मरोर
'हरीचन्द' गर लगु उठि पिय के, हौं तोहि कहत निहोर

—प्रेम प्रलाप ४२.

अंत में मान-मोचन भी होता है। इसका वर्णन भारतेन्दु ने केवल एक पद में किया है, (राग संग्रह ९९)। 'राम काव्य' में इस पद को उद्धृत किया गया है। व्रजराज एवं रघुराज तथा रति एवं विजय का यह रूपक बहुत सुरुचि पूर्ण नहीं है और राम की मर्यादा के तो सर्वथा प्रतिकूल है।

१०. मंगलमय व्रज

इस प्रकार केलि क्रीड़ा में रत व्रज में मंगल छा गया। गोपियाँ राधा कृष्ण को पाकर कृतार्थ हो गईं। साक्षात् गोलोक गोकुल में उतर आया। किसी को किसी प्रकार का अवसाद विषाद नहीं रह गया—

प्रात समै हरि को जस गावत, उठि घर घर सब घोष कुमारी
कोउ दधि मथत, सिंगार करत कोउ, जमुना न्हान जात कोउ नारी
हरि रस मगन दिवस नहिं जानत, मंगलमय व्रज रहत सदा री
'हरीचन्द' लखि मदन-मोहन-छबि पुनि पुनि जात सबै बलिहारी

—कृष्ण चरित्र १०.

११. प्रवास विप्रलंभ.

कंस की चिंता, अक्रूर का गोकुल आना, बलराम कृष्ण का मथुरा जाना, गोपियों एवं यशोदा का तज्जनित दुःख, कुबलया मुष्टिक चाणूर तथा कंस का बध, देवकी मिलन, नन्द का मथुरा से गोकुल को उदास एवं अकेले लौटना, यशोदा की कातरता आदि प्रसङ्गों को भारतेन्दु बाबू ने छुआ भी नहीं है। इन प्रसङ्गों पर सूरसागर में प्रायः ३०० पद हैं। भारतेन्दु ने सीधे गोपियों का वर्णन किया है। उद्धव आगमन के पूर्व सूरसागर में प्रायः दो सौ पद गोपियों

के विरह-सम्बन्ध में है। इस प्रसङ्ग में भारतेन्दु के भी प्रायः ८० पद हैं। भारतेन्दु बाबू गोपियों के परम भक्त हैं और उनकी प्रशंसा करते अघाते नहीं क्योंकि उन्होंने प्रेम के तत्व को समझा था। वे जानती थीं कि प्रेम में मीन-मेष नहीं होता और इसी के अनुसार उन्होंने आचरण भी किया। उनके अनुसार—

प्रेम मैं मीन-मेष कछु नाहीं
अति ही सरल पन्थ यह सूधो, छल नहिं जाके माहीं
हिंसा द्वेष ईरखा मत्सर मद स्वारथ की बातैं
कबहूँ याके निकट न आवैं, छल प्रपंच की घातैं
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की, पीतम सुख सुखकारी
अपुनो कोटि कोटि सुख पिय के तनिकहि पर बलिहारी
जहँ न ज्ञान अभिमान नेम व्रत विषम-वासना आवै
रीझ खीझ दोऊ, पीतम की, मन आनन्द बढ़ावै
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम, और जगत नहिं जानै
'हरीचन्द' यह प्रेम रीति कोउ बिरले ही पहिचानै
—विनय प्रेम पचासा ३२.

गोपियों के दुःखातिशय का प्रधान कारण है उनका पूर्व-केलि-स्मरण। पहले की सब बातें उनके ध्यान पटल से नहीं हटती और उनके कोमल हृदय को क्षत विक्षत करती रहती हैं—

अब वै उर मैं सालत बातैं
जो नँदनन्दन ब्रज मैं कीनी प्रेम प्रीति की घातैं
वेई कुंज, वही द्रुम पल्लव, वही उँजेरी रातैं
एक प्रान प्यारे ढिग नाहीं, विष सम लागत तातैं
क्रूर अक्रूर प्रान हरि लै गयो, आयो दुष्ट कहाँ तैं
'हरीचन्द' बिदरत नहिं छतियाँ, भईं कुलिस की छातैं
—प्रेम फुलवारी ३१.

मात्र इस पद में क्रूर अक्रूर का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार कुब्जा का उल्लेख भी केवल दो पदों में (प्रेम फुलवारी ५८, प्रेम प्रलाप २) हुआ है।

पुरानी बातें क्या याद पड़ती हैं, हृदय में एक टीस, एक कचोट, एक कसक भर जाती है—

याद परैं वे हरि की बतियाँ
जो बन कुंजन बिहरत मधुरी कहीं लाइ कै छतियाँ

कहँ वे कुंज, कहाँ वे खग मृग, कहँ वे बन की पतियाँ
'हरीचंद' जिय सूल होत लखि वही उँजेरी रतियाँ

—प्रेम फुलवारी २९.

कभी-कभी कार्याधिक्य के कारण राधा क्षण मात्र के लिए कन्हैया को भूल-सी जाती है; तब उसे क्षणिक सुख मिल जाता है। परंतु कोई न कोई कन्हैया की याद दिलाकर उसके पूरते हुए घाव को हरा कर देती है, तब उसके लिए गृह-कार्य करना भी कठिन हो जाता है,—

सखी री क्यों सुधि मोहिं दिवाई
हौं अपने गृह कारज भूली, भूलि रही बिलमाई
फेर वहै मन भयो जात अब, मरिहौं जिय अकुलाई
हौं तबही लौं जगत काज की, जब लौं रहौं भुलाई

—चंद्रावली

यही नहीं, यदि यह सुधि पनघट पर आई है, तब तो घर लौटना भी कठिन हो जाता है—

अब मैं कैसे चलूँगी, क्यों सुधि मोहिं दिलाई
पनघट ही पै पिय प्यारे को क्यों दियो नाम सुनाई
दूर रह्यो घर, गति मति भूली, पग न धर्‌यो अब जाई
'हरीचंद' हौं तबहिं लौं काम की, जब लौं रहौं भुलाई

—प्रेम फुलवारी ३६.

राधा के नेत्रों में गोपाल इस प्रकार नाचते रहते हैं कि कभी-कभी उसे ऐसा ज्ञात होता है मानो वे मथुरा गए ही न हों, वह केलि-शय्या पर जाती है, उसे रिक्त पा उसे अत्यंत क्षोभ होता है, अपनी भूल का पता लगता है और वह अपनी सखी पर खीझ उठती है कि उसने सेज लगाई ही क्यों ? (प्रेम फुलवारी ५५)

राधा को अपना जीवन ही भार हो गया है। वह सोचती है क्या मैं अमर होकर आ गई हूँ—'मेरे ही सिर विधि दीनी काह जगत-अमराई !' (प्रेम फुलवारी ५५)। वह सोचती है वे ही दृश्य मुझे फिर फिर देखने पड़ेंगे ? ये आँखें कभी न बंद होंगी ?—

रहे यह देखन को दृग दोय
गए न प्रान अबौं, अँखियाँ ये जीवति निरलज होय
सोई कुंज हरे हरे देखियत, सोई सुक पिक कीर
सोई सेज परी सूनी है बिना मिले बलबीर

वही झरोखा, वही अटारी, वही गली, वही साँझ
वहै नाहिं, जो वेनु बजावत ऐहै गलियन माँझ
अजहू वही, वही गौवें हैं, वही गोप अरु ग्वाल
बिडरे सब अनाथ से डोलत, व्याकुल बिना गुपाल
नंद भवन सूनो देखत, क्यों गयो नहीं हिय फाट
'हरीचंद' उठि बेगहि धाओ, फेरहु ब्रज की बाट
—प्रेम फुलवारी ५६.

बेचारी राधा अपने को असहाय पाती है, पीड़ा का बँटानेवाला कोई दिखाई नहीं देता—

कोऊ ना बटाऊ मेरी पीर को
सब अपने स्वारथ के, कोऊ देनहार नहिं धीर को
—प्रेम फुलवारी ५४.

राधा को सन्देह हो जाता है, आया वे दिन सच्चे थे या स्वप्न, जब कन्हैया के साथ केलि करने में दिन रात का भी ध्यान न रहता था—

वे दिन सपन रहे कै साँचे
जो हरि सँग बिहरत याही ब्रज बीति गए रँग-राचे
कहाँ गई वह सरद रैन सब जिनमें हरि सँग नाचे
कहँ वह बोलन-हँसन-मिलन-सुख मिलै जौन बिनु जाँचे
'हरीचंद' हरि बिनु सूनो ब्रज लखनहिं हित हम बाँचे
—कृष्ण चरित्र ४१.

गोपियाँ चाहती हैं कि मरने के पहले कम से कम एक बार कृष्ण उन्हें दर्शन दे जायँ—

फेरहू मिलि जैए इक बार
इन प्रानन को नाहिं भरोसो, ए हैं चलन तयार
जौ छतियन सों लगि नहिं बिहरो प्यारे नंदकुमार
तौ दूरहिं सों बदन दिखाओ, करौ लाल मनुहार
नहिं रह जाय बात जिय मेरे, यह निज चित्त बिचार
'हरीचंद' न्योतेहु के मिस ब्रज आओ बिना अबार
—प्रेम फुलवारी २५.

सूर की भी गोपियाँ चाहती हैं कि कृष्ण नेवते के ही बहाने सही, एक बार आकर उनसे मिल जायँ तो अच्छा, (१०।२७५८ वें० सं०)।

गोपियों को आशंका है कि मृत्यु से पहले कन्हैया का पुनःदर्शन न होगा और मन की मन ही में रह जायगी—

हौंस यह रहि जैहै मन माहीं
चलती बार पियारे पिय को बदन बिलोक्यो नाहीं
बैदन के बदले पिय प्यारे धाइ गही नहिं बाहीं
'हरीचंद' प्यासी ही जैहैं अधर-सुधा-रस चाहीं

—प्रेम फुलवारी २७.

इसी प्रकार का एक पद सूर में भी है, (१०।२७४८ वें० सं०); परन्तु भारतेन्दु ने प्रसंग बदल कर नव-जीवन दे दिया है।

गोपियों से जब यह विरह की पीर नहीं सही जाती, तब वह कुछ खोटी खरी सुनाने में भी नहीं चूकतीं। वे कन्हैया को बुलाती हुई कहती हैं—

'आओ मेरे झूठन के सिरताज
छल के रूप, कपट की मूरत, मिथ्यावाद जहाज
क्यों परतिज्ञा करी, रह्यो जो ऐसो उलटो काज
पहिले तो अपनाइ, न आवत तजिबे में अब लाज!

—चंद्रावली

वे अपने 'झूठों के सिरताज' की खुटाई पर भी पूर्ण प्रकाश डालती हैं—

खुटाई पोरहिं पोर भरी
हमहिं छाँड़ि मधुबन में बैठे, बरी कूर कुबरी
स्वारथ लोभी मुँह देखे की हमसों प्रीति करी
'हरीचंद' दूजेन के ह्वै कै हा हा हम निबरी

—प्रेम प्रलाप २.

सूर ने तो राधा और कृष्ण दोनों को गोपियों द्वारा खोटा कहलाया है—

'सूरदास प्रभु वै अटि खोटे, यह उनहूँ ते अतिशय खोटी'

वर्षा में विरहिणी गोपियों का दुःख और भी बढ़ जाता था। सूरदास ने वर्षा-विरहिणी के प्रसंग में चातक की चर्चा चलाकर अनेक सुंदर पद लिखे हैं। भारतेंदु ने पपीहे का पल्ला नहीं पकड़ा है। वर्षा से ही अलंकरण सामग्री लेकर उन्होंने इन विरहिनियों का अंकन किया है। अन्य कवियों की भाँति दूर की कौड़ी लाने वे नहीं गए हैं। भारतेंदु का विरह वर्णन स्वाभाविक है, उसमें विहारी अथवा जायसी की सी अस्वाभाकिता नहीं है। श्याम के बिना बेचारी राधा के मन में सदैव श्याम-घटा-सी छाई रहती है—

मो मन श्याम घटा सी छाई
बरसत है इन नैनन के मग, पिय बिनु बरसा आई

मन मोहन बिछुरे सों सब जग सूनो परत लखाई
'हरीचंद' बिनु, प्रान बचन को नाहिं लखात उपाई
—वर्षा विनोद ६६.

वर्षा की मारी इस गोपी के शरीर में पावस ने अपना घर ही बना लिया है—

हमारे तन पावस बास करयो
बरसत नैन-बारि सबही छन, दुख घन उमड़ि परयो
जुगनूँ चमक अँगार बिरह की श्वासा बान भरयो
'हरीचंद' हिय करो मिलि सीतल, ना तरु गात जरयो
—वर्षा विनोद १२६.

हरि के अभाव में नयनों से नदियाँ बह निकली हैं—

हमारे नैन बहीं नदियाँ
बीती जानि औधि सब पिय की जो हमसे बदियाँ
अवगाह्यो इन सकल अङ्ग ब्रज अञ्जन को धोयो
लोक वेद कुल कानि बहाई, सुख न रह्यो, खोयो
डूबत हौं अकुलाइ अथाहन यहै रीति कैसी
'हरीचंद' पिय महाबाहु तुम आछत गति ऐसी
—प्रेमाश्रु वर्षण २०.

वर्षा की ही भाँति वसंत भी विरहिणियों के लिए अत्यंत दुखदाई होता है। कन्हैया के अभाव में सुखदायक होली भी प्राण की गाहक होकर आई है—

प्रान पिया बिनु प्रान लेन कों, फिर होरी सिर पर घहरानी
गावन लोग लगे इत उत सब, सुनि सुनि फिर हो चली मैं दिवानी
फिर फूले टेसू सरसों मिलि, फिर कोइल कुहकत बौरानी
'हरीचंद' फिर मदन जोर भयो, का मैं करौं, बिरहिन अकुलानी
—मधु मुकुल २१.

बेचारी गोपी को चिंता हो रही है कि मैं किसके साथ होली खेलूँ, मेरा प्रिय तो दूर, सुदूर, चला गया है—

सखी हमरे पिया परदेस होरी मैं कासों खेलौं?
—होली १६.

सूर ने वसंत बिरहिणी का चित्रण नहीं किया है। वसंत-विरहिणी भारतेंदु की अपनी विशेषता है।

यदि सूरसागर एक विरह-वारीश है, तो भारतेंदु के विरह-संबंधी पद एक सरोवर के समान हैं, जहाँ अनेक रंग के सुगंधित कमल खिले हुए हैं, जिनमें अपना रंग है, अपनी बू है—जो किसी दूसरे के मुहताज नहीं, सूर के विरह-वारीश के भी नहीं।

१२. भ्रमर-गीत

सूरसागर में भ्रमर गीत संबंधी प्रायः ६०० पद हैं, भारतेंदु पदावली में केवल १०, ये दशो पद गोपियों की उक्तियाँ हैं, जिनमें से अधिकांश उद्धव को संबोधित हैं। गोपियाँ उद्धव से स्पष्ट कह देती हैं—

पिय सों प्रीति लगी नहिं छूटै
ऊधौ चाहो सो समझाओ, अब तो नेह न टूटै
सुंदर रूप छोड़ि, गीता को ज्ञान लेइ को कूटै
'हरीचंद' ऐसो को मूरख, सुधा त्यागि बिख लूटै

—प्रेम फुलवारी ३९.

वे स्पष्ट कह देती हैं, एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं—

रहैं क्यों एक म्यान असि दोय
जिन नैनन में हरि रस छायो, तेहि क्यों भावै कोय
जा तन मन मैं रमि रहे मोहन, वहाँ ज्ञान क्यों आवै
चाहो जितनी बात प्रबोधो, ह्याँ को जो पतिआवै
अमृत खाइ अब देखि इनारुन, को मूरख जौ भूलै
'हरीचंद' ब्रज तो कदली-बन, काटौ तो फिरि फूलै

—प्रेम फुलवारी २०.

सूरसागर में गोपियाँ कहती हैं—

ऊधो मन न भए दस-बीस
एक हुतो सो गयो श्याम सँग को अवराधे ईस

इन्हीं पंक्तियों को आधार मानकर भारतेंदु जी ने भी लिखा है—

ऊधो जौ अनेक मन होते

—प्रेम मालिका ६८.

गोपियों के लिए यह असंभव दिखाई देता है कि जिन इंद्रियों द्वारा श्याम-रस का आस्वादन किया है. उन्हीं द्वारा योग साधन किया जाय—

हरि सँग भोग कियो जा तन सों, तासों कैसे जोग करैं
जो शरीर हरि सँग लपटानो, वापैं कैसे भसम धरैं

जिन श्रवनन हरि बचन सुन्यौ है, ते मुद्रा कैसे पहिरैं
जिन बेनिन हरि निज कर गूँथी, जटा होइ ते क्यों निकरैं
जिन अधरन हरि अमृत पियो अब, ते ज्ञानहिं कैसे उचरैं
जिन नैनन हरि-रूप बिलोक्यो, तिन्हैं मूँदि क्यों पलक परैं
जा हिय सों हरि हियो मिल्यो है, तहाँ ध्यान केहि भाँति धरैं
'हरीचन्द' जा सेज रमे हरि, वहाँ बघंबर क्यों बितरैं

—प्रेम फुलवारी २४.

१३. कृष्ण का अभिषेक.

सूरसागर में कृष्ण का अभिषेक कहीं नहीं वर्णित है। भारतेन्दु ने अत्यन्त संस्कृत पदावली में इसका विशद एवं संश्लिष्ट अंकन 'कृष्ण-चरित्र' के सातवें पद में किया है। 'सुर मुनि सभी वर वेद विधि से व्रजपुराधीश का अभिषेक कर रहे हैं। संपूर्ण तीर्थों, गंगा, जमुना आदि पवित्र नदियों तथा चतुर्सागर का विमल नीर कलसों में भरा गया है। वेद-ध्वनि हो रही है तथा स्तोत्र एवं इतिहास-पुराण का पाठ हो रहा है। शंख, भेरी, पणव, मुरज, ढक्का तथा घण्टे बज रहे हैं। सर्वोषधियों, मलय, मृगमद, घनसार, केसर, कुसुम, तुलसी आदि से मिश्रित सुगन्धित उदक घड़ों से ढल रहा है। श्याम के अभिराम तन से सिक्त पीत पट लिपट गया है। छनकर आती हुई कांति अत्यन्त मनोहर है। कल कुंचित केशों से नीर कण झरे पड़ रहे हैं, मानों नवल उज्ज्वल मुक्तावली झर रही हो। बन्दाजन विरद बद रहे हैं, सूत चारण चारु चरित गा रहे हैं। द्विज गण हाथों में श्रीफल लिए हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। रुख लिए हुए, जी में डरते हुए, सुरगण जुहार कर रहे हैं।' इस पद की पदावली बरबस विनय पत्रिका की याद दिला देती है—

घोष सीमन्तिनी काम मंगल शब्द
श्रवन-पुट जात दुख दुरित दारिद हरत
दास 'हरिचन्द' के हृदय मधि तौन छबि
खचित वल्लभ-कृपा बल, न टारे टरत

१४. रथयात्रा.

कृष्ण की रथयात्रा के कई पद भारतेन्दु ने लिखे हैं। इनमें एक (राग-संग्रह २९) अभिषेक वाले पद की शैली एवं छंद में लिखा गया है और अत्यन्त उच्च कोटि का हुआ है। 'कृष्ण का रथ परम विचित्र, चारु चित्रित एवं चल चक्रों वाला है, वह जगद्विजयी है। वलाहक, शैव्य, सुग्रीव एवं मणिपुष्प नामक चार अति तरलतर तुरंग पथ सुपथ सभी जगह उसे खींचते चल रहे हैं। ध्वजा फहरा रही है, पताका का कलश चमक रहा है, उसके

ऊपर चक्र है, चक्र के नीचे विनत पवन सुत हैं ; विनता-सुअन गरुड़ भी गर्जन कर रहे हैं। स्तंभ, कूबर, छत्र, डांड़ी सभी चारु एवं विविध मनि जटित हैं ; वेदोच्चार हो रहा है। झाँझ झनकती है ; घंटा घहर घहर कर घनघोर शब्द कर रहा है ; घुँघुरुओं की भी ध्वनि होती चल रही है। दुखीजन देखकर सुखी हो जाते हैं ; दैत्य दल भयभीत हो जाता है। सारथी दारुक घोड़ों को सचेत कर रहा है, वे मन के वेग से चल रहे हैं। देव और ऋषि गण जयजयकार कर रहे हैं, मुरछल झला जा रहा है, सूत वंदी आदि विरद कह रहे हैं। इस सरस शोभा को देख दृग थकित हो जाते हैं और सुमन वर्षा कर चारों अर्थों की प्राप्ति कर लेते हैं।'

सूरसागर दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध में सूरदास ने भी दो पदों (४, २९ बं० सं०) में रथारूढ़ कृष्ण के द्वारका प्रवेश का वर्णन किया है। वस्तुतः दोनों पद एक ही हैं, एकाध चरण ही भिन्न हैं। भारतेंदु का ऊपर का पद सूर के इन दोनों पदों से बहुत आगे है। इनका विषय एक ही है–'देखो माई हरि जू के रथ की सोभा।'

छह पद कृष्ण के रथ-विहार से संबंध रखते हैं। कृष्ण के रथ पर आने का समाचार सुन बड़ा उत्साह छा रहा है—

आजु ब्रज भई अटारिन भीर
आवत जानि सुरथ चढ़िकै पथ सुंदर श्याम शरीर
अटा झरोखन छज्जन छाजन गोखन द्वारन द्वार
मुख ही मुख लखिए जुवतिन के, सोभा बढ़ी अपार
फूली मनौ रूप फुलवारी, हरि हित साधि सनेह
कै चंदन की वंदनमाला बाँधी ब्रज प्रति गेह
करत मनोरथ विविध भाँति सब, साजैं मंगल साज
'हरीचंद' तिनको दरसन दै, दुख मेट्यौ ब्रजराज

—कृष्ण चरित्र २

रथ आ गया। श्रीकृष्ण ने राधा को देखा और उन्हें तत्काल रथारूढ़ कर लिया। इसका उल्लेख एक गोपी निम्नांकित पद में इस प्रकार करती है—

वह देखो सखि सेत ध्वजा फहरात
ज्यों ज्यों रथ नियरे आवत है, त्यों त्यों मन अकुलात
खंजन से भए नैन सखी के, चक्रित इत उत डोलैं
आवत प्राननाथ रथ चढ़िकै, सजनी यह मुख बोलैं
जहँ लगि दृष्टि जात प्यारी की, यह छबि होत रसालैं
मानहुँ आदर सों पिय के हित, कमल पाँवड़े डालैं

अति अनुराग संग बैठन को, प्यारी मन की जानी
'हरीचंद' लै रथ बैठाए, तिया अतिहि सुख मानी
—राग संग्रह ११३

रथ हाँकने का भी कृष्ण का ढंग निराला है। कहीं रथ ठिठक कर धीरे धीरे चलता है, कहीं एकाध घड़ी रुका रहता है, कहीं अत्यन्त तेज चाल से दौड़ता है, कभी किसी का अंग-स्पर्श करता हुआ चलता है, किसी के घर की परिक्रमा करता है, किसी-किसी पथ पर तो वह बार-बार निकलता है—भारतेन्दु ने रथ चालन के बहाने कृष्ण के मन का सच्चा चित्र अङ्कित किया है—

कछु रथ हाँकनहू मैं भाँति
यह कछु औरहि चलनि चलावनि, औरै रथ की कांति
कहुँ ठिठकि रथ रोकि घरिक लौं, ठाढ़े रहत मुरारि
कहुँ दौरावत अतिहि तेज गति, कहुँ काहू सों रारि
काहु को अङ्ग परसि रथ चालनि, काहु लेनि दौराय
चाबुक चमकि तनक काहू तन, मारनि देनि छुआय
काहू के घर की फेरी दै, घूमनि करि रथ मंद
बार बार निकसनि वाही मग, मैं जानी 'हरिचंद'
—कृष्ण चरित्र १६.

१५. उपसंहार

भारतेन्दु पदावली के विवेचन से स्पष्ट है कि इसके प्रधान अंग हैं—गुरु-वन्दना, विनय, कृष्ण-राधा जन्म, पूर्वानुराग, राधा रूप, राधा कृष्ण विवाह, युगल विहार तथा गोपी विरह। इन क्षेत्रों में भारतेन्दु की प्रतिभा ने पर्याप्त नूतनता की अवतारणा की है और इन पर सूर का प्रभाव बहुत ही कम है।

सूर को तो प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में दक्षता प्राप्त है, पर विनय, माखन लीला, चीर हरण, गोवर्द्धन धारण, दान लीला, पनघट लीला, मुरली, मान, नयन, कृष्ण-रूप, गोपी-विरह, भ्रमर-गीत आदि का उन्होंने अत्यधिक विस्तार किया है। भारतेन्दु ने इन विषयों पर कम ही पद लिखे हैं, परन्तु यहाँ भी कुछ मौलिक पद उन्होंने दिए हैं और सूर का कोरा अनुकरण नहीं किया है।

सूर के लिए एक मात्र काम पद रचना करना था; भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य को जन्म दिया, गद्य साहित्य के विविध रूपों—नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास, आलोचना, गद्य काव्य, जीवन चरित, इतिहास, पुरातत्व,

परिहास—का उन्होंने प्रारम्भ किया; हिन्दी काव्य को नया पथ-निर्देश किया; उनका साहित्यिक जीवन भी (१८ वर्ष) सूर के साहित्यिक जीवन की अपेक्षा बहुत कम है, प्राय: उसका पंचमांश; साथ ही भारतेन्दु का जीवन अत्यन्त व्यस्त था। इतना होते हुए भी भारतेन्दु ने इतने अधिक पदों का निर्माण किया, यह कम गौरव एवं आश्चर्य की बात नहीं है।

भारतेन्दु ने सूर का अध्ययन किया था। वे पहले व्यक्ति हैं जिसने सूर के जीवन पर गंभीरता पूर्वक विचार किया, (चरितावली, साहित्यलहरी)। साहित्यलहरी के ११८ वें पद की ओर सर्व प्रथम उन्हीं का ध्यान गया। यह वह पद है जिसमें सूर ने अपनी वंशावली दी है। (यहाँ मुझे इस पद की प्रामाणिकता पर कुछ नहीं कहना है।) फलतः सूर का प्रभाव उन पर पड़ना स्वाभाविक ही था, विशेष कर इस दशा में और भी, जब कि वे स्वयं वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव थे। भारतेन्दु पर सूर का प्रभाव है, पर वे सूर के चोर नहीं हैं।

भारतेन्दु की भाषा सूर की भाषा की अपेक्षा अधिक सरल एवं प्रसाद गुण पूर्ण है। उसमें सूर की भाषा की कोई कठिनता नहीं है। भारतेन्दु पदावली की भाषा लोक-भाषा के अधिक निकट एवं मुहावरों से अपेक्षाकृत अधिक परिपूर्ण है। भारतेन्दु के बहुत कम पदों में अलंकारों तथा तत्सम-बहुल शब्द-प्रयोग के कारण कठिनाई आई है। सूरसागर यत्र-तत्र कूट पदों से भरा है। भारतेन्दु पदावली में एकाध ही कूट पद हैं।

८

कथा काव्य

भारतेन्दु को मुक्तकों की ही परम्परा विरासत में मिली थी। रीति काल मुक्तकों का रत्नाकर है। इस युग में प्रबन्ध काव्य नहीं लिखे गए और जो लिखे भी गए, उनमें सफलता नहीं मिली, वे अत्यन्त शिथिल रहे। भारतेन्दु बाबू के पिता बाबू गोपालचन्द्र जी ने 'जरासंध-वध' नामक महाकाव्य भी लिखा है, वह भले ही महाकाव्य न कहा जा सके, पर एक प्रबन्ध काव्य तो वह है ही और उनकी रुचि का झुकाव सूचित करता है। भारतेन्दु जी ने भी प्रबन्ध काव्य की ओर रुचि दिखलाई है, पर वे वस्तुतः मुक्तकों के ही कवि हैं। देवी छद्म लीला, तन्मय लीला, दान लीला, रानी छद्म लीला, वेणु गीति उनके कुछ कथा काव्य हैं। ये सभी रचनाएँ छोटी-छोटी हैं और कृष्ण लीला से सम्बन्ध रखती हैं।

(१) देवी छद्म लीला

'देवी छद्म लीला' सं० १९३० में बनारस प्रिंटिंग प्रेस से स्वतन्त्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। यह २८ पदों की एक छोटी सी रचना है। संक्षेप में इसका कथानक यह है—

राधा चिंतित थीं, कृष्ण के लिए उनके हृदय में अनुराग उत्पन्न हो चुका था, कृष्ण बहुनायक थे, बेचारी राधा उन्हें कभी पकड़ नहीं पाती थीं। सौत भी उन्हें पल-मात्र को नहीं छोड़ती थी। उनके बिना राधा का जीना दूभर हो रहा था। १।

तब राधा की मुँह बोली सखी ललिता ने एक उपाय रचा। उसने राधा से कहा—हम सब ग्वाल और पुजारी बनेंगे, तुम देवी बन जाओ। हम लोग गोप बनकर कृष्ण के पास जायँगी और कहेंगी कि वृन्दावन में एक अद्भुत देवी अवतीर्ण हुई हैं; उनकी कला प्रत्यक्ष है। हम छल कर उन्हें तुम्हारे पास लाएँगी। २।

राधा के भी मन में यह बात बैठ गई और निश्चय के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। मन्दिर में राधा आसन मार देवी बन बैठ रहीं। सखियों ने भी पुजारी एवं पूजकों का रूप धारण कर लिया। ये गोपवेशी गोपियाँ कृष्ण के पास

गईं और उनसे देवी की भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं उन्हें देवी-दर्शन के लिए प्रेरित किया। ३, ४।

कृष्ण मन्दिर में पहुँचे। वहाँ अपार भीड़ थी। कोई आ रहा था, कोई जा रहा था, कोई स्तुति कर रहा था, कोई फूल चढ़ा रहा था, कोई जयजयकार कर रहा था। मनमोहन ने भी पूजन का उपक्रम किया। ५।

यशोदा किसी दूसरे गाँव निमन्त्रण में जा रही थीं। वे भी उस रास्ते से निकलीं। भीड़ देखकर उन्होने पूछा, यहाँ यह भीड़ क्यों है? लोगों ने बताया—यहाँ एक प्रत्यक्ष कलावाली देवी अवतीर्ण हुई हैं, जो मनोवांछित फल देनेवाली हैं। यशोदा भी देवी के दिव्य-दर्शन का लोभ सवरण न कर सकीं और माला फूल बतासा ले मन्दिर में आईं। ६।

कृष्ण भी माता के पास आ गए। सम्मिलित पूजन कर लेने के अनन्तर यशोदा ने देवी से बर माँगा—

चिर जीओ मेरो कुँवर कन्हैया
इन नैनन सों हौं नित देखों राम कृष्ण दोउ भैया
अटल सोहाग लहो राधा मेरी दुलहिन ललित ललैया
'हरीचंद' देवी सों माँगत आँचर छोरि जसोदा मैया। ८।

राधा का नाम सुनते ही मूर्ति मन में मुसकुरा उठी परंतु यह भेद किसीपर प्रकट नहीं हुआ। यशोदा प्रसाद लेकर घर चली गईं। ९।

परंतु कन्हैया के मन में संदेह हो गया—राधा का नाम लेते ही पुजारी लोग मुसकुरा पड़े थे—क्यों? मूर्ति भी संभवतः मुसकुरा उठी थी—क्यों? प्रसाद की माला में भी राधा के स्वेद की गंध आ रही थी—क्यों? इन प्रश्नों ने उनके चित्त को मथित कर दिया। १०।

मोहन ने सोचा यदि यह राधा ही है तो प्रीति छिप नहीं सकती। ऐसा सोचकर पान का बीड़ा ले देवी के अधरों से लगाया और ऐसा करने में अपने नखों से देवी के अधर भी छू लिए। स्पर्श मात्र से देवी का तन पुलकित हो गया, सखियों ने रोका, देवी को मत छुओ। कन्हैया मुसकुरा पड़े—'मुझे सब भेद ज्ञात हो गया है'। ११।

हाथ जोड़कर कन्हैया ने स्तुति प्रारंभ की—'हे वृंदावन की देवी, आपकी जय हो, आप तो बोलती देवी हैं, फिर यह मौनावलंबन क्यों?, मुझसे जो भी अपराध हुए हों, क्षमा कीजिए, मैं तो आपके रूप का उपासक हूँ, आपका बिना मोल लिया दास हूँ, मेरी विनती स्वीकार कीजिए और मान त्याग दीजिए। अब बहुत हुआ। आपके चरणों की शपथ, जो फिर कभी अपराध करूँ,

क्षमा कीजिए, आपकी शरण हूँ।' कहते कहते कृष्ण विह्वल हो, देवी के चरणों पर गिर पड़े। १२, १३।

प्रियतम को चरणों पर पड़ा देख, राधा का मान छूट गया, हृदय में कपट नहीं रह गया, छद्म वेश की भी सुधि जाती रही, राधा ने उठकर कन्हैया को प्रेमावेश से भुजाओं में कस लिया। १४।

कन्हैया ने पूछा, 'भला यह पाखंड क्यों फैलाया?' राधा का उत्तर था—'तुम्हारे लिए।' फिर दोनों एक दूसरे के क्रोड़ में विलीन हो गए। १५।

सखियों ने भी अपना पूर्व रूप धारण किया और युगल स्वरूप की आरती की। १६, १७।

अंत में कवि की कामना है—

यह रस वृज मैं रहो सदाई
जो रस आजु रह्यौ कुञ्जन मैं, छद्म-केलि सुख पाई
नित नित गाओ री सब सखियाँ, मोहन-केलि बधाई
'हरीचंद' निज बानी पावन करन सुजस यह गाई १८.

यह कथा सर्वथा मौलिक, सरस तथा सरल एवं अपने लघु रूप में सफल भी है। यशोदा को भी लाकर चमत्कार बढ़ा दिया गया है।

(२) तन्मय लीला

तन्मय लीला 'हरिश्चन्द मेगजीन' की जनवरी सन् १८७४ ई० (१९३०) की संख्या में प्रकाशित हुई। इसमें ७ पद हैं। यह भी राधा की पूर्वानुराग संबंधी रचना है। संक्षेप में इसका कथानक यह है—

राधा श्याम के प्रेम-रस में पूर्ण रूप से डूब गई। न तो उसे गुरुजनों का भय रह गया और न तो लोक लज्जा की चिन्ता। वह सदा हरि-रूप-ध्यान-मग्न रहती थी और अपने शरीर का भी सँभार उसे नहीं रह गया था। १।

यहाँ तक कि वह स्वयं अपने को घनश्याम समझने एवं कहने, कृष्ण की ही तरह झुक झुककर वेणु बजाने और बाँसुरी में 'राधा-राधा' गाकर बुलाने लगी। कभी कभी दोनों नेत्रों को मूँदकर ध्यानावस्थित भी हो जाती थी। २।

कभी कभी कुंजों में जाकर राधा-राधा पुकारती थी। कभी कहती थी—'वृष-भानु नंदिनी इतना मान न करो'। कभी कहती, 'प्राण प्यारी मैं तुम्हारी शरण हूँ, मेरा कहना मान लो'। कभी कहती, 'हे सुबल, श्रीदामा, चलो आज पनघट रोक दें। चलो आज दधि-दान लें'। कभी कहती, 'राधा मेरा खिलौना चुरा ले गई है'। ३।

एक दिन सखियाँ राधा के घर गईं। उन्होंने देखा राधा दोनों नेत्र बन्द किए हुए है, नेक भी नहीं बोल रही है। उन्होंने अनेक प्रकार से उसे बुलाया, पर वह चुप ही रही। किसी सखी ने गोपाल का नाम लिया, तब वह व्याकुल होकर बोल उठी, परन्तु सखियों को देखकर संकुचित भी हो गई। ४।

फिर राधा कृष्ण रूप हो गई और सखियों से बोली—प्यारी ललिता, तू मुझे राधा से मिला दे। मैं तुझे अपना पीताम्बर और रत्न-जटित बाँसुरी दे दूँगा। ५।

गोपियाँ राधा की यह तन्मयता देख चकित हो गईं। उन्होंने सोचा यदि किसी प्रकार कन्हैया यहाँ आ जायँ, तो इसका यह रोग अपने आप दूर हो जाय। ६।

उसी समय घनश्याम वहाँ आ गए। राधा को तन्मय देख वे मुग्ध हो गए। उन्होंने कहा—'प्यारे तुमने बाँसुरी में राधा राधा कह कर टेर बुलाया था, लो मैं आ गई हूँ।' राधा ने तत्काल नेत्र खोल दिए और सामने श्याम सुन्दर को समुपस्थित पाया। नेत्रों में प्रेमाश्रु छा गए और दोनों एक दूसरे से लिपट गए। ७।

कवि ने अपनी रसना को पवित्र करने के लिए ही यह यश गाया है। यह कथा भी सरस एवं सरल है। यह पूर्णरूपेण मौलिक नहीं है। तन्मयता के अनेक उदाहरण पूर्ववर्ती साहित्य में पाए जाते हैं।

(३) दान लीला

दान लीला १९३० की रचना है। इसमें १५, ११ के विराम से २६ मात्राओं का एक लौकिक छंद व्यवहृत हुआ है। इसमें कुल १३ छंद हैं। १२ छंदों में कथनोपकथन है। इस कथनोपकथन की विशेषता यह है कि कहने वाले का नाम नहीं दिया गया है। पूरी पूरी पंक्तियों में केवल वक्तव्य दिया गया है। साथ ही संभाषण में एक विशेष सौंदर्य इसलिए आ गया है कि प्रथम वक्ता के शब्दों को ही पकड़कर दूसरा उत्तर देता है। भाषा अत्यंत सरल एवं सरस है। उदाहरणार्थ—

गोपी—जो चाहौ सो लाड़िले, हँसि हँसि गो-रस लेहु
सखन संग भोजन करौ, औ मोहिं जान तुम देहु
कृष्ण—थोरे ही निपटी भले, दै गो-रस को दान
परम चतुर तुम नागरी, लिये हमको मूरख जान
गोपी—तुमको मूरख को कहै हो, यह का कहत मुरारि
सकल गुनन की खान हो, कहा जानै ग्वारि गँवारि

कृष्ण—जदपि सकल गुन-खानि हैं हो, नागर नाम कहात
पै तुव भौंह-मरोर सों, मेरो भूलि सकल गुन जात

यह प्रश्नोत्तर अत्यंत नाटकीय है। परंतु नाटकीय ढंग से इसकी छपाई नहीं हुई है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। वहाँ वक्ता की सूचना नहीं दी गई है—अर्थ से वक्ता को ढूँढ़ना पड़ता है। इतना सुंदर संभाषण उनकी अन्य लीला कथाओं में नहीं है।

वस्तुतः इसका छंद दोहा है, जिसमें बहुत साधारण परिवर्तन किया गया है—

क्यौं भूलीं सब गोपिका हो, करिकै हमसों प्रीति
यह हमको समुझाइए, क्यों भाखत उलटी रीति

यदि इसके बीच से 'हो' तथा 'क्यों' निकालकर इस प्रकार कर दिया जाय, तो यह दोहा हो जायगा—

क्यों भूलीं सब गोपिका, करिकै हमसों प्रीति
यह हमकों समुझाइए, भाखत उलटी रीति

वस्तुतः दोहा को ही गेय बनाने के लिए विषम चरणों के अंत में दो दो मात्राएँ और बढ़ा दी गई हैं, कहीं कहीं नहीं भी बढ़ाई गई हैं।

(१) प्यारे तुमरे ही लिए, सब जग को बेवहार
(२) तुम्हैं कहा कोउकी परी, भलेइ देउ कोउ प्रान

अधिकांश स्थलों पर 'हो' लगाकर ही दो मात्राएँ बढ़ाई गई हैं—

(१) हम उलटी नहिं भाखती (हो) समुझो तुम चित चाह
हम दीनन के प्रेम की (हो) कहा तुम्हैं परवाह
(२) करन देहु जग को हँसी (हो) चुप ह्वै हैं थकि जाइ
तृन सो सब जग छाँड़ि कै (हो) मिलैं निसान बजाइ

(४) रानी छद्म लीला

सर्वप्रथम हरिश्चंद्र मेगजीन, १५ फरवरी सन् १८७४ ई० (१९३१ वि०), में 'रानी छद्म लीला' प्रकाशित हुई। यह ८२ पंक्तियों की एक छोटी रचना है। इसमें ८ छंद हैं। अन्य लीला-प्रबन्धों की भाँति इसमें पदों का उपयोग नहीं हुआ है। प्रत्येक छंद में दश-दश पंक्तियाँ हैं। इसमें तीन विभिन्न छंदों का व्यवहार हुआ है—प्रथम दो पंक्तियों में एक दोहा है, फिर चार पंक्तियों की चौपाई, (कहीं-कहीं केवल १४ मात्राओं का छंद भी व्यवहृत हुआ है), तत्पश्चात् हरिगीतिका के चार चरण।

संक्षेप में इसका कथानक यह है :—

कन्हैया ने छद्म करके (संभवतः चुरिहारी, मनिहारी अथवा योगिन बनकर) राधा को छल लिया था। उन्होंने निश्चय किया कि कन्हैया को भी छलना चाहिए। इसके लिए रानी का छद्म वेश करना निश्चय हुआ।

यह निश्चय करके सब बन में गईं। वृंदा ने राधा की आज्ञा के अनुसार नव खंडों का महल निर्मित किया और राज-साज से उसे सुसज्जित कर दिया। रानी-वेशा राधा किरीट धारण कर सिंहासन पर सुशोभित हुईं। सखियाँ अदब से छड़ी, मोर्छल, चँवर, सूरजमुखी, पंखा, छत्र आदि लेके खड़ी हो गईं।

कृष्ण को पकड़ लाने का परवाना जारी हुआ। सखियाँ कृष्ण के पास पहुँची। वे वृंदावन में गाय चरा रहे थे। उनसे सखियों ने कहा—कुमुद बन में एक यदुवंश की नई रानी हुई हैं, कंस ने कुमुद वन की जागीर उन्हें दी है:—

तिन हमको आज्ञा दई करि के टेढ़ी डीठ
कौन श्याम ऊधम करै मेरे बन में ढीठ
बिन मेरो हुकुम बतायो
उन क्यों बन गाय चरायो
फल फूल बिपिन के जेते
उन तोरि लिए क्यों तेते
उन तोरि बन के फूल फल सब घास गउवन को दई
तेहि पकरि हाजिर करो महलन सबन को आज्ञा भई
यह सुनि हुकुम बिन सखागन चलि तहाँ उत्तर कीजिए
जे हुकुम रानी देहिं ताकों अदब सों सुनि लीजिए

आज्ञा सुनते ही कन्हैया ने कुछ तो भय माना और कुछ नई रानी के दर्शन का लोभ भी उन्हें हुआ। फलतः वे सखाओं के साथ कुमुद वन में आए। कन्हैया ने मुजरा कर अपना नाम सुनाया और सखियों ने भी पैर छूकर कहा—यह बनमाली हाजिर है, सरकार की क्या आज्ञा होती है?

अपने प्रियतम को भूमि पर गिरकर दंडवत करता देख, राधा को पहले तो दया आ गई—परंतु जब उन्होंने सोचा यह पर नारी समझकर लोभ से यहाँ आए हैं, तब वह तत्काल मन में कुपित भी हो गईं।

कृष्ण ने राधा के रूप-रंग की रानी को भौहें चढ़ाए हुए देखा—और सशंक हो कहा—कहिए, किस लिए बुलाया है, मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।

यह सुनते ही राधा का पारा और भी चढ़ गया और उन्हें अपने छद्म की सारी बात भूल गई। उन्होंने कहा—झूठ बोलनेवाले से बढ़कर और कोई अपराधी नहीं हो सकता। झूठे को दण्ड देना तो राजनीति के विधान में है।

इस रिस भरी वाणी को सुन मोहन ने कहा—मैंने झूठ कब कहा है?

इस पर राधा-रानी बोलीं—तुम तो कहते थे मैं राधा को छोड़ अन्य किसी स्त्री को देखता भी नहीं, फिर आज रानी का नाम सुन यहाँ कैसे आ गए? तुम अत्यन्त कपटी हो, अब तुम मुझे नहीं देख पाओगे।

यह कहकर राधा ने मुख फेर लिया। तब कन्हैया ने व्याकुल हो, दौड़कर, अपनी प्रिया के प्रिय पद पद्म पकड़ लिए और प्रेमाश्रु भरे नयनों से कहा—मैं तो तुम्हारा नित्य-अपराधी हूँ, फिर भी तुम्हारे चरणों को छोड़ कहाँ जाऊँ।

फिर क्या था, मान तजकर राधा श्याम से मुसकुराती हुई मिलीं और नव-कुञ्ज में प्रेमी युगल ने विविध क्रीड़ाएँ कीं।

यह कथानक भी भारतेन्दु की मौलिक उद्भावना है।

(५) वेणु गीति

वेणु गीति का प्रकाशन काल है सं० १९३४। प्रारम्भ में छह दोहे भूमिका स्वरूप हैं, बीच में १३ पद हैं, जिनमें राग-रागिनियों का नाम भी दिया गया है। अन्त में तीन दोहे उपसंहार-रूप हैं। इन दोहों की सहायता से इस रचना को प्रबन्धात्मकता दी गई है अन्यथा वेणु गीति के तेरहो पद पूण रूप से मुक्तक हैं, जिनमें कोई कथा नहीं है। जब कन्हैया गोचारण के लिए वृन्दावन चले जाते थे, तब गोपी-जन की विरह वेलि अत्यन्त बढ़ जाती थी और वे तन्मय होकर अनेक विधि से गाती हुई हरि चरित वर्णन करती थीं। अपनी रसना को पवित्र करने के लिए भारतेन्दु ने उसी चरित का वर्णन इन पदों में किया है।

देवी छद्म लीला, रानी छद्म तथा तन्मय लीला में कथा का पर्याप्त अंश है, किन्तु 'वेणु गीति' में कोई कथा नहीं है। ऊपर से उसे कृत्रिम ढंग से कथा का रूप दिया गया है। यह भारतेन्दु की मौलिक कृति नहीं है, भागवत से अनूदित है।

× × ×

रानी छद्म लीला तथा वेणु गीति के प्रारम्भ में मंगलाचरण है—

(१) नौमि राधिका-पद जुगल, तिन पद को बल पाइ
उलटि छद्म-लीला कहत, 'हरीचंद' कछु गाइ

—रानी छद्म लीला

(२) जै जै श्री घनश्याम वपु, जै श्री राधा बाम
जै जै सब ब्रज-सुन्दरी, जै वृन्दावन धाम १.
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि नाम
जयति कोऊ सो केसरी, वृन्दावन बन धाम २.
गोपीनाथ अनाथ-गति, जग गुरु बिट्ठलनाथ
जयति जुगल बल्लभ-तनुज, गावत श्रुति गुन गाथ ३.

—वेणु गीति ।

प्रत्येक रचना के अन्त में कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वह ये लीलाएँ अपनी रसना को पवित्र करने के लिए ही गा रहा है—

(१) 'हरीचंद' निज बानी पावन करन सुजस यह गाई

—देवी छद्म लीला

(२) रसना करन पवित्र आपुनी 'हरीचंद' जस गायो

—तन्मय लीला

(३) 'हरीचंद' पावन भयो यह अनुपम लीला गाय

—दान लीला

(४) एहि विधि पीतम सों मिली, नव तन छद्म बनाइ
'हरीचंद' पावन भयो यह रस लीला गाइ

—रानी छद्म लीला

(५) साँझ समै हरि आइ कै पुरवत सब की आस
गावत तिनको बिमल जस 'हरीचंद' हरि-दास

—वेणु-गीति

देवी छद्म लीला, तन्मय लीला, रानी छद्म लीला के अन्त में सखियों की समुपस्थिति में राधा कृष्ण का संभोग वर्णन किया गया है, जो बल्लभ संप्रदाय की परम्परा के अनुकूल ही है--ऐसे संभोग श्रृङ्गार की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता पर पदावली वाले अध्याय में विचार किया जा चुका है।

(१) प्रेम भरे दोउ मिलत परस्पर मुख चूमत हैं अलकन टारी
'हरीचंद' दोउ प्रीति-विवस लखि आपुनपौ कीनौ बलिहारी १५

× × ×

कुंज महल पधराइ लाल कों हटीं सबै वृजवासिनि गोरी
मिलि बिलसत दोऊ अति सुख सों 'हरीचंद' छबि भावै को री १७

—देवी छद्म लीला

(२) दौरि कंठ मोहन लपटाई बहुत बड़ाई कीनी
करयो बोध प्यारी राधा को हृदय लाइ पुनि लीनी
कर सों कर दै चले कुंज दोउ, सखियन अति सुख पायो ७

—तन्मय लीला

(३) धाइ चूमि मुख, भुजन सों भरि, लीनी कंठ लगाय

—दान लीला

(४) हँसि मिली प्यारी मान तजि निज रूप लै सँग श्याम के
मिलि करी क्रीड़ा विविध विधि नव कुंज सुख रस धाम के

—रानी छद्म लीला

'वेणु गीति' में इसके लिए कोई अवसर नहीं है—फिर भी—

साँझ समै हरि आइ कै पुरवत सबकी आस

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु के सारे कथा काव्य कृष्ण-लीला सम्बन्धी हैं, जिनमें राधा की प्रधानता है। ये रचनाएँ मुख्य करके धार्मिक ही हैं—मंगलाचरण की समुपस्थिति तथा रसना पवित्र करने की भावना से इन लीलाओं का वर्णन करना भी इनकी धार्मिकता की सूचना देता है।

'देवी छद्म लीला' इन लीला-प्रबन्धों में सर्व श्रेष्ठ है। यह सबसे बड़ा है, इसके कथानक में भी अन्य कथानकों की अपेक्षा अधिक चमत्कार है। उनके कथा काव्यों के प्रायः सभी गुण इसमें हैं।

प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रबन्ध काव्य के दो भेद माने गए हैं—महाकाव्य एवं खण्ड काव्य। भारतेन्दु की ये रचनाएँ महाकाव्य तो हैं ही नहीं; खण्डकाव्य भी नहीं हैं। हम इन्हें काव्य-कहानी (verse tale) कह सकते हैं। प्राचीन काल में इस प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की गई थीं। इसीलिए हमारे साहित्य ग्रन्थों में इस प्रकार की रचनाओं के लिए कोई उपयुक्त नाम नहीं मिलता। इन्हें 'लीला काव्य' भी कहा जा सकता है ?

इन रचनाओं से भारतेन्दु की अभिरुचि का पता चलता है कि उनका रुझान प्रबन्ध काव्यों की ओर था। यदि वे दीर्घजीवी होते, तो सम्भवतः वे हिन्दी साहित्य को कोई महाकाव्य भी दे जाते। फिर भी हिन्दी काव्य जगत को वे जो कुछ दे गये हैं, वही कम नहीं है।

९

काव्यानुवाद : वेणु गीति

भारतेन्दु एक सफल अनुवादक थे। उनकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उनके अनुवाद, अनुवाद न प्रतीत हो, मौलिक से लगते हैं। जिसे यह न मालूम हो कि यह अनुवाद है, वह उसे मौलिक ही समझेगा। उन्होंने गद्य का गद्य में, पद्य का गद्य में, गद्य का पद्य में एवं पद्य का पद्य में अनुवाद किया है। इन चारों प्रकार के अनुवादों में चौथा—पद्य का पद्य में—सबसे कठिन है। परन्तु भारतेन्दु के सभी प्रकार के अनुवाद सुन्दर हुए हैं। संस्कृत नाटकों के अनुवाद में उन्होंने पद्य का रूपान्तर प्रायः पद्य ही में किया है। पीयूषवर्षी जयदेव के प्रसिद्ध 'गीत गोविन्द' का हिन्दी रूपान्तर उन्होंने 'गीत गोविन्दानन्द' नाम से किया है। पहले के आलोचकों—शिवनन्दन सहाय, व्रजरत्न दास, गोपाल लाल खन्ना—ने भारतेन्दु के अनुवादों पर थोड़ा-बहुत विचार अवश्य किया है; यहाँ एक ऐसी रचना के अनुवाद पर विचार किया जा रहा है जिसे कोई अनुवाद नहीं समझता और इसके अनुवाद होने की कोई सूचना भारतेन्दु ग्रंथावली में नहीं दी गई है। यह रचना है वेणु गीति। यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के इक्कीसवें अध्याय का अनुवाद है, मौलिक कृति नहीं।

भागवत के इस अध्याय में कुल बीस श्लोक हैं। प्रथम छह श्लोक प्रस्तावना स्वरूप हैं, तेरह श्लोकों में तेरह विभिन्न गोपियों के मुरली एवं कृष्ण के प्रति हृदयोद्‌गार हैं, अंतिम श्लोक उपसंहार-स्वरूप है। श्रीमद्भागवत के अनुसार इस अध्याय का नाम है 'श्री कृष्ण वेणु गीत वर्णनं'। भारतेंदु बाबू ने नाम को संक्षिप्त कर दिया है। नंददास जी ने इस अध्याय का नाम रखा है—'गोपी-गीत'

बरनन करिहैं परम पुनीत : अहो मीत ! सुनि गोपी गीत

भारतेंदु कृत 'वेणु गीति' में भी प्रस्तावना स्वरूप छह दोहे हैं। ये छहो दोहे अनुवाद नहीं हैं। पहला दोहा मंगलाचरण है जिसमें कृष्ण, राधा, गोपी-जन एवं वृंदावन की स्तुति है—

जै जै श्री घनश्याम वपु, जै श्री राधा बाम
जै जै सब ब्रज-सुंदरी, जै बृंदावन धाम १

दूसरे तीसरे दोहों में वल्लभ-विट्ठल-गोपीनाथ की प्रार्थना है—

मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि नाम
जयति कोऊ सो केसरी, वृंदावन वन धाम २
गोपीनाथ अनाथ-गति, जग-गुरु विट्ठलनाथ
जयति जुगल वल्लभ-तनुज, गावत श्रुति गुन गाथ ३

छठवें दोहे में इस कृति का कारण बताया गया है—

जो गावहिं ब्रज भक्त सब, मधुरे सुर सुभ छंद
रसना पावन करन को गावत सोइ 'हरिचंद' ६

ये चारों दोहे मौलिक हैं। चौथे-पाँचवें दोहों में मूल प्रस्तावना की छाया है—इन्हें हम अनुवाद नहीं कह सकते—

श्री वृंदावन नित्य हरि, गो चारन जब जाहिं
बिरह बेलि तबहीं बढ़े, गोपी-जन उर माहिं ४
तब हरि चरित अनेक विधि, गावहिं तनमय होइ
करहिं भाव उर के प्रगट, जे राखे बहु गोइ ५

श्रीमद्भागवत के प्रस्तावना वाले श्लोक ये हैं—

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगंधिना
न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपाल कोऽच्युतः १.
कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम्
मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् २.
तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ३.
तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम्
नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ४.
बर्हापीडं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयंतीं च मालाम्
रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै—
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीत कीर्तिः ५.
इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम्
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयंतोऽभिरे भिरे ६.

"शरद ऋतु में निर्मल कमलों की सुगंधयुक्त पवनवाले वृंदावन में गाय बछड़े और ग्वाल बालों को संग ले श्रीकृष्णचंद आनंदकंद वृंदावन में गए। १। फूली हुई वन की पंक्तियों के सौरभ से मतवाले भौंरे और पक्षियों के समूह के शब्द से सरोवर, नदी, पर्वत गूँज रहे थे, ऐसे सुंदर मनोहर वृंदावन में बलराम और ग्वाल-

वालों सहित जाकर कृष्ण मुरली बजाने लगे और गायें बछड़े चरने को छोड़ दिये।२। प्रमदात्मक काम का प्रकाश करनेवाला वंशी का शब्द सुनके कई एक ब्रजवालाएँ श्रीकृष्ण के पीछे अपनी सखियों के सामने उनकी प्रशंसा करने लगीं।३। हे महाराज! जिस समय कुछ कहने का प्रारंभ किया, उसी समय मनमोहन की छवि का स्मरण हो गया, उस छवि का स्मरण होते ही कामदेव ने उनके मन व्याकुल कर दिए, इसलिए उनसे श्यामसुंदर की कांति का कुछ वर्णन नहीं हो सका।४। मोर पुच्छों का मुकुट शीशपर धरके, काछनी काछ के, कानों में कनेर के पुष्प धारण करके, सुवर्ण के सदृश पीत पट ओढ़कर, कंठ में वैजयंती और वनमाल धारण कर, नटवर रूप बनाकर, बाँसुरी के छिद्रों को अपने अधरामृत से पूर्ण करते, गोपों के समूह जिनकी कीर्ति बर्णन करते हैं, वह श्री वृंदावन विहारी अपने चरणारविंदों के चिह्न से रमणीक वृंदावन में गए।५। हे राजन्! इस प्रकार सब जीवों के मन को मोहनेवाली मनमोहन की बाँसुरी की टेर सुनकर साह्लाद ब्रजवालाएँ परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं।६।

श्रीमद्भागवत की इस प्रस्तावना में कई बातें उल्लेखनीय हैं—सर्व प्रथम, इसमें दो स्थानों पर नृप और राजन् शब्द आए हैं, जो इस कथा के प्रसंग का निर्देश करते हैं और बतलाते हैं कि यह कथा कोई स्वतंत्र नहीं है और एक विस्तृत कथा का अंग मात्र है तथा मुनि शुकदेव जी महाराज परीक्षित को इसे सुना रहे हैं। भारतेंदु बाबू के वेणु गीति में इस सूचना का उचित अभाव है। इन शब्दों के अभाव से या इस प्रसंग के अभाव से यह एक स्वतंत्र कथा हो गई है। यह किसी जंजीर की बहुत सी कड़ियों में से एक कड़ी न होकर, एक निरपेक्ष, स्वतंत्र, अलग कड़ी है।

दूसरी बात यह देखने की है कि श्रीमद्भागवत में वेणु गीति का समय-निर्देश किया गया है—शरद ऋतु में कन्हैया वृंदावन में गोचारण के लिए गए और मुरली-माधुरी से उन्होंने गोपियों को मुग्ध एवं मथित किया। भारतेंदु ने समय का विधान भी नहीं किया है, उन्होंने शरद ऋतु के इस संकीर्ण समय को अत्यंत विस्तृत कर दिया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार यह प्रसंग एक ही बार घटा, पर भारतेंदु के अनुसार यह नित्य की बात थी—जब भी कन्हैया गो चारण के लिए जाते थे, उनके वियोग में दुखी गोपियाँ उनकी मुरली का गुण गान करती थीं—चाहे वह शरद हो, चाहे वसंत या ग्रीष्म अथवा अन्य कोई ऋतु। यह घटना कई वर्षों तक चलती रही। इस प्रकार भारतेंदु ने शरद ऋतु का उल्लेख न करके इस कथा को बहु-काल व्यापी बना दिया है।

तीसरी बात ध्यान देने की यह है कि श्रीमद्भागवत की प्रस्तावना में शरद ऋतु एवं कृष्ण के सौंदर्य का अत्यंत निर्मल एवं मनोरम वर्णन है जो संस्कृत साहित्य की अपनी विशेषता है। भारतेंदु की प्रस्तावना में इसका अभाव है। वस्तुतः भारतेंदु ने इन छहो श्लोकों का अनुवाद नहीं किया है। इनका सार मात्र उन्होंने दो दोहों में दे दिया है। नंददास का अनुवाद चौपाइयों में है, उन्होंने इन छह श्लोकों के लिए १९ अर्द्धालियों का उपयोग किया है और मूल के निकट रहने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तावना के अनंतर १३ श्लोकों में गोपी वचन हैं। श्रीमद्भागवत के मूल से तो पता नहीं चलता कि यह कितनी गोपियों के कथन हैं; पर श्री शालिग्राम जी ने जो अनुवाद किया है, उसमें उन्होंने एक एक श्लोक को एक-एक गोपी की उक्ति माना है। नन्ददास जी ने भी 'अन्याहु' लिखकर यही माना है। भारतेन्दु जी इस पचड़े में नहीं पड़े हैं। एक-एक श्लोक के लिए उन्होंने एक-एक पद का निर्माण किया है— पद के पहले उन्होंने राग रागिनी की सूचना दे दी है, यह नहीं लिखा है कि वह पहली गोपी की उक्ति है अथवा दूसरी की।

अब आगे हम एक-एक श्लोक को लेकर भारतेन्दु के अनुवाद-कौशल पर विचार करेंगे। पहले मूल श्लोक, फिर उसकी गद्य-टीका, तदनन्तर भारतेन्दु का पद, तत्पश्चात् अपना मन्तव्य दिया जा रहा है।

(१)

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशमतोर्वयस्यैः
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीत मनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ७.

हे सखियों उन्हीं के नेत्र सफल हैं, अन्यों के नहीं, जिन्होंने सखाओं समेत गायों को चराते, मुरली बजाते, प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण व्रजेश के मुखारविन्द देखा है।

(राग सोरठ तिताला)

सखी फल नैन धरे को एह
लखिबो श्री ब्रजराज कुँवर को, गौर साँवरी देह
सखन संग बन ते बनि आवत करत बेनु को नाद
धन्य सोई या रस को जानै पान कियो है स्वाद

वह चितवनि अनुराग भरी सी फेरनि चारहुँ ओर
'हरीचंद' सुमिरत ही ताके बाढ़त मैन-मरोर १.

अनुवाद स्वतन्त्र एवं मूल के पर्याप्त निकट है। मैन-मरोरवाली बात नई है।

(२)

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज—
मालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ
मध्येविरेजतुरलंपशुपालगोष्ठ्यां
रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानो ८.

'आम के पल्लव, मोर पुच्छ, फूलों के गुच्छे, उत्पल कमलों की मालाओं से देदीप्यमान नीलाम्बर पीतांबरों से चित्र विचित्र वेष धारण किए हुए, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वाल मण्डली में जाते हुए ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे जैसे रङ्गभूमि में दो नट हों।'

सखी लखि दोउ भाइन को रूप
गोप-सखा-मंडल-मधि राजत मनु द्वै नट के भूप
नव दल, मोर पच्छ, कमलन की माल बनी अभिराम
तापै सोहत सुरँग उपरना वेष विचित्र ललाम
नटवर रंगभूमि में सोभित कबहुँ उठत हैं गाय
'हरीचंद' ऐसी छबि लखि कै बार-बार बलि जाय २.

अनुवाद स्वतन्त्र एवं मूल के निकट है। बलिहार जाने की भावना नवीन है।

(३)

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु—
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ९.

हे सखियो, बाँसुरी ने ऐसा कौन सा तप किया है कि जिसके पुण्य के प्रभाव से हमारे पीने योग्य अधरामृत के रस को यह स्वतः पी रही है ? नदी का अवशिष्ट रस मानो पुलकित तरुओं का (हर्ष का) अश्रु है जैसे आर्य (अपने गुणी वंशजों को देख प्रेमाश्रु बहाते हैं)।

(राग देस होरी का ताल)

बंसी कौन सुकृत कियो
गोपिकन को भाग याने आपुही लै पियो
करत अमृत पान आपुन औरहू को देत
बचत रस सो पिवत ह्लिदिनी वृक्ष लता समेत
प्रगट ह्लिदिनी तटनि तृन पुन श्रवत मधु तरु डार
होत याहि रोमांच, वाको बहत आँसू धार
बेन-पुत्र सुपुत्र लखिकै करत दोउ आनंद
आपु हरी न होत, अचरज यह बड़ो हरिचंद ३.

अनुवाद स्वतन्त्र है, श्लोक के गूढ़ भाव को पल्लवित कर कवि ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

(४)

वृंदावनं सखि भुवो वितनोति कीर्ति
यद्देवकी सुत पदांबुज लब्ध लक्ष्मि
गोविंद वेणु मनु मत्त मयूरं नृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्त सत्त्वम् १०.

हे आलि ! देवकी सुत पदांबुज से गौरवान्वित यह वृंदावन पृथ्वी का यश विस्तार कर रहा है। गोविंद-वेणु से अनुमत्त मयूर-नृत्य को देख अद्रि-सानु के समस्त जीव पर वश हो जाते हैं।

(राग मल्लार आड़ा चौताला)

बढ़ी जग कीरति बृंदावन की
श्री जसुदानंदन की जापै छाप भई चरनन की
बेनु-धुनि सुनि जहाँ नाचत मत्त होइ मयूर
सिखर पै गिरिराज के सब संग कों करि दूर
सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन
ता समै यह मोर नाचत सुनत बंसी तान
पच्छ यातें धरत सिर पै श्याम नटवर-राज
कहत इमि 'हरिचंद' गोपी बैठि अपुन समाज ४.

अनुवाद स्वतंत्र है, कवि ने कृष्ण के मयूर-पंख-प्रेम का काव्योचित कारण अपनी ओर से और जोड़ दिया है।

(५)

धन्याः स्म मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता
या नंदनंदनमुपात्तविचित्रवेषम्
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ११.

हे सजनी ! यह मूढ़ हरिणी भी धन्य है जो मुरली का शब्द सुन अपने पति को संग लिए विचित्र वेष वाले वृंदावन विहारी का स्नेह की चितवन से सन्मान करती है।

धन्य ये मूढ़ हरिन की नारि
पाइ विचित्र वेष नँद-नंदन नीके लेहिं निहारि
मोहित होइ सुनहिं वंसी-धुनि श्याम हरिन लै संग
प्रनय समेत करहिं अवलोकन बाढ़त अंग अनंग
जानि देवता बन को, मानहुँ पूजहिं आदर देहिं
'हरीचंद' धनि धनि ये हरिनी जन्म सुफल करि लेहिं ५.

अनुवाद स्वतंत्र है और मूल के पर्याप्त निकट है।

(६)

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं
श्रुत्वा च तत्क्वणित वेणुविचित्र गीतम्
देव्योविमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरी मुमुहुर्विनीव्यः १२.

स्त्रियों को आनंद देनेवाले श्यामसुंदर का मनाहर रूप देख, उनकी बजाई बाँसुरी की मनोहर ध्वनि सुन, विमानों में बैठ गमन करती हुई देवताओं की स्त्रियाँ, काम पीड़ित हो गईं, उनकी कवरी के प्रसून गिर गए एवं नीवी-बंधन शिथिल हो गए।

राग सोरठ तिताला

विमानन देव-वधू रहीं भूलि
वनिताजन मन नैन महोत्सव कृष्ण-रूप लखि फूलि
सुनि कै अति विचित्र गीतन को बंसी की धुनि घोर
थकित होत सब अंग अंग में बाढ़त मैन मरोर
खुलि खुलि परत फूल की कवरी नीबी की सुधि नाहिं
'हरीचंद' कोउ चलन न पावत या नभ-पथ के माहिं ६.

कवि ने भावानुवाद किया है। अन्तिम पंक्ति कवि की नवीन उक्ति है।

(७)

गावश्च कृष्णमुखनिर्गत वेणुगीत—
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबंत्यः
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु—
गोविंदमात्मनि दृगश्रुकलाः स्पृशंत्यः १३.

श्रीकृष्ण के मुख से निकलते हुए बाँसुरी के गीत रूप अमृत को गायें ऊपर उठाए हुए कर्ण-पुटों से पीती हैं। स्तन-पान करते हुए बछड़े, घास का ग्रास मुख में रखे हुए गायें, अश्रुपूर्ण दृष्टि से गोविन्द का स्पर्श करती हुई निस्तब्ध खड़ी रह जाती हैं।

देस तिताला

लखो सखि इन गौवन को हाल
ऐसी दसा पसुन की है जहँ, हम तो हैं ब्रज-बाल
कृष्ण चंद्र के मुख सों निकसै जो बंसी की तान
तो अमृत को पान करहिं ये ऊँचे करि करि कान
बछरा थन मुख लाइ रहे, नहिं पीवत, नहिं तृन खात
थन ते पय की धार बहत है, नैनन से जल जात
इक टक लखत गोविंद चंद को, पलक परत नहिं नैन
'हरीचंद' जहँ पसु की यह गति, अबलन को कित चैन ७.

कवि ने भावानुवाद किया है। अन्तिम पंक्ति को अपनी ओर से बढ़ाकर उसने गोपियों की दशा पर भी प्रकाश डाल दिया है।

(८)

प्रायो बतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्
आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालान्
शृण्वंत्य मीलितदृशो विगतान्यवाचः १४.

इस वन में जो पक्षी हैं सो सब मुनीश्वर हैं जो मनोहर पत्रवाले वृक्ष की शाखाओं पर बैठकर नेत्रों को मूँद, मौन साध, श्रीकृष्ण चंद्र की बाँसुरी के मनोहर गीतों को सुनते हैं।

सोरठ मलार तिताला

धन्य ये मुनि वृंदावन-वासी
दरसन हेतु विहंगम ह्वै रहे, मूरति मधुर उपासी

नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत हैं आई
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल सुनहिं बेनु धुनि माई
प्राननाथ के मुख की बानी करहिं अमृत-रस-पान
'हरीचंद' हमकों सोउ दुर्लभ यह विधि की गति आन ८.

मूल में पक्षियों को मुनि बनाया गया है। परंतु भारतेंदु ने मुनियों को पक्षी बना दिया है। अंतिम पंक्ति में गोपियाँ अपने को इस सुख से बंचित जान और भी दुखी हो जाती हैं। यह भाव नवीन है।

(९)

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुंद गीत—
मावर्तलक्षितमनोभव भग्नवेगाः
आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे—
र्गृह्णंति पादयुगलं कमलोपहाराः १५.

मुकुन्द की बाँसुरी की टेर सुन, नदियों में भी काम-सूचक भ्रमर पड़ते हैं। आलिंगन में असमर्थ वे लहर रूप हाथों में कमल के पुष्प ले मुरारि के चरण-कमल में समर्पण करती हैं।

सोरठ तिताला

अहो सखि जमुना की गति ऐसी
सुनत मुकुंद-गीत मधु श्रवनन बिह्वल ह्वै गई कैसी
भँवर पड़त सोइ काम-बेग सों थकित होत गति भूली
तटनि घास अङ्कुरित देखियत सोइ रोमावलि फूली
चुंबन हित धावत लहरन सों कर लै कमल अनेक
मानहु पूजन-हेत चरन कों यह इक कियो विवेक
चरन-कमल के सदृश जानि तेहि निसि-दिन उर पैं राखै
'हरीचंद' जहँ जल की यह गति, अबलन की कहा भाखै ९.

अनुवाद स्वतंत्र है; कई भाव बढ़कर हैं, सामान्य नदी को जमुना नाम देकर विशेष नदी बना दिया है, जो उचित ही हुआ है! अंत में यमुना-जल की काम-दशा से गोपियों ने अपनी दुःख दशा का संकेत कराया है।

(१०)

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह राम गोपैः
संचारयंतमनुवेणुमुदीरयंतम्
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात्स्ववपुषांबुद आतपत्रम् १६.

बलदेव और ग्वालवालों को संग ले, धूप में व्रज की गायों को चराते, मुरली बजाते घनश्याम को देख, प्रेम मय हो श्याम घन उन पर छत्र छाया कर नन्हीं नन्हीं बूदों की कुसुमावली बरसाने लगे।

विहाग आड़ा चौताल

जँह जहँ राम कृष्ण चलि जाहीं
तँह तहँ आतप जानि देव सब दौरि करहिं तन छाँहीं
खेलहिं संग गोप के बालक, चरहिं गऊ सुख पाई
तिनके मध्य बने दोउ राजत, मुरली मधुर बजाई
प्रेम मगन ह्वै सुरँग फूल सब गगन आइ बरसावैं
कठिन भूमि कोमल पद लखि कै मनु पाँवड़े बिछावैं
दूर देस सों आइ देवता रूप-सुधा नित पीयैं
'हरीचंद' बसि एक गाँव, बिनु दरसन कैसे जीयैं १०.

अनुवाद स्वतंत्र है। घनश्याम के बदले कवि ने देव रख दिया है। मूलभाव को अत्यधिक पल्लवित कर दिया गया है।

(११)

पूर्णाः पुलिंद्य उरुगायपदाब्जराग—
श्रीकुंकुमेन दयितास्तनमंडितेन
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुस्तदाधिम् १७.

यह भीलनियाँ भी पूर्ण मनोरथा हैं क्योंकि प्रिया के स्तन चर्चित केशर कस्तूरी को घास में लगी हुई देख कामातुर हो उसे अपने मुख और स्तनों पर लगा, कामाग्नि को शांत करती हैं।

कान्हरा आड़ चौताला

अहो सखि धनि भीलन की नारि
हरि-पद-पंकज को श्री कुंकुम लेहिं कुचन पै धारि
तन-सिंगार जो ब्रज-जुवतिन को प्रान-पिया पद लायो
सो बन-गवन समै ब्रज तृन के पातन में लपटायो
हरि-पद-तल की आभा सों सो अरुन ह्वै रह्यो मोहै
भक्तन को अनुराग मनहुँ यह चरनन लाग्यो सोहै
ताहि देखि भईं विकल काम-बस कर सों लेहिं उठाई
निज मुख मैं, दोउ कुच मैं लावहिं मनसिज-ताप नसाई

जगवंदन नँदनंदन के पग-चंदन भीलिन पावैं
'हरीचंद' हमकों सोउ दुर्लभ, एकहि जात कहावैं ११.

मूल भाव को पूर्ण पल्लवित कर के स्पष्ट किया गया है—यह कवि की नई उद्भावना है कि गोपियाँ अपने को भीलनियों से भी गई गुजरी और अभागी या दुखी समझ रही हैं।

(१२)

हंतायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्—
पानीयसूयवसकंदरकंदमूलैः १८.

यह गोबर्द्धन पर्वत भगवान का कोई परम भक्त है जो राम-कृष्ण के चरण-स्पर्श से प्रमोद मानता है; शीतल जल, हरी घास, कंद, फूल, फल भेंट कर वह गायों और ग्वालों सहित उनका आदर करता है।

राग सारंग वा विहाग, ताल चर्चरी

हरि-दास-वर्य्य गिरिराज धन धन्य
सखि राम घनश्याम करैं केलि जापैं
चरन के स्पर्श सों पुलकि रोमांच भयौ
सोई सब वृक्ष अरु लता तापैं
झरत झरना सोई प्रेम-अँसुवा बहत
नवत तरु डार मनुहार करहीं
परम कोमल भयो है यंगवीन (?) सम
जानि जापैं कृष्ण-चरन धरहीं
करत आदर सहित सबन की पहुनई
संग के गोप गो-वच्छ लेहीं
पत्र फल मधुर मधु स्वच्छ जल तृन छाँह
आदि सब वस्तु गिरिराज देहीं
करहिं बहु केलि हरि खेल खेलहिं संग
ग्वालगन परम आनंद पावैं
देखि 'हरिचंद' छबि मुदित विथकित चकित
प्रेम भरि कृष्ण के गुनहिं गावैं १२.

भाव को विकसित किया गया है।

(१३)

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार—
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः
अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् १९.

ग्वालों को संग ले, कृष्ण बलराम वृन्दावन में गायें चराने जाते हैं और मधुर मुरली बजाते हैं, तब सब जंगम स्थिर हो जाते हैं और पुलकित हो जाते हैं। हाथ में गो-बन्धन (पगहा) लिए हुए उनका विचित्र वेश है।

सोरठा तिताला

सखी यह अति अचरज की बात
गोप सखा अरु गोधन लै जब रामकृष्ण बन जात
बेनु बजावत मधुरे सुर सों सुनि कै ता धुनि कान
भूलि जात जग में सबकी गति सुनत अपूरब तान
वृक्षन कौं रोमांच होत है यह अचरज अति जान
थावर होइ जात हैं जंगम, जंगम थावर मान
गो बंधन कंधन पै धारे फेंटा झुकि रह्यो माथ
मत्त भृंग-जुत है बन-माला, फूल छरी पुनि हाथ
बेनु बजावत, गीतन गावत, आवत बालक संग
'हरीचंद' ऐसो छबि निरखत, बाढ़त अंग अनंग १३.

भाव को परिपूर्णता दी गई है।

उपसंहार स्वरूप श्रीमद्भागवत में यह एक श्लोक है—

एवंविधा भगवतो या वृंदावन चारिणः
वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीड़ास्तन्मयतां ययुः २०.

'इस प्रकार वृंदावन बिहारी के चरित्रों को परस्पर वर्णन करती गोपी कृष्णमय हो गईं।'

भारतेन्दु बाबू ने तीन दोहे उपसंहार में लिखे हैं—

कृष्णचंद्र के बिरह मैं, बैठि सबै ब्रज-बाल
एहि विधि बहु बातैं करत, तन सुधि विगत विहाल १
जबलौं प्यारे पीय को, दरस होत नहिं नैन
इक छन सौ युग लौं कटत, परत नहीं जिय चैन २
साँझ समय हरि आइकै, पुरवत सबकी आस
गावत तिनको विमल जस, 'हरीचंद' हरि-दास ३

पहले दोहे में भागवत के श्लोक की छाया है, दूसरे तथा तीसरे दोहे कवि की स्वतन्त्र उद्भावना हैं। भागवतकार ने इस विरह को संयोग में बदलने का कष्ट नहीं उठाया है, क्योंकि इसके आगे भी अनेक विरह की बातें भरी हैं; परन्तु भारतेन्दु एक स्वतन्त्र कथा-काव्य का प्रणयन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने 'मधुरेण समापयेत' के अनुसार इस विरह का संयोग में अन्त करना ही समुचित समझा—

साँझ समै हरि आइकै पुरवत सबकी आस

सारे अनुवाद को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि यह सारी रचना कोरा शब्दानुवाद नहीं है—कवि ने अपनी कल्पना से भावों को और भी विकसित किया है। कोई भी ऐसा पद नहीं है जिसमें उसने अपनी ओर से कुछ न बढ़ाया हो। कवि ने प्रत्येक पद को पूर्ण मुक्तक बनाने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से प्रायः प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्ति दर्शनीय है।

दो विवरणात्मक काव्य

हिंडोला और होली

(१) हिंडोला

यह एक विवरणात्मक निबंध-काव्य है। यद्यपि इसका रूप पद का सा है। पहली पंक्ति छोटी सी है, फिर १९० पंक्तियाँ एक नाप-जोख की हैं। चार चार चरणों की एक कड़ी है और इनके पश्चात पहले छोटे चरण की आवृत्ति है। प्रत्येक चरण में १४, १२ के विराम से २६ मात्राएँ हैं, अंत में गुरु लघु है।

प्रारंभ में कुंज वितान का सुंदर वर्णन है—वृक्षों की घनी पंक्ति, आमूल लतावेष्टित, और ये लताएँ भी कुसुमित, और कुसुम रंग विरंगे—

> चहुँ ओर एकन एक सों लगे सघन विटप कतार
> तापैं लता रहिं फूलि घेरे मूल सों प्रति डार
> बहु फूल तिनमैं फूलि सोहत विविध बरन अपार
> तिमि अवनि तृन अंकुरमई, भयो दसो दिसि इक सार

ऐसे सुंदर उपवन में चुनकर एक मोटी डाल पर झूला डाल दिया गया। झूले का वर्णन अत्यंत सुंदर है—

> तहँ झमकि झूलत होड़ बदि बदि उमगि करहिं कलोल
> खेलैं, हँसैं, गेंदुक चलावैं, गाइ मीठे बोल
> झोटा बढ़यो रमकत दोऊ दिसि डार परसत जाइ
> फरहरत अंचल खुलत बेनी अंग परत दिखाइ
> टूटि मोती-माल मुक्ता गिरत भू पै आइ
> मनु मुक्त जन अधिकार गत लखि देत धरनि गिराइ
> कसी कंचुकि होत ढीली खुलि तनी के बंद
> सिथिल कबरी, उड़त सारी, गिरत कर के छंद
> प्रगट बदन दुरात, झूलत मैं तहाँ सानंद
> मनु प्रेम-सागर मथत इत उत तरत कढ़ि बहु चंद

इसके पश्चात विभिन्न सखियों के विभिन्न व्यापारों का एक एक करके २४ पंक्तियों में वर्णन किया गया है। प्रायः प्रत्येक पंक्ति में किसी न किसी सखी के क्रिया कलाप का मनोहर अंकन हुआ है और प्रशंसा की बात तो यह है कि इन क्रिया-कलापों की पुनरुक्ति नहीं हुई है—

१. इक डार पकरि हिलाइ बरसावत कुसुम बहु रंग
२. इक नचत गावत

३. इक बजावत बीन मधुर मृदंग
४. इक खींचि भाजत एक को पट हँसत भरी उमंग
५. इक लपटि डोरी, खात भँवरी, प्रगटि अंग अनंग
६. इक रीझि झूलनि पै रही

७. इक रही बिरछन ओर
८. इक होड़ दै झोटन बढ़ावत सौंह देत निहोर
९. इक थकित उतरत सिथिल बैठत नटत घूमरि घोर
१०. इक चढ़त झूलन हेत बदिकै दाँव लाख करोर
११. इक भजत

१२. तेहि गहि रहत दूजी हँसत झगरत बात
१३. इक कहत हम नहिं झूलिहैं भई सिथिल सगरे गात
१४. तेहि खैंचि कोऊ आपुने बल डोल पै लै जात
१५. इक श्रमित बैठत

१६. ताहि दूजी करत अंचल बात
१७. कोउ अंचल छोरि कटि मैं बाँधि कसिकै देत
१८. कोउ किए लावन की कछोटी चढ़त झोटा हेत
१९. कोउ दाबि अंचल दाँत सों, सुख सों झकोरे लेत
२०. कोउ बाँधि गाँती हार सगरे भिरत रति-रन-खेत
२१. इक श्रमित मुख करि अरुन स्वेदित लेत विविध उसास
भए हाथ डोरी गहत राते मनहुँ राग प्रकास
२२. पिंडुरि काँपत अङ्ग थहरत लहरि कच मुख पास
तन स्वेद-कन झलकत रहत, कोउ चाहि मंद बतास

२३. इक डरत झोटा देत, पिय के गरे रहत लपटाइ
२४. इक बीनि सबके आभरन पोहत तहाँ मन लाइ

२५. इक गिरत रपटत,

२६. घन गरज सुनि डरि छिपत इक जाइ

२७. इक बसन डारन सों छुड़ावत रहे जे लपटाइ

इन २४ पंक्तियों में २७ सखियों के क्रिया-कलापों का वर्णन हुआ है, सभी क्रिया कलाप झूले से सम्बन्ध रखते हैं, एक की भी पुनरुक्ति नहीं हुई है। इतने व्यापारों का एक साथ वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

पानी पड़ने से गोपियों की साड़ी भींग गई है और उनके भींगे वस्त्र उनके अंगों से लिपट गए हैं। इस शोभा का अपूर्व वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

गए भींजि सबके बसन लपटे विविध अंबर गात
तन दुति अभूखन सहित भइ तहँ सबन को प्रगटात
मनु प्रान पिय के मिलन अन्तर-पट दुरायो जात
खुलि गई कलई, दुर्‌यो फल भयो प्रगट, प्रेम लखात

पेड़ों पर सुक, पिक, भौंरे, चातक, मोर, चकोर बोल रहे हैं; झूले के झोंकों से डाल भी हहरा रही है। गोपियों की हाहा-ठाठी, किंकिणी का कल रोर, भयभीता गोपियों की सी-सी, गान और तान से उपवन गूँज रहा है। तरह तरह के रंगों से कुंज रंगीन हो रहा है—

रँग रंग सारी, रंग रँग के बहु अभूखन अंग
रँग रंग फूले फूल चहुँ दिसि, झालरैं रँग रंग
रँग रंग बादर छए नभ, तन रंग रंग अनंग
मनु श्याम ससि लखि रंग-सागर चढ़ि चल्यौ इक संग

इस प्रकार सखियों के समुदाय से घिरा राधा कृष्ण के साथ हिंडोले पर झूल रहीं हैं। उनके रूप का क्या कहना है, वह तो अनूप है—

तन नील सारी मैं किनारी चंद मुख परिलेख
सिंदूर सिर, दोउ नैन काजर, पान की मुख रेख
बड़े नैना, चपल चितवनि, श्याम हित अनिमेख
गोरी किसोरी परम भोरी सहज सुंदर भेख

सखियाँ भी भाँति भाँति की विलास सामग्री लिए खड़ी हैं—

मुरछल चँवर बिजना अड़ानी लिए हाथ रुसाल
पिकदान फूल चँगेर भूखन बसन कुसुमन माल
झारी भरी जल, डबा बीरा, विविध बिंजन थाल
ललितादि ठाढ़ीं अनुचरी ढिग रूप की सी जाल

कुछ सखियाँ विविध सेवाएँ भी कर रही हैं—

इक करत आरति, इक निछावरि करत मनिगन छोरि
इक आइ राई लोन वारत, इक रहत तृन तोरि
इक भौंर निरवारत खरी, इक रहत भूखन जोरि
इक बूँद आड़त आइ, एक पद पोंछि रहत निहोरि

इस प्रकार उस कुंज में आनंद सागर उमड़ चला जिसका कोई वार पार नहीं। इस आनंद सागर में 'करम कुल ज्ञान नेम विवेक काम-विकार' सब डूब गए। शिव और शुक भी इसकी थाह न पा सके। परंतु 'वल्लभ' की कृपा से 'हरीचंद' ने उसमें पूर्ण रूप से अवगाहन कर लिया।

काव्य की दृष्टि से यह रचना अत्यंत उच्चकोटि की है—कवि ने धार्मिकता का रूप देकर इसे अलौकिक बना दिया है।

(२) होली लीला

'होली लीला' अब 'मधु मुकुल' की अट्ठतालीसवीं कविता है। इसमें ३१० पंक्तियाँ हैं। पहले यह स्वतंत्र रूप से 'हरिश्चंद चंद्रिका', नवंबर १८७४ में निकली थी। इस रचना में ७७ रोला छंद हैं। प्रारंभ में दो पंक्तियाँ १६, १६; १६, १२ मात्राओं की हैं, जिनकी गति रोला से नहीं मिलती। ये पंक्तियाँ व्यर्थ-सी हैं—

रँगीली मचि रही दुहुँ दिसि होरी, इत हरि उत वृषभानु किसोरी
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी, अरुन अबीर की झारी

ये होली का चित्रण करती है, परंतु इनके पश्चात ही होली लीला की पृष्ठ भूमि वृंदावन का वर्णन ३० पंक्तियों में किया गया है। ये दोनों पंक्तियाँ हिंडोला की प्रथम पंक्ति—'दोऊ मिलि झूलत कुंज वितान'—के समान हैं और संभवतः प्रत्येक छंद के पश्चात टेक-स्वरूप उन्हें छपना चाहिए था, जैसा कि हिंडोला में छपा भी हैं। पर सच पूछा जाय तो ये दोनों पंक्तियाँ टेक-स्वरूप व्यवहृत नहीं हो सकतीं क्योंकि यह रचना गेय नहीं है। यह भारतेंदु ग्रंथावली के १२ पृष्ठों में छपी है; और कोई भी गीत इतना बड़ा नहीं हो सकता।

होली लीला और हिंडोला एक ढंग की रचनाएँ हैं। दोनों में बड़ाई, छोटाई का अन्तर अवश्य है; परन्तु दोनों का काव्य सौष्ठव एवं रचना प्रणाली एक सी है। दोनों में पहले लीला भूमि का चित्रण है। 'होली लीला' में वृंदावन का यह वर्णन 'चंद्रावली' के अन्तर्गत आए हुए यमुना-वर्णन-सा है—

इत जमुना निरमल जल लहरति तरल तरंगनि राजै
उत गिरिराज फलित चिंतित फल चिंतामनिमय भ्राजै

ता मधि विपुल विमल बृंदाबन जुगल केलि-पथ सोहै
षट रितु रहत जहाँ कर जोरे, बैकुण्ठहु को मोहै ?

ऐसे वृन्दावन में जब वसन्त का आगमन हुआ, तब सखियों ने होरी की तयारी शुरु की—

सखिन जानि होरी को आगम पथ गुलाल छिरकायो
कियो ढेर केसर गुलाल को रंगन हौज भरायो ८
तोरि गुलाब पाँखुरिन मारग सोहत है अति छायो
अगर धूप ठौरहि ठौरन दै बगर सुबास बसायो
पानदान झारी पिकदानी मुरछल चँवर अड़ानी
फूल चँगेर माल बहु बिंजन लै मृगमद घन सानी ९
लिए सकल सुख साज सहेली सरस कतारन ठाढ़ी
मानहुँ मदन-सदन बिसुकरमा चित्र पूतरी काढ़ी

इसी समय प्रेम रंग में भींगे हुए, अलसाए नेत्र लिए, बाँह में बाँह डाले राधा कृष्ण वहाँ आए। राधा का संकेत पाते ही सखियों ने कृष्ण को घेर लिया और रंग के साथ-साथ प्रेम रंग में डुबो दिया, वे बेचारे अकेले थे ही, भींगते बना, कोई चारा न था—

धरन लगीं मन मोहन पिय को घेरि घेरि ब्रज-नारी
लाल कियो गोपाल लाल को दै केसर पिचकारी १३
चोआ चन्दन बुक्का बंदन केसर मृगमद रोरी
अबिर गुलाल कुमकुमा कुमकुम अरु घनसार झकोरी
मींजि कपोल कोउ भाजत है, धाइ फेंट कोउ खोलै
कोउ मुख चूमि रहत ठोढ़ी गहि, इक गारी दै बोलै

इतने में कृष्ण के रँगीले सखाओं का दल भी अपने ही रंग में रँगा हुआ उधर से आ निकला—अब कन्हैया की जान में जान आई—और उन्होंने राधा की सखियों से बदला चुका लेने का आदेश दिया। फिर क्या था, दोनों ओर से गजब की होली हुई। इस होली का वर्णन कवि ने ८ छन्दों में किया है, और यही इस रचना का प्रधान अंश है। होली का वह वर्णन अत्यन्त मादक है—

धाए सुनत ग्वाल मदमाते गहिरो खेल मचायो
धूँधर करि गुलाल की चहुँ दिसि रंग-नीर बरसायो
एक घोरि कै मृगमद डारत, इक लावत घनसारा
चोआ तेल फुलेल एक लै अतर भिजावत बारा १८

हरित अरुन पंडुर श्यामल रँग रंग गुलाल उड़ाई
बिच बिच विविध सुगंध सनित बुक्का बगरत मन भाई
कबहुँ बादले रंग रंग के कतरि महीन उड़ावै
तरनि किरिन मिलि अति छबि पावत चमकि सबन मन भावै १९

परिमल अंबर मृगमद पोसे सने कपूर सुहाए
मेलि मेलि केवरा धूर में झारिन पूरि उड़ाए
चोआ चोंटि चोंटि के अंगन तापर बिंदुली लावैं
केसर छींटि चरचि रोरी सों लै रँग सों नहवावैं २०

गारी देत निलज डफ बाजत ऊँचे राग जमाये
गूँजि रह्यो सुर बर बृंदावन हो हो शब्द सुनायो
एकन कों गहि रहत एक, एकन को इक मुख माँड़ैं
करत निपट पट-रहित एक को, हा हा करि करि छाँड़ैं २१

नारि नरन कों नारि बनावत, नर नारिन नर साजैं
गाँठ जोरि बर बदन चीति कै चूमि चूमि मुख भाजैं
फूल छड़ी की मारि परत तब लाल उठत अकुलाई
पुनि हो हो करि रेलि पेलि तिय दलहि भजावत आई २२

अवनि अकास एक रँग देखियत तरुन अरुनई छाई
लता पत्र प्रति रँगे रंग सों इक रँग परत लखाई
पटे अटारी अटा झरोखा मोखा छाजन छातैं
मारग सहित सुरँग गुलाल सों लाल सबै दरसातैं २३

भींजे बसन सबै, तिन मधि कोउ सीत-भीत अति काँपै
काहू के पट छुटे लाज सों, अपुनो तन कोइ ढाँपै
एकन को इक पकरि नचावत, एक बजावत तारी
आपुन हँसत, हँसावत औरन, देत कुफारी गारी २४

रंग जम्यो होरी को भारी मद-माते नर-नारी
सबके नैनन में देखियत इक होरी-खेल-खुमारी
तिन मधि धूँधर में गुलाल के, लसत जुगल लपटाने
भींगे रंग सगबगे बागे, रस-बस आलस साने २५

इसके पश्चात २४ छंदों में कृष्ण का और १८ छंदों में राधा का नख-शिख वर्णित है। यह नख-शिख अत्यंत विशद एवं उत्कृष्ट है। उदाहरण के लिए कृष्ण के नेत्रों का वर्णन यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

बरुनी नैन चपल पल भौंहन सोभा के मनु भौना
धनुष जाल करि मनहुँ फँसाए खंजन के जुग छौना
प्रिया-रंग-माते अलसाने सरसाने रस-साने
प्रिया भाव के भरे अघट मनु सोहत जुगल खजाने ४१

प्रिया-ध्यान मैं मुँदे रहन की, खुले रहन की देखैं
झुकित रहन की याद परे नित जिनकी बान बिसेखैं
खंजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौंर सर साधे
मनु इनके गुन एकत करिकै अंजन-गुन दै बाँधे ४२

जहँ जहँ परत दृष्टि इनकी बन गलियाँ अलियाँ मोहैं
मानिक नील हीर से बरसत, खिलत कंज से सोहैं
मनु इन प्रन बदि राख्यौ ब्रज मैं कहर चहूँ दिसि डारी
जहाँ परैं कतलाम करैं तित सब नवजोबनवारी ४३

प्रिया रूप लखि रीझि मनहुँ श्रवनन सों कहन गुन धाए
तिनहीं के प्रतिबिंब मकर जुग कुंडल करन सोहाए
मानिनि-मान, पतिव्रत तिय को, मुनि-मन ज्ञान-गरूरैं
सोभा सब उपमानन की यह बदि बदि कै नित चूरैं ४४

चंचल चपल चारु अनियारे फरकत सुथिर रहैं ना
प्रिया-बिंब प्रतिबिंबित पुतरिन प्रिया रूप के ऐना
मान तजत कोउ परी कराहत, कोउ अति व्याकुल भारी
चली निकट आवत कोउ धाई, जित तित इनकी मारी ४५

अन्य अंगों के वर्णन इतने बड़े नहीं हैं, प्रायः दो-दो पंक्तियों के ही हैं; परन्तु कोई भी अंग छूटने नहीं पाया है। राधा कृष्ण दोनों का वर्णन नख से ही प्रारम्भ करके शिख तक पहुँचाया गया है, जो शास्त्रानुकूल है।

अन्त में—

आवत चले कुंज रस-भीने श्यामा श्री गिरिधारी

यह होरी-रस अत्यन्त गुप्त है, अनुभव-गम्य नहीं है; शिव-शुक के समान बिरले लोग ही इसे समझ पाते हैं; परन्तु 'श्री-वल्लभ-चरन-सरन' होने से भारतेन्दु ने कुछ-कुछ जान लिया था—

श्री वल्लभ-पद-रज-प्रताप सों यह लीला कहि गाई
मनि-सम पोहि-पोहि अति रुचि सों माला रुचिर बनाई

११

राम काव्य

जयति राम अभिराम छबि-धाम
पूरन-काम श्याम-बपु बाम सीता-विहारी
चंड कोदंड-बल खंड-कृत दनुज-बल
अनुज-सह सहज सुभ रूपधारी
रक्ष-कुल अनल बल प्रबल पर्जन्य सम
धन्य निज जन-पक्ष रक्षकारी
अवध-भूषन, समर विजित दूषन
दुष्ट, विगत दूषन, चतुर धर्मचारी
खर प्रखर खर अगिन लंक दृढ़ दुर्ग
दल दलमलन बाहु मारीचमारी
वैश्रवन अनुज घट-श्रवन रावन-शमन
शमन भय-दमन 'हरीचंद' वारी

—राग संग्रह ३९.

राम काव्य के अंतर्गत यह अकेला विनय का पद है। श्री राम नवमी और दशहरा के अवसर पर कीर्तन करने के लिए भारतेंदु ने इसकी रचना की है। संस्कृत और समास पदावली में यह तुलसी की विनय पत्रिका का सहज ही स्मरण दिला देता है। विजय दशमी के अवसर पर कीर्तन करने के लिए एक और पद उन्होंने लिखा है, परंतु यह राम की मर्यादा के अनुकूल नहीं है, क्योंकि राम की रावण पर विजय का, श्री कृष्ण की केलि कला के रूपक मात्र के लिए, उपयोग किया गया है—

मान-गढ़-लंक पर विजय को मानिनी
आज ब्रजराज रघुराज बनिकै चढ़े
भृकुटि-धनु, नयन-शर विकट संधानि कै,
मुकुट की ढाल, करवाल अलकन कढ़े

कोकिला कड़कि उचरत कड़खैत सी
बदत बंदी बिरद भँवर आगे बढ़े
कोक की कारिका बानरी सैन लै
दास 'हरिचंद' रति-विजय आनँद मढ़े
—राग संग्रह ९९.

वस्तुतः यह राम काव्य न होकर कृष्ण-काव्य है और व्यर्थ के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम की छीछालेदर इसमें की गई है। यह स्वयं भारतेंदु बाबू की सुरुचि के अनुकूल नहीं है।

संवत् १९३६ में भारतेंदु ने मिथिला की यात्रा की थी। इस यात्राकाल में उन्होंने संस्कृत में 'श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र' की रचना की थी। इसमें ३० श्लोक हैं, जिनमें जानकी, मांडवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, सुनयना, जनक, विश्वामित्र-शतानंद-कुशध्वज-लक्ष्मीनिधि आदि की तथा जनकपुरी की स्तुति की गई है।

इन फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त 'श्रीरामलीला' नामक एक लघु चंपू का भी प्रणयन भारतेंदु ने किया है। यह एक अत्यंत छोटी सी रचना है। यह रामनगर की राम लीला देखकर वहीं से अनुप्राणित एवं प्रेरित होकर लिखी गई है। अत्यन्त संक्षेप में बालकाण्ड (९ पृष्ठों में) और उससे भी संक्षेप में अयोध्याकाण्ड की कथा (२ पृष्ठों में) इसमें कही गई है। इसमें गद्य काव्य की कोई छटा नहीं दिखाई देती, जो चंपू के लिए परमावश्यक है। गद्य का प्रयोग भी कम हुआ है, और जो हुआ भी है, वह दो भावात्मक प्रसंगों को जोड़ने मात्र के लिए। भूमिका स्वरूप प्रारम्भ में निम्नांकित पद है—

हरि लीला सब विधि सुखदाई

फिर रामनगर की रामलीला की प्रशंसा गद्य और पद्य दोनों में की गई है।

अहल्या-तरण प्रसङ्ग में कवि ने ७ दोहों में अत्यन्त दैन्य-प्रदर्शन करते हुए कहा है—

हमहूँ कछु लघु सिल न जो, सहजहिं दीनौ तार
लगिहै इत कछु बार प्रभु, हम तौ पाप-पहार

जनक-नगर-दर्शन, पुष्प बाटिका-भ्रमण, धनुष यज्ञ, धनुष-खण्डन और विवाह के प्रसङ्ग में एक से एक उत्तम १४ कवित्त सवैये भारतेन्दु बाबू ने लिखे हैं, जो बरबस 'कवितावली' का स्मरण कराते हैं। उदाहरण स्वरूप यहाँ केवल एक छन्द फुलवारी-प्रसंग का उद्धृत किया जा रहा है—

जाहु न जाहु न कुंजन मैं उत
नाहिंतौ नाहक लाजहि खोलिहौ
देखि जौ लैहो कुमारन कों
अबहीं झट लोक की लीकहिं छोलिहौ
भूलिहै देह-दसा सगरी
'हरिचंद' कछू को कछू मुख बोलिहौ
लागिहैं लोग तमासे हहा
वलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलिहौ

विवाह के अनन्तर जेवनार के समय अवसरानुकूल एक गाली भी गवाई गई है। बारात लौटकर अयोध्या आई और नवदुलही श्री जनक लली जी की आरती कर बालकाण्ड की लीला समाप्त की गई है, जैसा कि राम लीलाओं में प्रतिदिन लीला समाप्त करने के पूर्व होता है।

अयोध्याकाण्ड की लीला के साथ करुण रस का समुद्र उमड़ पड़ता है, राम वन को सिधारते हैं, राजा दशरथ प्राण त्यागते हैं और नगर में चारों ओर श्री राम का बिरह छा जाता है। राम के वियोग में अयोध्यावासियों के उद्‌गार छह पदों में दिए गए हैं, जो 'गीतावली' की प्रणाली पर हैं और सुन्दर हैं—उदाहरण के लिए एक पद यहाँ दिया जाता है—

जीवन जो रामहि सँग बीतै
बिनु हरि-पद-रति और बादि सब, जनमं गँवावत रीतै
नगर नारि धन धाम काम सब धिक धिक बिमुख जौन सिय पी तैं
'हरीचंद' चलु चित्रकूट, भजु भव मृग बाधक चीतै

अन्त में भरत जी की आरती उतार कर अयोध्याकाण्ड की लीला समाप्त की गई है।

सन्तकाव्य की ही भाँति भारतेन्दु का रामकाव्य भी कम ही है; पर जो कुछ है सुन्दर है।

१२

रीति काव्य

(१) रीति काव्य की ओर भारतेन्दु की रुझान

भारतेन्दु बाबू जिस समय हिन्दी साहित्य में अवतीर्ण हुए, रीतिबद्ध श्रृङ्गार साहित्य का सर्जन प्रचुर परिमाण में हो रहा था। अधिकांश कवि रीति-काव्य प्रस्तुत करने के साथ ही साथ रीति-शास्त्र भी प्रस्तुत करके आचार्य पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। जो हो, भारतेन्दु को सर्वप्रथम इसी प्रकार के साहित्य से प्रेरणा मिली। रीति-काव्य की यह प्रणाली मुख्य करके एक साँचे में ढली हुई थी—कवि लोग दोहों में लक्षण प्रस्तुत कर सवैया या कवित्त में उदाहरण देते थे। भारतेन्दु बाबू ने स्वयं कोई रीतिबद्ध ग्रन्थ नहीं लिखा, उन्होंने रीति मुक्त रचनाएँ ही प्रस्तुत कीं। फिर भी उनके आधे से अधिक कवित्त, सवैये रीति रचना के सफल उदाहरण हैं। 'सुन्दरी तिलक' सवैयों का संग्रह है। भारतेन्दु बाबू ने इस संग्रह में नायिका-भेद के क्रम का अनुसरण किया है और श्रृङ्गार-रस का सागर बहाया है। भारतेन्दु ने अपने भी अनेक सवैये इस ग्रन्थ में दिए हैं, इससे स्पष्ट है कि उनके अनेक कवित्त, सवैये नायक-नायिकाओं के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। श्री प्रभुदयाल मीतल प्रणीत 'ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद' नामक ग्रन्थ में भी भारतेन्दु बाबू के १५ कवित्त सवैयों को स्थान दिया गया है। इससे भी स्पष्ट है कि भारतेन्दु बाबू ने रीतिमुक्त रीति साहित्य का सर्जन किया है। इसके अतिरिक्त नायिका भेद आदि की ओर इनकी रुचि का प्रमाण एक बात से और भी मिलता है। इनके पिता 'रस रत्नाकर' नामक रस सम्बन्धी एक ग्रन्थ अधूरा ही छोड़ गए थे, भारतेन्दु ने उसे पूरा करने में हाथ लगाया था, पर वे भी इसे अधूरा छोड़ गए। 'रस रत्नाकर' अप्रैल, मई १८७४ के हरिश्चन्द्र मैगज़ीन के अंक ७, ८ में निकला है और 'हरिश्चन्द्र कला, ६' में भी यह संकलित हुआ है। इस ग्रन्थ के पारायण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण होने पर यह अत्यंत महत्व का होता। इसके द्वारा रीति शास्त्र की एक नूतन प्रणाली का प्रारंभ होते-होते रह गया। अभी तक आचार्य लोग दोहों में लक्षण लिखा करते थे; परंतु पद्यबद्ध लक्षण में विवेचन के लिए स्थानाभाव रहता है, इसलिए भारतेन्दु बाबू ने गद्य में अपनी स्वतंत्र विवेचना के अनुसार लक्षण प्रस्तुत किया था। वे परकीया का लक्षण इस प्रकार लिखते हैं—

"अथ परकीया। 'अप्रकट परपुरुषानुरागिणी परकीया' अर्थात् अप्रकट पर पुरुष में जो अनुराग करे वह परकीया। पर इस सूत्र का और प्राचीन मत का आग्रह और अनुभव प्राचीनों ही को रहे। मैं तो न ऐसा मानता हूँ और न मेरा अनुभव है, क्योंकि इस सूत्र के दो लक्षण है, एक तो अप्रगट अनुराग, वह अनुभव के बाहर है, क्योंकि यह प्रेम ऐसी आँच है कि कभी छिपती नहीं। इसमें उदाहरण स्वरूप श्री गोपीजन हैं जिनका प्रेम स्वयं ग्रंथों में विख्यात है। और इस दशा में कुलटात्व कभी नहीं आता क्योंकि अनुभव है कि किसी-किसी परकीया का प्रेम पतिव्रता से भी दृढ़ होता है। इससे पहिला लक्षण अनुभव विरुद्ध है और दूसरा यह कि आप ही 'अनुराग करे', यह भी अनुभव विरुद्ध है, क्योंकि अनेक नायिकाओं का एकांगी प्रेम होता है। इस दशा में क्या उनका वर्णन स्वकीया करके होगा? जैसा ठाकुर जी ने कहा है—

'आवत हैं नित मेरे लिए इतना तो विशेषहूं जानति हैहै'

और इस दशा में नायिका में बिना दुर्गुण देखे कुलटा कहने से भी पाप है। इससे दूसरा लक्षण भी मत विरुद्ध है।"

यहाँ मुझे यह कहना अभीष्ट नहीं है कि भारतेन्दु का कहना कहाँ तक सच है—मेरी समझ से परकीया अप्रकट रूप से ही उपपति को प्यार करती है, अपने प्यार को सर्वथा छिपाने का ही प्रयास करती है, वह खुल जाय यह दूसरी बात है, वह स्वयं अपनी ओर से खुलकर प्यार नहीं करती। जहाँ तक दूसरे लक्षण का संबंध है, मैं तो यही मानता हूँ कि जब तक नायिका स्वयं दूसरे किसी को नहीं अनुराग करती, वह परकीया नहीं है, वह स्वकीया ही है, भले ही दूसरे उसके लिए अपना सर पटक दें। इस प्रसंग में नायिका-भेद खोजने की आवश्यकता नहीं है, नायक-भेद खोजना जरूरी है। ऊपर के ठाकुर के सवैये में उपपति है, नायिका तो स्वकीया ही है, वह परकीया नहीं हो सकती। ऊपर मैंने परकीया के विषय में जो इतना लम्बा विवेचन उद्धृत किया, उससे मेरा तात्पर्य केवल यह दिखाना था कि भारतेन्दु सभी बातों का तर्कपूर्ण विवेचन गद्य में कर रहे थे जो रीति ग्रन्थों के लिए अत्यावश्यक है। परकीया सम्बन्धी प्राचीनों के मत की इस प्रकार आलोचना कर लेने के अनन्तर कवि स्वयं निजकृत लक्षण इस प्रकार देता है—

"मन मोहै जोहत सकल जानै रस निरधार
प्रीति एकही सों करैं सो परकीया नारि
प्रगट करै अनुराग वा राखै ताहि छिपाय
नहिं चाहै पिय को तऊ परकीया कहवाय

जो परकीया हो वही परकीया है अर्थात् नाम ही में उसका लक्षण लक्षित है।"

भारतेन्दु ने अनेक भेदोपभेदों को बढ़ाया है। साधारणतया धर्मानुसार नायिकाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—स्वकीया, परकीया, सामान्या। भारतेन्दु बाबू पाँच प्रकार की नायिकाएँ मानते हैं—(१) कन्यका (२) स्वकीया (३) परकीया (४) कुलटा (५) सामान्या वनिता। यह मान्यता समीचीन प्रतीत होती है। आम तौर पर 'कन्यका' को आचार्यों ने परकीया के अन्तर्गत रक्खा है और वे उसे अनूढ़ा परकीया कहते हैं। परकीया पर पुरुष से प्रेम करनेवाली नायिका को कहते हैं। कन्या का जब तक विवाह नहीं हो जाता, उसका कोई पुरुष नहीं होता, फिर वह पर पुरुष से प्रेम करने वाली परकीया कैसे कही जा सकती है। श्री प्रभुदयाल मीतल भी 'व्रजभाषा साहित्य में नायिका भेद' नामक अपने ग्रन्थ में 'अनूढ़ा परकीया' को परकीया मानना अनुचित समझते हैं—

"अविवाहित अवस्था में किसी पुरुष से प्रीति करनेवाली और उसके साथ विवाह करने की इच्छा रखनेवाली कुमारी को अनूढ़ा कहते हैं। इस प्रकार की परकीया में कोई दोष नहीं है, बल्कि इसे परकीया कहना ही नहीं चाहिए। हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में भगवती पार्वती, जगज्जननी जानकी, महारानी रुक्मिणी आदि सभी देवी स्त्रियाँ अनूढ़ा रह चुकी हैं उनके इस कार्य को कोई बुरा नहीं कहता। क्षत्रिय राजाओं में स्वयंवर की प्रथा और राजपूत बालाओं का स्वेच्छा से किसी वीर योद्धा से प्रेम करना और उसके साथ विवाह करना सदा से प्रचलित है, इसलिए अनूढ़ा नायिका के आदर्श पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। अनूढ़ा के शुद्ध प्रेम में व्यभिचार की भावना करना अनुचित है।"

—व्रजभाषा साहित्य में नायिका भेद, पृष्ठ १५०

जिस प्रकार अनूढ़ा को भारतेंदु बाबू परकीया के अंतर्गत नहीं रखते, उसी प्रकार वे कुलटा को भी उसके अंतर्गत नहीं रखते। साहित्य और भक्ति में परकीया को बहुत महत्व दिया गया है। परकीया नायिका पूर्ण आत्म-त्याग और लगन के साथ, सभी प्रकार की बाधाओं का सामना करते हुए अपने प्रेम पर दृढ़ रहती है। उसकी यह दृढ़ता ही उसे महत्त्वमय बना देती है। परकीया में प्रेम की जो दृढ़ता होती है, उसी दृढ़ता ने वैष्णवों को परकीया भक्ति की ओर प्रेरित किया है। भक्ति में परकीया के आदर्श का यही रहस्य है। परकीया की दृढ़ता का वर्णन करते हुए हरिऔध जी 'रस कलश' में लिखते हैं—

"परकीया नायिका में जो प्रेम जन्य व्याकुलता होती है। उसमें जो अधीरता, उत्सुकता, प्रेमोन्माद और तड़प देखी जाती है, वह बड़ी ही अदम्य एवं वेदनामयी होती है। पहाड़ी नदियों की गति में बड़ी प्रखरता, बड़ी सबलता, बड़ा वेग और बड़ी ही दुर्दमनीयता होती है, क्योंकि उसके पथ में विघ्न बाधा स्वरूप अनेक प्रस्तर खंड, अनेक संकीर्ण मार्ग और बहुत से पहाड़ी दर्रे होते हैं। परकीया नायिकाओं का पथ भी इसी प्रकार विपुल कंटकाकीर्ण होता है। उनको लोक-लाज की बेड़ी काटनी पड़ती है, वंशगत बंधन तोड़ना पड़ता है, गुरुजनों की भर्त्सना, गाँववालों का उत्पीड़न और सखियों का तिरस्कार सहना पड़ता है, अतएव उनकी गति भी पहाड़ी नदियों की सी उद्वेलित होती है। उनके हृदय के भावों का चित्रण टेढ़ी खीर है, साथ ही बड़ा ओजमय, द्रावक और मर्मस्पर्शी भी है। उसमें सत्यता है, सौंदर्य है, और है, प्रेम-पथ का भीषण दृश्य। उसमें वह अटलता है जो हथेली पर सर लिए फिरनेवालों में ही देखी जाती है।"

कुलटा के प्रेम में दृढ़ता नहीं होती। उसके प्रेम को प्रेम कहना ही प्रेम को बदनाम करना है। वह तो वासना है, जो अनेक पुरुषों के संग प्रसंग करने पर भी तुष्ट होती नहीं दिखाई देती। संभवतः इन्हीं सब बातों पर विचार करके केशव, भिखारीदास आदि आचार्यों ने परकीया के अंतर्गत कुलटा का वर्णन नहीं किया। भक्ति पद्धति में भी कुलटा को नहीं ग्रहण किया गया है क्योंकि उसमें भक्ति के लिए वांछनीय दृढ़ता का एकांत अभाव है। इसलिए यदि भारतेंदु बाबू ने कुलटा का एक अलग वर्ग ही निश्चित कर लिया तो कोई अनुचित नहीं किया।

इसी प्रकार भारतेंदु बाबू गर्विता के अनेक उपभेद—प्रेम, धन, यौवन, कुल, रूप, गुण, वचन—मानते थे। इसमें भी पैत्रिक कुल तथा धन, एवं निज रूप और गुण के विचार से तथा पति कुल, धन, रूप इत्यादि के विचार से दो भेद मानते थे। इसी प्रकार वे श्रृंगार में भी पूर्वानुराग, संभोग, मानोत्कंठा, विरह, ईर्ष्या आदि में भी भेद मानते थे। इतना ही नहीं, वे साहित्य-प्रसिद्ध नौ रसों से ही संतुष्ट नहीं थे, बल्कि वात्सल्य, सख्य, भक्ति एवं आनंद ये चार रस और मानते थे। पं० ताराचरण जी ने अपने 'श्रृंगार रत्नाकर' में ऊपर के सभी उपभेदों के उदाहरण भी दिए हैं।

स्पष्ट है कि भारतेंदु बाबू ने यद्यपि रीति शास्त्र पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा, पर उन्होंने साहित्यशास्त्र का पूर्ण मंथन किया था और विभिन्न विषयों पर तर्क पूर्ण स्वतंत्र सम्मति भी रखते थे। लक्षण न भी लिखकर उन्होंने लक्ष्य छंदों का प्रचुर परिमाण में प्रणयन किया है। उनके आधे से अधिक

कवित्त सवैये नायिका भेद संबंधी हैं। आगे हम उदाहरणों के द्वारा अपने इस मंतव्य को प्रमाणित करने का प्रयत्न करेंगे।

(२) नायिका और नखशिख

नायिका भेद के ग्रंथों में पहले नायिका का ही उदाहरण दिया जाता है। नायिका, रूप, गुण एवं यौवन से युक्त होनी चाहिए। भारतेंदु का यह सवैया नायिका का सुंदर उदाहरण है—

गोरो सो रंग, उमंग भरयो चित, अंग अनंग को मंत्र जगाए
काजर रेख खुभी दृग मैं, दोउ भौंहन काम कमान चढ़ाए
आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित मैं अति चोप बढ़ाए
सुंदर रूप सो नैनन में बस्यो, भूलत नाहिनै क्योंहू भुलाए

—कर्पूर मंजरी

हरिऔध जी ने नायिका के लक्षण उदाहरण के पश्चात् उसके नखशिख का वर्णन किया है। भारतेंदु ने इस विषय का पिष्ट पेषण करना उचित नहीं समझा है। उन्होंने नेत्र पर केवल एक सवैया लिखा है, अन्य अंगों को एक दम छोड दिया है—

वेई कहैं अति सुंदर पंकज, वेई कहैं मृग नैन बड़ा रे
वेई कहैं अति चंचल खंजन, वेई कहैं अति मीन सुधारे
वेई कहैं अति बान को तीछन, वेई कहैं ठगिया बटवारे
वेई कहैं धनु काम लिए, जिन कामिनी के नहिं नैन निहारे

—भारतेंदु हरिश्चंद्र—(ब्रज रत्नदास) पृष्ठ ८९.

(३) धर्मानुसार नायिका भेद

फिर नायिकाओं का धर्मानुसार वर्गीकरण किया जाता है—स्वकीया परकीया और सामान्या।

अ—कन्यका

भारतेंदु ने परकीया के अंतर्गत परिगणित अनूढ़ा को कन्यका नाम से एक अलग ही वर्ग माना है। इस कन्यका का भी एक उदाहरण भारतेंदु कवित्तावली में उपलब्ध है—

मो मन मैं निहचै सजनी यह, तातहु तें प्रन मेरो महा है
सुंदर स्याम सुजान सिरोमनि, मो हिअ में रमि राम रहा है
रीत पतिव्रत राखि चुकी, मुख भाखि चुकी अपुनो दुलहा है
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु, चढ़ौ तौ कहा, न चढ़ौ तो कहा है

—राम लीला १७.

ब—स्वकीया

श्रीप्रभुदयाल मीतल ने भारतेन्दु का निम्नांकित सवैया स्वकीया के उदाहरण में रखा है—

सासु जेठानिन सों दबती रहै, लीने रहै रुख यों ननदी कौ
दासिन सों सतरात नहीं, 'हरिचंद' करै सनमान सखी कौ
पीय को दच्छिन जानि न दूसत, चौगुनो चाव बढ़ै वा लली कौ
सौतिनहू कौ असीसै सुहाग, करै कर आपने सेंदुर टीकौ
—प्रेम माधुरी ७५.

वय क्रम से स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा ये तीन वर्ग किए जाते हैं। फिर मुग्धा के अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना ये दो भेद किए जाते हैं। निम्नांकित सवैया अज्ञात यौवना का अकेला उदाहरण है—

बैठे सबै गुरु लोग जहाँ, तहाँ आई वधू, लखि सास, भई खरी
देन उराहनो लागी तबै निसि को, अति भोरी, न जानत रीत री
ढीठ तिहारो बड़ो 'हरिचंद', न देखत, मेरी सु ऐसी दसा करी
आँचर दीनो सखी मुख मैं, कहि, सारी फटी तो बनाइहै दूसरी
—प्रेम माधुरी ३७.

सवैया के 'अति भोरी' और 'न जानत रीत री' आदि पदों से इस नायिका का मुग्धत्व एवं अज्ञात यौवनत्व सूचित हो रहा है।

ज्ञात यौवना मुग्धा का भी एक ही उदाहरण है—

सिसुताई अजौं न गई तन तें, तऊ जोबन जोति बटोरै लगी
सुनिकै चरचा 'हरिचंद' की, कान कछूक दै, भौंह मरोरै लगी
बचि सासु जेठानिन सों, पिय तें दुरि घूँघट में दृग जोरै लगी
दुलही उलही सब अंगन तें, दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी
—प्रेम माधुरी ८०.

श्रीयुत मीतल जी ने इस सवैया को मुग्धा के उदाहरण में रक्खा है। यह मुग्धा तो है ही, साथ ही मुग्धा के अन्तर्गत ज्ञात यौवना भी है। नायिका वयः संधि पार कर रही है और उसे आने वाले यौवन का आभास भी हो गया है। इसीलिए वह अपने प्रिय की चर्चा मनोयोग पूर्वक सुनने, चंचल भ्रू विलास करने, सासु जेठानियों से छिपाकर प्रिय से आँखें मिलाने तथा अपने विभिन्न अंगों से पीयूष निचोड़ने लगी है। निश्चय ही उसके ये सभी विभ्रम साभिप्राय हैं, फलतः वह ज्ञातयौवना है।

फिर ज्ञात यौवना के भी दो भेद हैं—नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा। भय और लज्जा के कारण जो स्वकीया मुग्धा रति के प्रति अरुचि दिखलाती है, वह नवोढ़ा कहलाती है। भारतेन्दु में इसका भी उदाहरण मिल जाता है—

लाइ केलि मंदिर तमासा को बताइ छल
बाला ससि सूर के कला पैं किये दावा सी
धाइ ताहि गहन चहत 'हरिचंद जू' के
घूमि रही घर में चहूँघा करि कावा सी
धोखा दैकै अंकम भरत अकुलानी अति
चंचल चखन सों लखानी मृग छावा सी
आहि करि, सिसकि, सकोरि तन, मोहि पियै,
कर तें छटकि छूटी, छलकि छलावा सी

—प्रेम माधुरी ७७.

केलि मन्दिर में यह नायिका स्वयं नहीं आई है, लाई गई है; तथा छटककर छूट भागने से उसकी लज्जा एवं भय भी स्पष्ट हो रहे हैं, इसीलिए यह निश्चय ही नवोढ़ा है।

विश्रब्धनवोढ़ा में भय एवं लज्जा का भाव कुछ कम हो जाता है, और वह पति की ओर कुछ-कुछ आकर्षित हो जाती हैं। उसकी प्राथमिक झिझक बहुत कुछ जाती रहती है। भारतेन्दु में इसका भी एक उदाहरण है—

आई केलि मन्दिर मैं प्रथम नवेली बाल
जोराजोरी पिय मन मानिक छुड़ाएँ लेति
सौ सौ बार पूछे एक उत्तर मरु कै देति
घूँघट की ओट जोति मुख की दुराएँ लेति
चूमन न देति 'हरिचन्दै' भरी लाज अति
सकुचि सकुचि गोरे अंगहि चुराएँ लेति
गहतहि हाथ, नैन नीचे किए, आँचर में
छबि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति

—प्रेम माधुरी ११९.

यह मुग्धा लाई नहीं गई हैं, केलि मन्दिर में स्वतः आई है, अत्यन्त लाज भरी है और सकुचकर अपने गोरे अंगों को चुरा लेती है। उसका स्वतः आना प्रिय के प्रति आकर्षण को सूचित करता है तथा भय और लज्जा का भाव नवोढ़त्व प्रदर्शित करता है।

मध्या में लज्जा और काम समान रूप से होते हैं। भारतेन्दु में मध्या स्वकीया के भी दो उदाहरण हैं—

(१) आई प्रात सोवत जगाई मैं सखीन साथ
ननद विलोकिबे को करै अभिलाख है
'हरीचन्द' हँसि हँसि पोंछे मुख अंचल सों
आरसी लै दूजी ठाढ़ी कहै कछू माख है
एक मोती वीनै, एक गूँथै बेनी, एक हँसै,
साँसत हमारी एक करै सिल लाख है
बसन के दाग धोवै, नख-छत एक टोवै,
चूर लै चुरी को एक खेलै जूस ताख है

—प्रेम माधुरी ७१.

(२) कैसे सखी बसिए ससुरारि मैं, लाज को लेइबो क्यों सहि जावै
ऐसी सहेलिनैं ऊधमी हैं, नख दंत के दाग लै कोऊ गनावै
त्यों 'हरिचन्द' खरी ढिग सास के, ढीठ जिठानी पिया को हँसावै
ओढ़िकै चादर रात के सेज की, सामने ही ननदी चलि आवै

—प्रेम माधुरी ७३.

इन दोनों रचनाओं में नायिका को रति से विरति नहीं मालूम पड़ती; हाँ, लज्जा उसमें है। यह लज्जा भी स्वामी से नहीं है, बल्कि अपने शरीर पर के रति चिन्हों के दूसरों के द्वारा देखे जाने पर उत्पन्न होती है। प्रौढ़ा में यह लज्जा नहीं होती। इसलिए ये दोनों कविताएँ मध्या का ही उदाहरण हैं।

प्रौढ़ा स्वकीया सम्बन्धी रचनाओं में विशेषतः संभोग का ही परम प्रौढ़ वर्णन हुआ है। एक छन्द में (प्रेम-माधुरी १०२) विपरीत रति का भी उल्लेख हुआ है, जो 'प्रथम समागम को बदलो चुकाएँ लेत' की पूर्ति है। प्रौढ़ा नायिका के दो भेद किए गए हैं—रति प्रीता, आनन्द संमोहिता। रति केलि में अत्यन्त रुचि प्रदर्शित करने वाली नायिका को रति-प्रीता कहते हैं। भारतेंदु में इसका कोई उदाहरण नहीं है। आनंद-संमोहिता प्रौढ़ा 'पति के रति-सुख जनित प्रेमानंद में सदा निमग्न' रहती है। भारतेंदु में इसके कई उदाहरण हैं—

आजु केलि मंदिर अनंद भरि बैठे श्याम
श्यामा संग रंगन उमंग अनुरागे हैं
घन घहरात, बरसात होत जात ज्यों ज्यों
त्यों ही त्यों अधिक दोऊ प्रेम पुंज पागे हैं

'हरीचंद' अलकैं कपोल पै सिमिटि रहीं
बारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे हैं
भींजि भींजि लपटि लपटि सतराइ दोऊ
नील पीत मिलि भए एकै रंग बागे हैं
—प्रेम माधुरी २१.

नायिका भेद के ग्रंथों में मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा, धीरा-धीरा तथा ज्येष्ठा-कनिष्ठा आदि भेद किए गए हैं। भारतेंदु में उनके उदाहरण नहीं मिलते।

स-परकीया

भारतेंदु की सभी परकीयाएँ प्रौढ़ा हैं। मुग्धा और मध्या परकीयाओं के भी एक एक उदाहरण उपलब्ध है—

लाई लिवाय तमासो बताय, भुरायकै दूतिका कुंजन माँहीं
धाय गही 'हरिचंद' जबै, न छपी वह चंदमुखी परछाँहीं
अंक मैं लेत छल्यो छल कै, बल कै तब आप छोड़ायकै बाँहीं
हाथन सों गहि नीबी कह्यो, पिय नाँहीं जू, नाहीं जू, नाहीजू, नाहीं।
—प्रेम माधुरी १०६.

नायिका स्वयं नहीं आई है; दूती उसे तमासा का बहाना करके कुंज में बहका लाई है। स्वकीया के लिए दूती अनावश्यक है। निश्चय ही दूती की मध्यस्थता तथा कुंज-क्रीड़ा उसके परकीयत्व की सूचना देते हैं। बलपूर्वक बाँहों के पाश से छिटक छूट कर, नीबी को पकड़कर, नाहीं नाहीं कहना उसके मुग्धत्व की ओर संकेत करते हैं।

नव कुंजन बैठे पिया नँदलाल जू, जानत हैं सब कोक कला
दिन मैं तहाँ दूती भुराय कै लाई, महा छबि धाम नई अबला
जब धाय गही 'हरिचंद' पिया, तब बोली अजू तुम मोहि छला
मोहिं लाज लगै, बलि पाँव परौं, दिन ही हहा ऐसी न कीजै लला
—प्रेम माधुरी ७८.

इस सवैया में दूती की मध्यस्थता, नायिका का बहलाकर बुलाया जाना, एकांत कुंज क्रीड़ा, नायक का दौड़कर नायिका को अंक में ले लेना आदि नायिका का परकीयत्व बताते हैं। वह पिछली नायिका की भाँति मुग्धा नहीं है और स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं करती। उसे दिन में रति-रत होने में लज्जा आती है, अतः वह मध्या है।

नायिका भेद के ग्रंथों में परकीया के छह भेद बतलाए गए हैं—मुदिता, विदग्धा, अनुशयना, गुप्ता, लक्षिता और कुलटा। भारतेंदु में प्रथम चार के एक भी उदाहरण नहीं हैं। लक्षिता के चार उदाहरण हैं। श्री प्रभुदयाल मीतल ने—'भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी'—प्रेम माधुरी ७०, को लक्षिता के उदाहरण में उद्धृत किया है। शेष तीन उदाहरण भी अत्यंत रम्य हैं। एक में सखी ने लक्ष कर लिया है कि नायिका की पीली कंचुकी भी हरी हो गई है, इसका मूल कारण है कि श्याम उसके उर में निवास करते हैं—

तू रँगी रंग पिया के सखी, कछू बात न तेरी लखाइ परी है
जद्यपि हौं नित पास रहौं, तऊ मेरी यहै मति सोच भरी है
जानी अहो 'हरिचंद' अबै, यह प्रीत प्रतीत तिहारी खरी है
श्याम बसैं उर में नित ताहि सों, पीतहू कंचुकी होत हरी है
—प्रेम माधुरी ७८.

दूसरे में कहा गया है कि नायिका नित्य आरसी देखा करती है, सम्भवतः इसीलिए क्योंकि उसका प्रिय उसके नयनों में निवास करता है और नयनों की छाया आरसी में जब पड़ेगी तब वह प्रतिबिंब के प्रतिबिंब से सन्तोष कर लेगी। नयनों में प्रिय के रहने पर भी, उसे आरसी की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि नयन सबको देखते हुए भी अपने को नहीं देख पाते। नायिका निश्चय ही परकीया है, स्वकीया के लिए इतनी सावधानी की आवश्यकता नहीं। प्रिय परदेश भी चला जाय तो भी वह उसके चित्र को सीने से सटाए रह सकती है, उसे कोई रोक नहीं। पर लखने वाले ऐसे हैं कि उस बेचारी की इस चतुराई को भी भाँप जाते हैं—

हौं तो याही सोच में बिचारत रही री काहे
दरपन हाथ ते न छिन बिसरत है
त्यौंही 'हरिचंद जू' वियोग औ' सँयोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत है
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात तू तौ
परम पुनीत प्रेम पथ विचरत है
तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि
आरसी में रैन दिन देखिबो करत है
—चंद्रावली

निम्नलिखित कवित्त परकीया लक्षिता का अत्यन्त सुंदर, सरस तथा साफ उदाहरण है—

साज्यो साज गाँव मिलि तीज के हिंडोरना को
तानि कै वितान खासो फरस बिछायो री
आवैं मिलि गोपी तापै भींजि झुंड झुंड, काम
छाप सी लगावैं, गावैं गीत मन भायो री
मोहिं जानि पाछे परी, देरी तै दया कै 'हरी—
चंद' अंक लैकै, लाल छिपि पहुँचायो री
जानि गईं ताहू पै चबाइनै गजब देखौ
पायँ बिनु पंक के कलंक मोहिं लायो री
—प्रेम माधुरी ९४.

उस गोपी के पैरों में पंक नहीं लगा था और अन्य सभी के पैरों में लगा था। फलतः उन सबने ठीक ही लक्ष कर लिया कि यह अपने प्रिय के अंक में छिपकर, छिपी हुई, आई है। उनका अनुमान अनुचित नहीं प्रतीत होता।

प्रभुदयाल जी मीतल के अनुसार लक्षिता के पश्चात् परकीया का एक और भी उपभेद दृढ़ानुरागिनी होना चाहिए, जो पर पुरुष के प्रति अपने प्रेम के उघर जाने पर भी, दृढ़ रहे और समाज की लज्जा एवं भय से अपने पग पीछे न हटाए। भारतेन्दु में भी दृढ़ानुरागिनी के कई सुन्दर उदाहरण हैं—यथा—

(१) मिलि गाँव के नाँव धरौ सबही, चहुँघा लखि चौगुनो चाव करौ
सब भाँति हमैं बदनाम करौ, कढ़ि कोटिन कोटि कुदाँव करौ
'हरिचन्दजू' जीवन को फल पाय चुकीं अब लाख उपाव करौ
हम सोवत हैं पिय अंक निसंक, चबाइनै आओ चबाव करौ
—प्रेम माधुरी ४१.

(२) अब तो बदनाम भई ब्रज मैं, घरहाई चबाव करौ तो करौ
अपकीरति होउ भले 'हरिचंद जू', सासु जेठानी लरौ तो लरौ
नित देखनो है वह रूप मनोहर, लाज पै गाज परौ तो परौ
मोहिं आपने काम सों काम अली, कुल के कुल नाम धरौ तो धरौ
—प्रेम माधुरी १११.

द. कुलटा

अन्य आचार्यों की भाँति भारतेन्दु कुलटा को परकीया के अन्तर्गत न मान उसकी एक अलग श्रेणी ही मानते थे। यहाँ कुलटा का एक ही उदाहरण उपलब्ध है; इसमें बहुत कर नायिका का कुलटात्व प्रधान नहीं हो पाया है, उपपति ही प्रधान है—

हम चाहत हैं तुमको जिउ से, तुम नेकहूँ नाहिनैं बोलती हौ
यह मानहु जो 'हरिचंद' कहै, केहि हेत महा विष घोलती हौ
तुम औरन सों नित चाह करौ, हमसों हिय गाँठ न खोलती हौ
इन नैन के डोर बँधी पुतरी, तुम नाचत औ' जग डोलती हौ
—स्फुट कविताएँ पृष्ठ ८१९।२

य. सामान्या

साहित्यकारों ने धन-लिप्सा से किसी के भी साथ रमण करने वाली नायिका को सामान्या कहा है। भारतेन्दु में इसका भी कोई उदाहरण नहीं है।

४. दशानुसार नायिका भेद

दशानुसार तीन प्रकार की नायिकाएँ मानी गई हैं—गर्विता, अन्यसंभोग-दुःखिता और मानवती। भारतेन्दु ने यद्यपि गर्विता के अनेक उपभेद माने हैं पर इसका एक भी उदाहरण उन्होंने नहीं प्रस्तुत किया है। अन्यसंभोगदुःखिता का एक और मानवती के पाँच उदाहरण हैं।

अ. अन्य संभोग दुःखिता

अन्य स्त्री, विशेषकर किसी सखी, के शरीर पर अपने प्रिय के रति-चिह्नों को देखकर दुखी होने वाली नायिका अन्यसंभोगदुःखिता कहलाती है—

आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात
रीसै मति पूछै बात, रंग कित ढरिगो
सोने से या गात छूवै कै सोनौ भयो आप कै वा
आतप प्रभात ही कौ प्रगट पसरिगो
'हरीचंद' सौतिन की मुख दुति छीनी कै या
आपनो बरन कहूँ पाइ धाइ ररिगो
नील पट तेरो आज औरै रंग भयो काहे
मेरे जान बिछुरि पिया तें पीरो परिगो
—प्रेम माधुरी ७२.

ब. मानवती

मानवती सम्बन्धी चार रचनाओं में दूती नायिका को मनाती है, पर वह उस से नत नहीं होती। हारकर अन्त में वह नायक के पास जाकर उससे कहती है कि नायिका का मनाना उसके बस की बात नहीं, वह स्वयं जाकर मनावे तो शायद सफलता मिल जाय। दूती नायिका को मनाती हुई कह रही है—

प्रान पियारे तिहारे लिए सखि, बैठे हैं देर सों मालती के तर
तू रही बातैं बनाय बनाय, मिलै न वृथा गहि कै कर सों कर
तोहि घरी छिन बीतत है, 'हरिचंद' उतै जुग सो पलहू भर
तेरी तो हाँसी उतै नहिं धीरज, नौ घरी भद्रा घरी मैं जरै घर
—प्रेम माधुरी ३८.

५ अवस्थानुसार नायिका भेद

अवस्थानुसार नायिकाएँ दस प्रकार की मानी गई हैं—१. स्वाधीन पतिका, २. वासकसज्जा, ३. उत्कंठिता, ४. अभिसारिका, ५. विप्रलब्धा, ६. खण्डिता, ७. कलहांतरिता, ८. प्रवत्स्यत्प्रेयसी, ९. प्रोषितपतिका, १०. आगत पतिका। इनमें से स्वाधीनपतिका, उत्कण्ठिता, अभिसारिका एवं कलहान्तरिता के उदाहरण भारतेन्दु कवितावली में नहीं हैं, शेष छह के एक-एक दो-दो उदाहरण हैं।

अ—वासकसज्जा

सेज लगाकर प्रिय की प्रतीक्षा करने वाली नायिका वासक सज्जा कहलाती है। इसके दो उदाहरण हैं। निम्नांकित सवैया को श्रीव्रजरत्नदास जी ने अपने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' में वासकसज्जा का उदाहरण माना है—

आजु सिंगार कै केलि के मंदिर बैठी, न साथ में कोऊ सहेली
धाय कै चूमै कबौं प्रतिबिंब, कबौं कहै आपुहिं प्रेम-पहेली
अंक में आपुने आपै लगै, 'हरिचंद जू' सी करै आपु नवेली
प्रीतम के सुख मैं पिय-मै भई, आए तें लाल के जान्यौ अकेली
—प्रेम माधुरी १६.

प्रतीक्षा करते-करते भावी रति के ध्यान में मग्न यह नायिका तन्मय हो काल्पनिक रति में रत हो जाती है, जब प्रिय आ जाता है तब उसे देख उसकी चेतना लौटती है कि अरे मैं तो अकेली ही थी, अभी तक भाव-विभोरता के कारण मैं अपने को प्रिय के साथ रति मग्न समझ रही थी। इसी भूमि पर दूसरा सवैया भी है—

सोई बने सब मंजुल कुंज, अलीन की भीर जहाँ अति हेली
साज अनेक सजे सुख के, 'हरिचंद जू' त्यों ही खरी हैं सहेली
सोई नई रतियाँ रति की पिय, सोई कहै ढिग प्रेम पहेली
सोचत सो सुख सोई भई तिय, आए तें लाल के जान्यो अकेली
—प्रेम माधुरी १७.

ब–विप्रलब्धा

जब नायिका बहुत-बहुत आशा कर सहेट में जाती है और उसके अभाग्य से नायक अनुपस्थित रहता है, तब उसकी व्याकुलता का कोई ठिकाना नहीं रह जाता। ऐसी व्याकुल नायिका को विप्रलब्धा कहते हैं। भारतेन्दु कविता-वली में इसके दो उदाहरण हैं। पहला है—

इत उत जग में दिवानी सी फिरत रही
कौन बदनामी जौन सिर पै लई नहीं
त्रास गुरु लोगन की आस कै अनेक सही
कब बहु भाँतिन के ताप सों तई नहीं
'हरिचंद' गिरि बन कुंज जहाँ जहाँ सुन्यौ
तहाँ तहाँ कब उठि धाइ कै गई नहीं
होनी अनहोनी कीनी सबही तिहारे हेत
तऊ प्रान प्यारे भेंट तुमसों भई नहीं
—प्रेम माधुरी ८१.

दूसरा है—'काले परे कोस चलि-चलि थकि गए पाँय'—प्रेम माधुरी १०४—इसे मीतल जी ने अपने ग्रन्थ में विप्रलब्धा के उदाहरण में उद्धृत किया है।

स. खंडिता

रात्रिभर पर-स्त्री रमण कर जब नायक प्रभात में घर लौटता है और उसके बदन पर उस पर-स्त्री के रमण के चिह्न बने रहते हैं, तब उन चिन्हों को देख कर नायिका को अत्यंत ईर्ष्या होती है। ऐसी नायिका खंडिता कही गई है। भारतेंदु पदावली में खंडिताओं के अनेक सुंदर चित्र हैं, कवितावली में केवल दो हैं—

हौं ते तिहारे दिखाइबे के हित, जागत ही रही नैन उजार सी
आए न राति पिया 'हरिचंद', लिए कर भोर लौं हौं रही भार सी
है यह हीरन सों जड़ी रंगन, तापै करी कछु चित्र चितार सी
देखो जू लालन कैसी बनी है, नई यह सुंदर कंचन आरसी
—प्रेम माधुरी ९.

बेचारी नायिका खरी खोटी न कह चतुराई से आरसी सामने रख देती है और कहती है कि जरा अपनी सूरत तो इस आइने में देखिए। वह उन्हें स्वापराध पर लज्जित करा देना चाहती है—

आत क्यों उमड़ि आए, कहा मेरे घर छाए,
एजू घनश्याम कित रात तुम बरसे
गरजत कहा कोउ डर नाहिं जैहैं भागि
झुकि झुकि कहा रहे चलौ अटा पर से
सजल लखात मानौ नील पट ओढ़ि आए
कहो दौरे दौरे तुम आए काके घर से
'हरीचंद' कौन-सी दामिनि सँग रात रहे
हम तौ तुम्हारे बिना सारी रैन तरसे

—वर्षा विनोद ८९.

नायक को घनश्याम का रूप देकर नायिका ने जिस कोमल एवं श्लिष्ट तथा शिष्ट पदावली का प्रयोग किया है वह अत्यंत मार्मिक एवं मृदु है।

द. प्रवत्स्यत्प्रेयसी

प्रवत्स्यत्प्रेयसी वह नायिका है जिसका प्रिय परदेश जाने के लिए तत्पर हो। ऐसी नायिकाओं का चित्रण करते हुए रीतिकाल के महाकवियों ने अतिशयोक्ति एवं अत्युक्ति की वह भरमार की है जो शृंगार रस की सृष्टि न कर हास्य रस को जन्म देता है। भारतेंदु बाबू ऐसी ऊलजलूल ऊहात्मक उक्तियों एवं युक्तियों से सर्वथा मुक्त रहनेवाले थे। उन्होंने भी इस नायिका के तीन चित्र खींचे हैं पर वे अस्वाभाविक नहीं होने पाए हैं—

देखत पीठि तिहारी, रहैंगे न प्रान कबौं तन बीच निवारे
आगे गरे लपटौ मिलि लेहु, पिया 'हरिचंद जू' नाथ हमारे
कौन कहै कहा होयगौ पाछे, बनै न बनै कछु मेरे सम्हारे
जाइयो पीछे विदेश चले, करि लेन दे भेंट सखीन सों प्यारे

—स्फुट सवैया १०.

नायिका यह नहीं कहती कि रुक जाओ। वह चतुराई से और निहायत भोलेपन से कहती है कि आपकी पीठ देखते ही मेरी तो मौत हो जायगी—ऐसी मुझे आशंका है; इसलिए कृपा कर मुझे मेरी सखियों से मिल लेने दीजिए, फिर चले जाइए।

दूसरे छंद में भी नायिका चतुराई के साथ कहती है कि आपके चलते ही मेरे प्राण भी आपके साथ चले जायँगे, प्रिय, मेरे प्राण को ले जाकर क्या कीजिएगा, वह किस काम आएगा, इस शरीर को साथ लेते जाते तो कम से कम यह सेवा तो करता रहता—

करिकै अकेली मोहिं जात प्राननाथ अबै
कौन जाने आय कब फेर दुख हरिहौ
औधि को न काम कछू प्यारे घनश्याम, बिना
आपके न जीहैं हम, जो पै इतै धरिहौ
'हरीचन्द' साथ नाथ लेन मैं न मोहि कहा
लाभ, निज जीअ मैं बताओ तो विचरिहौ
देह संग लेते तो टहलहू करत जातो
ए हो प्रान प्यारे प्रान लाइ कहा करिहौ

—प्रेम माधुरी ४.

तीसरा छन्द—'रोकहिं जो तो अमंगल होय'—(प्रेम माधुरी १५) है। यह संस्कृत के एक श्लोक का अत्यन्त सफल अनुवाद है।

य. प्रोषितपतिका

प्रोषितपतिका के भी तीन उदाहरण हैं। वह विरहिणी नायिका जिसका पति परदेश चला गया हो प्रोषितपतिका कहलाती है। निम्न लिखित कवित्त तीनों उदाहरणों में श्रेष्ठतम है। इसमें नायिका अपने प्राण को सम्बोधित कर कह रही है—तब तो तुमने कहा था प्रिय के जाने के पहले ही मैं प्रयाण कर दूँगा, मगर तुम अब भी नहीं निकले, हाँ, पूरे निर्लज्ज अवश्य निकले—

तब तौ बखानी निज बीरता प्रमानी कै कै
प्रेम के निबाह भारे गरब गरूरे हौ
जान सों पिया के कह्यो प्रथम पयान 'हरि-
चन्द' अब बैठे कित दुरि दुरि दूरे हौ
हाय प्रान नाथ बिनु भोगत अनेक बिथा
खोइ सुख आसा लागि अब लौं मजूरे हौ
अजौं तन तजिकै न जाओ, लजवाओ मोहिं,
हा हा मेरे प्रान निरलज्ज तुम पूरे हौ

—प्रेम माधुरी १८.

फ. आगतपतिका

जब पति परदेश से वापस आ जाता है तब प्रोषितपतिका आगतपतिका हो जाती है। भारतेन्दु की नायिकाओं में एक आगतपतिका भी है—

जानि बिन पीतम, सहाय लै वसंत काम,
इनहीं कबहुँ महा प्रलय प्रचारे हैं
आयो जानि आज प्रान प्यारो 'हरिचन्द', ह्वै कै
सीतल सुगन्ध मंद मंद पग धारे हैं
मूँदि दै झरोखन कों डारि परदान, जामैं
आवै नाहिं क्योंहूँ पौन, अति बजमारे हैं
छुअन न दैहों इन्हैं सपनेहूँ अंग यह
वेई अहैं आग ह्वै ह्वै अंग जिन जारे हैं

—प्रेम प्रलाप ६०.

पवन से बदला लेने का क्या ही सुन्दर ढंग है।

(६) गुणानुसार नायिका भेद.

गुण के अनुसार तीन प्रकार की नायिकाएँ मानी गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। भारतेन्दु कवितावली में उत्तमा के दो उत्तम उदाहरण हैं। प्रिय को सदोष समझकर भी रोष न करनेवाली तथा सब प्रकार से उसका हित चाहने वाली नायिका उत्तमा कहलाती है—

कौन कहै इत आइए लालन, पावस में तो दया उर लीजिए
को हम हैं, कह जोर हमारो है, क्यों 'हरिचन्द' वृथा हठ कीजिए
जो जिय मैं रुचै भैंटिए ताहि, दया करिकै तेहिको सुख दीजिए
कोरी ही कोरी भली हम हैं, पिय भीजिए जू उनके रस भीजिए

—प्रेम माधुरी ९१.

यह परकीया उत्तमा है। पावस से उद्दीप्त काम चाहता है कि प्रिय का संसर्ग हो, पर वह जानती है कि प्रियपर उसका कोई जोर नहीं, इसलिए वह कहती है, मैं कोरी ही भली, आप जिस किसी के भी रस से भींग रहे हैं, भींगिए; मुझे कोई एतराज नहीं।

दूसरे छन्द की भी उत्तमा परकीया ही है, उसको अपनी कुलकानि से भी अधिक अपने प्रिय की कुलकानि की चिंता है। वह नहीं चाहती कि उसका प्रिय रंच भी बदनाम हो—

सदा चार चबाइन के डर सों, नहिं नैनहु साम्हे नचायो करैं
निरलज्ज भईं हम तो, पै डरैं, तुमरो न चबाव चलायो करैं
'हरिचन्दजू' वा बदनामिन के डर, तेरी गलीन न आयो करैं
अपनी कुल-कानिहुँ सों बढ़ि के, तुम्हरी कुल कानि बचायो करैं

स्फुट कविताएँ ८२०।५.

(७) नायक भेद

नायिका भेद संबन्धी ग्रन्थों में नायिका-भेद के अनन्तर नायक-भेद का विवेचन किया जाता है। श्री कृष्ण शृंगार रस के माने हुए नायक हैं। भारतेन्दु ने उनको चार कवित्तों में नायक रूप में अत्यन्त सुन्दर एवं सरल ढंग से चित्रित किया है। उनकी मोहनी अमित बताई गई है और उन्हें जादूगर कहा गया है—

एक बेर नैन भरि देखैं जाहि मोहैं तौन
माच्यौ ब्रज गाँव ठाँव ठाँव मैं कहर है
संग लागी डोलैं कोऊ घरही कराहैं परी
छूट्यौ खान पान रैन चैन बन घर है
'हरीचन्द' जहाँ सुनो तहाँ चरचा है यही
इक प्रेम डोर नाथ्यो सगरो शहर है
यामैं न सँदेह कछू दैया हौं पुकारे कहौं
भैया की सौं मैया री कन्हैया जादूगर है
—प्रेम माधुरी ८२.

लोगों का कुछ ऐसा खयाल है कि कन्हैया खामखाह टोना जानते हैं—

जौन गली कढ़ै तहाँ मोहे नर नारी सब
भीरन के मारे बन्द होइ जात राह है
जकी सी, थकी सी, सबै इत उत ठाढ़ी रहैं
घायल सी घूमैं केती किए हिये चाह हैं
'हरीचन्द' जासों जोई कहै तौन सोई करै
बरबस तजै सब पतिव्रत राह हैं
यामैं न सँदेह कछू सहजही मोहै मन
साँवरो सलोना जानै टोना खामखाह है
—प्रेम माधुरी ८३

नायक के तीन भेद किए जाते हैं—पति, उपपति, वैशिक। इनमें से केवल उपपति के कुछ उदाहरण भारतेन्दु कवित्तावली में हैं। उपपति को भौंर रूप में निम्नांकित कवित्त में अन्योक्ति के सहारे अत्यन्त सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है—

कबहुँक मालति पै कुंदन कियारिन पै
कूल एक केतकि कौं चौंकि चितवत है
कानन कमलन पै फिरत उदास क्यौं
पल्लव पैठि बैठि दिन बितवत है

'हरीचन्द' बागन कछारन पहारन मैं
जित तित परयो गुनि नेह हितवत है
सूखे सूखे फूलन पै तरुगन मूलन पै
मालती बिरह भौंर दिन बितवत है

—प्रेम माधुरी १०३.

प्रोषितपतिका नायिका की भाँति प्रोषितपति भी होता है। परदेश में अपनी प्यारी की चिंता करता हुआ, भारतेन्दु कवित्तावली का एक मात्र प्रोषित पति, निम्नलिखित कवित्त में कितना व्यथित मथित हो रहा है—

एरी प्रान प्यारी बिन देखे मुख तेरे, मेरे—
जिय मैं बिरह घटा घहरि घहरि उठै
त्योंहीं 'हरिचन्द' सुधि भूलत न योंहूँ, तेरो—
लाँबो केस रैन दिन छहरि छहरि उठै
गड़ि गड़ि उठत कूँटीले कुच कोर, तेरी—
सारी सों लहरदार लहरि लहरि, उठै
सालि सालि जात आधे आधे नैन बान, तेरे—
घूँघट की फहरनि फहरि फहरि उठै.

—प्रेम माधुरी ३६.

(८) दर्शन

नायक भेद के पश्चात दर्शन का वर्णन किया जाता है। दर्शन चार प्रकार का कहा गया है—श्रवण, चित्र, स्वप्न और प्रत्यक्ष। भारतेन्दु ने केवल प्रत्यक्ष दर्शन का निरूपण किया है —

आई गुरु लोग संग न्यौते ब्रज गाँव नई
दुलही सुहाई शोभा अंगन सनी रही
पूछे मनमोहन बतायो सखियन यह
सोई राधा प्यारी वृषभानु की जनी रही
'हरीचन्द' पास जाय प्यारो ललचायो दीठ
लाज की धँसी सो मानो हीर की अनी रही
देखो अन-देखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ
आधो मुख देखिबे की हौंस ही वनी रही

—प्रेम माधुरी ६९.

(९) सखी

दर्शन के अनन्तर सखी का वर्णन किया जाता है—सखी का भी एक उदाहरण है—

हम भेद न जानिहैं जोपै कछू, औ दुराव सखी हममें परिहै
कहि कौन मिलैहै पियारे पियैं, पुनि कारज कासों सबै सरिहै
बिन मोसों कहे न उपाव कछू, यह बेदन दूसरी को हरिहै
नहिं रोगी बताइहैं रोगहिं जौं, सखी बापुरो बैद कहा करिहै

—चन्द्रावली.

(१०) दूती

सखी के अनन्तर दूती का वर्णन किया जाता है। दूती भी तीन प्रकार की होती है—उत्तमा, मध्यमा, अधमा। उत्तमा दूती के तीन उदाहरण यहाँ हैं—

मैं वृषभानु पुरा की निवासिनि, मेरी रहै वृज बीथिन भाँवरी
एक सँदेसो कहौं तुमसों, पै सुनो जो करो कछू ताको उपाव री
जौ 'हरिचंदजू' कुंजन मैं मिली, जाहि करी लखिकै तुम बावरी
बूझी है वाने दया करिकै, कहिए परसों कब होयगी रावरी

—प्रेम माधुरी ५६.

सन्देश बहुत ही संक्षिप्त, मार्मिक एवं लाक्षणिक है—"परसों कब होयगी रावरी ?" नायिका मुग्धा परकीया है और नायक उपपति।

हे हरि जू बिछुरे तुमरे, नहिं धारि सकी सो कोऊ विधि धीरहिं
आखिर प्रान तजे दुख सों, न सम्हारि सकी वा वियोग की पीरहिं
पै 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी सुनाऊँ कहा बलबीरहिं
जानि महा गुन रूप की रासि, न प्रान तज्यो चहैं वाके सरीरहिं

प्रेम माधुरी १०१.

बड़े कौशल से दूती नायिका का विरह निवेदन करती है तथा उसके सौन्दर्य का संकेत करती है—उसके प्राण उसके शरीर को गुण एवं रूप की अपूर्व राशि समझ कर उसे नहीं छोड़ना चाहते। एक छोटे से वाक्य में निवेदन कर दिया गया कि नायिका मरणासन्न है—नायक की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इतना पर्याप्त होना चाहिए—साथ ही यह भी प्रगट कर दिया गया कि वह अपूर्व सुंदरी ही नहीं अपितु अपूर्व गुणी भी है। सौन्दर्य में गुण क्या मिला है—सोने में सुहागा मिल गया है। यदि वह गुणी न होती तो लाल पर लट्टू ही क्यों होती ? इस कौशल का भी नायक पर यदि प्रभाव न पड़े तो इसे नायिका एवं साथ ही दूती का भी दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

ये दोनों दूतियाँ परकीया नायिका की हैं; एक दूती उपपति की भी है। वह उपपति को सांत्वना दे रही है कि उसका कार्य पूरा कर देगी—

धीरज नेकु धरो उर मैं करिहौं मैं सोई मिलिहै वह जातैं
हौं तो सदा सँगही मैं रहौं कहि देहौं बुझाय सबै कछु बातैं
सोयहै सेज जबै 'हरिचंदजू', चाँपिहौं पाँय लगायकै घातैं
आजु हौं राति कहानिन के मिस, भाखिहौं रावरे प्रेम की बातैं

—सुंदरी तिलक १०७६.

(११) ऋतु वर्णन

शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखा, सखी, दूती आदि का वर्णन कर लेने के अनन्तर षट् ऋतुओं का वर्णन होता है। भारतेंदु ने केवल वसंत और वर्षा का वर्णन किया है। वसंत वर्णन सम्बन्धी ५ कवित्त सवैये हैं। इनके अतिरिक्त दो कवित्तों में होली का सुन्दर वर्णन हुआ है; वर्षा वर्णन पर कई कवित्त सवैये हैं। इन दोनों ऋतुओं का वर्णन रीति कालीन परम्परा के अनुकूल उद्दीपन की ही दृष्टि से हुआ है, फिर भी वर्णन सुन्दर हैं।

अ. वसन्त वर्णन

बन बन आग सी लगाइकै पलास फूले
सरसों गुलाब गुललाला कचनारो हाय
आइ गयो सिर पै चढ़ाय मैन बान निज
बिरहिन दौरि दौरि प्रानन सम्हारो हाय
'हरीचंद' कोइलैं कुहूकि फिरैं बन बन
बाजै लाग्यो जग फेरि काम को नगारो हाय
दूर प्रान प्यारो काको लीजिए सहारो अब
आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय

—प्रेम माधुरी ८५.

ब. वर्षा वर्णन

घेरि घेरि घन आए छाय रहे चहुँ ओर
कौन हेतु प्राननाथ सुरति बिसारी है
दामिनी दमक जैसी जुगनूँ चमक तैसी
नभ मैं विशाल बग पंगति सँवारी है

ऐसे समै 'हरीचंद' धीर न धरत नेकु
बिरह बिथा ते होत ब्याकुल पियारी है
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है

—प्रेम माधुरी ३७.

(१२) अनुभाव

आलम्बन एवं उद्दीपन के अनन्तर अनुभाव का वर्णन किया जाता है। भारतेन्दु के अधिकांश कवित्त सवैये कवि की उक्ति न होकर नायक या नायिका की उक्ति होकर आए हैं, इसलिए अनुभावों का बहुत सूक्ष्म वर्णन यहाँ नहीं हो सका है। नायक नायिका स्वयं यह नहीं कहते कि मुझे ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। वे बाह्य बातों का वर्णन स्वयं नहीं करते; हाँ, अपने हृदय की बात वे निस्संदेह कह जाते हैं। फिर भी तीन कवित्तों में एक साथ बहुत से अनुभावों का अत्यन्त सुंदर वर्णन हुआ है—

थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद
सूख झाँझरी सी ह्वैकै देह लागी पियरान
बावरी सी बुद्धि भई, हँसी काहू छीन लई
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान
'हरीचन्द' रावरे बिरह जग दुखमय
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान
नैन कुम्हिलान लागे, बैनहु अथान लागे,
आओ प्राननाथ अब प्रान लगे मुरझान

—प्रेम माधुरी १०५.

अनुभाव के अन्तर्गत सात्विक भाव का वर्णन होता हैं। सात्विक भाव नौ हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय, जृम्भा। इन सात्विक भावों का यहाँ सर्वथा अभाव है। वैवर्ण्य में रंग बिगड़ जाता है, फीका पड़ जाता है, इसका एक उत्तम उदाहरण है। अन्यसंभोगदुःखिता के उदाहरण में उसे उद्धृत किया जा चुका है। वैवर्ण्य के अतिरिक्त केवल 'अश्रु' का नेत्रों के सम्बन्ध में वर्णन हुआ है—

(१) हाय दशा यह कासों कहौं, कोउ नाहिं सुनै जो करेहूँ निहोरन
कोऊ बचावनहारो नहीं, 'हरिचन्द जू' यों तो हि हैं तू करोरन

सो सुधि कै गिरिधारन की अब धाइ कै दूर करौ इन चोरन
प्यारे तिहारे निवास की ठौर कों, बोरत हैं अँसुआ बरजोरन
—प्रेम माधुरी ४९.

(२) रोवैं सदा नित की दुखिया बनि ये अँखियाँ जिहि द्यौस सों लागी
रूप दिखाओ इन्हैं कबहूँ, 'हरिचन्द जू' मानि महा अनुरागी
मानिहैं औरन सों नहिं ये, तुव रंग रँगी कुल लाजहिं त्यागी
आँसुन को अपने अचरान सों, लालन पोंछि करौ बड़भागी
—प्रेम माधुरी ६२.

(१३) हाव

नायक को आकृष्ट करने वाली नायिका की मोहक चेष्टाएँ हाव कहलाती हैं। हाव उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत आते हैं और संयोग शृङ्गार से सम्बन्ध रखते हैं। ये संख्या में १२ हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, ललित, मोट्टायित, बिब्बोक, विहृत, कुट्टमित, हेला, बोधक। अपनी कवित्तावली में भारतेन्दु संयोग शृङ्गार के कवि नहीं हैं, वियोग शृङ्गार के हैं। संयोग शृङ्गार सम्बन्धी उनकी बहुत कम रचनाएँ हैं, इसलिए हावों का और भी कम वर्णन मिलता है—मध्या परकीया का जो उदाहरण हमने दिया है, उसमें ब्रजरत्नदास जी के अनुसार कुट्टमित हाव है। पद्माकरजी इसका लक्षण इस प्रकार देते हैं—

'तन मर्दत पिय के तिया दरसावत झुठ रोब'

इस सवैया में भी—

जब धाय गही 'हरिचन्द' पिया, तब बोली अजू तुम मोहि छला
मोहि लाज लगै बलि पाँव परौं, दिन हीं हहा ऐसी न कीजै लला
—प्रेम माधुरी १०७.

केवल ललित हाव के कुछ उदाहरण भारतेंदु कवित्तावली में हैं। पद्माकर के अनुसार नायिका के अङ्गों, विशेषकर उसकी चाल एवं चितवन का सरस वर्णन ललित हाव के अंतर्गत आता है—

'जहँ अंगन की छबि सरस बरनत चलन चितौन'

हिंडोरे पर झूलती हुई इस नायिका का अत्यन्त ललित वर्णन हुआ है—

रहसि रहसि हँसि हँसि के हिंडोरे चढ़ी
लेत खरी पैंगें छबि छाजैं उसकन मैं
उड़त दुकूल उघरत भुजमूल बढ़ी
सुषमा अतूल केस-फूलन खसन मैं

बोझल ह्वै देखि-देखि भए अनिमेख लाल
रीझत बिसूर श्रम सीकर मसन मैं
ज्यों ज्यों लचि लचि लंक लचकत भावती की
त्यों-त्यों पिय प्यारो गहै आँगुरी दसन मैं
—कर्पूर मंजरी

(१४) संचारी भाव

साहित्य शास्त्रों में ३३ संचारी भाव माने गए हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण भारतेंदु के कवित्त सवैयों में मिल जाते हैं।

१ निर्वेद.

"विपत्ति, ईर्ष्या और ज्ञानादि के कारण अपने शरीर अथवा सांसारिक विषयों में जो विराग भाव उत्पन्न होता है उसे निर्वेद संचारी कहते हैं। दीनता चिंता, आँसू, विवर्णता, उच्छ्वास, आकुलता आदि इसके लक्षण हैं।'

—रस कलस।

(१) जानिकै मोहन के निरमोहहिं, नाहक बैर बिसाहि बरैं परी
त्यों 'हरिचन्द' बिगारि कै लोक सो, बेद की लीक भलै निदरैं परी
आपुनि ही करनी को मिल्यो फल, तासों सबै सहते ही सरै परी
यामैं न और को दोष कछू, सखि चूक हमारी, हमारे गरैं परी
—प्रेम माधुरी २७.

(२) जानति हो सब मोहन के गुन, तौ पुनि प्रेम कहा लगि कीनो
त्यों 'हरिचन्दजू' त्यागि सबै, चित मोहन के रस रूप में भीनो
तोरि दई उन प्रीति उतै, अपवाद इतै जग को हम लीनो
हाय सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार मैं दीनो
—प्रेम माधुरी १०९.

विरह की कठिनाइयों को झेलकर, प्रेम-प्राप्ति में असफल होकर, नायिका स्वयं ही से झींख उठती है, उसे अपने ही कार्यों से विरक्ति सी हो जाती है और वह अपनी ही निन्दा करने लगती है। इसलिए इन रचनाओं में निर्वेद संचारी है।

२ शंका

'बहुत बड़े अनिष्ट अथवा इष्ट-हानि के विचार को शंका संचारी कहते हैं। इसके लक्षण विवर्णता, कंप, स्वरभंग, इधर उधर दृष्टिपात करना, मुँह सूखना आदि हैं।'

—रस कलस

जानत कौन है प्रेम विथा, केहि सों चरचा या वियोग की कीजिए
को कही मानै, कहा समुझै कोउ, क्यों बिन बात की रारहिं लीजिए
क्रूर चबाइन मैं पड़िकै, 'हरिचन्दजू' क्यों इन बातन छीजिए
पूछत मौन क्यों बैठि रही सब, प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए।
—प्रेम माधुरी १२३.

भारतेन्दु बाबू तीन प्रकार की परकीयाएँ मानते हैं—उत्तमा, समा, विषमा। उत्तमा के भी उन्होंने दो भेद किए हैं—प्रेम पूर्णा और शंकिता। "जो नायिका नायक को तो उसके बिना चाहे चाहे, पर लोगों की शंका से प्रीति को प्रगट न करे, वह शंकिता उत्तमा"—रस रत्नाकर। उक्त सवैया को भारतेन्दु बाबू ने शंकिता उत्तमा परकीया के उदाहरण में उक्त ग्रन्थ में रक्खा है। वह लोगों से सशंक है। और नहीं जानती कि अपने मौन का लोगों से क्या कारण बताए। उसे डर है ऐसा न हो भेद प्रकट हो जाने पर इष्ट-हानि हो जाय। इसलिए उक्त सवैया में शंका संचारी है।

३ असूया

'दूसरे के उत्कर्ष का असहन और उसके हानि पहुँचाने की इच्छा को असूया कहते हैं। दोष कथन, भृकुटिभंग, तिरस्कार और क्रोध आदि इसके साधन हैं।'

—रस कलस

जिनके हित त्यागिकै लोक की लाज कों, संग ही संग में फेरो कियो
'हरिचंद जू' त्यों मग आवत जात मैं, साथ घरी घरी घेरो कियो
जिनके हित मैं बदनाम भई, तिन नेकु कह्यो नहिं मेरो कियो
हमैं व्याकुल छोड़िकै हाय सखी, कोऊ और के जाय बसेरो कियो
—प्रेम माधुरी ५२.

नायिका संभवतः इतनी असहिष्णु न हुई होती, यदि नायक किसी दूसरी के यहाँ बसेरा न करता। पर किसी दूसरी नायिका का इस प्रकार का उत्कर्ष वह सह न सकी। इसलिए इस सवैया में असूया संचारी है।

४ मद

'जिसमें मोह के साथ आनंद का मिश्रण हो, उस दशा को मद कहते हैं, मद-पान इसका साधन है। इसके लक्षण अनर्गल प्रलाप, अनुचित बर्ताव, आरक्त नयन, मुसकान में विशेष मधुरता, बक्रोक्ति में रमणीयता आदि हैं।'

—रस कलस।

आजु कुंज मंदिर मैं छके रंग दोऊ बैठे
केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि
सखी जन कहत कहानी 'हरिचंद' तहाँ
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि
एक टक बदन निहारैं बलिहार लै लै
गाढ़े भुज भरि लेत नेह सों लहकि लहकि
गरैं लपटाय प्यारी बार बार चूमि मुख
प्रेम भरी बातैं करैं मद सों बहकि बहकि
—प्रेम माधुरी २१.

मद संचारी के सारे लक्षण इस कवित्त में हैं—नायिका ने मद-पान किया है, बहक बहककर बातें कर रही हैं, सखियों के सामने ही नायक को गले से लपटाये ले रही है और बार बार उसका मुख चूम रही है—लज्जा को तिलांजलि दे दी है।

५-आलस्य

'श्रांति और जागरणादि-जनित निश्चेष्टता तथा सामर्थ्य होने पर भी उत्साह-हीनता को आलस्य कहते हैं। पड़े रहना, जँभाई लेना, एक जगह बैठे रहना आदि इसके लक्षण हैं।"

—रस कलस.

आजु केलि मंदिर सों निकसि नवेली ठाढ़ी
भौंर चारों ओर रहे गंध लोभि बार के
नैन अलसाने घूमैं, पटहु परे हैं भूमैं
उर मैं प्रगट चिन्ह पिय कंठहार के
'हरिचंद' सखिन सों केलि की कहानी कहै
रस में मसूली रही आलस निवार के
साँचे मैं खरी सी परी, सीसी उतरी सी खरी
बाजूबंद बाँधे बाजू पकरि किवार के
—प्रेम माधुरी ९६.

रात भर नायिका ने रमण किया है, इसलिए जागरण भी किया है। जब वह सुबह उठी, उसके नेत्र अलसाए हुए थे। वस्त्र भूपर लोट रहे थे। यद्यपि वह आलस निवारण का भी प्रयत्न कर रही थी, फिर भी सफल मनोरथ नहीं हो पा रही थी। स्पष्ट ही यहाँ आलस्य संचारी है।

६ विषाद

'इष्ट न प्राप्त होकर अनिष्ट होने से जो दुःख अथवा उपायाभाव के कारण पुरुषार्थ हीनता-जन्य जो मानसिक कष्ट होता है, उसको विषाद कहते हैं। इसके लक्षण निश्वास, उच्छ्वास, मनोवेदना हैं।,

—रस कलस.

जानत हौं नहीं ऐसी सखी, इन मोहन जैसी करी हमसों दई
होत न आपने पीअ पराए कबौं, यह बोलनि साँची अरी भई
हा हा कहा 'हरिचंद' करौं, बिपरीत सबै बिधिनै हमसों ठई
मोहन ह्वै निरमोही महा भए, नेह बढ़ाय के हाय दगा दई

—प्रेम माधुरी २६.

इष्ट के न प्राप्त-होने से यहाँ अत्यन्त मानसिक कष्ट है—नायिका को जो मनोवेदना है वह उसके 'हा हा कहा करौं' और 'हाय दगा दई' आदि से स्पष्ट है। इसलिए इस सवैया में विषाद संचारी है।

७ मति

नीति निगम आगमन तें उपजै भलो विचार
ताही को मति कहत हैं सब ग्रंथन को सार

—पद्माकर

पिया प्यारे बिना यह माधुरी मूरति, औरन को अब देखिए का
सुख छाँड़ि कै संगम को तुमरे, इन तुच्छन को अब लेखिए का
'हरिचंद' जू हीरन को बेवहार कै, काँचन को लै परेखिए का
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो, उन आँखिन सों अब देखिए का

—प्रेम माधुरी १२५

पद्माकर जी के अनुसार सद्बुद्धि का उदय ही, (चाहे वह नीति, निगम अथवा आगमन से हो), मति है। प्रेम-नीति के अनुसार अपने प्रेम पर दृढ़ रहना अवश्य सु-मति एवं सन्मति है। फलतः उक्त सवैया में मति संचारी है।

८ चिन्ता

'हित की अप्राप्ति के कारण उत्पन्न आधि को चिन्ता कहते हैं। इसके लक्षण उद्विग्नता, ताप और उन्निद्रता है।'

—रस कलस.

आयो सखी सावन बिदेश मन भावन जू
कैसे करि मेरो चित हाय धीर धारिहै
ऐहै कौन झूलन हिंडोरे बैठि संग मेरे
कौन मनुहारि करि भुजा कंठ धारिहै

'हरीचंद' भींजत बचैहै कौन भींजि आप
कौन उर लाइ काय ताप निरवारिहै
मान समै पग परि कौन समुझैहै हाय
कौन मेरी प्रान प्यारी कहिकै पुकारिहै

—प्रेम माधुरी ६६

प्रिय के अभाव से नायिका को मानसिक क्लेश है, उसे चिन्ता हो रही है कि उसका पावस बिना प्रियतम के कैसे बीतेगा। इसलिए इस छन्द में चिन्ता संचारी है।

९ स्मृति

'सुमिरन बीती बात को सुमृति-भाव सब सोध'

—पदमाकर

अब और के प्रेम के फंद परे, हमें पूछत कौन, कहाँ तू रहै
अहै मेरेइ भाग की बात अहो, तुम सों न कछू 'हरिचंद' कहै
यह कौन सी रीत अहै हरि जू, तेहि मारत हौ तुमको जो चहै
वह भूलि गयो, जो कही तुमने, हम तेरे अहैं, तू हमारी अहै

—स्फुट कविताएँ ८१९।१

नायक ने भावावेश में आकर पहले कह दिया था—'हम तेरे अहैं, तू हमारी अहै'; पर कालान्तर में यह निर्दय नायक किसी दूसरी नायिका के चक्कर में पड़ गया और ऐसा व्यवहार करने लगा मानो कभी की पहचान ही न रही हो। बेचारी नायिका उसे उस विस्मृति की स्मृति दिलाती है। यहाँ स्मृति संचारी है।

१० दीनता

अति दुख तें विरहादि तें परति जबहिं जो दीन
ताहि दीनता कहत हैं जो कवित्त-रस-लीन

—पदमाकर.

दीनता में चित्त खिन्न, मलिन एवं साहसहीन हो जाता है। इसके कई सुन्दर उदाहरण भारतेन्दु में हैं—

(१) हित हीन सों जो करैं धन्य तेई यह बात हिए में विचारिए जू
सुनिए न कही कछु औरन की, अपनी बिरदालि सम्हारिए जू
'हरिचंदजू' आपकी होय चुकी, एहिकों जिय मैं निरवारिए जू
हम दीन औ हीन जो हैं तो कहा, अपुनी दिसि आपु निहारिएजू

—स्फुट समस्या ६७१।१.

(२) छाँड़ि कुल वेद तेरी चेरी भई चाह भरी
गुरुजन परिजन लोकलाज नासी हौं
चातकी तृषित तुव रूप-सुधा हेत नित
एक पल दुसह वियोग दुख गाँसी हौं
'हरीचंद' एक व्रत नेम प्रेम ही को लीनौ
रूप की तिहारे ब्रज भूप हौं उपासी हौं
ज्याय लै रे प्रानन, बचाय लै लगाय कंठ
ए रे नंदलाल तेरी मोल लई दासी हौं
—प्रेम माधुरी ९७.

दुखिया नायिका स्वयं अपनी दीनता, अधीनता स्वीकार करती है; और प्रेम की रानी न कह कर अपने को 'तेरी मोल लई दासी हौं' कहती है—इससे बढ़कर दीनता और क्या होगी। फलतः यहाँ दीनता संचारी है।

११ हर्ष

'इष्ट की प्राप्ति से चित्त को जो आनंद होता है उसे हर्ष कहते हैं। इसके लक्षण गद्गद स्वर, पुलकावलि, उत्फुल्लता आदि हैं।'

—रस कलस।

जा मुख देखन को नित ही, रुख दूतिन दासिन को अवरेख्यो
मानी मनौती हू देवन की, 'हरिचंद' अनेकन जोतिस लेख्यो
सो निधि रूप अचानक ही, मग मैं जमुना जलजात मैं देख्यो
सोकको थोक मिट्यो सब आजु,असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो
—स्फुट सवैया ८१९।३.

प्रिय का जो दर्शन अनेक उपाय करके भी न मिल सका था, वह आज सहज ही अपने आप मिल गया—सारा शोक समाप्त हो गया, फिर हर्ष का क्या कहना—इसलिए यहाँ हर्ष संचारी है।

१२ व्रीड़ा

'कारण विशेष से जिस लज्जा का हृदय में संचार होता है, उसे व्रीड़ा कहते हैं। इसके लक्षण मानस-संकोच, सिर का नीचा होना आदि हैं।'

—रस कलस।

जान दै री जान दै बिचार कुल कानहू को
गावन दै मेरे कुलटापन के गाथ को
मैं तो रही भूलि बिन बात को बिचारे, जौन
प्रेम को बिगारै छौंड़ ऐसे सब साथ को

देखो 'हरिचंद' कौन लाभ पायो, जामैं पछि
ताय रहि गई, धन पाय खोयो हाथ को
जरौ ऐसी लाज, आवै कौन काज, जानै आज
लखन न दीनो भरि नैन प्रान नाथ को
—प्रेम माधुरी ६०.

नायक सामने से चला गया, पर नायिका लज्जा के कारण उसे देख न सकी। इस कवित्त में वह लज्जा को ही धिक्कार रही है, जिसके कारण हाथ में आया हुआ धन भी धन्या ने खो दिया। निश्चय ही यहाँ व्रीड़ा संचारी है।

१३ निद्रा

'सयन कहावत सोइबो, वहै सु निद्रा होइ'
—पद्माकर

सोई तिया अरसाय कै सेज पै, सो छबि लाल बिचारत ही रहे
पोंछि रुमालन सों श्रम-सीकर, भौंरन कौं निरुवारत ही रहे
त्यों छबि देखिवे कौं मुखतैं, अलकैं 'हरिचंद जू' टारत ही रहे
द्वैक घरी लौं जके से खरे, वृषभानु कुमारि निहारत ही रहे
—प्रेम माधुरी १०.

नायिका सो रही है और नायक उस प्रसुप्त सौंदर्य-सुरा का सस्नेह पान कर रहा है; फलतः यहाँ निद्रा संचारी है।

१४ वितर्क

'किसी प्रकार का विचार उठते ही चित्त में संदिग्ध भावों का उदय होना और 'इदं कुतः' में लग जाना तर्क कहलाता है। इसके लक्षण भृकुटि भंग, सर हिलाना और उँगली उठाना आदि हैं।'
—रस कलस।

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि
रूप-सुधा मधि कीनो नैनहू पयान है
हँसनि नटनि चितवनि मुसकानि सुघ-
राई रसिकाई मिलि मति पय पान है
मोहि मोहि मोहनमई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय
हिय मैं न जानी परै कान्ह है कि प्रान है
—प्रेम माधुरी ३.

नायिका निर्णय नहीं कर पा रही है कि उसके हृदय में कान्ह है अथवा आन है। वह इसी वितर्क में पड़ी हुई है, अतः यहाँ वितर्क संचारी है।

१५ छल

देव ने ३४ वीं संचारी 'छल' माना है। भारतेंदु ने 'छावत छबीलो छैल छल के उछाह में'—समस्या की दो पूर्तियाँ की हैं। ये दोनों रचनाएँ छल संचारी का उत्तम उदाहरण हैं—

आजु कुंज मंदिर बिराजे पिय प्यारी दोऊ
दीने गलबाहीं बाढ़े मैन के उमाह में
हँसि हँसि बातें करें परम प्रमोद भरे
रीझे रूप जाल भींजे गुनन अथाह में
कान मैं कहन मिस बात चतुराई करि
मुख ढिग लाई प्रान प्यारे भरि चाह में
चूमिकै कपोलन हँसावत हँसत छबि
छावत छबीलो छैल छल के उछाह में

—स्फुट कविताएँ ८२५-११.

(१५) संयोग शृंगार

रीतिकालीन कवियों ने रस निरूपण में सबसे पहले शृंगार का विशद वर्णन किया है क्योंकि यह रसराज माना गया है, अन्य रसों को एक-एक दो-दो उदाहरण देकर योंही चलता कर दिया है। इनमें उनकी वृत्ति नहीं रमी है। अपने कवित्त सवैयों में भारतेंदु भी प्रधानतः शृंगार के ही कवि हैं, यद्यपि रीति मुक्त रचना करने के कारण उन्होंने और ढंग की रचनाएँ भी पर्याप्त की हैं।

शृंगार ही एक ऐसा रस है जिसके क्षेत्र सुख और दुख दोनों हैं। सुखमय शृंगार को संयोग एवं दुखमय शृंगार को वियोग कहा गया है। अपनी पदावली में भारतेंदु संयोग शृंगार के एवं कवित्तावली में प्रधानतः वियोग शृंगार के कवि हैं। भारतेंदु का अधिकांश संभोग शृंगार स्वकीया से संबंध रखता है, बेचारी परकीया को तो कुढ़ते ही जीवन के दिन बिताने पड़ते हैं। परकीया के निःशंक विहार का केवल एक छंद भारतेंदु ने अंकित किया है—

बृज के सब नाँव धरैं मिलि ज्यों ज्यों बढ़ाइके त्यों दोऊ चाव करैं
'हरीचंद' हँसैं जितनो सबही, तितनो दृढ़ दोऊ निभाव करैं
सुनिकै चहुँघा चरचा रिस सों, परतच्छ ये प्रेम प्रभाव करैं
इत दोऊ निसंक मिलैं बिहरैं, उत चौगुनो लोग चबाव करैं

—प्रेम माधुरी २३

एक और परकीया है जिसे प्रिय का प्रेम प्राप्त हो गया है। पर उसे भी सावधानी बरतनी पड़ती है, क़दम फूँक-फूँक कर रखने पड़ते हैं, डर लगा रहता है, ऐसा न हो यह गुप्त प्रेम प्रकट हो जाय और संसार में ख्वारी हो। इसलिए वह निज प्रिय से कहती है—

मेरी गलीन न आइए लालन, यासों सबै तुमही लखि जाइहैं
प्रेम तो सोई छिप्यो जा रहै, प्रगटे रसहू सब भाँति नसाइहैं
आइहौं हौंही उतै 'हरिचंद', मनोरथ आपको कुंज पुराइहैं
अंक न बाट में लाइए जू, कोउ देखि जो लैहैं, कलंक लगाइहैं
—प्रेम माधुरी २९

(१६.) विप्रलंभ शृंगार

(अ) पूर्वानुराग

विप्रलंभ शृंगार तीन प्रकार का होता है—पूर्वानुराग, मान एवं प्रवास। भारतेन्दु ने परकीया नायिका के पूर्वानुराग एवं प्रवास सम्बन्धी वियोग का अपने कवित्त सवैया में अत्यन्त सुन्दर एवं विशद वर्णन किया है। पूर्वानुराग का प्रारंभ निम्नलिखित सवैया में अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है—

जा दिन लाल बजावत बेनु, अचानक आय कढ़े मम द्वारे
हौं रही ठाढ़ी अटा अपने, लखिकै हँसे मो तन नन्द दुलारे
लाजि कै भाजि गई 'हरिचंद', हौं भौन के भीतर भीति के मारे
ताही दिना तें चबाइनहू, मिलि हाय चबाय कै चौचँद पारे
—प्रेम माधुरी १९

लज्जा पहली बेड़ी है जो परकीया के मार्ग में उपस्थित होती है। धीरे-धीरे वह साहस संचय करती है और कहती है—

जरौ ऐसी लाज, आवै कौन काज, जानै आज
लखन न दीनो भरि नैन प्रान नाथ को
—प्रेम माधुरी ६०

कालान्तर में वह लज्जा-त्याग में सफल भी हो जाती है—

गुरुजन बरजि रहे री बहु भाँति मोहिं
संक तिनहूँ की छाँड़ि प्रेम रंग राँची मैं
त्योंही बदनामी लई कुलटा कहाई हौं
कलंकिनिहुँ बनी ऐसी प्रेम लीक खाँची मैं

कहै 'हरिचंद' सबै छोड्यो प्रान प्यारे काज
यातैं जग झूठ्यो रह्यो एक भई साँची मैं
नेह के बजाये बाज, छोड़ि सब लाज आज,
घूँघट उघारि ब्रजराज हेतु नाची मैं
—प्रेम माधुरी ५

परन्तु इस लज्जा का त्याग श्रेयस्कर नहीं हुआ—चवाइनों की बन आई, जहाँ सुई का प्रवेश नहीं हो सकता था, वहाँ वे फार प्रविष्ट कराने लगीं—यहाँ तक कि बेचारी का ब्रजमण्डल में रहना दूभर हो गया—

ब्रज में अब कौन कला बसिए, बिनु बात ही चौगुनो चाव करैं
अपराध बिना 'हरिचंद जू' हाय, चबाइनैं घात कुदाव करैं
पौन मौं गौन करे ही लरी परैं, हाय वड़ोई हियाव करैं
जौं सपनेहूँ मिलैं नँदलाल तौ, सौतुख मैं ये चबाव करैं
—प्रेम माधुरी २०

कच्चे दिल की कोई परकीया होती तो चुप बैठ रहती, पर इस परकीया ने कच्ची गोली नहीं खाई थी। उसने सोचा जब झूठ मूठ का कलंक लग ही गया, तब तो प्रिय के अंक लग ही जाना चाहिए—प्रिय की अंकगामिनी हो जाने से यह कलंक और भी प्रगाढ़ नहीं हो जायगा और इस सुख से वंचित रह जाने पर यह स्याह सफेद भी न हो जायगा—

नाम धरो सिगरो ब्रज तो, अब कौन सी बात को सोच रहा है
त्यों 'हरिचंद जू' औरहू लोगन, मान्यो बुरो अरी सोऊ सहा है
होनी हुती सु तो होय चुकी, इन बातन तें अब लाभ कहा है
लागे कलंकहू अंक लगौं नहिं, तौ सखि भूल हमारी महा है
—प्रेम माधुरी ११२

सखियाँ लोक लाज, कुल-कानि आदि की बातें कह कहकर तरह तरह से समझाने का प्रयत्न करती हैं, पर यहाँ तो वह पक्का रंग चढ़ गया है, जो धोने से और भी निखरता है, छूटना तो दूर रहा। वह कहती है—

वह सुंदर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ ते मेरे भग्यो सो भग्यो
चित माधुरी मूरति देखत ही, 'हरिचंद जू' जाय पग्यो सो पग्यो
मोहिं औरन सों कछु काम नहीं, अब तो जो कलंक लग्यो सो लग्यो
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं, अलि साँवरो रंग रँग्यो सो रँग्यो
—प्रेम माधुरी ११३

सखियाँ जब बार बार हठ करती हैं, तब वह भी उलटा उन्हें ही समझाने लगती है—

(१) हित की हमसों सब बात कहो, सुख-मूल सबै बतरावती हौ
पै पिया 'हरिचंद' सों नैन लगे, केहि हेत ये बातैं बनावती हौ
यहाँ कौन जो मानै तिहारो कह्यो, हमैं बातन क्यों बहरावती हौ
सजनी मन पास नहीं हमरे, तुम कौन को का समुझावती हौ

—प्रेम माधुरी ५०

(२) हमहूँ सब जानतीं लोक की चालहिं, क्यों इतनो बतरावती हौ
हित जामैं हमारो बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ
'हरिचंदजू' यामैं न लाभ कछू, हमैं बातन क्यों बहरावती हौ
सजनी मन पास नहीं हमरे, तुम कौन को का समुझावती हौ

—प्रेम माधुरी ११४

बनी के सब साथी होते हैं, बिगड़ी के कोई नहीं। सखियों ने इस कुल कलंकिनी का साथ देना समीचीन न समझा और उसे छोड़ गईं—

(१) जिनको लरिकाई सों संग कियो, अब सोऊ न साथहिं साजती हैं
'हरिचंद जू' जानि हमैं बदनाम, चबाव घने उपराजती हैं
हम हाय कलंकित ऐसी भईं, सखियाँ लखिके मोहिं भाजती हैं
निसि बासर संग मैं जो रहतीं, मुख बोलिबे सों अब लाजती हैं

—प्रेम माधुरी ४५

(२) सँग में निसि बासर ही रहते, जिनते कछु बातैं न मैंने छिपाई
जे हितकारिनी मेरी हुतीं, 'हरिचंद जू' होय गईं सो पराई
सो सब नेह गयो कितको, मिलिबै की न एकहू बात बताई
और चबाव करैं उलटो, हरि हाय ये एकहू काम न आई

—प्रेम माधुरी ६४

इतने पर भी कभी कभी एकाध सखी पुराने सम्बन्धों का स्मरण कर सदुपदेश की आकांक्षा से आ जाती थी, इस पर उस हितैषिणी पर व्यंग बाणों की बौछार होने लगती—

(१) हौं कुलटा हौं, कलंकिनी हौं, हमने सब छाँड़ि दयो कहा खोलौ
आछी रहौ अपने घर मैं तुम, क्यों यहाँ आइ करेजहिं छोलौ
लागि न जाय कलंक तुम्हैं कहूँ, दूर रहौ सँग लागि न डोलौ
बावरी हौं जो भई सजनी, तो हटो, हमसों मति आइकै बोलौ

—प्रेम माधुरी ६५.

(२) हमैं नीति सों काज नहीं कछु है, अपुनो धन आपु जुगाए रहो
हमरी कुल कानि गई तो कहा, तुम आपनी को तो छिपाए रहो
हमसों सब दूरि रहो 'हरिचंद', न संग मैं मोहिं लगाए रहो
हमतो बिरहा में सदा ही दहैं, तुम आपुनो अंग बचाए रहो
—कृष्ण चरित्र ३२

इस दुखिया के नेत्रों की अत्यंत बुरी हालत है। विरही नेत्र संबंधी नौ सरस कवित्त सवैये भारतेंदु बाबू ने लिखे हैं, तत्संबंधी पदों के समान ही ये भी ललित हैं—

(१) एक ही गाँव में बास सदा, घर पास इहौं, नहिं जानती हैं
पुनि पाँचएँ सातएँ आवत जात की, आस न चित्त में आनती हैं
हम कौन उपाय करैं इनको, 'हरिचंद' महा हठ ठानती हैं
प्रिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं

(२) यह संग में लागियै डोलैं सदा, बिन देखे न धीरज आनती हैं
छिनहूँ जो बियोग परै 'हरिचंद' तौ, चाल प्रलै की सु ठानती हैं
बरुनी में थिरैं न, झपैं उझपैं, पल मैं न समाइबो जानती हैं
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं
—प्रेम माधुरी ४२, ४३

फिर भी उस बेचारी को प्रिय की प्राप्ति नहीं हुई—केवल बदनामी हाथ रही, वह कहती है, प्रेम मार्ग सुनने में भले ही जितना भला, सोचने में भले ही जितना मधुर हो, पर चलने में उसकी यथार्थता प्रकट हो जाती है—

मारग प्रेम को को समुझै, 'हरिचंद' यथारथ होत यथा है
लाभ कछू न पुकारन में, बदनाम ही होन की सारी कथा है
जानत है जिय मेरो भली बिधि, और उपाय सबै बिरथा है
बावरे हैं ब्रज के सगरे, मोहिं नाहक पूछत कौन बिथा है
—प्रेम माधुरी ३४

अंत में बेचारी निराश हो जाती है, फिर भी न जाने कैसे जीवित रहती है—

सब आस तो छूटी पिया मिलबै की, न जानै मनोरथ कौन सजैं
'हरिचंद जू' दुःख अनेक सहे, पै अड़े हैं, टरैं न कहूँ को भजैं
सब सों निरसंक ह्वै बैठि रहैं, सो निरादरहू सों कछू न लजैं
नहिं जान परै कछु या तन को, केहि मोह तें पापी न प्रान तजैं

संभवतः उसका अंतः चित्त निराश नहीं हुआ है।

(ब) प्रवास विप्रलंभ

खैर, किसी तरह रोते गाते, दूती कूटी की मदद से मिलन हुआ, पर वह चिरस्थायी न रहा—जो रहा भी लुक छिपकर। प्रिय को घर छोड़कर बाहर जाना पड़ा और बेचारी नायिका के ऊपर विपत्ति के बादल टूट पड़े।

नेह लगाय लुभाय लई, पहिले ब्रज की सबही सुकुमारियाँ
बेनु बजाय बुलाय रमाय हँसाय खिलाय करीं मनुहारियाँ
सो 'हरिचन्द' जुदा ह्वै बसे, बधिकै छल सों ब्रजबाल बिचारियाँ
वाह जू प्रेम निबाह्यो भलैं, बलिहारियाँ लालन वे बलिहारियाँ
—प्रेम माधुरी २८

(स) सम्बन्ध-विच्छेद

कभी कभी ऐसा भी होता है कि नायक परदेश तो नहीं जाता पर सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है। उसका यह सम्बन्ध तोड़ देना परदेश जाने से भी बुरा है। प्रोषितपतिका नायिका के हृदय में यह आशा लगी रहती है कि उसका परदेशी प्रियतम आएगा, वह आगतपतिका बनेगी और उसके मन की कली एक बार पुनः खिलेगी। पर उस बेचारी परकीया के दुःख का क्या कहना, जिसके प्रिय ने सब सम्बन्ध ही सदा के लिए तर्क कर दिया है, उसके लिए तो आशा का भी क्षीण सहारा नहीं। साहित्यकारों ने ऐसे वियोग की कोई संज्ञा नहीं दी है। मान ऐसे चुहलबाजी के वियोग को तो उन्होंने तीन प्रकार के वियोगों में स्थान दिया और उसके भेदोपभेद भी किए, पर इस सम्बन्ध-विच्छेद वाले वियोग पर उन्होने ध्यान भी नहीं दिया। वस्तुतः उनका वियोग का दृष्टिकोण स्वकीया नायिका को लेकर है, इसीलिए उन्होंने परकीया के इस विषम विरह को समुचित विचार-प्रदान नहीं किया। जो हो, भारतेन्दु बाबू ने इस प्रकार के विरह के अनेक सुन्दर एवं हृदय-स्पर्शी छंद (प्रेम माधुरी ८६, १०८, १२२, १२४, १२७, १६८) हैं, यथा—

जानि सुजान मैं प्रीति करी, सहिकै जगकी बहु भाँति हँसाई
त्यों 'हरिचन्दजू' जो जो कह्यो, सो करयो चुप ह्वै, करि कोटि उपाई
सोऊ नहीं निबही उनसों, उन तोरत बार कछू न लगाई
साँची भई कहनावति वा, अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई
—प्रेम माधुरी १०८

इसी प्रसंग में लोकोक्ति अलंकार का एक ओर सुन्दर प्रयोग उन्होंने किया है—

'अपनावते सोचि विचारि तबै, जल-पान कै पूछनी जाति नहीं'
—प्रेम माधुरी १२४

इस सम्बन्ध-विच्छेद को भी बहुत दिन बीत जाते हैं और नायिका अपनी दशापर स्वयं खीझ उठती है—

लै बदनामी कलंकिनी होइ, चवाइन को कबलौं मुख चाहिए
सासु जेठानिन की, इनकी, उनकी, कबलौं सहिके जिय दाहिए
ताहू पै एती रुखाई पिया 'हरिचन्द' की, हाय न क्योंहू सराहिए
का करिए मरिए केहि भाँतिन, नेह को नातो कहाँ लौं निबाहिए
—स्फुट कविताएँ ८२१।१२

उसे अपनी ही करनी पर अफ्सोस होता है, अपने से कुछ विरक्ति हो जाती है और वह अपने को ही दोष देती हुई कहती है—

(१) आपुनी ही करनी को मिल्यो फल, तासों सबै सहते ही सरे परी
यामैं न और को दोष कछू, सखि चूक हमारी हमारे गरें परी
—प्रेम माधुरी २७

(२) तोरि दई उन प्रीति उतै, अपवाद इतै जग को हम लीनो
हाय सखी इन हाथन सों, अपने पग आप कुठार मैं दीनो
—प्रेम माधुरी १०९

इन सब झुँझलाहटों के होते हुए भी हमें उसकी दृढ़ता पर रंच भी संदेह नहीं है।

(द) वियोग-दशाएँ

वियोग की दस दशाएँ मानी गई हैं—अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण—कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। कुछ आचाय मूर्च्छा को एक अलग दशा मानते हैं। भारतेन्दु कवित्तावली में प्रत्येक वियोग दशा के उदाहरण उपलब्ध है—

(१) अभिलाषा

वियोगावस्था में प्रियतम से मिलने की निरन्तर इच्छा हुआ करती है। इसे अभिलाषा कहते हैं। इसके कई सुन्दर उदाहरण हैं, यथा—

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत, आँखिन को कबौं आइ दिखाइए
चातक सी मरैं प्यासी परीं, इन्हैं पानिप रूप-सुधा कबौं प्याइए
पीत पटै बिजुरी से कबौं, 'हरिचन्दजू' धाइ इतै चमकाइए
इतहू कबौं आइकै आनन्द के घन, नेह को मेह पिया बरसाइए
—चन्द्रावली

(२) चिंता

वियोगिनी को तरह तरह की चिंताएँ हुआ करती हैं—प्रिय को प्राप्त करने की चिंता अथवा चित्त को शांत करने की चिंता लगी रहती है—

ब्रजबासी बियोगिन के घर मैं, जग छाँड़ि कै क्यों उपजाई हमैं
मिलिबो बड़ी दूर रह्यो 'हरिचन्द', दई इक नाम धराई हमैं
जग के सगरे सुख सों ठगिकै, सहिबे को यही है जिवाई हमैं
केहि बैर सों हाय दई बिधिना, दुख देखिबेही को बनाई हमैं

—प्रेम माधुरी १२

(३) स्मरण

वियोग समय में प्रिय के संयोग की बातो, घातों, चेष्टाओं और समागम सुखों की स्मृति स्वभावतः आया करती है, इन्हें स्मरण कहते हैं—

देखि घनश्याम घनश्याम की सुरति करि
जिय मैं बिरह घटा घहरि घहरि उठै
त्यों ही इन्द्रधनु बगमाल देखि बनमाल
मोती लर पी की जिय लहरि लहरि उठै
'हरीचन्द' मोर पिक धुनि सुनि बंसीनाद
बाँकी छबि बार बार छहरि छहरि उठै
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक, पीत-
पट छोर मेरे हिय फहरि फहरि उठै

—चन्द्रावली

(४) गुणकथन

प्रिय के वियोग में उसके गुणों की हमें बारबार याद आती है और हम उनकी चर्चा भी करते हैं। इसे गुण-कथन कहते हैं—

बाजी करै बंसी-धुनि बाजि बाजि श्रवनन
जोरा-जोरी मुख छबि चितहिं चुराए लेत
हँसनि हँसावति जगत सों तिहारी मुरि
मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत
'हरीचन्द' बोलनि चलनि बतरानि, पीत-
पट फहरानि, मिलि धीरज मिटाए लेत
जुल्फैं तिहारी लाज कुलफन तोरैं, प्रान
प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत

—प्रेम माधुरी ८

(५) उद्वेग

बियोग में हमारा मन किसी विषय में नहीं लगता। इस बेचैनी की दशा को उद्वेग कहते हैं। इस दशा में खाना, पीना, सोना कुछ अच्छा नहीं लगता।

बाढ्यो करै दिन ही छिन ही छिन, कोटि उपाय करौ न बुझाई
दाहत लाज समाज सुखै, गुरु की भय नींद सबै सँग लाई
छीजत देह के साथ में प्रानहु, हा 'हरिचन्द' करौं का उपाई
क्योंहू बुझे नहिं आँसू के नीरन, लालन कैसी दवारि लगाई

—प्रेममाधुरी ६.

लज्जा, भय, नींद सभी हराम हो गए हैं।

(६) प्रलाप

'प्रिय की अनुपस्थिति में उसे उपस्थित मानकर अथवा वियोग से विशेष व्यथित होकर अनर्गल क्रिया, निरर्थक वार्तालाप को प्रलाप कहते हैं।'

—रस कलस.

निम्नांकित कवित में विरहिणी इतना ध्यान मग्न है कि वह प्रत्येक प्रश्न का एक ही उत्तर देती है—

कहाँ चली सजि कै? पियारे सों मिलन काज;
कहाँ तू खड़ी है? प्यारे ही को यह धाम है
कहा कहै मुख सों? पियारे प्रान प्यारे;
कहा काज है? पियारे सों मिलन मोहि काम है
मैं हूँ कौन बोल तो? हमारे प्रान प्यारे हो न!
तू है कौन? पीतम पियारो मेरो नाम है
पूछत सखी के एक उत्तर बतावति,
जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम है

—चंद्रावली.

(७) उन्माद

'वियोगावस्था में संयोगोत्सुक हो बुद्धि-विपर्यय पूर्वक वृथा व्यापार करने, जड़-चेतन-बिवेक-रहित होने और व्यर्थ हँसने, रोने, आदि को उन्माद कहते हैं'—

—रस कलस

उमड़ि उमड़ि दृग रोअत अधीर भए
मुख दुति पीरी परी बिरह महा भरी
'हरीचंद' प्रेम माती मनहुँ गुलाबी छकी
काम झर झाँझरी सी दुति तन की करी

प्रेम कारीगर के अनेक रंग देखो यह
जोगिआ सजाए बाल बिरिछ तरे खरी
आँखिन मैं साँवरो, हिए में बसै लाल, वह
बार बार मुख तें पुकारत हरी हरी
—प्रेम माधुरी १२१.

(८) व्याधि

'बियोग-व्यथा जनित कृशता, पांडुता आदि अस्वास्थ्य को व्याधि कहते हैं।'
—रस कलस

निम्नलिखित छन्द में नायिका सुख का नाम भी नहीं जानती—

जानत ही नहिं हौं जग में किहि को सब रे मिलि भाखत हैं सुख
चौंकत चैन को नाम सुने, सपनेहू न जानत भोगन को रुख
ऐसन सों 'हरिचंद जू' दूरही बैठनो का लखनो न भलो मुख
मो दुखिया के न पास रहो, उड़िकै न लगै तुमहूँ को कहूँ दुख
—प्रेम माधुरी ८७.

(९) जड़ता

धीरे धीरे 'व्याधि' इतनी बढ़ जाती है कि जीवन ही भार हो जाता है और कभी कभी बेचारी बियोगिनी जड़वत हो जाती है—

छरी सी, छकी सी, जड़ भई सी, जकी सी, घर–
हारी सी, बिकी सी, सो तो सबही घरी रहै
बोले तें न बोलै, दृग खोलै न हिंडोले बैठि,
एक टक देखै सो खिलौना सी धरी रहै
'हरीचंद' औरौ घबरात समझाएँ हाय,
हिचकि हिचकि रोवै जीवति मरी रहै
याद आएँ सखिन रोवावै दुख कहि कहि,
तौ लौं सुख पावै, जौ लौं मुरछि परी रहै
—चन्द्रावली

यह कवित्त जड़ता, मूर्छा, व्याधि, उन्माद, मरण आदि सभी दशाओं का समुच्चय है।

(१०) मरण

यों तो प्राण परित्याग का नाम मरण है, परंतु बियोग में चरम निराशा ही को मरण दशा के अंतर्गत माना जाता है। इस दशा के कई सुंदर उदाहरण भारतेंदु कवित्तावली में हैं—

आजु लौं जौं न मिले तो कहा, हमतो तुम्हरे सब भाँति कहावैं
मेरो उराहनो है कछु नाहिं, सबै फल आपुने भाग को पावैं
जो 'हरिचंद' भई, सो भई अब प्रान चले चहैं, तासों सुनावैं
प्यारे जू है जग की यह रीति, बिदा के समै सब कंठ लगावैं

—प्रेम माधुरी ५९.

(य) बियोग की कठिनता

भारतेंदु की दृष्टि में बियोग योग से भी कठिन है—

एकै ध्यान, एकै ज्ञान, एकै मन, एकै प्रान,
दसो दिसि अबिचल एकै तान तानो है
जग में बसतहूँ मनहुँ जग बाहिर सी
हियो तन दोऊ निसि दिवस तपानो है
'हरीचंद' जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है
बिना फल आस, सीस खहनी सहस त्रास,
जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है

—सती प्रताप

—⁂—

१२

काव्य कौतुक

भारतेन्दु में कौतुक की भी कुछ प्रवृत्ति थी। उनकी यह कौतुकी प्रवृत्ति उनके काव्य में भी यत्र-तत्र दिखाई देती है। यह प्रवृत्ति उनके कवि जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्तकाल तक निरन्तर बनी रही है। इस प्रवृत्ति का मूल हमारे साहित्य शास्त्रों में चित्र-काव्य के रूप में मिलता है। चित्र-काव्य लड़कों का खेलवाड़ मात्र है—बाल प्रवृत्ति के लोग इसे देखकर प्रसन्न होते हैं और बाल प्रवृत्ति के ही लोग इसकी रचना भी करते हैं। चित्र-काव्यों की गणना अलङ्कारों में की गई है। पर सभी अलङ्कार-शास्त्रियों ने अपने अलङ्कार ग्रन्थों में चित्रालङ्कारों को स्थान नहीं दिया है। वे जानते थे कि चित्रालङ्कार केवल क्रीड़ा है। आचार्यों ने भी चित्र-काव्य को काव्य की अत्यन्त अधम श्रेणी में रक्खा है। ऐसी रचनाओं में हृदय नहीं लगता, इनमें मस्तिष्क की ही प्रधानता होती है, इसलिए इनमें कवित्व की मात्रा अत्यन्त न्यून होती है।

कौतुक-वृत्ति का शमन करने वाली निम्नलिखित ग्यारह रचनाएँ भारतेन्दु बाबू ने प्रस्तुत की हैं:—

(१) अलवरत अन्तर्लापिका —१९१८
(२) श्री जीवन जी महाराज —१९२९
(३) चतुरङ्ग —१९२९
(४) बसन्त होली-काव्य —१९३१
(५) मूक प्रश्न —१९३४
(६) मानलीला फूल बुझौवल-काव्य —१९३६
(७) 'रिपनाष्टक' का आठवाँ छन्द
(८) नए जमाने की मुकरी
(९) समधिन मधुमास
(१०) मनोमुकुल माला
(११) मुद्रालङ्कार सम्बन्धी रचनाएँ

'अलवरत अन्तर्लापिका' एवं 'श्री जीवन जी महाराज' दो अन्तर्लापिकाएँ हैं। पहली रचना कहने के लिए शोक काव्य है। १४ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को क्वीन विक्टोरिया के पति प्रिंस एलबर्ट की मृत्यु हुई थी। उक्त अवसर पर

यह अन्तर्लापिका बनी थी। 'श्री जीवन जी महाराज' प्रशस्ति काव्य है। परन्तु इन दोनों रचनाओं में काव्य के मूल तत्व आनन्द (रस) का पूर्ण अभाव है। न तो पहली रचना शोक काव्य है और न दूसरी प्रशस्ति काव्य। पहली अन्तर्लापिका में चार छप्पय हैं और छत्तीस प्रश्न किए गए हैं। इन छत्तीसों प्रश्नों के उत्तर 'अ ल व र त' इन पाँच अक्षरों में शामिल हैं। पाठक का काम है कि इन उत्तरों को इन्हीं पाँच अक्षरों में से ढूँढ़ निकाले—या अपना सर दे मारे। 'श्री जीवन जी महाराज' में भी सोलह प्रश्न किए गए हैं। इस रचना में दो छप्पय हैं। इन सोलहों प्रश्नों के उत्तर 'श्री जी व न' इन चार अक्षरों में निहित हैं। इसमें पाद टिप्पणी में उत्तर दे दिए गए हैं, इसलिए मस्तिष्क को व्यायाम नहीं करना पड़ता। अन्तर्लापिका भारतेन्दु बाबू की कोई नई सूझ नहीं है। चित्रालंकारों के प्रसंग में अनेक अलङ्कार ग्रन्थों में इसका वर्णन आया है। उदाहरण के लिए अलवरत. अन्तर्लापिका का चौथा छप्पय यहाँ दिया जा रहा है—

> कह सितार को सार ? शत्रु के किमि मन तेरे ?
> काकी मार प्रहार सीस अरि हनै घनेरे ?
> का तुम सैनहिं देत सदा उनतिसएँ ही दिन ?
> कहा कहत स्वीकार समय कछु अवसर के छिन ?
> को महरानी को पति परम सोभित स्वर्गहि ह्वै रह्यो ?
> अलवरत एक छत्तीस इन प्रश्नन को उत्तर कह्यो ?

इस छप्पय में छह प्रश्न हैं। इन प्रश्नों के उत्तर यह हैं (१) सितार का सार 'रव' (शब्द) है (२) शत्रु के मन 'अबल' (निर्बल) हैं (३) शत्रु के शीश पर 'तबल' (तलवार) की मार दी जाती है (४) सैनिकों को उन्तीसवें दिन 'तलब' (वेतन) दिया जाता है (५) स्वीकार करते समय 'अलबत' (हाँ, अवश्य) कहा जाता है, और (६) महारानी विक्टोरिया के स्वर्गवासी पति का नाम है 'अलवरत' (अलबर्ट)। स्पष्ट है कि इन प्रश्नों का सम्बन्ध प्रिंस अलबर्ट से कुछ भी नहीं है।

तीसरी रचना 'चतुरंग' केवल काव्य-क्रीड़ा नहीं, इसका कुछ उपयोग भी हो सकता है। इसमें तीन छप्पय हैं। प्रथम दो में अंक गिनाए गए हैं और तीसरे में उनका उपयोग बताया गया है। चतुरंग शतरंज का भारतीय नाम है। इसमें ६४ घर होते हैं और घोड़ा ढाई खाने चलता है, जिस प्रकार कोई चतुर घुड़सवार कठिन व्यूह में घुसकर भी जिधर चाहता है, कोड़े से घोड़े को घुमा सकने में सक्षम होता है; उसी प्रकार जो मनुष्य प्रथम दो छप्पयों को रट

के और उसी के अंकों के क्रम से घोड़े को चलाए, वह सभी घरों में घोड़े को घुमा सकने में सक्षम होगा। जब मैं हाई स्कूल के सातवें दर्जे में साइंस पढ़ रहा था तब यह देखा था कि कुछ घोलों में नीला लिटमस कागज डालने से वह कागज लाल हो जाता है और कुछ में लाल लिटमस कागज नीला हो जाता है। उन दिनों मैंने एक कवित्त लिखा था जिसमें यह बताया गया था कि किन किन घोलों में लाल लिटमस नीला होता है और किन किन में नीला लाल हो जाता है। वह विज्ञान पढ़ने की प्रारम्भिक अवस्था थी और तब तक अम्ल और क्षार का ज्ञान नहीं हो पाया था। इसी प्रकार बहुत से विद्यार्थी कवियों ने इतिहास के सन् संवत् पद्यबद्ध करके रटे हैं। पद्यबद्ध कर लेने से रटने में आसानी होती है। इसीलिए हमारा बहुत सा पुराना साहित्येतर संस्कृत वाङ्मय छंदोबद्ध है। इस प्रकार पद्य का यह उपयोग भी पुराकाल से चला आ रहा है।

'बसन्त होली' में १६ दोहे हैं। यह रचना पहले 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में १९३१ में छपी थी। शीर्षक के सामने एक अलग स्लिप पर छपा था—

'पहिलो वरन न बाँचियो यह विनवत कर जोर,
जो पढ़िकै मानौ बुरौ तौ न दोस कछु मोर'

सारी रचना पढ़ जाइए, कहीं भी कोई बात ऊटपटांग नहीं है। यह एक श्रेष्ठ विरह काव्य है। पर यदि विषम चरणों के प्रथम अक्षरों को जोड़कर पढ़ा जाय तो एक अत्यन्त फूहड़ दोहा बन जाता है—

जो बाँचै या पत्रि को सो है सार हमार
गदहा मूरख चूतिया चौपट निपट गँवार

यह गाली होली में क्षम्य है। यह दोहा भारतेन्दु की मस्त तबीयत का सूचक है। कुछ पता नहीं ऐसी रचनाएँ साहित्य शास्त्रों में पहले से मिलती हैं या नहीं पर ऐसे खेल लड़कपन में बाल कवि प्रायः किया करते हैं। 'ताज' के बहुत से सवैयों में भी यह क्रीड़ा मिलती है, (हिंदी के मुसलमान कवि)।

'मूक प्रश्न' एवं 'मानलीला फूल बुझौवल' क्रीड़ा की दृष्टि से एक कोटि की रचनाएँ हैं। 'मूक प्रश्न' द्वारा हम किसी दूसरे द्वारा मन में ली हुई वस्तु का नाम एवं 'मानलीला फूल बुझौवल' द्वारा मन में लिए हुए फूल का नाम बता सकते हैं। दोनों रचनाओं में भेद केवल इतना है कि मूक प्रश्न केवल कौतूहल की वस्तु है उसमें कवित्व का कोई अंश नहीं, परन्तु 'मानलीला' अत्यन्त सुन्दर सरस एवं साहित्यिक रचना भी है।

मूक प्रश्न में एक छप्पय और चार दोहे हैं। "इस छप्पय में १५ वस्तुएँ हैं—जीव, मृतक, वनस्पति, धातु, शून्य, जल, रस, पार्थिव, वस्त्र, द्रव्य,

मणि, मिश्रित, औषध, कृत्रिम और लेख। इन्हीं पन्द्रहों में सारे संसार की वस्तुएँ आ गई हैं। जीव में जीवित प्राणी मात्र, मृतक में चमड़ा, मांस, लोम, केश, पंख, मल, झाला इत्यादि जो कुछ जीव से अलग वस्तुएँ हैं। वनस्पति में पत्ता, छाल, लकड़ी, फल, फूल, गोंद, आम आदि। धातु में बनाई हुई धातु की चीजें और बिना बनी धातु। शून्य कुछ नहीं। जल में पानी से लेकर द्रव पदार्थ मात्र। रस में घी, गुड़, नमक और भोज्य वस्तु मात्र। पार्थिव में पत्थर, खाक, कंकड़, चूना इत्यादि। वस्त्र में डोरा, रूई, रेशम इत्यादि। द्रव्य में रुपया, पैसा, हुंडी, लोट, गहना इत्यादि। मिश्रित जिसमें एक से विशेष वस्तु मिली हैं। औषध से दवा, सूखी गोली और मद्य इत्यादि। कृत्रिम, मनुष्य की बनाई वस्तु। लेख में कागज, पुस्तक, कलम इत्यादि। इन वस्तुओं को ध्यान में चढ़ा लेना और छप्पय याद कर लेना। किसी से कहो कि कोई चीज हाथ में वा जी में ले और फिर उसके सामने क्रम से दोहे पढ़ो।

पूछो किस किस दोहे में वह वस्तु है जो तुमने ली है। जिन दोहों में बतावे उन दोहों के दूसरे तुक की गिनती के संकेतों को जोड़ डालो जो फल हो वह छप्पय के उसी अंक में देखो। जैसे किसी ने रस लिया है तो पहिला दूसरा और तीसरा दोहा बतावेगा उसके अंक एक जुगल चतुर अर्थात् एक दो और चार गिनके सात हुए तो छप्पय में सातवीं वस्तु रस है देख लो और गणित विद्या के प्रभाव से सच्चा और सिद्ध मूक प्रश्न बतला दो।"

—पाद टिप्पणी, पृ० ७५६

यह मूक प्रश्न कविवचन सुधा, ३० अप्रैल सन् १८७७ ई० में प्रकाशित हुआ था।

छप्पय

जीव एक, द्वै मृतक, वनस्पति तीजो जानो
धातु चतुर्थी, शून्य पाँच, जल छठयों मानो
रस सातों, आठवों पारथिव, नवों वसन कहि
दस मुद्रा, मणि ग्यारह, बारह मो मिश्रित लहि
औषध तेरह, कृत्रिम चतुरदस, पंद्रह लेखन सकल
'हरिचन्द' जोड़ि दोहान को, कहहु प्रश्न फल अति विमल

दोहा

जीव, वनस्पति, शून्य, रस, वस्त्रौषधि, मनि, लेख
एक कृष्ण को ध्यान करि प्रश्न चित्त सों देख

मृतक, वनस्पति, लेख, जल, कृत्रिम, रस, मनि, द्रव्य
जुगल चरन सिर नाइके भाषु प्रश्न फल भव्य
धातु, शून्य, जल, लेख, रस, कृत्रिम, औषध, मिस्र
चतुर्व्यूह माधो सुमिरि, कह फल स्वच्छ अमिस्र
मिस्रौषध, कृत्रिम, वसन, द्रव्य, लेख, मनि, भूमि
अष्टसखी सह श्याम सजि कहु फल गुरु पद चूमि

'मानलीला फूल बुझौवल' में ३१ दोहे मानलीला सम्बन्धी हैं। प्रत्येक दोहे में किसी न किसी फूल का नाम अवश्य आया है। जैसा कहा गया है, दोहे सरस हैं। फिर तास के पाँच पत्ते हैं जिनके नाम क्रमशः चंद[१], नेत्र[२], वेद[४], वसु[८], शृंगार[१६] हैं। ये सांकेतिक नाम क्रमशः १, २, ४, ८, १६ संख्याओं के सूचक हैं। ये संख्याएँ इसलिए सांकेतिक एवं रहस्यमयी रखी गई हैं जिससे सबकी समझ में न आवें। प्रत्येक कार्ड में १६ फूलों के नाम हैं। एक फूल कई कई कार्डों में आया है।

"यह एक बड़ा आश्चर्य प्रश्न का खेल है। पहले मानलीला के जिन दोहों में जिस फूल का नाम निकलता हो उसको समझ लो और उन दोहों के अंक भी याद कर रक्खो। प्रश्न करनेवाले से कहो कि इन्हीं ३१ फूलों में एक फूल का नाम अपने जी में लो। फिर इन पाँच ताशों में से एक एक ताश उसके सामने रखकर पूछो इसमें वह फूल है, जिसमें वह बतावै उन ताशों को अलग करके उनके ऊपर लिखी गिनती जोड़ लो कि कितने अंक आते हैं। मान लीला के उसी अंक के दोहे में जिस फूल का नाम हो वही उसने जी में लिया है।"

—भा० ग्रं०, पृ० ७८८

'रिपनाष्टक' का आठवाँ छप्पय है:—

निज सुनाम के बरन किए तुम सफल सबहि बिधि
रिपु सब किए उदास, दई हिय राजभक्ति सिधि
महरानी को पन राख्यो निज नवल रीति बल
परि मध न्याय-तुला के नप राख्यौ सम दुहुँ दल
सब प्रजापुंज-सिर आपको रिन रहिहै यह सर्व छन
तुम नाम देव सम नित जपत रहिहैं हम ते श्री रिपन

'रिपन' के इन तीन अक्षरों से निम्नलिखित शब्द बन सकते हैं:—रिप, रिन, पन, परि, नरि नप। इनमें से 'नरि' निरर्थक है, शेष शब्दों की सफलता भारतेंदु जी ने इस छप्पय में दिखलाई है। यह भी एक प्रकार की शब्द क्रीड़ा ही है।

'नए ज़माने की मुकरी' में भी कौतूहल वृत्ति काम करती है। मुकरी एक प्रकार की अपह्नुति है। सबसे पहले अमीर खुसरो ने मुकरियाँ लिखी थीं। नए ज़माने के साथ भारतेंदु बाबू ने १४ नई मुकरियाँ लिखीं। मुकरी दो सखियों के वार्तालाप स्वरूप होती है। एक सखी कोई बात कहती है। वह बात इतनी चातुर्य पूर्ण होती है कि उसके दो अर्थ लग जाते हैं। यहाँ पर अर्थ श्लेष होता है, शब्द श्लेष नहीं होता। तब दूसरी सखी पूछती है कि क्यों सखी क्या तुम अमुक की चर्चा कर रही हो। इस पर पहली सखी मुकर जाती है और कहती है कि नहीं मैं तो उसकी नहीं, इसकी चर्चा कर रही थी। भारतेंदु की चौदहों मुकरियों का एक अर्थ तो सज्जन होता है, और दूसरा वर्तमान समय की और और बातें—यथा, अँगरेजी, ग्रेजुएट, रेल, चुंगी, अमला, पुलिस, अँगरेज, अखबार, छापाखाना, कानून, खिताब, जहाज, सराब और विद्यासागर (ईश्वर चंद)। उदाहरणार्थ एक मुकरी यहाँ दी जा रही है—

तीन बुलाए तेरह आवैं,
निज निज बिपता रोइ सुनावैं,
आँखौं फूटे भरा न पेट,
क्यों सखि सज्जन? नहिं ग्रेजुएट;

'होली' में एक रचना है 'समधिन मधुमास'। यह वस्तुतः परिहास की रचना है, पर इसमें भी वही कुतूहल वृत्ति कार्य कर रही है। पहले कर्ता फिर क्रिया दी गई है, क्रिया ऐसी है जिसके बहुत आसानी से दो अर्थ निकल आते हैं। कर्ता और क्रिया को सुनकर श्रोता समझ लेता है कि वाक्य पूर्ण हो गया और वह मुसकुरा उठता है पर जब क्रिया का कर्म या पूरक आता है तब तो वह कवि की कुशलता पर झूम उठता है। यथा—

समधिन जू ने बहुत करायो, आदर शिष्टाचार

'मनोमुकुल माला' में भी कवि की सहज कुतूहल वृत्ति का निदर्शन होता है। इसमें विक्टोरिया की 'इंगलैंडी-पारसीक-वर्ण चित्रिता', 'अंकमयी' एवं रंग-मयी प्रशंसा है। उदाहरण के लिए—

जीवहु ईस असीस बल, हरहु प्रजन की पीर
सरयू जमुना गंग मैं, जब लौं थिर जग नीर

इस दोहे को इस प्रकार छापा गया है—

Gवहु Eस अCस बल, हरहु प्रजन की Pर
सरU जमुना गंग मैं, जब लौं थिर जग नीर

और—

चेरे से हेरे सबै, तेरे बिना कलाम
गलै दाल नहिं सत्रु की, तुव सनमुख गुनधाम

को इस प्रकार छापा गया है—

[illegible] सबै[illegible], बिना क[illegible]
गलै, नहिं सत्रु की तुव सनमुख गुन धाम

तथा—

करि बिचार देख्यौ बहुत जग बिनु दोस न एक
तुम बिन हे बिक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक

को इस प्रकार—

करि बि४ देख्यो बहुत जग बिन रस न१
तुम बिनु हे विक्टोरिये नित ९०० पथ टेक

निम्नांकित दोहा रंग चित्र का है—

(पीरे) दुति करि बैरि झट, (कारे) मुख मसि लाय
(हरे) पीर जन (नी ल) लित (लाल)हि इत पठवाय

इस दोहे में पीरे के स्थान पर पीला रंग, कारे के स्थान पर काला रंग हरे के स्थान पर हरा, नीले के स्थान पर नीला एवं लाल के स्थान पर लाल रंग भरा हुआ है, शब्द नहीं लिखे गए हैं।

भारतेन्दु ने राशियों को लेकर मुद्रालंकार की सहायता से अनेक कौतुक किए हैं और किसी कवि ने राशियों के साथ यह खेलवाड़ नहीं किया है। प्रेम मालिका के प्रथम पद में राधा को 'छवि की राशि' बनाया गया है। यह पद राधा के रूप वर्णन के प्रसंग में अन्यत्र उद्धृत भी किया जा चुका है। राधा की रूप-राशि का यह वर्णन अनूठा है। इक्कीस वर्ष की वय में लिखे गए इस पद में कला एवं हृदय दोनों पक्षों का अपूर्व सामंजस्य हुआ है।

कृष्ण बहुनायक थे—राधा ने मकर संक्रांति के दिन उन्हें जो पकड़ पाया, तो जकड़ रखा और अकड़कर नृप वृषभानु की कन्या के स्वर में कहा—

प्यारे जान न दैहौं आज
कोटिन मकर करौ नहिं छाँडौं प्राणनाथ ब्रजराज
मीन मेख बिनु बात करत तुम कहूँ मिथुन ललचाने
धनि धनि पिय तुम तुल नहिं दूजो सबके घटन समाने
करकत हिय बीछी सी बातैं सौतिन सँग जो कीनी
तासों राखौं लाय हिये अब करि करि अधिक अधीनी

तो वृषभानुराय की कन्या जौ अब तुमहिं न छाँड़ौं
बड़ो परब यह पुन्य उदय मोहिं, मिलि तुमसों रँग माँडौं
दच्छिन होन देउँ नहिं कबहूँ करो लाख चतुराई
'हरीचंद' मेरे अयन बिराजौ सदा अबै ब्रजराई

—राग संग्रह ६४.

इस पद में भी ११ राशियों के नाम आए हैं—केवल 'सिंह' का यहाँ अभाव है। स्पष्ट ही यहाँ मुद्रालंकार है। इस पद में भी रस और कला का अपूर्व सामंजस्य हुआ है।

दो पद मानसंबंधी हैं। इनमें सखी राधा को समझा रही है कि मकर संक्रांति के दिन मान करना ठीक नहीं—इस दिन तो चावल दाल की तरह मिलकर खिचरी की छटा दिखानी चाहिए—

दुतिय नृप भानु छठी तजु मान
करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय कटि पंचमी सुजान
तो सम माती नाय और कोउ नव मन दस तू बाल
तुव बिन आठ वेदना पावत व्याकुल पिय नँदलाल
दसम केतु पीड़त पिय कों अति निज दुख अगिनि बढ़ाय
करु अभिषेक अमृत एकादश कुच पिय के हिय लाय
द्वादश बिनु जल तिमि हरि तुव बिन लगत नि-प्रथम न नेक
'हरीचंद' है तृतिय पिया सँग करु सँक्रमन बिबेक

—राग संग्रह ५०.

इस पद में राशियों का नाम तो कहीं नहीं आया है—परंतु राशियों का उपयोग उनके निश्चित संख्या क्रम से हुआ है। इस कविता का अर्थ समझने में कुछ कठिनाई इसलिए पड़ जाती है कि इसमें कहीं भी संकेत नहीं किया गया है कि ये संख्याएँ राशियों की सूचिका हैं। यह एक प्रकार से कूट पद है। इस पद का अर्थ करने के लिए राशियों को निश्चित संख्या-क्रम से स्मरण रखना अवश्यक हैं। राशियों का क्रमपूर्वक नाम यह है—(१) मेष (२) वृष (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धन (१०) मकर (११) कुंभ (१२) मीन। 'दुतिय भानु नृप छठी' से तात्पर्य है 'वृषभानु नृप कन्या' (राधा) 'करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय' का अर्थ है सौतों के हृदय में सदा 'करक' करने के लिए; कटि पंचमी का अभिप्राय 'कटि सिंह' से है; 'तो सम माती नाय और कोउ नव' का अर्थ है तुम्हारे समान और कोई धन्या (धन) मतवाली एवं बावरी

नहीं है; आठ वेदना का मतलब है 'वृश्चिक दंश की वेदना'; दसम केतु का तात्पर्य है मकरकेतु अर्थात् कामदेव; 'अमृत एकादस कुच' का अभिप्राय है 'अमृत कुंभ कुच'; 'द्वादश बिनु जल' का मतलब है जल बिना मीन; 'लगत नि-प्रथम न नेक' बराबर है 'लगत निमेष न नेक'; अंतिम पंक्ति में 'तृतिय' मिथुन के लिए आया है। इस पद में भी ग्यारह ही राशियाँ हैं— यहाँ पर सातवीं राशि 'तुला' का अभाव है। अपनी क्लिष्टता के कारण यह पद ऊपर के दोनों पदों के समान सरस एवं सुंदर नहीं बन सका है।

संभवतः भारतेंदु जी को यह क्लिष्ट प्रेरणा राग कल्पद्रुम के निम्नलिखित सवैये से मिली। राग कल्पद्रुम का प्रथम संस्करण सं० १९०० में कलकत्ते से निकला था और भारतेंदु ने उसे देखा रहा होगा।

द्वादस नैन, एकादस से कुच
प्यारी कहा दस है हमते
नौ से बने भ्रू, पग आठ लसै
नहिं सात कोऊ सर है तुमते
'मणि' पंच सो मध्य कटी, चित चार
यथा बिनु बार तथा बिनु ते
अरिकै रचि तीन, दोऊ मति छोड़ि
कहा रही एक सी है हठ ते

—राग कल्पद्रुम, भाग २, पृष्ठ १५२, पद २९.

मान लीला सम्बन्धी दूसरे पद में केवल 'मकर' शब्द को लेकर क्रीड़ा की गई है। इसमें भी राधा ने मकर संक्रान्ति के ऐन मौके पर मान कर लिया है, जब कि संक्रमण का सर्वश्रेष्ठ समय होता है। सखी राधा को समझा रही हैं—

मकर संक्रोन सखी सुखदाई
मकर कुंडल सों मकर विलोचनि, क्यों न मिलत तू धाई
मकर केतु को भय नहिं मानत, घर में रही छिपाई
वे तुव बिनु भे मकर बिना जल, व्याकुल मुकरन पाई
मान मान तजु, मान धरम कर, कर धरि लै गर लाई
हरीचंद तजु मकर राधिके, रहु त्योहार मनाई

—राग संग्रह ८८.

कोई पंक्ति नहीं जिसमें मकर ने अपना मकर न फैलाया हो, दूसरी और चौथी पंक्तियों में तो इसका प्रयोग दो-दो बार हुआ है। यह पद भी पहले दो पदों के ही समान सुन्दर और सरस है, क्योंकि इसमें भी अर्थ की जटिलता नहीं है।

ऊपर के चारों पदों में संक्रोन शब्द का प्रयोग हुआ है। बिहारी ने जो एक बार संक्रांति को विकृत कर 'संक्रोन' किया, तो यह संक्रोन संक्रामक-सा सिद्ध हुआ और भारतेन्दु-सा भाषा की सफाई करनेवाला कवि भी इस छूत से नहीं बच सका। संक्रांति सम्बन्धी भारतेन्दु के अनेक पद हैं और सभी एक से एक सुंदर हैं, इनमें अत्यन्त सुन्दर कल्पना का उपयोग हुआ है।

इन चार शृंगारी पदों के अतिरिक्त राशियों सम्बन्धी दो पद और हैं। एक में 'गुण-राशि वल्लभ-सुअन' श्री विट्ठलनाथ जी का गुणानुवाद है और दूसरे में कवि ने अपने मन को समझाते हुए भगवान की शरण में जाने को उसे प्रेरित किया है। ये दोनों रचनाएँ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' द्वितीय भाग के पृष्ठ ८२७ पर हैं। सम्पादक ने प्रमाद से इनकी गणना कवित्तों में कर ली है, वस्तुतः ये पद हैं—

मेष मायावाद सिंह वादी अतुल धर्म
वृख जयति गुण-रासि वल्लभ-सुअन
कलि कुवृश्चिक दुष्ट जीव जीवन-मूरि
करम छल मकर निज वाद धनु-सर-सयन
गोप-कन्या भाव प्रगटि सेवा विसद
कृष्ण राधा मिथुन भक्ति पथ दृढ़-करन
हरन जन-हिय-करक मीन-धुज-भय मेटि
दास 'हरिचंद' हिय कुंभ हरि-रस भरन
—स्फुट कविताएँ ८२७।१७

इस पद में बारहों राशियों के नाम आ गए हैं और यह श्री विट्ठलनाथ की अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। रचना परम प्रौढ़ है, कहीं भी शिथिलता नहीं दिखाई देती।

कुंभ कुच परस दृग-मीन को दरस तजि
तुच्छ सुख मिथुन को हिय विचारै
छल मकर छाँड़ि सब तानि वैराग-धनु
सिंह ह्वै जगत के जाल जारै
कृष्ण वृषभानु-कन्या सहित भजन करि
कलि कुवृश्चिक समुझि दूर टारै
छाँड़ि अनआस विस्वास हिय अतुल धरि
करम की रेख पर मेख मारै
—स्फुट कविताएँ ८२७।१८

ऊपर के ही पद के समान यह पद भी अत्यंत प्रौढ़ है। इसमें मन को सांसारिक भोग विलास से ऊपर उठने के लिए भलीभाँति समझाया गया है। इसमें ग्यारह राशियाँ ही आ सकी हैं—यहाँ 'कर्क' राशि का अभाव है।

जिन राशियों के सहारे कवि ने शृंगार का शृंगार किया, उन्हींसे उसने शांत रस की भी स्रोतस्विनी प्रवाहित की—धन्य है उसकी काव्य कला को। राशियों संबंधी ये पद कहीं भी कौतुक-मात्र नहीं रह गए हैं, सर्वत्र उनमें काव्य की आत्मा रस अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है। इन छह पदों में चार तो अत्यंत उच्च कोटि की ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें प्रत्येक सुरुचि संपन्न साहित्य-रसिक से साश्चर्य प्रशंसा ही मिलेगी। हो सकता है संख्याओं वाला पद अपनी क्लिष्टता के कारण एवं श्री विट्ठलनाथ जी वाला पद अपनी सांप्रदायिक-संकुचितता के कारण सभी को समान रूप से काव्यानंद न दे सकें।

१४

आशुकवित्व तथा समस्यापूर्ति

भारतेंदु बाबू जन्मजात एवं प्रकृत कवि थे। वर्णमाला का ज्ञान भी जब न हुआ था, तभी ५ वर्ष की वय में उन्होंने 'लै ब्योंड़ा ठाढ़े भए...' दोहा बनाया था। इनके पिता बाबू गिरिधरदास भी सुकवि थे, इसलिए काव्य-शक्ति इन्हें विरासत में मिली थी। इसके अतिरिक्त काशीवास, देशाटन तथा रसिक जनों का सहवास भी इनकी काव्य-कला को निरंतर प्रेरित करते रहते थे। पं० लोकनाथ जी, जो एक सत्कवि भी थे, इनके अध्यापक थे। भारतेंदु बाबू ने इन्हीं से काव्य-रचना सीखी और वे इन्हींको अपना काव्य गुरु मानते थे। इन्हें बारह वर्ष की अवस्था में ही हिंदी एवं संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान हो चुका था और वे तत्काल समस्यापूर्ति करने में पटु हो गए थे। उनकी कवित्व शक्ति की जाँच अनेक स्थानों पर हुई थी।

एक बार काशी नरेश ने कोई समस्या अपने कवियों को दी, पर कविजन पूर्ति में असमर्थ रहे। महाराज ने भारतेंदु जी से भी उसकी पूर्ति करने को कहा। आशु कवि भारतेंदु ने तत्काल पूर्ति करके सुना दी। इसपर कोई कवि बोल उठा कि बाबू साहब को संभवतः पुराना कवित्त याद था। इसपर भारतेंदु को क्रोध आ गया और उन्होंने दस बारह पूर्तियाँ एक एक कर सुनाईं और प्रत्येक पूर्ति के पश्चात पूछते गए 'कहिए साहब यह भी पुरानी है?'

एक बार रथयात्रा का मेला देखकर घर लौट रहे थे। रास्ते में लावनीबाजों का एक दंगल जमा हुआ था। लावनियाँ हो रही थीं। भारतेंदु बाबू खड़े होकर सुनने लगे। इनके एक साथी ने कहा, 'चलिए, यहाँ क्या है जो आप भीड़ में कष्ट उठा रहे हैं।' एक लावनीबाज से न रहा गया; उसने कहा, 'चलिए, यहाँ क्या है? इस प्रकार कविता बनाते हुए कोई गावे तब जानें।' भारतेंदु बाबू से भी अब न रहा गया। उन्होंने टोपी उतार कर रख दी और जमकर बैठ गए। एक लावनीबाज का डफ छीनकर बजाते हुए, लावनी बनाते हुए, गाने लगे। जब लोगों को मालूम हुआ कि यह तो भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र हैं, तब वे बहुत लज्जित हो क्षमा-प्रार्थी हुए।

भारतेंदु बाबू अत्यंत शीघ्रता से लिखते थे। 'अंधेर नगरी' उन्होंने एक दिन में लिखा था। 'विजयिनी विजय वैजयंती' सभा होने के दिन जल्दी जल्दी लिखी गई थी। बलिया वाला व्याख्यान तथा हिंदी की उन्नति वाला पद्यात्मक भाषण भी एक एक दिन ही में लिखे गए थे।

सम्वत् १८६४ की पौष पूर्णिमा को जब भारतेन्दु बाबू केवल १४ वर्ष के थे, पण्डित ताराचरण तर्करत्न ने 'तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै' और 'जिन कामिनी के नहिं नैनन हारे' ये दो समस्यायें दी थीं। भारतेन्दु बाबू ने तत्काल उनकी ये पूर्तियाँ की थीं—

(१) जबतें बिछुरे नँदनंदन जू तबतें हिय में बिरहागि बरै
दुख भारी बढ़्यो सो कहो किहि सों, 'हरिचंद' को आइकै दुःख हरै
वह द्वारिका जाइकै राज करैं, हमैं पूछिहैं क्यों, यह सोच परै
मिलिबो उनको कछु खेल नहीं, तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै

(२) वेई कहैं अति सुंदर पंकज, वेई कहैं मृग नैन बड़ारे
वेई कहैं अति चंचल खंजन, वेई कहैं अति मीन सुधारे
वेई कहैं अति बान को तीछन, वेई कहैं ठगिया बटवारे
वेई कहैं धनु काम लिए, जिन कामिनी के नहिं नैन निहारे

नवम्बर सन् १८७३ ई० में पंजाब यूनिवर्सिटी के एक अध्यापक पं० गुरु प्रसाद जी पं० शिवकुमार जी को लेकर भारतेन्दु बाबू से मिलने आये। गुरु प्रसाद जी ने कहा कि शिवकुमार जी बहुत शीघ्र कविता लिख लेते हैं। इस पर 'चंद्रावली चुंबति' समस्या दी गई। शिवकुमार जी और भारतेन्दु जी दोनों ने इसकी तत्काल पूर्ति की। भारतेन्दु कृत पूर्ति नीचे दी जा रही है—

चन्द्रालोकमये चतुष्पथचये गंधावहे मारुते
चंचच्चालितचंचरीकनिचये चारुप्रमोदोदये
कूजत्कोकिलकाकली कलकले कालिंदिकाकूलके
कुंजे केलिकलाऽऽकुलं प्रियतमं चन्द्रावली चुम्बति

भारतेन्दु बाबू ने 'कवि समाज' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। इसमें प्रायः कवि-समारोह एवं कवि-समादर हुआ करता था। एक बार दक्षिण के एक पण्डित जी आए थे। उन्होने अपना अष्टावधान कौशल दिखलाया। इसके पश्चात् किसी कवि ने 'चन्द्र सूर्य साथ ही उगे' समस्या दी और प्रार्थना की कि अष्टावधान जी मंदाक्रांता में इसकी पूर्ति करें और भारतेन्दु बाबू कवित्त में। भारतेन्दु बाबू ने जो रचना प्रस्तुत की, वह सम्भवतः यह है—

आओ जु आओ जु प्रान प्रिया,
हम तो हैं तिहारे ही सोच के ख्याल में
देखु महा सुख रूप दिखाय
फँस्यो मन चित्त बनी बनमाल में
कुंडल मंडित बेस बने
त्यों खुभे कजरा कछु नैन बिसाल में
त्यों मुख में इक मानिक क्रीट
उए रबि औ ससि एक ही काल में

काशिराज के पौत्र का यज्ञोपवीत था। उस समय भारतेंदु बाबू ने 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं' पर कई श्लोक तत्काल रचकर सुनाए थे। उनमें से एक यह है—

यद्वत् वटोर्वामनवेषविष्णोः रामस्य जातं यदुनंदनस्य
तद्वत् कृतं काशिनरेश्वरेण यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं

सन् १८८२ ई० में भारतेंदु बाबू ने मेवाड़-यात्रा की थी और तत्कालीन महाराणा सज्जनसिंह का भी दर्शन किया था। एक दिन काव्य-प्रसंग छिड़ने पर महाराणा ने तीन, बारटे कृष्णसिंह जी ने दो और कवि जयकरण जी ने दो समस्याएँ इन्हें दीं। भारतेंदु ने प्रत्येक समस्या के प्रत्येक छंद की चार चार मिनट में पूर्ति की थी।

महाराणा सज्जन सिंह की दी हुई समस्या—

'असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो'

(१) जा मुख देखन को नितही रुख दूतिन दासिन को अवरेख्यो
मानी मनौतीहू देवन की 'हरिचंद' अनेकन जोतिस लेख्यो
सो निधि रूप अचानक ही मग में जमुना जलजात मैं देख्यो
सोक को थोक मिट्यो सब आजु असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो

(२) रैन में ज्यौंही लगी झपकी त्रिजटे सपने सुख कौतुक देख्यो
लै कपि भालु अनेकन साथ में तोरि गढ़ै चहुँ ओर परेख्यो
रावन मारि बुलावन मोकहँ सानुज मैं अबहीं अवरेख्यो
सोक नसावत आवत आजु असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो

बारटे कृष्ण सिंह जी की दी हुई समस्या—

'जेती मधुराई भूप सज्जन की भाषा में'

जोही एक बार सुनै, मोहै सो जनम भरि,
ऐसो ना असर देख्यो जादू के तमासा मैं
अरिहु नवावैं सीस, छोटे बड़े रीझैं सब
रहत मगन नित पूर होइ आसा मैं
देखी ना कबहुँ मिसरी मैं, मधुहू मैं, ना
रसाल, ईख, दाख मैं, न तनिक बतासा मैं
अमृत मैं पाई ना अधर मैं सुरंगना के
जेती मधुराई भूप सज्जन की भासा मैं

कवि जयकरण जी की दी हुई समस्या—

'आसी ना तिहारे ये निवासी कल्प तर के'

राधा स्याम सेवैं सदा वृंदाबन बास करैं
रहैं निहचिंत पद आस गुरुवर के
चाहैं धन धाम न अराम सो है काम
'हरीचंद जू' भरोसे रहैं नंदराय-घर के
ए रे नीच धनी हमैं तेज तू दिखावै कहा
गज परवाहीं नाहिं होहिं कबौं खर के
होइ ले रसाल तू भलेई जग-जीव काज
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्प तर के

महाराणा सज्जनसिंह जी इन पूर्तियों पर परम प्रसन्न हुए थे और उन्होंने भारतेंदु बाबू को ५००) की खिलअत दी थी तथा उनका बहुत बहुत सम्मान किया था।

भारतेंदु जी अत्यंत कल्पना शील थे। उन्होंने एक एक समस्या की कई कई पूर्तियाँ भी की हैं—'राम बिना बेकाम सभी' की चार, 'ग्रीसमै प्यारे हिमंत बनाइए' की छह, 'रोम रोम रस फूल है' की चार, 'क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी' की दस, तथा 'कान्ह कान्ह गोहरावति हौ' की पन्द्रह पूर्तियाँ उन्होंने की हैं। अंतिम दो की पूर्तियाँ अत्यंत सरस एवं सरल हैं।

आँचर खोले लट छिटकाए तन की सुधि नहिं ल्यावति हौ
धूर धूसरित अंग, संक कछु गुरु-जन की नहिं पावति हौ
'हरीचंद' इत सों उत व्याकुल कबहुँ हँसत कहुँ गावति हौ
कहा भयो है, पागल सी क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हौ?

भारतेंदु बाबू की काव्य-शक्ति इतनी प्रबल थी कि कभी कभी सपने में भी काव्य रचना कर लेते थे। 'प्रेम तरंग' की ८७, ८८, ८९ संख्यक

लावनियाँ सपने में बनाई गई थीं। ये सभी सुंदर एवं सरस हैं। इनमें से एक यहाँ उद्धृत की जा रही है।

पिय प्राननाथ मनमोहन सुंदर प्यारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे
घनश्याम गोप-गोपीपति गोकुलराई
निज प्रेमीजन हित नित नित नव सुखदाई
वृंदावन-रच्छक ब्रज-सरबस बल-भाई
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई
श्री राधानायक जसुदानंद दुलारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तेँ न्यारे ?
तुव दरसन बिनु तन रोम रोम दुख पागे
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन बिष सम लागे
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे
मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तेँ न्यारे ?
तुमही मम जीवन के अवलंब कन्हाई
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई
तुव देखे ही सुख होत, न और उपाई
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई
हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे
तुमरे बिनु इक छन कोटि कलप सम भारी
तुमरे बिनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी
तुमरे सँग बनहू घर सों बढ़ि बनवारी
हमरे तौ सब कुछ तुमही हौ गिरधारी
'हरिचंद' हमारे राखौ मान दुलारे
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे

—प्रेम तरंग ८९.

तृतीय खण्ड

आधुनिक-काव्य-धारा

१५

राजभक्ति

संवत् १९१४ में, जब भारतेन्दु जी केवल सात वर्ष के थे, भारत की स्वतन्त्रता का प्रथम महायुद्ध हुआ था। इसमें हमारे देशवासियों को किन्हीं कारणों से असफल होना पड़ा। परिणाम स्वरूप दयालु कहे जानेवाले कैनिंग के द्वारा अनेक लोगों को फाँसी पर लटका दिया गया। गाँव-गाँव में पेड़ों की डाली से फाँसी का काम लिया गया। स्वतन्त्रता की भावना को बहुत बुरी तरह कुचला गया। लोगों में आतंक छा गया—अँगरेजों का रोब सब पर हावी हो गया। इस महायुद्ध के पहले भारतीय समझते थे कि उनके ऊपर कुछ बनियों का अधिकार है, एक व्यापार करने वाली कम्पनी का शासन है, किसी राजा का नहीं। जहाँ एक का शासन न होगा, पंचायती राज्य होगा, और वह भी विदेशी, वहाँ सुराज्य नहीं हो सकता। हमारी स्वतन्त्रता के इस प्रथम युद्ध के उपरान्त सन् १८५८ ई० में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' सदा के लिए तोड़ दी गई, गवर्नर जनरल को वाइसराय बनाया गया और भारतवर्ष पर सीधे इंगलैंड के राजा का शासन हो गया। अब भारत वासियों को ज्ञात हुआ कि उनके ऊपर छत्रछाया करनेवाला कोई राजा हो गया। सौभाग्य से उस समय सम्राज्ञी विक्टोरिया इंगलैंड की रानी थीं, इसीलिए वे ही भारतवर्ष की महारानी भी हुईं।

पहली नवम्बर सन् १९५८ ई० को जनता को आश्वासन देने के लिए लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद में एक दरबार किया। इस दरबार में महारानी विक्टोरिया का प्रसिद्ध घोषणापत्र पढ़कर सुनाया गया। इस घोषणापत्र में बताया गया कि कम्पनी और देशी राजाओं में जो संधियाँ हुई हैं, उनका पालन किया जायगा। साथ ही देशी राजाओं के गोद लेने का अधिकार स्वीकार किया गया। इस प्रकार देशी राजा फूले न समाए। इस भाषण से जनता को आश्वस्त किया गया कि अँगरेजी राज्य में रंग-भेद न किया जायगा। सब को समान रूप से उच्च सरकारी नौकरियाँ दी जायँगी। जिन लोगों ने अँगरेजों की हत्या न की थी, उन्हें क्षमा किया गया। सबसे बड़ी बात जो इस भाषण में कही गई वह यह थी कि सरकार किसी के धर्म में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप

न करेगी। भारतवासियों को और क्या चाहिए था, वे परम प्रसन्न हुए, उन्हें जीते जी परमपद प्राप्त हो गया और राजभक्ति का सागर उनके हृदयों में तरंगें मारने लगा।

अँगरेजों के पहले भारतवर्ष पर मुसलमानों का राज्य था, घोर अशान्ति थी। मुसलमानों ने हिंदुओं के धर्म पर अनेक अत्याचार किए थे। उनके मंदिर तोड़ कर मसजिदों में परिवर्तित कर दिए गए थे। उन्हें तलवार के बल पर इसलाम में दीक्षित किया गया था। उनके पुस्तकालय इसलिए जला दिए गए थे कि उनमें कुरानशरीफ़ न होकर और-और पुस्तकें थीं, और उस समय के शासकों के अनुसार संसार को केवल एक पुस्तक की आवश्यकता थी वह पुस्तक थी कुरानशरीफ। हिन्दू काफिर कहकर पुकारे जाते थे। हिंदू को हिंदू होने का, मुसल्मान न होने का, अलग से जजिया नामक कर देना होता था। कम्पनी के शासनकाल में धर्म पर विशेष हस्तक्षेप न हुए थे। इस दृष्टि से कम्पनी का विदेशी राज्य भी धर्मप्राण हिंदुओं की दृष्टि में मुसलमानी राज्य से अच्छा था। फिर भी कम्पनी अपने लाभ के लिए कभी-कभी मनमानी कर बैठती थी। उसने दत्तक पुत्र की प्रथा को अस्वीकार किया जो कि हिंदू धर्म के अनुसार विहित है। परन्तु महारानी विक्टोरिया ने अपने घोषणा-पत्र द्वारा सब पर अवगत कर दिया कि धर्म पर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा। भारतेन्दु मुसलमानों की धर्मान्धता से अत्यन्त दुखी थे; अँगरेजों की धार्मिक उदारता ने उन्हें मुग्ध कर लिया।

'भारत वीरत्व' के निम्नलिखित छन्दों में भारतेन्दु की राजभक्ति का कारण स्पष्ट है—

> जासु राज सुख बस्यौ सदा भारत भय त्यागी
> जासु बुद्धि नित प्रजा-पुंज-रंजन महँ पागी १९
> जो न प्रजा-तिय दिसि सपनेहूँ चित्त चलावै
> जो न प्रजा के धर्महि हठ करि कबहुँ नसावै २०
> बाँधि सेतु जिन सु-तर किए दुस्तर नद नारे
> रची सड़क बेधड़क पथिक हित सुख बिस्तारे २१
> ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पाहरू दिए बिठाई
> जिनके भय सों चोर-वृंद सब रहे दुराई २२
> नृप-कुल दत्तक-प्रथा कृपा करि निज थिर राखी
> भूमि कोष को लोभ तज्यौ जिन जग करि साखी २३

करि वारड कानून अनेकन कुलहिं बचायो
विद्या-दान महान नगर प्रति नगर चलायो २४
सबही बिधि हित किये बिबिध बिधि नीति सिखाई
अभय बाँह की छाँह सबहिं सुख दियो सोआई २५
जिनके राज अनेक भाँति सुख किए सदाहीं
समर भूमि तिनसों छिपनो कछु उत्तम नाहीं २६

भारतेन्दु बाबू पैदाइशी एवं खानदानी राजभक्त थे जैसा कि प्रत्येक रईस होता है। अपनी राजभक्ति-प्रदर्शित करने का कोई अवसर उन्होंने नहीं छोड़ा। राज-परिवार के सुख-दुख, हर्ष-विषाद सभी अवसरों पर हर्ष विषाद प्रकट किया। इस कार्य में उनकी लेखनी ने भी बहुत योग दिया। राज-भक्ति की सूचना देने वाली उनकी अनेक रचनाएँ हैं, जिनका संकलन 'हरिश्चन्द्र कला' द्वितीय खण्ड में हुआ था। एक प्रकार से जो कार्य इंगलैण्ड के राजकवि का है, वही काम राजवंश के लिए भारत की ओर से भारतेन्दु बाबू ने किया।

१. स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तर्लापिका, १९१८.

सबसे पहला अवसर भारतेन्दु को शोक प्रकाश का तब मिला जब प्रिंस अलबर्ट की मृत्यु १४ दिसंबर सन् १८६१ ई० (सं० १९१८) को हुई। वे महारानी विक्टोरिया के पति थे। उस समय भारतेन्दु की अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी। एक साल पहले उनके पिता की भी मृत्यु हुई थी। इस अवसर पर भारतेन्दु बाबू रोने बैठे, पर उन्हें रोना न आया; यद्यपि रोना और गाना सभी को आता है, पर वे लड़कपन कर बैठे। वे बैठे तो शोक-प्रकाश करने, पर लगे पहेली बुझाने। उन्होंने चार छप्पयों में ३६ प्रश्न किए हैं और सबका उत्तर उलट फेरसे 'अलवरत' के भीतर मिल जाता है। अब प्रिंस अलबर्ट की मृत्यु पर चाहे रोइए, चाहे पहेली बूझने की असमर्थता पर खीझकर रोइए—रोना आपको होगा। इस कविता से उनकी किसी प्रकार की राजभक्ति की सूचना नहीं मिलती। यह तो एक बालकवि की क्रीड़ा मात्र है। यह चित्र-काव्य है और काव्य की श्रेणी में इसे स्थान नहीं दिया जा सकता। श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस कविता को आधुनिक काव्य की प्रथम रचना मानकर अत्यधिक महत्व दिया है।

२. श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र, १९२६.

ड्यूक आफ एडिनबरा के सन् १८६९ ई० में भारत शुभागमन के अवसर पर यह कविता रची गई थी। इस स्वागत पत्र के प्रारम्भ में दो दोहे हैं—

जाके दरसन हित सदा नैना मरत पियास
सो मुख-चंद बिलोकिहैं पूरी सब मन आस
नैन बिछाए आपुहित आवहु या मग होय
कमल-पाँवड़े ये किए अति कोमल पद जोय

फिर प्रायः दो पृष्ठों का गद्य में एक वक्तव्य है। अन्त में दो कवित्त एवं दस दोहे हैं जिनमें छह षट ऋतुओं पर रूपक हैं। पहले कवित्त में कुँवर को नखतेश (चन्द्रमा) और दूसरे में ऋतुराज बनाया गया है। उदाहरण के लिए 'राजकुँवर-रितुराज' का रूपक यहाँ दिया जा रहा है—

आनँद सों बौरी प्रजा, धाये मधुप समाज
मन मयूर हरखित भए, राजकुँवर-रितुराज

युवराज के काशी पधारने पर भारतेंदु बाबू को ही उन्हें काशी दिखाने का भार सौंपा गया था। इस अवसर पर भारतेंदु ने अपने घर की अत्यंत सजावट की थी, उत्सव भी उत्साहपूर्वक मनाया था, संगीत समारोह भी किया था। स्वयं ड्यूक ने इस कार्य की प्रशंसा की थी।

३. काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु कबित्त, १९२६.

ड्यूक महोदय सं० १९२६ की कार्तिक पूर्णिमा को काशी आए थे। उस दिन चन्द्रग्रहण था। इस अवसर से लाभ उठाकर भारतेंदु बाबू ने निम्नलिखित कवित्त की रचना की और सिद्ध किया कि राजकुमार के मुख-चन्द्र से हारकर चंद्र ने अपने मुख में ग्रहण रूपी कालिमा लगा ली है—

वाको जन्म जल याको रानी-कूख-सागर तें,
वह तौ कलंकी यामें छींटहू न आई है
वह नित घटै यह बाढ़ै दिन दिन, वह
बिरही दुखद, यह जग सुखदाई है
जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही मैं
गहन के मिस यह मति उपजाई है
देखि आजु उदित प्रकासमान भूमि चंद
नभ ससि लाजि मुख कालिमा लगाई है

४. सुमनोऽञ्जलि, १९२७.

२० जनवरी १८७० को भारतेंदु जी ने काशी के प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं पंडितों को अपने यहाँ आमंत्रित कर एक सभा की। इसमें उन्होंने स्वयं हिंदी में ड्यूक आफ एडिनबरा के जीवन-वृत्त पर सूक्ष्म प्रकाश डाला। तदनंतर पंडितों ने अपनी राजभक्ति सूचक रचनाएँ निवेदित कीं। बाद में इन्हीं रचनाओं

का संकलन 'सुमनोऽञ्जलि' नाम से प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका अँगरेजी में है और भारतेंदु जी की लिखी हुई है। इसकी मिती है १० मार्च १८७०। भूमिका के अंत में आमंत्रित सज्जनों के नाम भी दे दिए गए हैं। भारतेंदु जी इस पुस्तक के संपादक मात्र हैं। इसमें उनकी कोई रचना नहीं है।

ऊपर की इन तीनों रचनाओं का संबंध ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन से हैं। इस संग्रह एवं इस राजभक्ति प्रदर्शन से प्रसन्न होकर तत्कालीन रीवाँ नरेश श्री रघुराज सिंह जी ने दो हजार तथा विजयानगरम की राजकुमारी ने ढाई सौ रुपये पुरस्कार स्वरूप दिए थे। भारतेंदु बाबू ने इस धन को सुमनोऽञ्जलि के रचयिता पंडितों में बाँट दिया था। ड्यूक आफ एडिनबरा भारतवर्ष में अधिक नहीं ठहरे, इस कारण यह ग्रंथ उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं समर्पित किया जा सका था।

भारतेन्दु बाबू की इस राजभक्ति से प्रसन्न होकर सरकार ने उसी साल सन् १८७० ई० में उन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाया। उस समय उनकी अवस्था केवल बीस वर्ष की थी। भारतेन्दु बाबू प्रायः चार वर्ष तक आनरेरी मैजिस्ट्रेट बने रहे, फिर १८७४ ई० में उन्होंने कई कारणों से त्यागपत्र दे दिया।

५. सन् १८७१ में श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता, १९२८.

सन् १८७१ ई० के नवम्बर मास में टायफायड ज्वर से कई दिनों तक प्रिंस की अवस्था कष्ट-साध्य हो गई थी। उस समय यह कविता लिखी गई थी। इस कविता में नौ दोहे हैं। इनमें परमात्मा से उनको नीरोग करने की प्रार्थना की गई है—

बिनवत हाथ उठाय कै, दीजै श्री भगवान
जुवराजहिं गत-रुज करो, देहु अभय को दान

६. मुँह दिखावनी, १९३१.

सन् १८७४ ई० में क्वीन विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा का विवाह रूस की राजकुमारी ग्रैंड डचेज् मेरी के साथ हुआ था, जिसके उपलक्ष में यह मुँह दिखावनी लिखी गई थी। यह १५ फरवरी सन् १८७४ ई० की हरिश्चन्द्र मैगजीन में प्रकाशित हुई थी। इसमें २० दोहे हैं।

माँगी मुख दिखरावनी, दुलहिन करि अनुराग
सास सदन, मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग ६
कोउ मनि मानिक, मुकुत कोउ, कोऊ गल को हार
कनक रौप्य महि फूल-फल, लै लै करत जुहार ११

तब हम भारत की प्रजा, मिलिकै सहित उछाह
लाए आसा दासिका, लीजै एहि नर-नाह १२

इस रचना में राष्ट्रीयता का क्षीण स्रोत प्रवाहित हो रहा है। इस रचना के पश्चात् जितनी भी राजभक्ति-सम्बन्धी कविताएँ भारतेन्दु ने लिखीं, सभी मे राष्ट्रीयता का समावेश होता गया है और यह राष्ट्रीयता समय की प्रगति के साथ निरन्तर प्रबल होती गई है।

७. श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन, १९३२.

सन् १८७५ ई० में युवराज प्रिंस आफ वेल्स (सम्राट् एडवर्ड सप्तम) भारत आए थे, जिनके शुभागमन पर यह कविता लिखी गई थी। यह कविता बालाबोधिनी खण्ड ३, संख्या ६ (आषाढ़ सं० १९३३) मे छपी थी। इसमें ४१ दोहे हैं। दोहा २०, २१, २२, २३ में देश भक्ति का भी हलका पुट है।

मन-मयूर हरखित भए, गए दुरित दव दूरि
राजकुँवर नव घन सरस, भारत-जीवन-मूरि ९
जैसे आतप तपित कों, छाया सुखद गुनात
जवन राज के अन्त तुव आगम तिमि दरसात २७
कुँवर कहाँ हम लेहिं तोहिं ठौर न कहूँ लखाय
दृग-मग है हमरे हिए बैठहु प्रिय तुम आय २९

८. भारत भिक्षा, १९३२.

भारत भिक्षा बाबू हेमचंद्र बनर्जी की कविता की छाया लेकर कवि की इच्छानुसार हिन्दी में लिखी गई हैं। यह कविता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड २ सं० ८-१२ सन् १८७५ ई० के मई-सितम्बर की सम्मिलित संख्या मे प्रकाशित हुई थी। यह बारह पृष्ठों में छपी है, जिनमें से प्रत्येक में २४ पंक्तियाँ हैं। विजयिनी-विजय-वैजयन्ती, भारत वीरत्व और इसके बहुत से पद एक दूसरे में सम्मिलित कर लिए गए हैं।

प्रिंस अलबर्ट के आने पर यह कविता उनके स्वागत में लिखी गई थी। उनके आने से भारत में आनन्द उमड़ रहा है। काशी के जितने कलाकार हैं सबको इस आनन्द सवर्द्धन के लिए अपने साज समाज के साथ आमन्त्रित किया जाता है। फिर देश के सब राजाओं को झुक झुककर सलाम करने के लिए कहा जाता है, वे आते हैं और पाण्डवों का राजसूय यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। फिर कलकत्ता की सजावट का वर्णन आता है, तत्पश्चात् दीन दुखी भारत माता से कुँवर को गोद मे लेने को कहा जाता है। यह सुनकर भारत माता आकुल होकर उठती हैं और अपने पूर्व गौरव का स्मरण करती हैं, किंतु

यह स्मरण गौरव की दृष्टि से नहीं है। यह एक प्रकार का खेद-प्रकाश है कि राजकुमार को दिखलाने के लिए अब कोई वस्तु भारत में नहीं रह गई है—न वे आर्य, न वह विद्या, न वह षड् दर्शन, न वह बल। सब कुछ विलुप्त हो गया। इसके पश्चात् भारत माता कुँवर से भिक्षा माँगती है—

लेहु माय कहि मोहिं पुकारी
सोइ भावन जिमि निज महतारी ५९

× × ×

हम तुव जननी की निज दासी
दासी-सुत मम भूमि-निवासी
तिनको सब दुख कुँवर छुड़ावो
दासी की सब आस पुरावो ६९

यह भिक्षा माँगकर भारत माता अन्तर्ध्यान हो गई और बृटिश डंका अपार शब्द करता हुआ बज उठा।

यह कविता भी राजभक्ति की अधिक है, देशभक्ति की कम।

९. मानसोपायन, १९३३.

यह राजभक्ति की कविताओं का संकलन है। इसमें हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, संस्कृत, उर्दू, बँगला, अंग्रेजी, तैलगू की रचनाएँ हैं। सन् १८७६ ई० में प्रिंस आफ वेल्स ने काशी में अस्पताल की नींव डाली थी। उक्त अवसर पर इन कविताओं का आयोजन हुआ था, पर प्रकाशन बाद में हुआ। आरम्भ में भारतेन्दु कृत हिन्दी भूमिका है, जिसकी मिती १ जनवरी १८७७ है। इस संग्रह में भारतेन्दु बाबू की दो कविताएँ हैं, एक हिन्दी में, दूसरी गुजराती में। भूमिका से प्रकट है कि वे यहाँ के अँगरेज अमला से असन्तुष्ट थे, अंग्रेजी राज्य से नहीं। वे लिखते हैं—

"हम सब स्वभाव सिद्ध राजभक्त हैं। बिचारे छोटे पद के अँगरेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है, ये अपनी ही तीन छटाँक पकाने जानते हैं। अतएव दोनों प्रजा एक-रस नहीं हो जाती; आप दूर बसे, हमारा जी कोई देखनेवाला नहीं, बस छुट्टी हुई।"

श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन, भारत भिक्षा एवं मानसोपायन—ये तीनों रचनाएँ प्रिंस आफ वेल्स के भारत-शुभागमन से संबद्ध हैं। इसी प्रकार की तीन रचनाएँ ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत शुभागमन पर बनाई गई थीं। 'सुमनोऽञ्जलि' और 'मानसोपायन' एक ही ढंग की रचनाएँ हैं। ये दोनों संग्रह भारतेंदु की प्रेरणा से, उन्हीं की देख रेख में, बने थे। और दोनों

ठीक समय पर नहीं भेंट किए जा सके थे। जब महारानी विक्टोरिया ने भारत-राजराजेश्वरी का पद ग्रहण किया, उस समय युवराज की सेवा में 'मानसो-पायन' भेंट किया गया।

१०. मनोमुकुल माला, १९३४.

मनोमुकुलमाला राज-राजेश्वरी आर्येश्वरी भारताधीश्वरी श्री० १०८ विजयिनी देवी के चरण तामरस में हरिश्चन्द्र द्वारा समर्पित वाक्य पुष्पोपहार है। यह रचना भी एक प्रकार की काव्य-क्रीड़ा है और काव्य कौतुक में इसका वर्णन किया गया है। इसमें २२ दोहे, ५ श्लोक और मुबारकबादी की एक गजल है।

उसको शाहनशाही हर बार मुबारक होवे
कैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे

११. भारत वीरत्व, १९३५.

भारत वीरत्व हरिश्चन्द्र चंद्रिका के सन् १८७८ ई० के अक्टूबर के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसमें १० पृष्ठ एवं प्रति पृष्ठ पर २५ पंक्तियाँ थीं। इसमें विजयिनी विजय वैजयंती एवं भारत भिक्षा के पद भी सम्मिलित हैं। यह कविता प्रथम अफगान युद्ध छिड़ने पर लिखी गई थी। इसमें देशीय वीरों को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहन दिया गया था।

१२. विजय वल्लरी, १९३८.

अफगान युद्ध समाप्त होने पर यह कविता लिखी गई थी। इसमें ४२ दोहे हैं।

१३. विजयिनी विजय पताका या वैजयंती, १९१९.

आश्विन कृष्ण ६, सं० १९३९ की कवि-वचन-सुधा खंड १०, संख्या ९ में यह कविता छपी थी। अँगरेजी भूमिका से यह स्पष्ट है कि २२ सितंबर १८८२ को ६ बजे शाम के समय टाउनहाल में बनारस इंस्टिट्यूट की एक विशेष बैठक हुई थी। इस बैठक का उद्देश्य भारतीय सेना के मिश्र विजय पर हर्ष प्रकाश करना था। प्रायः सभी रईस, अमले, पंडित, प्रोफेसर, विद्वान एवं म्यूनिसिपल तथा डिस्ट्रिक बोर्ड के सदस्य आदि उपस्थित थे। प्रारंभ में भारतेंदु बाबू ने अपनी यह रचना पढ़ी। प्रारंभिक पदों में भारत की इस असीम प्रसन्नता का कारण बताया गया है कि यह मिश्र पर भारतीय सेना के विजय के परिणाम स्वरूप है। भारत के पूर्व गौरव एवं वर्तमान दुर्दशा का अत्यन्त सुन्दर एवं विरोधी चित्रण यहाँ उपलब्ध है। अन्त में मिश्र विजय का वर्णन है। यह एक बड़ी रचना है और ग्रन्थावली के ११ पृष्ठों में आई है।

भारत मिक्षा और भारत वीरत्व में भी इसकी बहुत सी पंक्तियाँ हैं। भारतेन्दु की राजभक्ति और देशभक्ति का इसमें अपूर्व सामंजस्य है।

१४. जातीय संगीत, १९४१.

यह विक्टोरिया के चिरंजीव होने के लिए परमात्मा से एक प्रार्थना है। इसमें छह छन्द है, प्रत्येक पद में सात पंक्तियाँ हैं। यह लार्ड टेनिसन की

God save our Empress queen
Long live our Gracious queen

का हिन्दी अनुवाद है।

१५. रिपनाष्टक, १९४१.

रिपनाष्टक तत्कालीन उदार वाइसराय लार्डरिपन (१८८०–८४) की प्रशंसा में है। इसमें आठ छप्पय हैं, जिनमें लार्ड रिपन का गुणगान किया गया है। यह अकेली रचना है जिसमें भारतेन्दु बाबू ने राजवंश को छोड़ अन्य किसी की प्रशंसा में नरकाव्य किया है।

१६. स्फुट

इन रचनाओं के अतिरिक्त दो-चार और भी स्फुट कविताएँ हैं जो यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। 'मुद्राराक्षस' के अन्त में महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में यह सवैया है—

पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी
सूरज चंद प्रकाश करैं जब लौं रहै सातहू सिंधु मैं पानी
राज करौ सुख सों तब लौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी
पालौ प्रजाजन कों सुख सों जग कीरति-गान करैं गुन जानी
—१९३५

एक दूसरी रचना 'रोम मोम रूस फूस है' समस्या की पूर्ति है—

भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि
दवत जमानी जाको जोहत जलूस है
ब्रह्म अस्त्र ऐसो तोपे तौपैं एक वार फौज
बिमल बंदूक गोली दारू कारतूस है
ऐसो कौन जग में बिलोकि सकै जौन इन्हैं
देखि बल बैरी दल रहत मसूस है
अवल प्रताप भारतेश्वरी तिहारैं क्रोध
ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है
—भारतेन्दु ग्रन्थावली पृष्ठ ८६४।२

जब भारतेंदु बाबू का विमल यश भारतवर्ष में व्याप्त होने लगा और उनकी हिंदी प्रमाण मानी जाने लगी, तब उनके कुछ दिनों के शिक्षा गुरु राजा शिवप्रसाद ईर्ष्या से जल उठे क्योंकि उनके द्वारा प्रचारित उर्दू मिश्रित खिचड़ी हिंदी की कोई पूछ न थी। वे इस क्षेत्र में तो अपने प्रतिद्वन्दी का कुछ न बिगाड़ सके, पर हरिश्चन्द्र को कलंकित करने के लिए सदा कटिबद्ध रहे। कार्तिक सं० १९२७ (१८७० ई०) में काशी में सूबे के गवर्नर लार्ड मेयो की अध्यक्षता में एक 'लेवी' दरबार हुआ था। भारतेंदु विनोदशील तो थे ही उन्होंने 'लेवी प्राण लेवी' नाम का एक परिहास-लेख 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित कराया। कुछ दिनों के अनंतर उन्होंने इसी ढंग का एक और लेख 'मर्सिया' प्रकाशित किया। राजा शिवप्रसाद ने इन दोनों लेखों का उलटा-सीधा अर्थ कर-करा के तत्कालीन अधिकारियों को रुष्ट करा दिया। इस पर कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र चंद्रिका एवं बालाबोधिनी का प्रांतीय शिक्षा विभाग से खरीद होना बंद करा दिया गया। अधिकारियों के इस ढुलमुल व्यवहार से अप्रसन्न होकर भारतेंदु बाबू ने आनरेरी मैजिस्ट्रेटी से स्तीफा दे दिया। अँगरेज अफसरों के प्रति अपने इस असंतोष की सूचना भारतेंदु बाबू ने 'मानसोपायैन' की भूमिका में दी है।

"बिचारे छोटे पद के अँगरेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है, ये अपनी ही तीन छटाँक पकाने जानते हैं।"

इन झूठी सच्ची बातों का असर यह हुआ कि भारतेंदु की राजभक्ति संदेह की दृष्टि से देखी जाने लगी। यहाँ तक कि अप्रैल १८८४ में महारानी विक्टोरिया के चतुर्थ पुत्र ड्यूक आफ अलबनी की अकाल मृत्यु पर जब इन्होंने शोक-सभा करनी चाही, और इस कार्य के लिए टाउनहाल माँगा, तब पहले तो वह मिल गया; पर राजा शिवप्रसाद द्वारा कान फूँक देने पर अंतिम दिन टाउनहाल देने की आज्ञा रद कर दी गई।

चूँकि भारतेंदु बाबू की राजभक्ति संदेह में पड़ गई थी, इसीलिए उनके मित्र ठाकुर रामदीन सिंह जी ने भारतेंदु की मृत्यु के उपरांत उनकी राजभक्ति संबंधी रचनाओं का एक अलग संकलन 'हरिश्चन्द्र कला' खंड २ में 'सच्ची राजभक्ति' के नाम से प्रकाशित किया। यही नहीं, स्वर्गीय राधाकृष्ण दास ने स्वरचित भारतेंदु बाबू के जीवन चरित में राजभक्ति पर एक अलग अध्याय ही लिखा। उसी प्रकार बाबू शिवनंदन सहाय ने भी 'हरिश्चन्द्र' में राजभक्ति पर एक अध्याय लिखा है। इन दोनों ग्रंथों में भारतेंदु के देश-प्रेम पर एक भी अध्याय नहीं है और इनमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भारतेंदु की राजभक्ति सच्ची थी। जैसे जैसे राष्ट्रीयता का विकास होता गया, लोग भारतेंदु की देशभक्ति

से परिचित होते गए और बाबू ब्रजरत्नदास ने अपने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' में 'देश-प्रेम' नामका एक अलग अध्याय ही जोड़ दिया एवं स्वर्गीय शुक्ल जी ने इसके पूर्व ही यहाँ तक लिख दिया कि भारतेंदु साहित्य में सबसे प्रबल और ऊँचा स्वर है देशभक्ति का।'

महारानी विक्टोरिया की न्याय-बुद्धि में भारतेंदुजी का इतना अधिक विश्वास था कि वे आमरण उनके चिर जीवन की कामना करते रहे। उनकी राज-भक्ति भी उनकी देश-भक्ति का ही एक रूप है। जब वे यह लिखते हैं—

'अँगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै'

तब इसका यह अर्थ नहीं कि वे देश-द्रोही थे—उस अशांत वातावरण में शांति की अत्यंत आवश्यकता थी और यह शांति बिना अँगरेजी राज्य की स्थिरता के नहीं आ सकती थी। इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा।

१६

देशभक्ति

भारतेन्दु बाबू १९३१ तक राजभक्ति के छल में पड़े रहे और अंग्रेजी सरकार को न्याय, दया, धर्म का अवतार समझते रहे। पर वे असाधारण प्रतिभा के मनस्वी पुरुष थे। उन्हें यह सहज ही ज्ञात हो गया कि कोरी राज-भक्ति से काम न चलेगा। विदेशी शासन की बुराइयाँ धीरे-धीरे उनपर प्रगट होने लगीं और दिन-दिन राजभक्ति से उनको असन्तोष होता गया। राज कर के कष्ट की ओर उनका ध्यान १९३० से ही चला गया था। इसीसे १९३१ से ही उनमें राष्ट्रीयता का कुछ-कुछ संचार होने लगा था।

'विषस्यविषमौषधम्' की आलोचना करते हुए 'भारतेन्दु नाटकावली' की भूमिका में डाक्टर श्यामसुन्दर दासजी लिखते हैं—

"जो महात्मा देश के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने को सदा उद्यत रहे, जिसको बात-बात में अपने देश का स्मरण हो आवे और जो उसके उदय के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने में कभी आगा पीछा न करे, वही एक राजा के गद्दी से उतारे जाने पर आनन्द मनावे और भाण लिखकर प्रशस्ति में 'अँगरेजन को राज ईस इत चिर करि थापै' तक कह डाले। इस भाण में भारतेन्दुजी अपने असली रूप में नहीं देख पड़ते। उनके स्वभाव में, उनकी रुचि में, उनके देशाभिमान में, उनकी देश हितैषिता में बहुत बड़ा परि-वर्तन देख पड़ता है।"

—भारतेन्दु नाटकावली (प्रस्तावना पृष्ठ ६५).

ध्यान देने की बात है कि 'विषस्यविषमौषधम्' का रचना काल सं० १९३३ है—इस समय तक भारतेन्दु की राष्ट्रीयता का कोई विकसित रूप हमें नहीं दिखाई पड़ता। इस भाण के पहले की केवल निम्नांकित रचनाएँ ऐसी है जिनमें राष्ट्रीयता का कुछ रंग है—इनमें राजभक्ति का ही स्वर प्रबल है—

(१) मुँह दिखावनी १९३१
(२) राजकुमार शुभागमन १९३२
(३) भारत भिक्षा १९३२

इस भाग से पहले की केवल एक रचना—प्रबोधिनी : १९३१—है, जिसमें राष्ट्रीयता का स्वर है, परन्तु यह स्वर भक्ति-भावना से दबा हुआ है। हम यहाँ एक-एक करके तीनों राजभक्ति सम्बन्धी रचनाओं की परीक्षा करके यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इनमें राष्ट्रीयता का तत्व कितना है।

सं० १९३१ में ड्यूक आफ एडिनबरा का विवाह रूस की राजकुमारी से हुआ। नई बहू को मुँह दिखावनी में किसी ने कुछ दिया, किसी ने कुछ; भारत की प्रजा भी राज वधू को 'आशा'—दासी उपहार-स्वरूप देती है :—

सेवा में एहि राखियो नवल वधू के साथ
यहू भाग निज मानिकै छनक न तजिहै साथ १३
रूस मिले सों रेल के आगम-गमन प्रचार
धन जन बल व्यवहार ने छोड़ो यह सुकुमार १४
तासों तुम्हरे कर कमल सौंपत एहि नरनाह
जब लौं जीबै, कीजियौ तब लौं कुँवर ! निवाह १५
यह पाली सब प्रजन अति करि बहु लाह उमाह
अति सुकुमारी लाँड़िली सौंपत तोहिं नरनाह १६
यह बाहर कहुँ नहिं गई, सही न गरमी सीत
आदर दैकै राखियो, करियो नित चित प्रीत १७
जौ यासौं जिय नहिं रमै, वा कछु जिय अकुलाय
सौति वधू वा एहि लखै तौ हम कहत उपाय १८
जब हम सब मिलि एक मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम
फेरि दीजियो तब हमैं दै कछु और इनाम १९

रचना में देश-भक्ति का अंकुर है अवश्य, पर वह बहुत दुर्बल है। जिस एक-मत होने की आशा भारतेन्दु बाबू करते हैं, वह दुराशा सिद्ध हुई है। हम स्वतन्त्र हुए, पर एक-मत न हुए। परिणाम यह हुआ कि भारत खण्ड खण्ड हो गया।

इसके एक साल बाद की रचना है 'राजकुमार शुभागमन वर्णन'। इसमें भी राष्ट्रीयता का एक क्षीण स्रोत प्रवाहित है इसके निम्नलिखित दोहों में अतीत गौरव की एक झलक है—

जदपि न भोज न व्यास नहिं बालमीकि नहिं राम
शाक्यसिंह हरिचंद बलि करन जुधिष्ठिर श्याम २०
जदपि न बिक्रम अकबरहु कालिदासहू नाहिं
जदपि न सो विद्यादि गुन भारतवासी माहिं २१

प्रतिष्ठान साकेत पुनि दिल्ली मगध कनौज
जदपि अहै उजरी परीं नगरि सबै बिनु मौज २२
जद्यपि खँडहर सी भरी भारत भुवि अति दीन
खोइ रत्न संतान सब कृस तन दीन मलीन २३
तदपि तुमहिं लखिकै तुरत आनंदित सब गात
प्रान लहे तन सी अहो भारत भूमि दिखात २४

इसका सीधा अर्थ यह है कि यद्यपि भारत का सब गौरव नष्ट हो गया है, वह दीन दुखी रह गया है, फिर भी हे राजकुमार, तुम्हें देखकर वह फूला नहीं समाता। इस फूले न समाने में सारी राष्ट्रीयता हवा हो गई है।

प्रिंस अलबर्ट के आने पर 'भारत भिक्षा' की रचना हुई थी। यह एक लम्बी रचना है। दोहा ३६ से ४५ तक कवि भारत माता से कहता है—'हे भारत जननि, तुम बहुत दिनों की दुखिया हो। करुणा करके महारानी विक्टोरिया ने अपने प्राणोपम पुत्र को तुम्हारे पास भेजा है। तुम उन्हें अपनी गोद में बैठा लो और अपना दुख दर्द उनसे कह सुनाओ।' यह सुनकर भारत माता सेज छोड़कर अत्यन्त आकुल होकर उठती हैं, अपने बिखरे केश को दोनों हाथों से निवारण करके, पीले मुख और सजल नेत्र से, उच्छ्वास लेकर कहती है—

क्यों आवत इत नृपति कुमारा
भारत में छायो अँधियारा ४७
कहाँ यहाँ अब लखिबे जोगू
अब नाहिन इत वे सब लोगू
जिनके भय कंपत संसारा
सब जग जिनको तेज पसारा ४८
रहे शास्त्र के जब आलोचन
रहे सबै जग इत पट दरसन
भारत विधि विद्या बहु जोगू
नाहिं अब इत, केवल है सोगू ४९
सो अमूल्य अब लोग इतै नहिं
कहा कुँअर लखिहैं भारत महिं
रहे जबै मनि-क्रीट सकुण्डल
रह्यो दंड जब प्रबल अखंडल ५०

रह्यो रुधिर जब आरज-सीसा
ज्वलित अनल समान-अवनीसा
साहस बल इन सम कोउ नाहीं
जबै रह्यौ महि-मंडल माहीं ५१

जब मोहिं ये कहि जननि पुकारैं
दसहू दिसि धुनि गरजन पारैं
तब मैं रही जगत की माता
अब मेरी जग में कह बाता ५२

लखिहैं का कुमार अब धाई
गोद बैठि हँसिहैं इत आई
जब पुकारिहैं कहि मोहिं माता
आनँद सों भरिहौं सब गाता ५३

युरप अमरिका इहिहि सिहाही
भारत भाग सरिस कोउ नाहीं
पूर्व सखी मम रोम पिआरी
मरिकै बाँचि उठी फिरि बारी ५४

ग्रीसहु पुनि निज प्रानन पायो
हाय अकेली हमहिं बनायो
भग्न दंड कंपित कर धारी
कबलौं ठाढ़ी रहौं दुखारी ५५

भग्न सकल भूषन-तन साजी
दास जननि कहवैहों लाजी
मेरे भागन जो तन हारे
थाप्यो पद मम सीस उघारे ५६

इस प्रकार अपने पूर्व गौरव का स्मरण करके भारत माता राजकुमार से कहती है—

"आओ सुत मम हृदय लगि, सीतल करहु सरीर"

क्योंकि प्रायः सौ वर्षों तक यहाँ कोई राजा नहीं रहा, (कम्पनी का राज्य रहा), भारतवासी अकिंचन हो गए हैं, हिंदुओं की आशा क्षीण हो गई है। तुम अपने बल को भूल कर, स्नेह धारण कर, मेरे इन सुतों को गोद में ले लो। काला कह कर इन्हें तुच्छ न समझो, क्योकि—

इनहूँ कहँ जीवन देह दया
इनहूँ कहँ ज्ञान सनेह मया ६१
इनहूँ कहँ लाज तृषा समता
इनहूँ कहँ क्रोध क्षुधा समता
इनहूँ तन सोनित हाड़ तुचा
इनहूँ कहँ आखिर ईस रचा ६२

मैं तुम्हारी जननी (इंगलैंड) की दासी हूँ और यहाँ के निवासी उसी दासी के पुत्र हैं। हे कुँवर इन दासी पुत्रों का दुख दूर करो और इस दासी की सब आशा पूर्ण करो। इस देश के लोग इंगलैंड के खलासियों तक को भय से राजा मानते हैं।

सौदागर मेलुआ जहाजी
गोरा धरमपती जग काजी
सबहिं राज सम पूजन करहीं
सबके मुख देखत ही डरहीं ७०

उनके इस भय को दूर करो क्योंकि—

'राज भक्त भारत सम नाहीं'

यह भिक्षा माँग, राजकुमार को आशीर्वाद दे, भारत माता अंतर्धान हो जाती है।

इस रचना में भी राष्ट्रीय भावना सिसकियाँ ले रही है। इसमें भी राजभक्ति का ही स्वर प्रबल है, क्योंकि भारत माता भिक्षा माँगने के अतिरिक्त और कुछ कर धर सकने में असमर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'विषस्यविषमौषधम्' (१९३३) की रचना के पहले भारतेंदु बाबू की रचनाओं में राष्ट्रीयता का अत्यंत क्षीण स्रोत है। केवल 'प्रबोधिनी' एक ऐसी रचना है जो अपनी राष्ट्रीयता के लिए हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती है। वस्तुतः १९३७ के बाद भारतेंदु साहित्य में राष्ट्रीयता की धारा प्रबल वेग से प्रवाहित हुई है। इस हालत में बाबू श्यामसुंदरदास जी का आरोप निराधार है। भारतेंदु अभी तक राष्ट्रीयता के तुंग शिखर पर चढ़े ही नहीं थे, फिर नीचे गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता। हम १९३७ के पहले की किसी रचना में भारतेंदु बाबू को अँगरेजी राज्य की किसी प्रकार की शिकायत करते हुए नहीं पाते। वे अभी तक अँगरेजी राज्य को एक प्रकार का वरदान ही समझते आ रहे थे, हाँ, कर का दुःख उन्हें अवश्य था।

एक अन्य स्थान पर भारतेंदु की राष्ट्रीयता पर विचार करते हुए स्वयं डाक्टर श्यामसुंदर दास यह स्वीकार करते हैं कि हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रारंभ 'भारत दुर्दशा' के प्रकाशन से प्रारंभ हुआ—और भारत दुर्दशा का प्रकाशन १९३७ में हुआ, फिर न जाने कैसे 'विषस्यविषमौषधम्' पर वैसी राय उन्होंने दे दी। डाक्टर श्यामसुंदरदास जी लिखते हैं—

"हिंदी की ह्रासकारिणी श्रृंगारिक कविता के प्रतिकूल आंदोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिए जिस दिन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक के प्रारंभ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहाने को आमंत्रित किया था। इस देश और यहाँ के साहित्य के इतिहास में वह दिन किसी अन्य महापुरुष के जयंती-दिवस से किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है। उस दिन शताब्दियों से सोते हुए साहित्य ने जागने का उपक्रम किया था, उस दिन रूढ़ियों की अनिष्टकर परंपरा के विरुद्ध प्रबल क्रांति की घोषणा हुई थी, उस दिन छिन्न भिन्न देश को एक सूत्र में बाँधने की शुभ भावना का उदय हुआ था, उस दिन देश और जाति के प्राण एक सत्कवि ने सच्चे जातीय जीवन की झलक दिखाई थी और उसी दिन संकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियों का अंत करने के लिए स्वयं सरस्वती ने राष्ट्रभाषा के प्रतिनिधि कवि के कंठ में बैठकर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी। मुक्तकेशिनी शुभ्रवसना, परवश भारतमाता की करुणोज्वल छवि देश ने और देश के साहित्य ने उसी दिन देखी थी और उसी दिन सुनी थी टूटी फूटी श्रृंगारिक वीणा के बदले एक गंभीर झंकार, जिसे सुनते ही एक नवीन जीवन के उल्लास में वह नाच उठा था।"

—हिंदी साहित्य.

वस्तुतः प्रमाद से डाक्टर साहब ने 'विषस्यविषमौषधम्' को 'भारत दुर्दशा' की परवर्ती रचना मान लिया और शीघ्रता में वैसा मंतव्य दे गए। उनके इस मंतव्य पर श्री शिखरचंद जैन ने भी 'हिंदी नाट्य चिंतन' में विचार किया है। उनका कहना है कि—"विषस्यविषमौषधम्"''व्यंग्य से ओत प्रोत है × × अतएव जब तक हम उसकी आत्मा को—व्यंग्य को—न समझेंगे, हम लेखक के साथ न्याय नहीं कर सकते।" × × "अँगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै।" में भी व्यंग्य है"

निश्चय ही 'विषस्यविषमौषधम्' भाण है और व्यंग्य-प्रधान है; परंतु उक्त चरण भरत-वाक्य का है और भरत-वाक्य में नाटककार भँडैती नहीं करता;

वह उसकी सत्य-कामना होती है। १९३४ में लिखी हुई 'मनोमुकुल माला' में भी इसी प्रकार का भाव भारतेंदु ने प्रकट किया है—

भारत के एकत्र सब बीर सदा बल पीन
बीसहु बिस्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन

अस्तु, जैन जी का विचार समीचीन नहीं है। श्यामसुंदर दास जी ने अर्थ समझने में भूल नहीं की है, काल-क्रम का ध्यान उन्हें नहीं रहा है।

१९३७ के पश्चात् विशुद्ध राजभक्ति की केवल दो रचनाएँ है (१) जातीय संगीत, एवं (२) रिपनाष्टक। दो रचनाएँ और हैं जिनमें राजभक्ति और देश-भक्ति का अपूर्व सामंजस्य है—वे हैं (१) विजय वल्लरी (२) विजयिनी विजय वैजयन्ती। राजभक्ति की रक्षा करते हुए भी इन रचनाओं में भारतेन्दु बाबू श्रेष्ठ देशभक्त हैं। पहली कविता अँगरेजों के अफगान विजय पर एवं दूसरी अँगरेजों के मिश्र विजय पर लिखी गई थी। इन दोनों युद्धों में भारतीय सेना अँगरेज सेना-ध्यक्षों के आधिपत्य में लड़ने के लिए भेजी गई थी और विजयिनी हुई थी। इसलिए इन विजयों को भारतेन्दु बाबू भारत की विजय समझते थे। इतना ही नहीं; अफगानिस्तान के निवासी एवं मिश्रवासी सभी मुसलमान हैं, इसलिए वे इन विजयों को हिंदुओं की मुसलमानों पर विजय समझते थे। इन्हीं कारणों से इन रचनाओं में देशभक्ति की प्रधानता है।

विजय-वल्लरी.

भारत में अत्यन्त आनन्द मच रहा है। कवि को इस आनन्द का मूल कारण ज्ञात नहीं है। इसलिए वह पूछता है—

कहा भूमि कर उठि गयौ, कै टिकस भो माफ
जन साधारन कों भयो, किधौं सिविल पथ साफ ४
नाटक अरु उपदेश पुनि समाचार के पत्र
कारा मुक्त भए कहा जो अनंद अति अत्र ५
कै प्रतच्छ गो-बधन की जवनन छाँड़ी बानि
जो सब आर्य प्रसन्न अति मन महँ मंगल मानि ६

इन प्रश्नों से स्पष्ट सूचित होता है कि भूमिकर, राजकर, प्रेस-नियन्त्रण एवं गो-बध से भारतेन्दुजी को अत्यन्त कष्ट था।

दोहा ७ से २३ तक इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए किसी दूसरे से कह-लाया गया है कि यह प्रसन्नता काबुल विजय के कारण है। इसपर दोहा २४ से ४२ तक कवि स्वयं उत्तर देता है कि भारतवासी काबुल विजय से प्रसन्न नहीं हैं, क्योंकि—

काबुल सों इनको कहा हिये हरख की आस
ये तो निज धन-नास सों रन सों और उदास २६
ईति भीति दुष्काल सों पीड़ित, कर को सोग
ताहू पै धन नास को यह बिनु काज कुयोग २७
स्ट्रेची डिजरैली लिटन चितय नीति के जाल
फँसि भारत जरजर भयो काबुल-युद्ध अकाल २८
सुजस मिलै अँगरेज को, होय रूस की रोक
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य, पै हमको केवल सोक ३०
भारत राज मँझार जो कहुँ काबुल मिलि जाइ
जज्ज कलट्टर होइहैं हिन्दू नहिं तित धाइ ३१
ये तो केवल मरन हित, द्रव्य देन हित, हीन
तासों काबुल युद्ध सों ये जिय सदा मलीन ३२

इन दोहों में भारतेन्दु बाबू अत्यधिक स्पष्टवादी एवं खरी कहनेवाले हो गए हैं। वे यहां चिकनी-चुपड़ी नहीं कहते। हिंदुओं की प्रसन्नता का मूल कारण काबुल नहीं है, वरन धन-रक्षा है, क्योंकि—

खुलिहै 'लोन' न युद्ध बिना, लगिहै नहिं टिकस
रहिहै प्रजा अनन्द सहित बढ़िहै मंत्री जस
यहै सोचि आनन्द भरे भारतवासी जन
प्रमुदित इत उत फिरहिं आज रच्छित लखि निज धन

विजयिनी विजय पताका या वैजयंती

'विजयिनी' 'विक्टोरिया' का भारतेन्दु कृत हिन्दी रूपान्तर है। इसमें उसी विक्टोरिया की मिश्र विजय का वर्णन है।

इस रचना का प्रारम्भ भी 'विजय-वल्लरी' के प्रारम्भ सा ही है। भारत में जय जयकार का शब्द हो रहा है, पर कवि को इस आमोद-प्रमोद के कारण का कुछ ज्ञान नहीं। कोई उत्तर देता है—क्या तुमको पता नहीं कि आज तड़ित तार के द्वारा समाचार मिला है कि भारतीय सेना ने मिश्र में महान संग्राम किया है और शत्रुओं को भगाकर अरबी पाशा को कैद कर लिया है। क्या तुम्हें पता नहीं आज पुनः एक बार भारतवासियों ने आर्यों का नाम रख लिया है और सम्पूर्ण संसार में पुनः भारत का शीश समुन्नत किया है। फिर अनेक भारतीय वीरों को संबोधित कर कहा गया है कि वे आकर अपनी संतान का उत्साह देखें जो स्वामिभक्ति एवं कृतज्ञता दिखलाने के लिए सुसज्जित हो मृत्यु का आलिंगन करने को कटिबद्ध हैं। यह संबोधन सुन, एक काल्पनिक भव्य

पुरुष सामने आता है। इस पुरुष का दिव्य-रूप-वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। प्रतीत होता है मानो परशुराम या द्रोणाचार्य ही उतर आए हों। वह पुरुष आकाश में खड़ा हो, मेघ-सम वाणी में करुण एवं वीर मिश्रित स्वर से कहने लगता है—

क्यों बहरावत झूठ मोहिं, और बढ़ावत सोग
अब भारत में नाहिं वे, रहे वीर जे लोग ३४
जो भारत जग मैं रह्यो, सब सों उत्तम देस
ताही भारत में रह्यो, अब नहिं सुख को लेस ३५
याही भुवि में होत हैं, हीरक आम कपास
इतही हिमगिरि, गंगजल, काव्य गीत परकास ३६
याही भारत देश में, रहे कृष्ण मुनि व्यास
जिनके भारत गान सों, भारत बदन प्रकास ३७
जासु काव्य सों जगत मधि, ऊँचो भारत सीस
जासु राज बल धर्म की, तृषा करहिं अवनीस ३८
सोई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान
अब लौं ये भारत भरे, नाहिं गुन-रूप-समान ३९
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन, कोटि कोटि नृप सूर
कोटि कोटि बुध, मधुर कवि, मिले यहाँ की धूर ४०

एक ओर तो गत गौरव का वह चित्र है। उसी के आगे भारत की वर्तमान दुर्दशा पर वही भव्य पुरुष चार आँसू बहाता है—

हाय वहै भारत भुवि भारी
सबही विधि ते भई दुखारी

उसे यह अच्छा लगता है कि रोम ग्रीस मर गए, मर गए; वे अपनी दुर्दशा देखने को तो नहीं रह गए, पर कलंकित भारत अब भी शेष है, और वीर विहीन हो गया है—

हाय पंचनद, हा पानीपत
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत
हाय चितौर निलज तू भारी
अजहुँ खरो भारतहिं मँझारी ४६
जा दिन तुव अधिकार नसायो
ताही दिन किन धरनि समायो
रह्यो कलंक न भारत नामा
क्यों रे तू बारानास धामा ४७

इनके भय कंपत संसारा
सब जग इनको तेज पसारा
इनके तनिकहिं भौंह हिलाए
थरथर कंपत नृप भय पाए ४८

× × ×

सोई भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी
रह्यो न एकहु बीर सहस्रन कोस मँझारी ५५

फिर वह वीर भारतीयों को प्रोत्साहित करता है—(छन्द ५९ से ७१ तक)। यह प्रोत्साहन पाकर भारतीय सेना उठती है और अविलंब मिस्र पर विजय प्राप्त कर लेती है। इसी कविता में छन्द ८३ से ९२ तक अंग्रेजों की विभिन्न विजयों का, भारत विजय का भी, वर्णन है। इस वर्णन के अन्त में कहा गया है—

ताके आगे कहा मिसिर का अरबी को बल
इनसों सपनहु बैर किए, पावै परतछ फल ९३
बज्यो बृटिश डंका गहकि धुनि छाई चहुँ ओर
जयति राजराजेश्वरी कियो सबनि मिलि सोर ९४

१९३७ से ही भारतेन्दु बाबू ने ऐसी रचनाएँ भी प्रस्तुत करनी प्रारम्भ कीं जो पूर्णरूपेण राष्ट्रीय हैं, जिनमें राजभक्ति का छुवावा भी नहीं है। उनके राष्ट्रीय नाटक एवं उनकी राष्ट्रीय होलियाँ एवं कजलियाँ भी इसी समय लिखी गईं।

भारतेंदु और मुसलमान

भारतेंदु बाबू उस अर्थ में राष्ट्रीय कवि नहीं हैं जिस अर्थ में हम राष्ट्रीयता का प्रयोग आजकल करते हैं। भारतेंदु की राष्ट्रीयता, भूषण की राष्ट्रीयता थी, हिंदू राष्ट्रीयता थी। समष्टिरूप से मुसलमानों के लिए उसमें कोई स्थान नहीं। विजयिनी विजय बैजयंती में पुराने वीरों को संबोधन कर वे कहते हैं—

मेटहु जिय के सल्य सब, सफल करहु निज नैन
लखहु न अरबी सों लरन, ठाढ़ी आरज सैन

रोम नष्ट हो गया। वर्बरों ने उसपर विजय प्राप्त की, पर वहाँ बसे नहीं। इसलिए भारत-वृद्ध-पुरुष कहता है—

हाय रोम तू अति बड़ भागी
कछु न बची तुव भूमि निसानी
सो बस मेरे मन अति मानी

उसके हृदय में यह अत्यत खटकता है कि मुसल्मान विजेता यहाँ बस गए, दुर्गों को तोड़ा, महलों को ढाया, मंदिरो को भूमिसात किया और उन्हीं में फिर अपना घर बनाया। फिर अंत मे वह वृद्ध पुरुष आकुल हो कहता है—ऐसा अब कोई नहीं रह गया जो—

यवन-हृदय-पत्र पर बरबस
लिखै लोह-लेखनि भारत जस

यवन गो-वध करते थे, इसलिए परम वैष्णव भारतेंदु जी उन्हें कभी भी क्षमा नही कर सकते थे। 'विजय-वल्लरी' में भारत के आनंद का कारण पूछते हुए वे कहते हैं—

कै प्रतच्छ गो-बधन की, जवनन छॉड़ी बानि
जो सब आर्य प्रसन्न अति, मन महँ मंगल मानि

'नीलदेवी' तो मुसल्मानों के प्रति एक अत्यंत प्रबल एवं प्रत्यक्ष विरोधी स्वर है—

आर्य बंश को बधन पुन्य जा अधम धर्म में
गो भक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म में
तिनको तुरतहि हतौ मिलैं रन के घर माहीं
इन दुष्टन सों पाप कियेहूँ पुन्य सदाहीं
चिउटिहुँ पद तल दवे डसत है तुच्छ जंतु इक
ये प्रतच्छ अरि, इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर

भारतेंदु जी को अत्यन्त दुःख था—

(१) जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर
तहँ मसजिद बनि गईं होत अब अल्ला अकबर

—प्रबोधिनी

(२) मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग, परे हिये (जो) घाव

—राजकुमार शुभागमन वर्णन

'प्रबोधिनी' में भगवान को जगाते हुए वे कहते हैं—

'जागो बलि बेगहि नाथ अब, देहु दीन हिंदुन सरन'

भारतेंदु बाबू ने राष्ट्रीयता का प्रचार जन साधारण मे करने के उद्देश से कुछ कजलियाँ एवं होलियाँ भी लिखीं। जयचंद पर उन्हें बड़ी खीझ है—

काहे तू चौका लगाए जयचँदवा
अपने स्वारथ भूलि लुभाए, काहे चोटीकटवा बुलाए जयचँदवा
अपने हाथ से अपने कुल कै, काहे तैं जड़वा कटाए जयचँदवा

फूट के फल सब भारत बोए, बैरी की राह खुलाए जयचँदवा
और नासि तैं आपो बिलाने निज मुँह कजरी पुताय जयचँदवा

भारतेंदु को सभी मुसलमानों से चिढ़ नहीं थी। व्यक्तिगत रूप से वे अकबर को कुछ भला समझते थे। उसे वे भोज विक्रम की कोटि में रखते हैं—

(१) जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदास हू नाहिं
—राजकुमार शुभागमन वर्णन

(२) जदपि जवन गन राज कियो इतही बसिकै सह साज
पै तिनको निज करि नहिं जान्यो कबहूँ हिंदु समाज
अकबर करिकै बुद्धिमता कछु सो मेट्यो संदेह
सोउ दारा सिकोह लौं निबही औरँग डारी खेह

हाँ, भक्ति के क्षेत्र में वैष्णव मुसलमानों को देखकर वे उन पर कोटियों हिन्दुओं को वारने के लिए तत्पर हैं—

अलीखान पाठान सुता-सह ब्रज रखवारे
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि प्यारे
बिरमकदास कबीर ताज खाँ बेगम बारी
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति दुलारी
मिरजादी बीबी रास्ती, पद-रज नित सिर धारियै
इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिंदुन वारियै
—उत्तरार्द्ध भक्तमाल ८१.

इसके अतिरिक्त उन्होंने 'पंच पवित्रात्मा' नामक निज इतिहास-ग्रंथ में इसलाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद, उनके दामाद अली, उनकी बेटी बीबी फातमा और उनके नाती इमाम हसन और इमाम हुसेन की जीवनियाँ लिखी हैं। इससे सिद्ध है कि भारतेंदु इन्हें अत्यंत उच्च समझते थे।

अस्तु, भारतेंदुजी की राष्ट्रीयता हिंदू राष्ट्रीयता थी। सामूहिक रूप से वे मुसल्मानों से घृणा करते थे, पर व्यक्तिगत गुणों के कारण मुसलमान भी उनकी निगाह में पूज्य था। समय को देखते हुए यही राष्ट्रीयता बहुत थी। इसी राष्ट्रीयता का विकसित रूप बरसों बाद 'भारत भारती' में दिखलाई पड़ा। आधुनिक राष्ट्रीयता तो 'भारत-भारती' के भी बाद की वस्तु है; वह गाँधीवाद की देन है। उसको भारतेंदु-साहित्य में ढूँढ़ना भारतेंदु के साथ अन्याय करना होगा।

अतीत पर गर्व

भारतेंदु बाबू को भारत के स्वर्ण अतीत पर अतीव गर्व है। स्थान स्थान पर उस अतीत की याद उन्हें आती है जो लौटकर फिर आनेवाला नहीं।

अतीत गौरव का सर्वश्रेष्ठ गान 'विजयिनी विजय वैजयंती' में है, प्रबोधिनी, भारत भिक्षा, भाररतवीरत्व, राजकुमार शुभागमन वर्णन, सभी रचनाओं में अतीत के प्रति मोह प्रकट किया गया है।

कहँ गए बिक्रम भोज राम वलि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर
कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गए कितै गिर
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर
कहँ दुर्ग-सैन-धन-बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग
जागो अब तौ खल-बल दलन, रक्षहु अपुनो आर्य मग
—प्रबोधिनी, छंद १२.

वर्तमान पर क्षोभ

अतीत पर गौरवान्वित होने के साथ साथ वर्तमान दुर्दशा पर शोक प्रकट करना भी भारतेंदु की राष्ट्रीयता का अंग है। जब भी वे अतीत पर गौरव प्रकट करते हैं, उनकी दृष्टि वर्तमान दुरवस्था पर भी अवश्य पड़ जाती है और उनका कलेजा दो टूक हो जाता है, और निराशा का एक वातावरण-सा बन जाता है। 'भारत दुर्दशा' एवं 'नीलदेवी' में निराशा का यह वातावरण इतना घना हो गया है कि कवि को इन रचनाओं के अंत में भरत वाक्य देने का साहस तक नहीं हुआ।

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा
अब तजहु वीरवर भारत को सब आसा
—नीलदेवी

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई
—भारत दुर्दशा

ये दोनों लावनियाँ निराशा का मूर्तिमान रूप हैं।
भारतवर्ष के ऊपर कालिमा छा गई है—

देखो भारत ऊपर कैसी छाई कजरी
मिटी धूर में सपेदी, सब आई कजरी
दुज वेद की रिचन छोड़ि, गाई कजरी
नृपगन लाज छोड़ि, मुँह लाई कजरी
—वर्षा विनोद ४५.

एक तो भारत के रंग ढंग एक नहीं, दूसरे फाँकेमस्त लोग घर फूँककर होली खेल रहे हैं—

जुरि आए फाँकेमस्त होली होय रही

—मधुमुकुल ९.

फिर भारत की उन्नति हो तो कैसे हो। भारत के भाग्य और दुर्भाग्य दोनों साथ साथ होली खेल रहे हैं—

भारत में मची है होरी
इक ओर भाग, अभाग एक दिसि, होय रही झकझोरी
अपनी अपनी जय सब चाहत, होड़ परी दुहुँ ओरी
दुंद सखि बहुत बढ़ो री

—मधुमुकुल ४७.

भारतेंदु बाबू ने भारत की इस दुर्दशा के कई कारण दिए हैं। पहले तो भारत के तत्कालीन लोगों का दुरंगापन और एकता का अभाव। सब अपने अपने में मस्त—अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग। दूसरे राजा का विधर्मी एवं विदेशी होना—

भीतर स्याहा बाहर सादे
राज करहिं अमले अरु प्यादे
अंधाधुंध मच्यो सब देसा
मानहु राजा रहत बिदेसा
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई
मानहु नृपति विधर्मी कोई

—अंधेर नगरी

भारत की उन्नति के लिए भारतेंदु बाबू ने स्थान स्थान पर एकता पर अत्यधिक बल दिया है—

(१) इनसों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि वुधि बल हीन
बिना एकता बुद्धि कला के भए सबहि बिधि दीन

—भारत दुर्दशा

(२) खान-पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछू चलो री
आलस छोड़ि एक मत ह्वैकै साँची बुद्धि करो री
समय नहिं नेकु बचो री

—मधु मुकुल ४७.

(३) जब हम सब मिलि एक मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम
फेरि दीजियो तब हमैं दै कछु और इनाम
—मुँह दिखावनी

हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान देते हुए वे कहते हैं—

फूट वैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत
भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत ८१.

भगवत्प्रार्थना

भारतेंदु बाबू परम भक्त थे इसलिए भारत की उन्नति के लिए जब जब वे आकुल हुए, उन्होंने उस करुणा वरुणालय का पल्ला पकड़ा। ऐसी कुछ रचनाएँ 'भारत दुर्दशा' एवं 'नीलदेवी' में हैं। 'प्रबोधिनी' में तो परमात्मा के जगाने का यही उद्देश्य है कि वे भारत की दुर्दशा पर द्रवित होकर उसे उन्नत करें—

कहाँ करुनानिधि केसव सोए
जागत नेक न यदपि बहुत बिधि भारतवासी रोए
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए
इतके पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए

× × ×

दुष्ट जवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं
एक एक दिन सहस-सहस नर-सीस काटि भुव पाटैं
ह्वै अनाथ आरत कुल बिधवा बिलपहिं दीन दुखारी
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी

× × ×

हाय सुनत नहिं, निठुर भए क्यों, परम दयाल कहाई
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहिं, लेहु न अबहुँ बचाई
—नीलदेवी

'भारत दुर्दशा' में भारत कहता है—

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ
बीस कोटि सुत होत, फिरत मैं हाहा होय अनाथ
जाकी सरन गहत सोइ मारत, सुनत न कोउ दुखगाथ
दीन बन्यौ इत सों उत डोलत, टकरावत निज माथ
दिन दिन बिपति बढ़त, सुख छीजत, देत कोऊ नहिं साथ
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत, धाइ उबारौ नाथ

मंगलाशा

अतीत पर गर्व एवं वर्तमान पर क्षोभ प्रकट कर लेने के अनंतर कवि भविष्य के लिए मंगलाशा भी करता है—

सब देसन की कला सिमिटिके इतही आवै
कर राजा नहिं लेइ, प्रजन पै हेत बढ़ावै
गाय दूध बहु देहिं, तिनहिं कोऊ न नसावै
द्विज गन आस्तिक होइँ, मेघ सुभ जल बरसावै
तजि छुद्र वासना नर सबै, निज उछाह उन्नति करहिं
कहि कृष्ण राधिका नाथ जय, हमहूँ जिय आनँद भरहिं

—प्रबोधिनी-छंद २५

१७

समाज-सुधार

भारतेंदु युग में सामाजिक विचारों में क्रांति हो रही थी। लोगों के दो दल स्पष्ट ही दिखाई देते थे। एक दल में तो वे रूढ़िवादी थे जो समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए तत्पर न थे; दूसरे में वे क्रांतिवादी थे जो समाज में आमूल परिवर्तन कर देना चाहते थे। भारतेंदु स्वयं इन दोनों दलों में से किसी में नहीं थे। वे दोनों के बीच की कड़ी थे। वे आमूल परिवर्तन तो नहीं चाहते थे, परंतु आवश्यक सुधार करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर रहते थे। उस समय की दोरंगी परिस्थिति का उन्होंने इस प्रकार चित्रण किया है—

भारत में एहि समय भई है, सब कुछ बिनहिं प्रमान हो दुइरंगी
आधे पुराने पुरानहिं माने, आधे भए किरिस्तान हो दुइरंगी
क्या तो गदहा को चना चढ़ावैं, कि होइ दयानंद जायँ हो दुइरंगी
क्या तो पढ़ैं कैथी कोठिवालियै, कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइरंगी
एही से भारत नास भया सब, जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइरंगी
होइ एक मत भाई सबै अब, छोड़हु चाल कुचाल हो दुइरंगी

— वर्षा विनोद ४२.

'भारत दुर्दशा' से उस समय की सामाजिक परिस्थिति पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि भारतेंदु समाज में कौन-कौन सुधार आवश्यक समझते थे—

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए
जाति अनेकन करी, नीच अरु ऊँच बनायो
खानपान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो
जन्म पत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब
बालकपन में ब्याहि प्रीति बल नास कियो सब
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो
बिधवा ब्याह निषेध किए, बिभिचार प्रचारयो

रोकि बिलायत गमन, कूप मंडूक बनायो
औरन को संसर्ग छुड़ाइ, प्रचार घटायो

× × ×

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजन प्रीति छुड़ाय
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतेंदु हिंदू धर्म के अंतर्गत अनेक संप्रदायों को नहीं चाहते थे, जाति संबंधी ऊँच नीच की भावना उन्हें अप्रिय थी; भारत की एकता के लिए वे हिंदुओं में परस्पर खान पान को वांछनीय समझते थे; छुआछूत के भूत को वे भगाना चाहते थे; जन्म-पत्र मिला कर ही विवाह करने की प्रथा उनकी दृष्टि में दूषित थी; बाल विवाह एवं अनमेल विवाह के वे विरोधी थे; बहु-विवाह को वे देश की शक्ति के लिए हानिकारक समझते थे; देश में बढ़ते हुए व्यभिचार को दृष्टिकोण में रखते हुए वे विधवा-विवाह के समर्थक थे; समुद्र-यात्रा को वे कूपमंडूकता दूर करने के लिए एवं अन्य लोगों से साहचर्य बढ़ाने एवं उनमें अपना प्रचार करने के लिए आवश्यक समझते थे।

'सत्य हरिश्चंद्र' के भरतवाक्य से स्पष्ट है कि वे उपधर्मों के विरोधी तथा नारी-नर की समता के हामी थे—

उपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै, कर-दुख बहै
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होंहिं, सब जग सुख लहै

नारी-नर की समता के लिए वे स्त्री-शिक्षा को अत्यावश्यक समझते थे; फलतः उन्होंने अपनी कन्या को उचित शिक्षा दी भी थी।

भारत दुर्दशा में सत्यानाश फौजदार कहता है—

बहुत हमने फैलाए धर्म
बढ़ाया छुआछूत का कर्म

मद्यपान-निषेध पर भी भारतेंदु ने 'भारत-दुर्दशा' में बहुत कुछ संकेत किया है—

सरकारहि मंजूर जो मेरो होत उपाय
तो सबसों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय
हमहीं को या राजकी परम निसानी जान
कीर्ति-खंभ सी जग गड़ी, जबलौं थिर ससि भान

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में मदिरा पान और मांस भक्षण की कदर्थना की गई है। इन पर कशाघात करते हुए अंत में व्यंग्य रूप से कहा है—

यहि असार संसार में चार वस्तु है सार
जूआ मदिरा माँस अरु नारी-संग बिहार

चलते चलते द्यूत-क्रीड़ा पर भी एक कोड़ा लगा दिया गया है।

भारतेंदु लोक गीतों को समाज सुधार का एक सुंदर माध्यम समझते थे इसीलिए मई १८७९ ई० की 'कविवचनसुधा' में उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन छपवाया था—

जातीय संगीत

"भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गाँव गाँव में साधारण लोगों में प्रचार की जायँ। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सर्व दैशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों को संग्रह करूँ और उनको छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूँ। इस विषय में मैं, जिनको जिनको कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूँ कि वे लोग भी इस विषय पर गीत वा छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूँगा और सब लोग अपनी अपनी मंडली में गाने वालों को यह पुस्तकें दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करें कि जो गुणी इन गीतों को गावैगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उनका ऐसे गीतों के गाने को अभिनंदन किया जाय। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जायँ या उनका मूल्य अति स्वल्प रक्खा जाय। जिन लोगों को ग्रामीणों से संबंध है वे गाँव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहाँ कहीं ऐसे गीत सुनैं उसका अभिनंदन करैं। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छोटे

छंदों में और साधारण भाषा में बनैं, बरंच गँवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कँहरवा, अद्धा, चैती, होली, साँझी, लंवे, लावनी, जाँते के गीत, बिरहा, चनैनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनैं। उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावैं, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करैं। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा मैं भी करूँगा। जो गीत मेरे पास आवैंगे उसको मैं यथाशक्ति प्रचार करूँगा। इससे सब लोगों से निवेदन है कि गीतादिक भेजकर मेरी इस विषय में सहायता करैं। और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इसका प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में अनुमति प्रकाश करके अनुगृहीत करैंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इनमें और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लोग लिखैं। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गँवारों को अच्छी लगें होनी चाहिएँ और श्रृंगार हास्य आदि रस इसमें मिले रहैं जिसमें इनका प्रचार सहज में हो जाय।"

बाल्य विवाह, जन्मपत्री की विधि, बालकों की शिक्षा, बालकों से बर्त्ताव, अँगरेजी फैशन, स्वधर्म चिंता, भ्रूण हत्या और शिशुहत्या, फूट और बैर, मैत्री और ऐक्य, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, योग्यता, पूर्वज आर्यों की स्तुति, जन्मभूमि, आलस्य और संतोष, व्यापार की उन्नति, नशा, अदालत, हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना, भारत के दुर्भाग्य का वर्णन आदि विषयों की सूची उक्त विज्ञापन के अंत में दी गई है।

अर्थ-नीति

भारतेंदु बाबू ने अपने लघु जीवन में पर्याप्त भ्रमण किया था और भारत की आर्थिक दुरवस्था से वे पूर्ण परिचित थे। उनकी समझ से भारत की निर्धनता का मूल कारण है उसके धन का उठकर बिलायत चला जाना। इसी लिए वे कहते हैं—

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी

—भारत दुर्दशा

यह धन विदेशों में कई रूपों से जा रहा है। इन रूपों में सबसे पहला रूप, जिसने भारतेंदु का ध्यान आकर्षित किया, 'कर' है, अँगरेजी राज्य में भारतवर्ष पर जो तरह तरह के टैक्स लगे, भारतेंदु बाबू को उनसे बड़ा कष्ट था। इस कर के दुख को उन्होंने अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से कहा है—

(१) खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं
छुटैं राज कर, मेघ समय पै जल बरसावैं

—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, (भरत वाक्य), १९३०.

(२) पंडित गन पर-कृति लखि कै मति दोष लगावैं
छुटै राजकर, मेघ समय पै जल बरसावैं

—धनंजय विजय, (भरत वाक्य), १९३०.

(३) सब देसन की कला सिमिटि कै इतही आवै
कर राजा नहिं लेइ, प्रजन पै हेत बढ़ावै

—प्रबोधिनी, १९३१.

(४) खल गनन सों सज्जन दुखी मत होइँ हरि पद रति रहै
अपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै

—सत्य हरिश्चंद्र, (भरत वाक्य), १९३२.

भारत दुर्दैव कहता है कि मैं सबपर टैक्स लगाकर बरबाद कर सकता हूँ—

(५) मरी बुलाऊँ, देस उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न

—भारत दुर्दशा, १९३७.

'अंधेर नगरी' में चनेवाला कहता है—

(६) चना हाकिम लोग जो खाते
सब पर दूना टिकस लगाते

—अंधेर नगरी १९३८.

इसके अतिरिक्त 'मुशायरा' में इस कर का दुखद संकेत भारतेंदु बाबू ने छह बार किया है—

(१) तेहपर टिकस बँधा है कि भैया जो है सो है
(२) भूँजी भाँग नहीं घर भीतर, का पहिरी, का खाई
टिकस पिया मोरी लाज को रखल्यौ, ऐसो वनो न कसाई
(३) कर जोरत हौं, बिनती करत हौं, छाँड़ौ टिकस कन्हाई
आग लगो ऐसी फाग के ऊपर, भूखन जान गँवाई
(४) सबके उप्पर लगा टिकस, कि उड़ा होस मोरा
रोवैं के चहिए, हँसी ठीठी ठठाना कैसा
(५) आके हम लोगों से माँगैं न टिकस ओटेमल
रखदूँ धुन के उन्हें, बनियों पै फकत सान जे हैं
(६) नाम सुनते ही टिकस का, आह करके मर गए
जान ली कानून ने, बस मौत का हीला हुआ

करों के विरोध में भारतेंदु ने अपनी कविता के द्वारा ही योग नहीं दिया, उन्होंने उसका क्रियात्मक विरोध भी किया। जब पहले पहल इनकम टैक्स लगा था, उसी समय इस प्रांत के लाट काशी आए। उनके स्वागत में गंगा-तट पर रोशनी हुई थी। भारतेंदु बाबू ने एक नाव पर 'ओह टैक्स' और दूसरी पर निम्नलिखित दोहा रोशनी में लिखवाया था—

स्वागत स्वागत धन्य प्रभु, श्री सर विलियम म्योर
टिकस छोड़ावहु सबन को, बिनय करत कर जोर

इसके उपरांत टैक्स उठ गया था। लोग कहते हैं यह उन्हीं के प्रयत्न का फल था।

भारतेंदु बाबू देखते थे कि लोग विदेशी वस्तुओं के शौकीन हो गए हैं। उनके बिना उनका काम नहीं चलता। फलतः विदेशी व्यापार बढ़ रहा है और स्वदेशी-व्यापार निरंतर अवनत होता जा रहा है। विदेशी वस्तुओं का उपयोग करके भी लोग भारत का धन विदेशों को भेजे दे रहे हैं। इसका उन्हें अत्यंत खेद था।

मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम
परदेशी जुलहान के मानहुँ भए गुलाम ५८
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि
आवत सब परदेश सों नितहि जहाजन लादि ५९

—हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

भारतेंदु चाहते थे लोग कला सीखें, कलों को यहीं पर स्थापित करें, जिससे यहाँ का कच्चा माल यहीं पर उपयोगी वस्तुओं के रूप में परिणत किया जा सके और उसे विदेशों में न भेजना पड़े। भारतेंदु भारत के औद्योगीकरण के पक्षपाती थे—

कल के कल बल छलन सों, छले इतै के लोग
नित नित धन सों घटत हैं, बाढ़त है दुख सोग ५७
इत की रुई सींग अरु, चरमहि तित लै जाय
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु, भेजत इतहि बनाय ६०
तिनहीं को हम पाइकै, साजत निज आमोद
तिन बिन छिन तृन सकल सुख, स्वाद विनोद प्रमोद ६१
निरधन दिन दिन होत है, भारत भुव सब भाँति
ताहि बचाइ न कोउ सकत, निज भुज-बुधि-बल कांति ६२

—हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

भारतीयों की आलस्यपरता पर एक चुभती हुई फब्ती उन्होंने यों कसी है—

दुनियाँ में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा

\+ \+ \+

फाकों से मरिए, पर न कोई काम कीजिए
दुनियाँ नहीं अच्छी है, जमाना नहीं अच्छा

\+ \+ \+

मिल जाय हिंद खाक में, हम काहिलों को क्या
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा

कांग्रेस के जन्म के पहले से भारतेंदु स्वदेशी वस्तुओं के प्रेमी थे और वे आमरण स्वदेशी वस्त्रों एवं वस्तुओं का उपयोग करते रहे। स्वदेशी के प्रचार के लिए भी वे भगवान को बुलाना और जगाना चाहते हैं—

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवत केवल
पसु समान सब अन्न खात, पीअत गंगा-जल
धन बिदेस चलि जात, तऊ जिय होत न चंचल
जड़ समान ह्वै रहत, अकिल हत, रचि न सकत कल
जीवत बिदेस की बस्तु लै, ता बिनु कछु नहिं करि सकत
जागो जागो अब साँवरे, सब कोउ रुख तुमरो तकत

—प्रबोधिनी, छंद २२.

भारतीयों को उद्‌बुद्ध करते हुए वे कहते हैं—

परदेसी की बुद्धि अरु बस्तुन की करि आस
पर-बस ह्वै कब लौं कहौ, रहिहौ तुम ह्वै दास ९३

—हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान.

अकाल और महँगी तो भारत को चौपट किए ही दे रहे हैं—उसकी निर्धनता के अन्य कारण कर और विदेशी वस्तुओं का उपयोग हैं। भारतेंदु भारत को धन धान्य से समृद्ध देखना चाहते थे। इसीलिए वे औद्योगीकरण की नीति के पक्षपाती थे। उनकी दृष्टि में भारत की आर्थिक स्वाधीनता अवश्य ही थी; भले ही राजनीतिक स्वाधीनता की भावना उनमें न जगी रही हो। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बंग-भंग आन्दोलन के साथ स्वदेशी की लहर भारत में फैली। भारतेंदु ने इस लहर को प्रायः तीस वर्ष और पहले फैलाने का प्रयत्न किया था—यह देखकर हमें आश्चर्य होता है।

१९

भाषा-प्रेम

भारतेंदु युग के कवियों का भाषा प्रेम अत्यंत बढ़ाचढ़ा था। उन्होंने अपने इस भाषा प्रेम को प्रत्यक्ष तो दिखलाया ही है, इस प्रेम की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी कविताओं में भी की है। इस पथ का श्रीगणेश भारतेंदु बाबू ने किया, फिर उनका अनुकरण, अनुसरण सर्वश्री प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र एवं बाल मुकुंद गुप्त आदि सुकवियों ने भी किया। इन सब की हिंदी-प्रेम संबंधी कविताएँ पाई जाती हैं।

भारतेंदु ने हिंदी के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था। उन्हें हिंदी की तत्कालीन दुर्दशा पर अत्यंत क्षोभ था। अपने क्षोभ की अभिव्यक्ति वे 'ग्रीषमै प्यारे हिमंत बनाइए' नामक समस्या की एक पूर्ति में इस प्रकार करते हैं—

भोज मरे अरु बिक्रमहू, किनको अब रोइ कै काव्य सुनाइए
भाषा भई उरदू जग की, अब तो इन ग्रंथन नीर डुबाइए
राजा भए सब स्वारथ पीन, अमीरहू हीन, किन्हैं दरसाइए
नाहक देनी समस्या अबै यह, 'ग्रीषमै प्यारे हिमंत बनाइए'

—भारतेंदु ग्रंथावली पृष्ठ ८६६, छंद ५.

जब फ़ारसी का कचहरियों से उठान हुआ, उस समय वहाँ के लोगों की स्थानीय भाषाएँ उक्त पद पर प्रतिष्ठित की गईं। परतु हिंदी वालों का कुछ ऐसा दुर्भाग्य था कि हिंदी अपने अधिकार से वंचित कर दी गई और उसके स्थान पर उर्दू को सम्मानित किया गया। उर्दू न राजा की भाषा थी, न प्रजा की; फिर भी कुछ लोगों के प्रयास से वह राजरानी हुई। हिंदी वालों ने निरंतर प्रयास जारी रखा—परंतु कुछ फल न निकला। बोर्ड आफ रेवन्यू ने बार बार आदेश दिया कि सारी कारवाई ऐसी "भाषा में लिखी जाय जैसी कि एक कुलीन हिंदुस्तानी फ़ारसी से पूर्णतया वंचित रहने पर भी बोलता हो;" परंतु उसका असर कभी भी न हुआ। भारतेंदु-युग में श्री राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के प्रयत्नों से हिंदी को शिक्षा-विभाग में स्थान मिला। इस पर भी उर्दू वालों ने बड़ा ही हल्ला मचाया। इस पर मज़ाक पसंद भारतेंदु बाबू ने 'उर्दू का

स्यापा' नाम का एक छोटा-सा गद्य-पद्य मिश्रित लेख 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के जून १८७४ ई० (सं० १९३१) के अंक में लिखा था। उस युग के कवियों ने उर्दू बीबी का जो मज़ाक उड़ाया है, वह भी उनके हिंदी प्रेम का ही सूचक है। वस्तुतः उर्दू ने हिंदी का बड़ा अहित किया था, इसलिए उसका मखौल उड़ाना, उसके दोषों को प्रत्यक्ष दिखलाना और हिंदी के गुणों को प्रकट करना हिंदी-प्रेमियों का कर्तव्य-सा था।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का अनन्य हिन्दी प्रेम उनके 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' से प्रकट होता है। उन्होंने ज्येष्ठ सं० १९३४ में प्रयाग की 'हिन्दी वर्द्धिनी सभा में, यह व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यान में ९८ दोहे हैं। सबका निचोड़ है—

> निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
> बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ५

अपनी भाषा न पढ़कर, यदि हम केवल संस्कृत, फ़ारसी या अंग्रेजी पढ़ते हैं, तो हमारा काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता। बाहरी काम-काज के लिए ये भाषाएँ आवश्यक हैं, परंतु घरेलू-व्यवहार के लिए ये सर्वथा अक्षम हैं, क्योंकि हमारे स्त्री-पुत्र इन भाषाओं को नहीं जानते। उनकी तो अपनी मातृभाषा हिंदी तक ही गति हैं। सर्वांगीण उन्नति करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा घर पहले उन्नत हो; हमारा घर तब तक उन्नत नहीं हो सकता जब तक हम मातृभाषा का अध्ययन न करें। बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व भी अधिकांश में माता पर होता है, वह भी प्रायः मातृभाषा ही जानती है। हम अनेक भाषाएँ भले ही पढ़ लें, परंतु हमारा सारा चिंतन-कार्य अपनी ही भाषा में होता है—

> पढ़े संस्कृत जतन करि, पंडित भे विख्यात
> पै निज भाषा ज्ञान बिन, कहि न सकत एक बात ६
>
> पढ़े फारसी बहुत बिधि, तौहू भए खराब
> पानी खटिया तर रहो, पूत मरे बकि आब ७
>
> अंग्रेजी पढ़िके जदपि, सब गुन होत प्रवीन
> पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन ८
>
> यह सब भाषा काम की, जब लौं बाहर बास
> घर भीतर नहिं कर सकत, इनसों बुद्धि प्रकास ९

नारि पुत्र नहिं समझहीं, कछु इन आपन माहिं
तासों इन आपान सों काम चलत कछु नाहिं १०
उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय

× × ×

लाल पुत्र करि चूमि मुख. बिबिधि प्रकार खेलाइ
माता सब कछु पुत्र को, सहजहिं सकत सिखाइ २०
सो माता हिन्दी बिना, कछु नहिं जानत और
तासों निज भाषा अहै, सबहीं को सिरमौर २१
पढ़े लिखे कोउ लाख बिधि, भाषा बहुत प्रकार
पै जबही कछु सोचिहो, निज भाषा अनुसार २२

हिंदी पढ़ने के लिए इतने तर्क दे लेने के पश्चात् भारतेंदु बाबू कहते हैं कि अँगरेजी अत्यंत समृद्ध भाषा है—उसकी समृद्धि का कारण है अनुवाद। अँगरेज सब जगह से अपने काम की सामग्री का ग्रहण अनुवाद द्वारा करते हैं। हमें भी अंग्रेजों की ही भाँति अपनी हिन्दी को समृद्ध करना चाहिये—

बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहु, भाषा माहिं प्रचार ३८

भारतेंदु चाहते हैं कि हम संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी में करें क्योंकि वह हमारी धर्म-भाषा है और सबलोग संस्कृत के पंडित नहीं हैं। धार्मिक बातों की जानकारी के लिए संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद अत्यंत आवश्यक है।

सौंप्यौ ब्राह्मन को धरम, तेई जानत वेद
तासों निज मत को लख्यो, कोऊ कबहुँ न भेद ४५
तिन जो भाष्यो सोइ कियो, अनुचित जदपि लखात
सपनहुँ नहिं जानी कछू अपने मत की बात ४६

शिष्टाचार जानने के लिए फ़ारसी ग्रंथों का अनुवाद आवश्यक है—

बैठनि बोलनि उठनि पुनि हँसनि मिलनि बतरान
बिन पारसी न आवही यह जिय निश्चय जान ४९

आधुनिक विद्याओं का भण्डार अंग्रेजी में है, अतः अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद अत्यावश्यक है—

करत बहुत बिधि चतुराई, तऊ न कछू लखात
नहिं कछु जानत तार में, खबर कौन बिधि जात ५१

रेल चलत केहि भाँति सों, कल है काको नाँव
तोप चलावत किमि सबै, जारि सकत जो गाँव ५२
वस्त्र बनत केहि भाँति सों, कागज केहि विधि होत
काहि कवाइद कहत हैं, बाँधत किमि जल-सोत ५३
उतरत फोटोग्राफ किमि, छिन महँ छाया रूप
होय मनुष्यहि क्यों भए, हम गुलाम, ये भूप ५४
यह सब अँगरेजी पढ़े बिनु नहिं जान्यो जात
तासों याको भेद नहिं साधारनहिं लखात ५५
पै सब विद्या की कहूँ, होइ जुपै अनुवाद
निज भाषा महँ तो सबै, याको लहैं सवाद ६८

भारतेंदु चाहते हैं कि हमारी भाषा का प्रचार एवं प्रसार होना चाहिए—

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जत्न
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ७४
भाषा सोधहु आपनी, होइ सबै एकत्र
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र ७५
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल
निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जो सबको मूल ९७

आज हिन्दी की जो यह चतुर्मुखी उन्नति हो रही है, हिन्दी जो अपने पद पर प्रतिष्ठित की जा रही है—इसका बहुत कुछ श्रेय भारतेंदु के हिंदी प्रेम को अवश्य ही दिया जायगा।

२०

परिहास काव्य

भारतेंदु के पहले हिन्दी में परिहास काव्य की अत्यंत छीछालेदर थी। साहित्याचार्य लोग मानते थे कि हास्य भी नव रसों में से एक है, परंतु वे केवल श्रृंगार रस का पूर्ण विवेचन करते थे और रसों को, इसलिए हास्य को भी, यों ही चलता कर देते थे। एक दोहे में हास्य रस का लक्षण लिखा और एक कवित्त या सवैया उदाहरण स्वरूप दे दिया। यह उदाहरण भी ऐसा वैसा जिसमें हास्य का परिपाक हुआ ही न हो। हमें उसे इसलिए हास्य मानना पड़ता है क्योंकि कवि उसे हास्य रस का उदाहरण मानता है और उसमें हास का नाम आ गया है, यद्यपि रस शास्त्र की दृष्टि से नाम का आ जाना 'स्वशब्दवाच्यत्व' दोष है, यथा—

'हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में'

—पद्माकर

रीतिकालीन कवि आचार्यों ने रीति शास्त्र के जो ग्रन्थ लिखे, उनमें इस प्रकार के घटिया दर्जे के कुछ उदाहरण, सो भी यत्र तत्र, मिल जाते हैं। रीतिकालीन कवि आचार्यों के अतिरिक्त, प्रारम्भ ही में तुलसी के रामचरित मानस में नारद मोह का परिहास पूर्ण प्रसंग है। इसके सिवा कवितावली में भी एक सवैया है जिसमें कवि ने मुनियों के भोलेपन का मजाक उड़ाया है, क्योंकि वे सोचते हैं—'ह्वैहैं सिला सब चंदमुखी'। बड़े कवियों में केवल तुलसी ने इस ओर कुछ ध्यान दिया है। स्वतंत्र रूप से परिहास की सृष्टि करने वाले हिन्दी साहित्य में दो ही कवि हुए हैं एक तो श्रीयुत् अलीमुहिबखाँ जिन्होंने खटमल को आलंबन मानकर 'खटमल बाईसी' के अन्तर्गत २२ कवित्त लिखे हैं—यह रचना अच्छी हुई है, शुक्ल जी ने भी इसकी प्रशंसा की है; दूसरे कवि हैं बेनी, जिन्होंने हिन्दी को अत्यन्त सुन्दर भँड़ौवे दिए।

भारतेन्दु बाबू का जीवन ही परिहासमय था। वे स्वयं हँसते थे और दूसरों को हँसाने की सामग्री एकत्र कर देते थे। उनकी जिंदादिली की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने समकालीन संगी साथियों को ही नहीं हँसाया, हास्य रस की प्रभूत रचना वे हम लोगों के लिए भी छोड़ गए हैं। ये रचनाएँ

एकत्र नहीं हैं, यत्र तत्र विकीर्ण हैं। ये गद्य पद्य दोनों हैं। 'प्रहसन पंचक' और 'परिहासिनी' इनकी हास्य रस की स्वतन्त्र पुस्तकें हैं। इनकी परिहास-प्रियता का प्रमाण निम्नांकित घटना से लग जाता है। एक बार इनके साले बाबू चंदूलाल ने अपने पिता जी के श्राद्ध के अवसर पर कुछ गुलाबजामुनें भेजी। उनकी कालिमा पर मुग्ध होकर भारतेन्दु बाबू ने तत्क्षण कहा—

काजर सों काली, तेल चिक्कट सों मैली यह,
आबनूस हारयो छबि देखि आब ताब की
मरी मछरी सों बढ़ि मारे दुरगंध स्वान
माखी मेले गिद्ध काक हारे सड़े राव की
कीनाराम कीनी कम निरखि हैं जाकी ऐसी
गली सड़ी दाम बिना खरच खराब की
स्वर्गहू में पितर को नरक दिखावती है
लाला चंदूलाल जी की जामुन गुलाब की

भारतेंदु की सभी हास्य रचनाएँ १९३० के बाद की हैं। इसी समय के लगभग उनकी राष्ट्रीय भावना भी प्रचण्ड हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिहास और राष्ट्रीय भावना की प्रवृत्ति भारतेंदु में साथ साथ जगी। वस्तुतः उनका परिहास-काव्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही लिखा गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतेंदु की हास्य रस की रचनाओं को हम दो भागों में बांट सकते हैं। एक तो वे कविताएँ जो उनके काव्य ग्रंथों में बिखरी हुई हैं, दूसरी वे जो उनके नाटकों में हैं। पहले हम उनकी उन रचनाओं का एक एक करके विवेचन करेंगे जो काव्य-पुस्तकों में स्थान-स्थान पर गुंफित है—ऐसी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) उर्दू का स्यापा—सं० १९३१
(२) बंदर सभा एवं होली बंदर सभा—सं० १९३९
(३) समधिन मधुमास
(४) राम लीला के अन्तर्गत गारी—सं० १९३६
(५) नए जमाने की मुकरी—सं० १९४१
(६) 'परिहासिनी' के अन्तर्गत मुशायरा

उर्दू का स्यापा

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द प्रान्तीय शिक्षा विभाग में स्कूलों के इंसपेक्टर थे। उन्हें भी हिन्दी से शौक था। इसलिए उन्होंने हिन्दी के

लिए शिक्षा विभाग में प्रयत्न किया। हिन्दी के शिक्षा विभाग में प्रवेश पा जाने पर पाठ्य पुस्तकें प्रस्तुत कीं। 'गुटका' उनका ऐसा ही एक संकलन है। राजा भोज का सपना, हिन्दी की उत्पत्ति आदि उनके हिन्दी-लेख हैं। 'इतिहास तिमिर नाशक' इतिहास की पाठ्य पुस्तक है। शिक्षा विभाग में हिन्दी के प्रवेश से उर्दू वालों में बड़ा तहलका और हाय-तोबा मच गया, जैसा कि उनमें सदा मचा करता है। 'अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गजट' और 'बनारस अखबार' में आन्दोलन हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई—जो हो, राजा शिवप्रसाद सरकारी आदमी थे, उन पर इस हाय-तोबा का बुरा असर हुआ और प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप अब वे ऐसी हिन्दी के हिमायती हुए जिसकी लिपि तो नागरी हो, पर भाषा उर्दू हो। यहीं से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द में विरोध-भावना प्रारम्भ हुई। वस्तुतः दोनों हिन्दी के हितैषी थे और दोनों अपने अपने ढंग से काम करना जानते थे। राजा शिवप्रसाद ने शिक्षा विभाग में हिंदी का प्रवेश कराके हिन्दी का अनन्य उपकार किया। यह उन्हीं के पुण्य कार्य का परिणाम है कि आज का शिक्षा विभाग पूर्णरूपेण हिन्दीमय हो गया है।

भारतेन्दु बाबू ने देखा कि "अभी साढ़े तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी उर्दू पागुर करती जीती है," पर उनको उर्दू अखबारों का पूरा एतबार था और 'जो हो "बहर हाल हमें उर्दू का गम वाजिब है" कहकर वे बीबी उर्दू के इस असमय देहावसान पर स्यापा मनाने बैठे और उन्होंने अपने पाठकों से निवेदन किया कि यदि आपको इस स्यापे से रुलाई न आवे तो हँसने की भी सौगन्ध है, क्योंकि यह कोई हँसी तमाशा नहीं, बीबी उर्दू तीन दिन की पट्ठी अन जवान कट्ठी मरी हैं।

यह रचना नाटक के एक दृश्य के समान है—अरबी, फारसी, पश्तो, पंजाबी इत्यादि कई भाषाएँ खड़ी होकर अपनी छाती पीटती हैं और रोती हैं—

है है उर्दू हाय हाय	कहाँ सिधारी हाय हाय
मेरी प्यारी हाय हाय	मुंशी मुल्ला हाय हाय
बल्ला बिल्ला हाय हाय	रोयें पीटैं हाय हाय
टाँग घसीटैं हाय हाय	सब दिन सोचैं हाय हाय
डाढ़ी नोचैं हाय हाय	दुनियाँ उलटी हाय हाय
रोजी बिलटी हाय हाय	सब मुखतारी हाय हाय
किसने मारी हाय हाय	खबर-नवीसी हाय हाय

दाँता पीसी हाय हाय — एडिटर-पोशी हाय हाय
बात फरोशी हाय हाय — वह लस्सानी हाय हाय
चरब जुबानी हाय हाय — शोख बयानी हाय हाय
फिर नहिं आनी हाय हाय

ध्यान देने की बात है कि गम मनानेवाली भाषाएँ—अरबी, फारसी, पश्तो, पंजाबी—उर्दू की माँ-बहनें हैं। उन्हीं को उनके मरने का गम हो सकता है। भारतेन्दु ने इनके साथ गुजराती, मराठी, बंगाली, हिन्दी आदि को नहीं ला खड़ा किया। ये भाषाएँ बी उर्दू के मरने का ही गम नही मनातीं, बी उर्दू के साथ जो मरेंगे, उनकी भी मातमपुर्सी मनाती हैं। बीबी उर्दू के साथ मुंशी मुल्ला मरे, रोजी मरी, मुखतारी मरी, खबर नवीसी मरी, एडिटर-पोशी, बात-फरोशी, चरब जुबानी और शोखबयानी सबका खातमा हो गया।

भारतेंदु की इस रचना को पढ़कर बालमुकुंद गुप्त की 'बी उर्दू को जवाब' नाम की रचना बरबस याद आ जाती है। वह रचना पंडित राम नरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित 'कविता कौमुदी' द्वितीय भाग में संकलित है। इसकी प्रथम पंक्ति है—

'न बीबी जरा जी में घबराइए'

भारतेंदु बाबू हिंदी के बड़े हिमायती थे, इसीलिए उन्हें बी उर्दू का स्यापा मनाना पड़ा।

बंदर सभा

"इंदरसभा उरदू में एक प्रकार का नाटक है या नाटकाभास है और यह बंदरसभा उसका भी आभास है।" इंदरसभा उर्दू का पहला नाटक समझा जाता है; पर वह नाटक न होकर भारतेंदु जी के शब्दों में 'नाटकाभास' है। इसके लेखक हैं उस्ताद अमानत। भारतेंदुजी ने इस नाटकाभास का भी आभास बंदर सभा के रूप में उपस्थित किया। उन्होंने उसमें अपना उपनाम कहीं नहीं दिया है। कवि के नाम के स्थान पर बंदरसभा ५, मधु मुकुल ७० में 'उस्ताद' का प्रयोग हुआ है, मधुमुकुल ६९ में 'उस्ताद खयानत' का प्रयोग हुआ है। 'अमानत में खयानत' के वजन पर भारतेंदु बाबूने 'उस्ताद खयानत' कर दिया। नाम बदलने में भी मजाक़। शेष छंदों में कवि-छाप नहीं है।

बंदरसभा जुलाई सन् १८७९ ई० की हरिश्चन्द्र चंद्रिका खंड ६, संख्या १३ में छपी है। इसमें आठ पद्य हैं। अंत में 'क्रमशः' के स्थान पर है 'फिर कभी'। संभवतः भारतेंदु जी ने इस 'फिर कभी' के वादे को आंशिक रूप में पूरा अवश्य किया था। 'मधु मुकुल' में भी छंद ६९, ७० होली बंदर सभा, होली जबानी

शुतुर्मुर्गपरों के–छपे हैं। ये होलियाँ बंदरसभा में नहीं हैं। अवश्य ही ये 'फिर कभी' के वादे की आंशिक पूर्ति हैं। हो सकता है 'बंदरसभा' का और कोई अंश उन्होंने बनाया हो, जो 'भारतेंदु ग्रंथावली' के संपादक को उपलब्ध न हो सका हो।

अँगरेजी में परिहास काव्य का एक अत्यंत प्रसिद्ध रूप पैरोडी (Parody) है। आजकल हिंदी में भी बहुत सी पैरोडियाँ लिखी गई हैं। पर पैरोडी के लिए हिंदी में कोई उपयुक्त शब्द अभी तक नहीं बन सका है। पं० रामबहोरीजी शुक्ल ने 'भारती' भाग ४ में प्रसाद जी की प्रसिद्ध कविता 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे' के कुछ अंश को एवं चोंच जी की उस रचना पर पैरोडी 'ले चल मुझे बुलानाले तू इक्के वाले धीरे धीरे' को स्थान दिया है। उन्होंने इस पाठ का नाम 'परिवृत्ति कविता' रक्खा है। पर पैरोडी के लिए यह नाम कोई बहुत अच्छा नहीं जँचता। प्रायः लोग 'पैरोडी' को 'पैरोडी' ही कहते चले आ रहे हैं। इसके लिए एक अत्यन्त सुन्दर नाम 'आभास काव्य' हो सकता है। इस नाम का संकेत स्वयं भारतेंदु बाबू ने दे दिया है—'इंदरसभा उरदू में एक प्रकार का नाटक है व नाटकाभास है और यह बंदर सभा उसका भी आभास है।' यहाँ यह भी स्मरण रखना ठीक होगा कि भारतेंदु जी पहले व्यक्ति हैं जिसने हिंदी में पैरोडी लिखी और यह पैरोडी एक उर्दू रचना की हुई। साथ ही यह शृङ्खलाबद्ध पैरोडी है जो एक ही छंद तक न चलकर लगातार दश विभिन्न छंदों में चलती गई है।

प्राइमरी स्कूल में पढ़ते समय मैंने 'इंदरसभा अमानत' पढ़ा था। तब मुझे यह न मालूम था कि 'इंदरसभा' और 'अमानत' दो अलग अलग नाम हैं, एक पुस्तक का, दूसरा लेखक का। मैं इसे पुस्तक का ही नाम समझता था पर इस नाम का पूरा अर्थ नहीं समझता था। बहुत दिनों बाद जब मैं बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा प्रणीत उर्दू साहित्य का इतिहास पढ़ने लगा, तब पता चला कि इंदरसभा, अमानत का लिखा हुआ, उर्दू का पहला नाटक है। आज देख रहा हूँ कि उसी इंदरसभा का बंदरसभा रूप भी हिंदीवालों ने प्रस्तुत कर रखा है।

'बंदरसभा' में 'इंदरसभा' का पूर्ण रूप से आभास देने का प्रयास किया गया है। 'इंदरसभा' का प्रारंभ होता है—आना राजा इंदर का बीच सभा के—से, तो यहाँ बंदरसभा का प्रारंभ होता है—आना राजा बंदर का बीच सभा के—से। फिर राजा इंदर के आमद के इस्तकबाल की एक ग़ज़ल है, उसी वजन में यहाँ भी राजा बंदर के आमद का गीत है—

सभा में दोस्तो बंदर की आमद आमद है
गधे औ फूलों के अफसर की आमद आमद है

परिहास काव्य में आज अंगरेजी के शब्द धड़ल्ले से व्यवहृत हो रहे हैं। अँगरेजी शब्दों का ऐसा प्रयोग भी भारतेंदु बाबू से प्रारंभ होता है। भारतेंदु जी बंदर को गधों और फूलों का अफसर कहते हैं। यह फूलों अँगरेजी के 'Fool' (मूर्ख) का हिंदी बहुवचन है। इस एक पंक्ति में फूल और अफसर दो अंगरेजी शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

उर्दू वाक्य विन्यास की रक्षा इस प्रकार की गई है—आना राजा बंदर का बीच सभा के, चौबोले जबानी राजा बंदर के बीच अहवाल अपने के, गज़ल शुतुरमुर्ग परी की बहार के मौसिम में। उर्दू के कुछ विचित्र शब्द रूपों की रक्षा का भी प्रयत्न किया गया है। एक पंक्ति है—

पान भी खाया है, मिस्सी भी जमाई हैगी

कोई पूछे यह 'हैगी' क्या बला है? यह 'है' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मिडिल स्कूल में जब मैं पढ़ता था। तब हमें उर्दू पढ़ाने वाले मौलवी साहब 'है' के स्थान पर बराबर 'हैगा' बोला करते थे। लड़कों में उनका नाम ही 'हैगा' हो गया था और लड़के भी उनके अनुकरण पर 'हैगा' बोला करते थे। भारतेंदु की 'हैगी' उसी 'हैगा' का स्त्रीलिंग है।

बंदर सभा में हमें वेश्याओं के मनोविज्ञान का पूर्ण परिचय मिलता है। यह परिचय-दात्री है शुतुर्मुर्ग परी—

गाती हूँ मैं औ' नाच सदा काम है मेरा
ए लोगों शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा
फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता
इस गुलशने आलम में बिछा दाम है मेरा
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा दूँ
कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा
पहले जो मिले कोई तो जी उसका लुभाना
बस कार यही तो सहरोशाम है मेरा
शुरफ़ा व रुज़ला एक हैं दरबार में मेरे
कुछ खास नहीं फैज तो इक आम है मेरा
बन जाएँ चुगद तब तो उन्हें मूँड़ ही लेना
खाली हों तो कर देना धता काम है मेरा
जर मजहबो मिल्लत मेरा, बंदी हूँ मैं जर की
जर ही मेरा अल्लाह है, जर राम है मेरा

भारतेंदु बाबू की एक और व्यंग-रचना है 'वेश्यास्तवराज'—इसमें भी वेश्याओं के सहवास के दोष प्रदर्शित किए गए हैं :—

मद्यप प्रमोद पुष्ट पीठिका　　'एनलाइटेंड' पंथ सीढ़िका
मातृ पितृ बंधु शील भक्षिका　　लोकलाज नाश हेतु तक्षिका
गुप्त द्रव्य पुंज गेह रक्षिका　　यौवनादि स्वार्थ पुष्प मक्षिका
धर्म कर्म शर्म चर्म हारिणी　　गर्म चर्म नर्म मर्म कारिणी
'प्रेजुडीस' लेश मात्र भक्षिका　　मद्यपान घोर रंग रंजिका
शायनी क्षनैक मात्र संग की　　आतशक सुजाक औ फिरंग की
पितृ नाम हीन मातृनामिका　　सर्व जात पाँत मध्य गामिका
मिष्टजिह्वा कपाल मूँड़िनी　　मित्रवर्ग युक्त नर्क बूड़िनी
लोक वेद लाज पत्र फाड़िनी　　जीवितैव कब्र मध्य गाड़िनी
द्रव्य लाभ धावमान साँड़िनी　　सदगृहस्थ गेह की उजाड़िनी

'बंदर सभा' के प्रथम सात छंद उर्दू की गजलें हैं। उनकी भाषा भी उर्दू है। शेष तीन रचनाएँ हिंदी की होलियाँ हैं।

इसी रचना में एक गजल उन बिगड़े अमीरों पर है, जो पूरे बोंगा बसंत और आँख के अंधे गाँठ के पूरे होते हैं—

आलम से बसंतों के है गुलजार बसंती
है फर्श बसंती दरो दीवार बसंती।
आँखों में हिमाकत का कँवल जबसे खिला है
आते हैं नजर कूच ओ बाजार बसंती।
अफयूँ मदक चरस के व चण्डू के बदौलत
यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती।
दे जाम मये गुल के मये जाफरान के
दो चार गुलाबी हों तो दो चार बसंती
तहवील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो
जोड़ा हो परीजान का तय्यार बसंती।

समधिन मधुमास और रामलीला की गाली

हम हिंदुओं में विवाह के अवसर पर जेवनार के समय स्त्रियाँ वर पक्ष को गाली गाती हैं। ये गालियाँ प्रायः भद्दी होती है; अश्लीलता उनके आगे शरमा जाती है; साहित्यकारों ने भी प्रायः सुरुचि पूर्ण गालियों की ओर ध्यान नहीं दिया। केशव कृत रामचंद्रिका में एक सुरुचि पूर्ण गाली है। कहा जाता है कि

इसे केशव की प्रवीण शिष्या प्रवीणराय ने लिखा था। रामचरित मानस में क्षेपक बहुत से आ गए हैं। रामकलेवा भी क्षेपक है। इस रामकलेवा में रामचन्द्र जी को गाली गाई गई है। यह भी सुरुचि पूर्ण है। इसके पश्चात् भारतेंदु जी ही में हमें दो सुरुचिपूर्ण गालियाँ मिलती हैं। एक तो 'होली' के अंतर्गत है, इसका नाम है 'समधिन मधुमास'। इसमें समधिन को गाली गाई गई है। दूसरी रचना 'रामलीला' के अंतर्गत है, इसमें रामचंद्र जी को गाली गाई गई है।

समधिन मधुमास में होली का वर्णन है। फाल्गुन में बारात आई है। विशेष विश्लेषण न करके सारी रचना दे देना अधिक उपयुक्त होगा :—

समधिन मधुमास

होरी में समधिन आई
अहो फागुन त्योहार मनाई
यथाशक्ति कीन्हों सबही ने समधिन को उपचार
समधिन जू ने बहुत करायो आदर शिष्टाचार
समधिन की तो चुपरी चपरी चोटी सोंधो लाय
समधिन को लखि रपटि परत है समधी को मन धाय
समधिन की तो अतिही चिकनी फिसिल-फिसिल सब जात
देहरिया रङ्ग भीनि रही जहँ प्रविसत सबै बरात
सबै उड़ावत समधिन को लखि बुक्का रँग मुख मींजि
तब समधिन की चुवन लगत है सारी रँग मुख भींजि
छाती मीड़त सब समधिन कर रूप-छटा सब देखि
डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन तेखि
समधिन जू लगवावत डोलत सबसों चोवा रंग
फटी दरार परी समधिन की चोली उमिर उमंग
समधिन जू विपरीत करत तुम इतो नवन नहिं योग
मानत तुम्हरी नृपहू सों बढ़ि थाप सबै ब्रज लोग
फैलि रही चहुँ दिशि समधिन की कीरति की नव बेलि
तुमहिं देखि सब करत रङ्ग सों होरी रसि कसि रेलि
ठाढ़ो होत तुमहिंदेखत ही आदर हित दरबार
गाँव भरे की नारि तुमहिं इक आदर देत अपार
यहि विधि समधिन रंग बढ़त ब्रज कौन सकै सो गाय
नित दूलह नित दुलहिन पै जन हरीचंद बलि जाय
—होली ४३.

इस रचना का सारा सौष्ठव क्रियापदों में है। प्रत्येक चरण का पूर्वार्द्ध पढ़कर हमको एक अश्लील अर्थ का भान होता है, परन्तु उत्तरार्द्ध को सुनकर सारा अश्लीलता हवा हो जाती है ; एक अत्यन्त शिष्ट अर्थ हमारे सामने आ जाता है। उदाहरण के लिए एक पंक्ति का अर्थ हम यहाँ देते हैं—

गाँव भरे की नारि तुमहि इक आदर देत अपार

इसका पूर्वार्द्ध हैं—'गाँव भरे की नारि तुमहि इक'—इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि समधिन जी अकेली सारे गाँव की स्त्री हैं, सहसभतारी हैं। परन्तु पूरी पंक्ति का अर्थ है—गाँव भर की सारी स्त्रियाँ समधिन जी को अपार आदर देती हैं।

समधिन संबंधी यह गाली राग कल्पद्रुम की निम्न लिखित रचनाओं से प्रभावित प्रतीत होती है—

(१)

रहस घर समधिन आई

सब साधन मन भाई

समधिन आई, सब मन भाई, अच्छा कियो है सिँगार
ले समधी समधन के डारे गज मोतियन को हार
समधिन की साँकरि अस खिरकी समधी आवन जोग
आधा बाहर आधा भीतर सब समधी के लोग
समधिनको हाथी का भावै अच्छा नीका पूरा
रंग रँगीला औ चड़कीला हाथी दाँत का चूरा
समधिन ठाढ़ी मरावन लागी समधी के खातिर बोकरा
पिछली रात करावन लागी मूँग भात घिउ सखरा

(२)

बनक बन समधिन आई, समधिन के घर आज
ठाढ़ी निस दिन आप करावत अपने घर को साज

—राग कल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ २३१ पद १५, १६

रामलीला के अन्तर्गत रामचन्द्र जी को जो गाली दी गई है, वह कहीं अधिक श्लील है और रामचन्द्रिका की गाली पद्धति पर है। इसपर रामचन्द्रिका की गाली का कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है। इस गाली का सौष्ठव बहुत कुछ श्लेष पर निर्भर करता है—

सुंदर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू
अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू
मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट श्रुतिचारी
जो पति पितु सिसु दोउ मैं व्यापत ताहिं लगै का गारी
मात पिता को होत न निरनय जात न जानो जाई
जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई
अज के दशरथ सुने रहे किमि दशरथ के अज जाये
भूमि सुता पति भूमिनाथ सुत दोऊ आप सोहाये
धन्य धन्य कौशिल्या रानी जिन तुम सों सुत जायो
मात पिता सों बरन विलच्छन श्याम सरूप सोहायो
कैकै की जो सुता कैकई ताको सुकृत अपारा
भरतहि पर अति ही रुचि जाकी को कहि पावै पारा
नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी
अतिहि विचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी
अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे
परी छाँह कै औरहि, कारण जिय नहिं आवत मोरे
कौसलेस मिथिलेस दुहुन मैं कहो जनक को प्यारे
कौसल्यासुत कौसलपति सुत दुहूं एक को न्यारे
चरु सों प्रगटे कै राजा सों यह मोहिं देहु बताई
हम जानी नृप वृद्ध जानि कछु द्विजजन करी सहाई
तुमरे कुल की चाल अलौकिक बरनि कछू नहिं जाई
भागीरथी धाइ सागर सों मिली अनद बढ़ाई
सूर वंस गुरु कुलहि चलाये छत्री सबहि कहाहीं
असमंजस को बंस तुम्हारे राघव संसय नाहीं
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवै तुमरे गुन गन भारी
चिरजीओ दुलहा अरु दुलहिन 'हरीचंद' बलिहारी

नये जमाने की मुकरी

ये मुकरियाँ अमीर खुसरो की मुकरियों के ढंग पर हैं। ये संख्या में १४ हैं, सभी में सज्जनों का वर्णन है, साथ ही आधुनिक समाज, देश-दशा का खाका भी खींचा गया है। निम्नांकित मुकरी में सज्जन और पुलिस का वर्णन देखिए:—

रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे में जो पड़ै न छूटै
कपट कटारी हिय में हूलिस
क्यों सखि सज्जन, नहिं सखि पूलिस

मुशायरा

लखनऊ दिल्ली बनारस पूरब और दक्खिन के कई मुफ्तखोरे शायर एक जगह जमा हुए और लगे रंग बिरंगी बोलियाँ बोलने। पहले एक लाला साहब ने चोंच खोली और नफाखोर तथा चोर-बाजारी करने वाले बनियों पर हाथ साफ किया —

गल्ला कटै लगा है कि भैया जो है सो है
बनिया को गम भवा है कि भैया जो है सो है
कुप्पा भये हैं फूलके बनिया बफर्त माल
पेट उनका दमकला है कि भैया जो है सो है

अँगरेजी अमलदारी के साथ साथ टैक्सों की बाढ़ आई, जनता त्राहि त्राहि करने लगी—

भूँजी भाँग नहीं घर भीतर, का पहिनी का खाई
टिकस पिया मोरी लाज को रखल्यौ, ऐसे बनो न कसाई
तुम्हैं कैसर की दोहाई
कर जोरत हौं, बिनती करत हौं छाँड़ौ टिकस कन्हाई
आग लगी ऐसी फाग के ऊपर, भूखन जान गँवाई
तुम्हैं कछु लाज न आई

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेंदु बाबू तत्कालीन सुप्रसिद्ध उर्दू लखनौआ परिहास प्रधान पत्र 'पंच' से भी खार खाए बैठे थे—इसकी भी खबर कईं जगह ली गई है—

अखबार नहीं 'पंच' से बढ़कर भवा कोऊ
सिक्का ये जम गया है कि भैया जो है सो है

× × ×

हिज्र पिया तोरे पैयाँ पड़त है
'पंच' माँ एहका छपाय नाहीं देत्यो

अँगरेजी शिक्षा का हमारी देवियों पर बहुत बुरा असर पड़ा है—इस कुप्रभाव का वर्णन ललाइन साहबा की इस गजल में मिलता है। लाला साहब के गाने के बाद ही ललाइन साहब से भी न रहा गया। कुछ जो

मेम साहब की तालीम ने तुंदी किया तो चट से कूद परदे के बाहर बेतकल्लुफ तशरीफ लाईं और मटक मटककर कहने लगीं—

लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो
लहँगा दुपट्टा नीक न लागे
मेमन का गौन मँगाय नाहीं देत्यो
वै गोरिन हम रंग सँवलिया
रंग में रंग मिलाय नाहीं देत्यो
हम ना सोइबै कोठा अटरिया
नदिया पै बँगला छवाय नाहीं देत्यो
सरसों का उपटन हम ना लगैबै
साबुन से देहियाँ मलाय नाहीं देत्यो
डोली मियाना पै कब लग डोलीं
घोड़वा पै काठी कसाय नाहीं देत्यो
कब लग बैठी काढ़े घुँघुटवा
मेला तमासा जाये नाहीं देत्यो
लीक पुरानी कब लग पीटों
नई रीत रसम चलाय नाहीं देत्यो
गोबर से ना लीपब पोतब
चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यो
खुसलिया छदम्मी ननकूँहन काँ
विलायत का काहे पठाय नाहीं देत्यो
धन दौलत के कारन बलमा
समुंदर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो
बहुत दिना लग खटिया तोड़िन
हिंदुन के काहे जगाय नाहीं देत्यो

नवीन सभ्यता में पली, अँगरेजियत की बू में बसी, ललाइन साहब की आजादी देखते ही साहोजी साहब मुतहैय्यर हो घबड़ाकर यों रेंके—

का भवा, आवा है ए राम जमाना कैसा
कैसी मेहरारू है ई हाय जनाना कैसा
लोग किस्तान भए जाथैं बनथैं साहेब
कैसा अब पुन्य धरम, गंगा नहाना कैसा

हाल रोजगार गया धूर मैं बेवहार मिला
का सराफी रही, हुंडी का चलाना कैसा
धोय के लाज सरम पी गए सब लड़कन लोग
काहे के बाप मतारी रहैं नाना कैसा
आँखों के आगे लगे पीए सभे मिल के सराब
हाय अब जात कहाँ, पंच में जाना कैसा
पगड़ी जामा गया, अब कोट औ पतलून रही
जब चुरुट है तो इलइची का खाना कैसा
सबके ऊपर लगा टिकस कि उड़ा होस मोरा
रोवै के चहिए, हँसी ठी ठी ठठाना कैसा

भारतेंदु बाबू ने अपने नाटकों में हास्य को भी यथोचित स्थान देने का प्रयास किया है। पाखंड विडंबन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्यविष-मौषधम, और अंधेर नगरी—ये चारों तो प्रहसन हैं, और इनमें हास्य के बिना काम चल ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त भारत दुर्दशा एवं नील देवी जैसे निराशा पूर्ण नाटकों में भी, जिनमें भरत वाक्य तक नहीं है, उन्होंने हास्य को स्थान दिया है। कर्पूर मंजरी में भी हास्य संबंधी एक रचना है—हास्य और श्रृंगार का घनिष्ट संबंध भी है। 'प्रेमयोगिनी' भी हास्य रस की सुंदर रचना है।

पाखंड विडंबन एवं कर्पूर मंजरी का परिहास भाषा एवं छंदः शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। ये दोनों रचनाएँ अनूदित हैं। जैनोंने हिन्दी की प्रचुर सेवा की है। उनका प्राचीन साहित्य बहुत कुछ पुरानी हिंदी (अपभ्रंश) में है। 'पाखंड विडंबन' में जैन सिद्धान्त का विवेचन करते हुए उसी प्रकार की हिन्दी लिखने का प्रयास भारतेंदु ने किया है और उसके पतित सिद्धांत की रूपरेखा भी खींच दी गई है। छन्द भी दोहा है। एक पतित दिगम्बर जैन जी का वचन है—

नव द्वारां रो देह धर तिसमां आतम दीप
जिनवर रो सिद्धान्त यह देखी मोच्छ समीप
या मल रूपी देह सों करौ जलारी सुद्धि
आतम विमल स्वभाव छै यह रिषिआँरी बुद्धि
जौ न करौ परनारि कैं मिष्ट भोग सतकार
तौ दैरहु तिनसों न कर जरदि रमत रिषि दार

एक दूसरे दिगम्बर जी कपालिनी को संबोधित करते हुए कहते हैं—

अरे सुण पीण पयोधरवारी
धीरे इन नेणांरी सोभा मृगन लजावनहारी
री कपालिनी जौं तूहासूँ रमण करै मिलिप्यारी
तौ सरावगिणि और जतिणरो काम कछुन यहाँ री

इन दोनों उद्धारणों में हास्य की स्थिति इस धर्म की पतितावस्था पर है, जब साधु लोग भी स्त्री रमण को ही ध्येय और धर्म समझने लगते है। परन्तु यहाँ पर हास्य को जो भी सफलता मिली है, वह भाषा के प्राचीन लबादे के कारण है।

इसी प्रकार 'बुद्धागम' की भी एक उक्ति है। ये प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे। प्राकृत में शब्दों को कोमल करने की प्रवृत्ति है, संयुक्त वर्णों को अलग करने की रुचि है। इस बुद्धागम की उक्ति भी इसी प्रकार की है। यह बेचारा कुछ अच्छरों का उच्चारण नहीं कर पाता वह 'स, र' कहने में असमर्थ है और 'सुन्दर' को 'छुन्दल' कहता है। अपनी विकृत वाणी के कारण वह प्रेक्षकों को कुछ हँसा पाता है—

लहने को मिआ घल छुन्दल छा अलु भोअन को मिली छुन्दल नाली
लड़ अनेअन भोजन कों मिए, छैन के एत ए छेज छुखाली
कैं छलधा जुअती छब अंगन काओत तेअ फुएअ छुवाली
दै गल में बइयाँ छुख छो इमि बीअत है नित लात उजाली

कहने का तात्पर्य यह है कि पाखण्ड विडंबन का हास्य आंतरिक न होकर बाह्य है। उसका मूलाधार अक्षरों एवं शब्दों के विकृत प्रयोग पर निर्भर है। यदि ये विकृत प्रयोग हटा दिए जायँ तो इनका सारा हास्य बह जायगा। इस प्रकार पाखण्ड विडम्बन का हास्य अत्यन्त साधारण कोटि का है। ऐसा हास्य बालकों या बाल-बुद्धि वाले वयस्कों को प्रिय होता है।

'कर्पूर मंजरी' में विदूषक वसन्त का अपने ढंग से वर्णन करता है—

आयो आयो वसंत आयो आयो बसंत
वन में महुआ टेसू फुलंत
नाचत हैं मोर अनेक भाँति
मनु भैंसा का पड़वा फूल फालि
बेला फूले वन बीच बीच
मानो दही जमायो सींच सींच
बहि चलत भयो हैं मंद पौन
मनु गदहा को छान्यो पैर

गेंदा फूले जैसे पकौरि
लडडू से फले फल बौरि बौरि
खेतन में फूले भात दाल
घर में फूले हम कुल के पाल

ऐसी उत्प्रेक्षाएँ साहित्य संसार में दुर्लभ हैं। सच है—'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि।' विदूषक की यह कविता हास की और सृष्टि करेगी जब इसके विरोध में विचक्षण की यह विचक्षणा उक्ति ध्यान में रखी जाय—

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर
कोकिल कुहुकि कल सबद सुनावैगो
त्योंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर—
हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो
सावधान होहुरे वियोगिनी सम्हारि तन
अतन तनक ही मैं तापन तें तावैगो
धीरज नसावत, बढ़ावत बिरह काम,
कहर मचावत बसंत अब आवैगो

'वैदिकी हिंसाहिंसा न भवति' का मंगलाचरण ही परिहासमय है—

बहु बकरा बलि हित कटैं जाके बिना प्रमान
सो हरि की माया करै सब जग को कल्यान

इस प्रहसन में माँस भक्षण एवं मदिरापान पर सुन्दर व्यंगोक्तियाँ हैं। राजाराम मोहनराय के ब्राह्मो समाज पर भी कटाक्ष है—

मदिरा ही के पान हित हिंदू धर्महि छोड़ि
बहुत लोग ब्राह्मो बनत निज कुल सों मुख मोड़ि
ब्रांडी को अरु ब्रह्म को पहिलो अक्षर एक
तासों ब्राह्मो धर्म में यामें दोष न एक

मदिरा की प्रशंसा में वे आगे लिखते हैं—

मदिरा को तो अंत अरु आदि राम को नाम
तासों तामें दोस कछु नहिं यह बुद्धि ललाम
तिष्ट तिष्ट क्षन, मद्य हम पियैं न जब लौं नीच
यह कहि देवी क्रोध सों हत्यो शुंभ रन बीच
मद पी विधि जगको करत, पालत हरि करि पान
मद ही पी कै नाश सब करत शंभु भगवान

विष्णु वारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि
शैंपेन शिव, गौरी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारि

इस प्रहसन में दो लंबी रचनाएँ हैं—

(१) राम रस पीओ रे भाई, जो पीए से अमर होइ जाई

(२) पीले अवधू के मतवाले, प्याला प्रेम हरी रस का रे

ये गीत पियक्कड़ों द्वारा गाए गए हैं। प्रारंभ में कुछ अर्थ निकलता है, किंतु ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ते हैं, अनर्थ होता जाता है। ऐसा प्रतीत होता है नशा बढ़ता जा रहा है। छंदों का बहुत शीघ्रता से परिवर्तन होता जाता है। भाषा भी हिंदी से उर्दू में बदल जाती है। इनमें विभिन्न कवियों से उलटे सीधे उद्धरण दिए गए हैं। नशेबाजों का मनोविज्ञान इन रचनाओं में यथातथ्य उतरा है। प्रसाद जी के शब्दों में भारतेंदु जी हिंदी के पहले यथार्थवादी हैं—

"श्री हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय वेदना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण प्रारंभ किया था। 'प्रेम योगिनी' हिंदी में इस ढंग का पहला प्रयास है और 'देखी तुमरी कासी' वाली कविता को भी मैं इसी श्रेणी की समझता हूँ। प्रतीक विधान चाहे दुर्बल रहा हो, परंतु जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न हिंदी में उसी समय प्रारंभ हुआ था।"

—यथार्थवाद और छायावाद

प्रेम योगिनी के अंतर्गत 'देखी तुमरी कासी' वाली कविता काशी का यथार्थ चित्र खींचती है, यद्यपि यह चित्र एकांगी है, काशी की अच्छाइयों पर इसमें प्रकाश नहीं डाला गया है। यह रचना भी हास्य रस का अत्युत्तम उदाहरण है—

देखी तुमरी काशी-लोगो, देखी तुमरी काशी
जहाँ बिराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वर जी अविनाशी
आधी काशी भाट भँडेरिया ब्राह्मन औ संन्यासी
आधी काशी रंडी मुंडी राँड़ खानगी खासी
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बेबिसवासी
महा आलसी झूठे शुहदे बेफिकरे बदमासी
आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी
और करै तो हँसैं बनावैं उसको सत्यानासी
अमीर सब झूठे औ निंदक करें घात विश्वासी
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बात अकासी
मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी

नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी
कुत्ते भूकत काटन दौड़ैं सड़क साँड़ सों नासी
दौड़ैं बंदर बने मुछंदर कूदैं चढ़े अगासी
घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं देइ गलाँसी
करैं घाटिया वस्तर मोचन दे देके सब झाँसी
राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी
मंदिर बीच भड़ेरिया नोचैं करैं धरम की गाँसी
सौदा लेत दलालौ नोचैं देकर लासा-लासी
माल लिए पर दुकानदार नोचैं कपड़ा दे रासी
चोरी भए पर पूलिस नोचैं हाथ गले बिच ढाँसी
गए कचहरी अमला नोचैं मोचि बनावैं घासी
फिरैं उचक्का दे दे धक्का कूटैं माल मवासी
कैद भए की लाज तनिक नहिं बेसरमी नंगासी
साहेब के घर दौड़े जावैं चंदा देहिं निकासी
चढ़ै बुखार नाम मंदिर का सुनतहि होय उदासी
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी
दाल की मंडी रंडी पूजैं मानो इनकी मासी
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरहि कागाबासी
बाप के तिथि दिन ब्राह्मण आगे धरैं सड़ा औ बासी
करि बेवहार साक बाँधैं सब पूरी दौलत दासी
घालि रुपैया, काढ़ि दिवाला, माल डेकारैं ठाँसी
काम कथा अमृत से पीयैं समुझैं ताहि विलासी
राम नाम मुँह से नहिं निकलै सुनतहि आवै खाँसी
देखी तुमरी कासी—भैया देखी तुमरी कासी

'विषस्य विषमौषधम्' में पर-स्त्री-गमन संबंधी केवल दो दोहे हैं—

पर नारी पैनी छुरी ताहि न लाओ अङ्ग
रावनहू को सिर गयो पर नारी के संग

रावन ने दस सिर दिए जनक नंदिनी काज
जो मेरो इक सिर गयो तो यामें कहँ लाज

पहला दोहा उपदेशात्मक है। पर इसके उत्तर स्वरूप जो दूसरा दोहा है, उसमें हास्य का अच्छा समावेश है। परिहासकार ने उपहास का लक्ष्य किसी और को न बनाकर स्वयं अपने को बनाया है।

भारत दुर्दशा में परिहास की दो रचनाएँ हैं। एक तो 'मदिरा माहात्म्य' है, यह माहात्म्य वही है जो 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में है, दूसरी रचना में आलसियों की खबर ली गई है—

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा
बिस्तर पै मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा
'रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है'
छेड़ो न नक्शे पा हैं मिटाना नहीं अच्छा
उठकरके घर से कौन चले यार के घर तक
मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा
धोती भी पहिनें जब कि कोई और पिन्हा दे
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा
सिर भारी चीज़ है इसे तकलीफ हो तो हो
पर जीभ विचारीको सताना नहीं अच्छा
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए
दुनियां नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा
सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा

'नीलदेवी' में हास्य रस की केवल एक रचना है। इसके लक्ष्य खुशामदी जी हुजूर लोग हैं—

पिकदानी चपरगट्टू है बस नाम हमारा
इक मुफ्त का खाना है सदा नाम हमारा
उमरा जो कहें रात तो हम चाँद दिखा दें
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा
कपड़ा किसी का, खाना कहीं, सोना किसी जा,
ग़ैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा
हो रंज जहाँ, पास न जाएँ कभी उसके
आराम जहाँ हो, है वहाँ काम हमारा
ज़र दीन है, कुरआन है, ईमाँ है, नबी है
ज़र ही मेरा अल्लाह है, ज़र राम हमारा

'अन्धेर नगरी' में हास्यरस की तीन रचनाएँ हैं—(१) चने का लटका, (२) चूरन का लटका (३) अन्धेर नगरी। ये तीनों रचनाएँ भारत की दुर्दशा पर भी प्रकाश डालती हैं। चने के लटके में एक पंक्ति है—

चना हाकिम सब जो खाते
सब पर दूना टिकस लगाते

चूरन के लटके की निम्नांकित पंक्तियाँ हमारी दुर्दशा हमें दिखलाती हैं—

चूरन जब से हिंद में आया
इसका धन बल सभी घटाया
हिंदू चूरन इसका नाम
बिलायत पूरन इसका काम
चूरन अमले सब जो खावैं
दूनी रिशवत तुरत पचावैं
चूरन साहेब लोग जो खाता
सारा हिंद हजम कर जाता

अन्धेर नगरी का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

भीतर स्याहा बाहर सादे
राज करहिं अमले अरु प्यादे
अंधाधुंध मच्यो सब देसा
मानहु राजा रहत बिदेसा
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई
मानहु नृपति बिधर्मी कोई

वस्तुतः यह अन्धेर नगरी उस भारतवर्ष का रूपक है, जिसमें नौकरशाही हुकूमत थी, जिसका राजा सात समुंदर पार रहता था और जो अहिंदू होने के नाते हमारे धर्म का आदर नहीं करता था।

भारतेन्दु बाबू का हृदय बहुत विशाल था। वे दीन दुखी भारत के लिए हँसते हुए भी रोते थे। उनकी परिहास सम्बन्धी रचनाएँ सोद्देश्य हैं। यहाँ वे सुधारवादी हैं। वे देश को, जाति को उन्नत देखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि हम जुआरी हों, शराबी हों, आलसी बने रहें और हमारा देश निरन्तर रसातल में धँसता जाय।

२१

लोकगीत

भारतेन्दु बाबू ने अनेक लोक गीतों की रचना की है। उनपर उनके पिता बाबू गिरिधरदास का पूर्ण प्रभाव था। बाबू गिरिधरदास स्वयं एक उच्च कोटि के कवि और लोकगीतों के प्रेमी थे। प्रेम तरंग, कीर्तन के पद, मलार के पद, बसंत के कीर्तन, बहार आदि ग्रन्थों में उनके भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों के अनेक लोक गीत संकलित हैं। इसके अतिरिक्त सम्भवतः एक कारण और भी है जिसने भारतेंदु को लोक-गीतों की रचना के लिए बाध्य किया। भारतेंदु ने साहित्य-परंपरा से ही प्रभाव नहीं ग्रहण किया, उनका हृदय सब स्थानों से सौंदर्य एवं रस-ग्रहण के लिए प्रस्तुत रहता था। संभवतः लोक गीतों के सौंदर्य ने भी उन्हें लोक गीत रचना के लिए बाध्य किया।

१ कजली

भारतेंदु बाबू पर वर्षा और वसंत का अत्यधिक प्रभाव पड़ता था। वर्षा से प्रभावित होकर उन्होंने 'प्रेमाश्रु वर्णन' और 'वर्षा विनोद' नामक पुस्तकें एवं वसंत से प्रभावित होकर 'होली' और 'मधु मुकुल' नामक पुस्तकें प्रस्तुत कीं। 'वर्षा विनोद' में भारतेंदु जी की कजलियाँ भी हैं। कजलियाँ सावन भादों के महीने में गाई जाती हैं। नवयुवतियाँ कजली खेलने के लिए इन महीनों में ससुराल से पोहर आती हैं। कजलियाँ मिर्जापुर एवं बनारस जिलों में विशेष रूप से गाई जाती हैं। बनारस और मिर्जापुर की कजलियों में भेद भी होता है। भारतेन्दु बाबू की कजलियाँ बनारसी हैं। कजलियाँ दो तरह की होती हैं, पुरुषों के गाने की और स्त्रियों के गाने की। दोनों के गाने के ढंग और रचना पद्धति में मूलतः अंतर है। भारतेंदु बाबू ने दोनों प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'वर्षा विनोद' की १, २, ३, ४, ५, १०, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५८, ६२ संख्यक २५ रचनाएँ कजलियाँ हैं। इनके अतिरिक्त स्फुट काव्य के अंतर्गत पृष्ठ ८४० से ८४२ तक ४२ से ४८ संख्या तक की सात रचनाएँ भी कजलियाँ हैं। इस प्रकार भारतेंदु बाबू ने ३२ कजलियाँ लिखी हैं। विषय के अनुसार इन कजलियों को तीन भागों में बाँट सकते है—प्रेम निरूपण एवं शृंगार

संबंधी, भक्ति संबंधी एवं राष्ट्रीय। नीचे तीनों प्रकार की कजलियों के एक एक उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) शृंगार रस और प्रेम निरूपण—

प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा
ओढ़े सुरुख चूनरि तापै श्याम चदरा
देखो बिजुरी चमकै, बरसै अदरा
'हरीचंद' तुम बिन पिय अति कदरा

—वर्षा विनोद १

यह पुरुषों के गाने की कजली है। पुरुष नारी को हिंडोला झूलने के लिए आमन्त्रित एवं प्रेरित कर रहा है।

(२) भक्ति संबंधी (कृष्ण काव्य)

मथुरा के देसवाँ से भेजलैं पियरवा रामा
हरि हरि ऊधो लाए जोगवा की पाती रे हरी।
सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियाँ रामा
हरि हरि मोहन भए कुबरी के सँघाती रे हरी।
छोड़ि घर बार अब भसम रमाओ रामा
हरि हरि अब नहिं ऐहैं सुख की राती रे हरी।
अपने पियरवा अब भए हैं पराए रामा
हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी।

—स्फुट कविताएँ, ४९

यह स्त्रियों के गाने की कजली है। स्त्रियाँ प्रायः ऊटपटांग कजलियाँ गाया करती थीं, भारतेंदु बाबू ने चाहा कि ऊल जलूल न गाकर वे भगवान का गुणानुवाद करें तो अच्छा होगा। इसीलिए उन्होंने कृष्ण जीवन से संबंध रखने वाली कजलियों की रचना की।

(३) राष्ट्रीय—

टूटै सोमनाथ के मंदिर, केहू लागै न गोहार
दौरो दौरो हिंदू हो सब, गौरा करैं पुकार
की केहू हिंदू कै जनमल नाहीं, की जरि भैलैं छार
की सब आजे धरम तजि दिहलैं भैलैं तुरुक सब इकबार
केहू लगल गोहार न, गौरा रोवैं जार-बिजार
अब जग हिंदू केहू नाहीं, झूठे नामैं कै बेवहार

—वर्षा विनोद ५०

भारतेंदु बाबू की राष्ट्रीयता इतनी बढ़ चुकी थी कि वे राष्ट्रीयता के इस प्रचार से अपने को न रोक सके और उन्होंने कजलियों को भी इस प्रचार का माध्यम बनाया।

इन कजलियों की भाषा जन साधारण की भाषा के अत्यंत निकट है और बनारसी बोली की इन पर विशेष छाप है।

२. होली

'होली' और 'मधु मुकुल' का वर्ण्य विषय होली-वसंत है। इन पुस्तकों की अधिकांश रचनाएँ भी होली हैं जो फाल्गुन में गाई जाती हैं। इन होलियों की संख्या सौ से भी अधिक है। कजलियों की ही तरह, होलियों को भी उन्हीं तीन विभागों में बाँटा जा सकता है। भारतेंदु की अधिकांश होलियाँ भक्ति संबंधी हैं—

हम चाकर राधा रानी के
ठाकुर श्री नँदनंदन के, वृषभानु लली ठकुरानी के
निरभय रहत बदत नहिं काहू, डर नहिं डरत भवानी के
'हरीचंद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के

—होली ११.

दूसरी कोटि की रचनाएँ विशुद्ध शृंगार की हैं। इनमें कवि ने आत्माभिव्यक्ति की है। इनकी भी संख्या प्रचुर है और प्रथम वर्ग की रचनाओं से कम नहीं है—

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी
इन चोरन मेरो सरबस लूट्यो, मन लीने जोरा जोरी
छोड़ि देइ किन बँद चोलिया पकरैं चोर हम अपनो री
'हरीचंद' इन दोउन मेरी नाहक कीनी चित चोरी

—स्फुट कविताएँ ६९.

भारतेंदु की राष्ट्रीय होलियाँ केवल दो हैं। ये है मधु मुकुल संख्या ९, ४७। इन दोनों में भारत की दयनीय दुर्दशा पर शोक प्रकट किया गया है।

जुरि आए फाँके मस्त होली होय रही
घर में भूँजी भाँग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त
होली होय रही।
महँगी परी, न पानी बरसा, बजरौ नाहीं सस्त
धन सब गवा, अकिल नहिं आई, तो भी कंगल मस्त
होली होय रही।

परबस कायर क्रूर आलसी अंधे पेट-परस्त
सूझत कुछ न बसंत माँहि, ये भे खराब औ खस्त
होली होय रही ।

—मधु मुकुल ९.

बनारसी होलियों के अतिरिक्त भारतेंदु ने एकाध व्रज की होली भी लिखी है, यथा—

अरे गोरी जोबन मद इठलाती
चलै गज मस्त सी चाल
अरे गोरी गिनै न काहू, है मदमाती
फिरत उतानी बाल
अरे गोरी मत इतनो गरबावै
यह ब्रज टेढ़ो गाँव
अरे गोरी अबहिं छैल ह्वइ आवै
मोहन जाको है नाँव
अरे गोरी गर लावै मनमानो करि
मद तेरो देइ उतार
अरे गोरी 'हरीचंद' सँग लीने
लँगर छैल लगवार

—मधु मुकुल ११.

जिस प्रकार होली के अंतिम दिन शुभ कामना की होली गाई जाती है कि होली फिर फिर से आवे और इस द्वार पर सदैव आनंद रहे, उसी प्रकार भारतेंदु जी ने 'मधु मुकुल' और 'होली' की अंतिम होली यों लिखी है—

नित नित होरी ब्रज में रहौ
बिहरत हरि सँग ब्रज जुवतीगन सदा अनंद लहौ
प्रफुलित फलित रहौ वृंदावन मधुप कृष्ण गुन कहौ
'हरीचंद' नित सरस सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ

३. बारहमासा

बारहमासा के अध्ययन से पता चलता है कि यह एक प्रकार का विरह काव्य है जिसमें विरहिणी के बारहो महीने की व्यथा का वर्णन होता है। सबसे पहला बारहमासा जो हिंदी साहित्य में मिलता है वह जायसी के 'पदमावत' में है। इसमें रतनसिंह के सिंहल चले जाने के पश्चात् उसकी

रानी नागमती की वियोग गाथा का वर्णन है। बारहमासा एक लोकगीत है और प्रायः बरसात में गाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोकगीतों की इसी परंपरा के अनुकरण अनुसरण पर जायसी ने अपना प्रसिद्ध बारहमासा बनाया। जायसी ग्रंथावली की भूमिका में किसी स्थान पर शुक्ल जी ने लिखा है कि कोई फकीर जायसी के इस बारहमासे को गा गाकर भीख माँगा करता था और उसी फकीर के मुँह से प्रथम बार इसको सुनकर अमेठी के राजा को जायसी के व्यक्तित्व एवं अस्तित्व का पता चला। मुसलमान कवियों, विशेषकर निर्गुण सम्प्रदाय की प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों द्वारा इस रूप का ग्रहण अधिक हुआ है। अखौरी गंगा प्रसाद द्वारा संपादित 'हिंदी के मुसलमान कवि' नामक काव्य संग्रह में कई बारहमासे संकलित हैं। बारहमासा का प्रयोग इन सूफी कवियों ने इसलिए अधिक किया क्योंकि इस रूप के द्वारा वे आत्मा के विरह को अत्यधिक सफलता के साथ अंकित कर सकते थे। अस्तु, भारतेंदु जी ने भी दो बारहमासे लिखे हैं। ये दोनों 'वर्षा विनोद' में हैं। इनका छंदांक ६१, ११५ है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बारहमासे प्रायः बरसात ही में गाए जाते हैं, इसलिए इनका प्रारंभ 'असाढ़' से ही होता है, क्योंकि असाढ़ में ही वर्षा का प्रारंभ होता है; 'अद्रा' नक्षत्र प्रायः इसी महीने में लगता है, और पहला पानी प्रायः इसी नक्षत्र में बरसता है। इस पुरानी पद्धति पर ही चलकर भारतेंदु के दोनों बारहमासे असाढ़ से ही प्रारंभ होते हैं। दोनों में तेरह तेरह छंद हैं। प्रत्येक छंद में एक एक महीने का वर्णन है, अंतिम छंद उपसंहार रूप है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बारहमासा निर्गुनियों का सुंदर अस्त्र है। इन रचनाओं में भी रहस्यवाद की किंचित झलक मिल ही जाती है।

> सखि जेठ में दिन भयो दूनो, कटत कोऊ विधि नहीं
> बन पात पातन ढूँढ़ि हारी, नहिं मिले प्यारे कहीं
> पाती न पाई श्याम की सखि बरस सब योंही गई
> बिनु श्यामसुंदर सेज सूनी देखके व्याकुल भई
>
> इमि खोजि बारहमास पियको हारि भामिनि भौनही
> धरि रूप जोगिनि को रही, औलंब करि इक मौनही
> 'हरिचंद' देख्यो जगत को सब एक पिय मोहन मई
> बिनु श्यामसुंदर सेज सूनी देखके व्याकुल भई
>
> —वर्षा विनोद ६१.

द्वितीय पंक्ति से स्पष्ट है कि विरहिणी ने बन के पत्ते पत्ते में अपने प्यारे को ढूँढ़ा—किसी साधारण प्रियतम को पत्ते-पत्ते में ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं—पत्तों में छिपने वाला प्रियतम कोई असाधारण हस्ती होगा। सप्तम पंक्ति से और भी स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रियतम कौन है—यह वह प्रिय है जो संपूर्ण जगत में व्याप्त है—

सिया राम मय सब जग जानी
करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी

—तुलसी

और तब उस विरहिणी को संतोष मिल गया।

इसी प्रकार दूसरे बारहमासे का अन्तिम पद है—

बारहमास पिया बिन खोए रोइ रोइ हारे
बन-बन पात-पात करि ढूँढा मिले नहिं प्यारे
मेरे प्रानों के रखवारे
'हरीचन्द' मुखड़ा दिखलाओ' आँखों के तारे
पीर अब सही नहीं जाती
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती

यहाँ भी द्वितीय पंक्ति रहस्यवाद की ओर मूक संकेत कर रही है। पत्ते-पत्ते में प्रिय को ढूँढ़ने की बात से मुझे अपने यहाँ के कजली के एक शायर की दो पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

पात पात में पता पती का पाती साँवर गोरिया
फिर क्यों कहती बिना पती मर जाती साँवर गोरिया

पत्ते-पत्ते में प्रियतम का निवास है। इसका प्रमाण निम्नांकित पंक्तियों से भी लग जाता है—

जंगल जाये, पात जिनि तोरे, जिनि बिरछा संताये
(जंगल जाना, पत्ते मत तोड़ना, न तो वृक्षों को संताप देना)
पात-पात में रमता साहेब, झुकि-झुकि सीस नवाये
(पत्ते पत्ते में साहब रमता है, झुक-झुक कर उसे शीश नमित करना)

यह भजन मेरे पिता जी अक्सर गाया करते थे। अस्तु, पत्ते-पत्ते में प्रियतम को ढूँढ़ने की एक निर्गुण-परम्परा सी हमारे सम्मुख है, और उस परम्परा का यह रहस्यवादी रूप भारतेन्दु में भी परिलक्षित है।

पहले बारहमासे के प्रत्येक छन्द में चार-चार चरण हैं और चौथा चरण सभी का एक है। इस प्रकार महीने के वर्णन के लिए कवि के पास केवल तीन

पंक्तियाँ रह जाती हैं। दूसरे बारहमासे के प्रत्येक छंद में छह छह चरण हैं और छठों चरण सब का एक है। इसमें पाँच पंक्तियाँ एक मास के वर्णन के लिए मिल जाती हैं। इस प्रकार किसी भी महीने का वर्णन दूसरे बारहमासे में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक है। इसके अतिरिक्त दोनों बारहमासों में अनेक बातें, अनेक शब्द तक, एक से या एक ही हैं। उदाहरण के लिए दोनों का कातिक वर्णन यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

(१) कातिक पुनीत नहाइ सब दै दीप उजियारी करें
हम प्रान प्रिय बिनु बिकल बिरहागिनि दिवारी सी जरैं
अँधियार पिय बिनु हिए, चौपड़ कौन हँसि-हँसि खेलई
बिनु श्याम सुन्दर सेज सूनी देख के व्याकुल भई

(२) कातिक मास पुनीत जानि सब न्हाती वृजनारी
मानि दिवाली दीप-दान दे करती उजियारी
पिया बिन मोरे अँधियारी
भई वियोगिन व्याकुल मैं सब रैन चैन हारी
बिपति यह सही नहीं जाती
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती

इन दोनों में कातिक 'पुनीत' है, व्रजबालाएँ दोनों में यमुना स्नान करती हैं और दीप-दान करके उजाला करती हैं और साथ ही दोनों के लिए—

'घर घर में दिवाली है, मेरे घर में अँधेरा'

पहला बारहमासा २८ मात्राओं के हरिगीतिका छन्द में है। इसमें सोलह और बारह मात्राओं पर विश्राम होता है, अन्त में लघु और गुरु होते हैं, ५ वीं, १८ वीं १९ वीं तथा २६ वीं मात्राएँ लघु होती हैं। प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं और प्रत्येक दो चरणों का तुक मिलता है। इस बारहमासा के प्रत्येक छन्द का चौथा चरण एक ही है, जो टेक की तरह प्रयुक्त हुआ है।

द्वितीय बारहमासा के प्रत्येक छन्द में छह चरण हैं जिनमें प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ एवं षष्ठ चरण समान हैं। इनमें १४, १२ के विराम से २६, २६ मात्राएँ हैं; तृतीय एवं पञ्चम चरण में केवल १५, १५ मात्राएँ हैं। इस प्रकार के छन्द विधान के लिए भारतेन्दु बाबू को किसी आलोचक ने कभी नहीं कोसा। इसका एक कारण है—उन्होंने जो कुछ किया, अपने को एक नियम में बाँध कर किया। प्रथम चार चरणों का तुक एक है और अंतिम दो चरणों का दूसरा। अंतिम चरण टेक है, जो प्रत्येक छन्द के अंत में आता है।

इन दोनों बारहमासों की भाषा अत्यन्त सरल एवं सरस तथा प्रसाद गुण

पूर्ण है। अलंकारों से उसे बोझीला नहीं बनाया गया है। अनुप्रास तो अपने आप आया ही करते हैं, कोई प्रयत्नसाध्य अलंकार यहाँ नहीं दीख पड़ते; क्योंकि रोते समय सोच-सोच कर प्रयत्न नहीं किया जाता, सिसकी अपने आप फूटती है।

४. लावनी

वारहमासे की ही भाँति लावनी भी निर्गुण काव्य परम्परा की देन है। भारतेन्दु काल में लावनीबाजों के दंगल हुआ करते थे, जिनमें लावनियाँ लड़ा करती थीं। लावनियाँ लिखकर भारतेन्दु जी ने लोक काव्य की इस धारा में भी योग दिया। लावनियों के ये दङ्गल भी बरसात में ही हुआ करते थे। 'फूलों का गुच्छा' नामक पुस्तक १३ लावनियों का संग्रह है। ग्यारह लावनियाँ 'प्रेम तरंग' में है। प्रेम प्रलाप में २, मधु-मुकुल में १ एवं वर्षा विनोद में २लावनियाँ हैं सब मिलाकर ए २९ हैं।

भाषा की दृष्टि से हम इन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं—उर्दू की लावनियाँ एवं हिन्दी की लावनियाँ। फूलों का गुच्छा की १३ लावनियाँ तथा प्रेम तरंग की ७९, ८३, ८४, ८५, ८६, ८८ संख्यक ६ लावनियाँ उर्दू में हैं, शेष १० हिन्दी में। उर्दू लावनियों के तुक ठीक नहीं—भूला, बना, पाया, दिखलाया का तुक मिलाया गया है (फूलों का गुच्छा २)। बतलाता, पड़ा हर जा, क्या, कहता है, किसका है (फूलों का गुच्छा १)। ये सब तुक उर्दू प्रणाली पर हैं केवल अलिफ़ (ا) का तुक मिलाया गया है। कहीं कहीं तो दो चरणों की गति भी एक सी नहीं—

> तुझे कोई कावे में हाज़िर कोई दैर में बतलाता
> भूले हैं सब, अक्ल में बेशक इनके फर्क पड़ा
>
> —फूलों का गुच्छा २

दूसरी पंक्ति का उत्तरार्द्ध सदोष है। इसी प्रकार नीचे की दो पंक्तियों में भी दूसरी पंक्ति सदोष है—

> कहाँ गई वह बातें प्यारी तेरी ऐ दिलदार
> कहाँ गया वो तुम्हारा आगे का सा मुझपर प्यार
>
> —फूलों का गुच्छा ३

इन उर्दू लावनियों में एक बात ध्यान देने की है—ये सभी की सभी निर्गुण परंपरा का पालन करती हुई रहस्यवादी हैं। हमें उर्दू की इन सदोष लावनियों से कुछ लेना देना नहीं। हमें हिन्दी की इन १० लावनियों से ही सरोकार है:—

प्रेम तरंग—८०,८१,८२,८७,८९
प्रेम प्रलाप—५४,५६
मधुमुकुल—५६
वर्षा विनोद—६, ६०

वर्षा विनोद की दोनों लावनियों को छोड़ शेष आठ २२ मात्राओं के सम छंद में लिखी गई हैं। १०, १२ पर विराम है, अन्त में दो गुरु हैं। प्रारम्भ में दो पंक्तियों का टेक है, फिर छह छह चरणों के छन्द, जिनमें छठीं पंक्ति टेक की पुनरावृत्ति। वर्षा विनोद की दोनों लावनियों का छन्द-विधान दूसरे बारह-मासा के छन्द सा है अर्थात् २६,२६,१५,२६,१५,२६ मात्राओं के छह चरण; लम्बे चरणों में १२, १४ पर विराम; चरण १, २, ३, ४ का तुक एक और पंचम तथा षष्ठ चरण का तुक दूसरा।

सभी रचनाएँ कृष्ण से सम्बन्ध रखती हैं, निर्गुण ब्रह्म से इनका कोई लगाव नहीं। प्रेम प्रलाप ५४ में दूलह कृष्ण का रूप वर्णन है, ५६ में कृष्ण की दूती राधा को कुंज-स्थित आकुल कृष्ण से मिलाने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। मधुमुकुल ५६ में राधा कृष्ण फाग खेल रहे हैं। वर्षा विनोद की दोनों लाव-नियों में विरह प्रधान है, जिसमें वर्षा ऋतु का भी उद्दीपन विभाव की दृष्टि से अंकन हुआ है। प्रेम तरङ्ग की पाँचों लावनियाँ विरहिणी ब्रजबालाओं के हृदयोद्गार हैं।

इन सबकी भाषा खड़ी बोली है, जो मँज नहीं पाई है। खड़ी बोली की दृष्टि से भाषा लँगड़ाती चलती है। वस्तुतः उस समय लावनियों की जो प्रचलित भाषा थी उसी में ये लावनियाँ लिखी गई हैं। भारतेंदु बाबू ने इस बात का विचार नहीं किया कि वे खड़ी बोली में रचना कर रहे हैं। ये रचनायें प्रसाद-गुण-सम्पन्न हैं और सरलता इनका आभूषण है।

उदाहरण-स्वरूप 'प्रेम तरंग' से एक लावनी उद्धृत की जा रही है। भारतेंदु बाबू ने इसे सपने में बनाया था।

मोहिं छोड़ि प्रान-पिय कहँ अनत अनुरागे
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे
रहे एक दिन वे जो हरि ही के सँग जाते
वृंदावन कुंजन रमत फिरत मदमाते
दिन रैन श्याम सुख मेरे ही सँग पाते
मुझे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते
सोई गोपीपति कुबरी के रस पागे
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।१।

कहँ गई श्याम की वे मनहरनी बातैं
वह हँसि हँसि कंठ लगावनि करि रस घातैं
वह जमुना तट नव कुंज कुंज द्रुम पातैं
सपने सी भई अब वे बिहरन की रातैं
सहि सकत न कठिन वियोग अगिन तन दागे
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।२।

पहिले तो सुंदर मोहन प्रीति बढ़ाई
सब ही बिधि प्यारे अपनी करि अपनाई
सुख दै बहु भाँतिन नित नव लाड़ लड़ाई
अब तोड़ि प्रीति मोहिं छोड़ि गए ब्रजराई
संजोग रैन बीतत वियोग दुख जागे
अब उन विनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।३।

क्या करूँ सखी कुछ और उपाय बताओ
मेरे पीतम प्यारे मुझसे आन मिलाओ
जिय लगी बिरह की भारी अगिन बुझाओ
मैं बुरी मौत मर रही मिलाइ जिलाओ
'हरीचंद' श्याम सँग जीवन-सुख सब भागे
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ।४।

—प्रेम तरंग ८७.

५. गाली

जेवनार के समय स्त्रियां समधी और दूलह आदि को गाली गाती हैं। भारतेंदु जी ने भी दो रसीली गालियाँ लिखी हैं। इनकी विस्तृत समीक्षा परिहास-काव्य के अंतर्गत की जा चुकी है।

६. सेहरा

ग्रीष्मावकाश में अनेक बारातों में मंगलामुखियों के मंगल-मुख का दिव्यादिव्य दर्शन प्राप्त होता है। उनका पहला गीत प्रायः सेहरे का होता है। सेहरे को बन्ना भी कहते हैं। प्रायः ये गीत अत्यंत साधारण होते हैं। अच्छी एवं शिक्षित वारांगनाओं के मुख से कभी कभी गालिब और जौक के सुप्रसिद्ध सेहरे, जो उन्होंने बहादुरशाह के बेटे के विवाह के अवसर पर लाग डाँट में कहे थे, सुनाई पड़ जाते हैं। पर इनसे हिंदी साहित्य के प्रेमी किसी बाराती की तृप्ति नहीं होती। अपने मन को इस छोटी सी कमी पर क्षोभ होता है। किसी

भी अच्छे हिंदी कवि ने, साधारण कवि ने भी नहीं, सेहरा लिखने का प्रयत्न नहीं किया। परंतु भारतेंदु बाबू एक कुशल लोक-गीतिकार थे। जहाँ उन्होंने कजली, होली, बारहमासे, एवं लावनियाँ लिखीं, वहाँ उन्होंने एक सेहरा भी लिखा। यह सेहरा प्रेम-प्रलाप की ५३ वीं कविता है। यह अत्यंत कलापूर्ण, और सभ्यता सुरुचि एवं हमारे धर्म की आकांक्षाओं को लिए हुए है:—

बना मेरा ब्याहन आया वे
बना मेरा सब मन भाया वे
बना मेरा छैल छबीला वे
बना मेरा रंग रँगीला वे
बनरा रँगीला रँगन मेरा सबन के दृग छावना
सुंदर सलोना परम लोना श्याम रंग सुहावना
अति चतुर चंचल चारु चितवन जुवति चित्त चुरावना
ब्याहन चला रँग-रस-रला जसुमति लला मन भावना
बना के मुख मरवट सोहै वे
बना देखत मन मोहै वे
बना केसरिया जामा वे
बना लखि मोहत कामा वे
लखि काम मोहै स्याम छवि पर लखत सुंदर जेहरा
सिर जरकसी चीरा झुकाए खुला तिस पर सेहरा
कटि ललित पटुका बँधा सूहा सुभग दोहरा तेहरा
जिय में हमारी नवल दुलहिन-हेत धरे सनेहरा
बना के नैना बाँके वे
बने दोनों मद छाके वे
बना की भौंह कमानै वे
बनी का हिअरा छानै वे
छानै बनी का नवल हिअरा भौंह बाँकी प्यार की
जुलफै बनी उलफै जिया की हिलत मोहन मार की
कर सुरख मेंहदी, पग महावर, लपट अतर अपार की
जिय बस गई सूरत निवानी दूलहे दिलदार की
बना मेरा सब रस जानै वे
बना प्रीतहि पहिचानै वे

बना चतुरा रस-बादी बे
बनी-रस-अधर-सवादी बे

रस अधर स्वादी बनी का अँग-अङ्ग रस कस के भरा
जिय प्रेम मानै, नेह जानै सकल गुन आगर खरा
बिधि मदन मानी, छवि गुमानी, नवल नेही नागरा
निधि रसिक की 'हरिचंद' सरवस नंद-बंस उजागरा

—प्रेम प्रलाप ५३.

७. चैता

होली समाप्त होने पर चैत के महीने में ये गीत गाये जाते हैं। होली के अन्तिम दिन, ढुँढ़ेरी को ही इनका प्रारम्भ कर दिया जाता है। ये लघु गीत अत्यन्त मादक होते हैं।

नैन फकीरिन हो रामा अपने सैयाँ के करनवाँ
रूप भीख माँगन के कारन छानि फिरत बन बनवाँ
रूप दिवानी, कल न परत कहुँ, बाहर कबहुँ अँगनवाँ
'हरीचंद' पिय-प्रेम-उदासी छोड़ि धाम धन जनवाँ

—मधु मुकुल ५४.

'सती प्रताप' में चार अत्यन्त सुन्दर चैते हैं।

फूलन लगे राम बन नवल गुलबवा
फूलन लगे राम—
महुआ फूले, आम बौराने,
डारहिं डार भँवरवा झुलन लगे राम

—सती प्रताप.

८. कुछ अन्य लोक-गीतों के उदाहरण

ठुमरी—

सजन तोरी हो मुख देखे की प्रीत
तुम अपने जोबन मद माते कठिन बिरह की रीति
जहाँ मिलत तहाँ हँसि हँसि बोलत, गावत रस के गीत
'हरीचंद' घर घर के भौंरा, तुम मतलब के मीत

— { प्रेममालिका ९७
{ प्रेम तरंग ३२

पूरबी—

(१) देखो बीत चल्यो दिन प्यारे आइ गई रतियाँ हो रामा
दीपक बरे, निकस चले तारे हो, हिलत नाहीं पतियाँ हो रामा
दासिन महलन सेज बिछाई हो, मान भई मतियाँ हो रामा
काम छोड़ि घर फिरे सबै नर हो, लगीं तिय छतियाँ हो रामा
—कर्पूर मंजरी.

(२) अजगुत कीन्हीं रे रामा
लगाय काँची प्रीति गए परदेसवाँ, अजगुत कीन्हीं रे रामा
बारी रे उमिरि मोरी, नरम करेजवा, बिपत नई दीन्ही रे रामा
'हरीचंद' बिन रोइ मरों रे, खबरियौ न लीन्हीं रे रामा
—प्रेम तरंग ५४.

खेमटा—

श्याम सलोने गात मलिनियाँ
बड़े बड़े नैन, भौंह दोऊ बाँकी, जोबन सों इठलात
सुनत नहीं कछु बात कोऊ की, राधे के ढिग जात
'हरीचंद' कछु जान परे नहिं, घूँघट मैं मुसकात
—प्रेम तरंग ४.

झिझोंटी—

रँगीले रँग दे मेरी चूनरी
स्याम रंग से रँग दे चुनरिया 'हरीचंद' उनरी
—प्रेम तरंग ११.

दादरा—

सैयाँ बेदरदी दरद नहिं जानै
प्रान दिए, बदनाम भए, पर नेक प्रीति नहिं मानै
'हरीचंद' अलगरजी प्यारा, दया नहीं जिय आनै
—प्रेम तरंग १४.

२२

निबन्ध काव्य

भारतेन्दु ने हिन्दी में निबन्ध काव्य की प्रणाली चलाई। किसी विषय पर सम्यक रूप से तथा सुसंबद्ध रूप से लगातार कई छन्दों में रचना को निबन्ध-काव्य कहेंगे। अँगरेजी में इस प्रकार के निबन्धों का अभाव नहीं है, कवि पोप के दो बहुत प्रसिद्ध निबंध हैं—'एसे आन मैन' (Essay on Man) तथा 'एसे आन क्रिटिसिज्म' (Essay on Critisism)। इनमें से पिछले का अनुवाद भी हिन्दी में स्वर्गीय रत्नाकर जी द्वारा 'समालोचनादर्श' नाम से हुआ है। हिन्दी में वस्तुतः अभी तक मुक्तकों का ही रवाज था। एक विषय पर कई कई छन्द सुसम्बद्ध रूप से नहीं लिखे जाते थे।

भारतेन्दु के निबन्ध काव्य कई प्रकार के हैं। (१) राजभक्ति संबंधी—श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र, प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता, मुँह दिखावनी, श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन, भारत भिक्षा, मनोमुकुल माला, भारत वीरत्व, विजयिनी विजय-वैजयंती। (२) देशभक्ति सम्बन्धी—प्रबोधिनी, हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान, (३) प्रकृति सम्बन्धी—प्रात समीरण, (४) विविध—बकरी विलाप, हिंडोला, होली।

शैली के अनुसार निबन्ध कई प्रकार के होते हैं, यथा भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक एवं व्याख्यात्मक। कविता में लिखे गए निबन्धों को भावात्मक हो ही जाना पड़ता है—अतएव भारतेन्दु के अधिकांश निबन्ध काव्य भावात्मक हैं, पर निबन्ध होने के नाते उनमें विचार भी हैं। प्रात समीरण पूर्ण रूपेण भावात्मक है; बकरी विलाप भाव-प्रधान होते हुए भी विचारों को लिए हुए है; 'हिन्दी की उन्नति' सम्बन्धी निबन्ध तो वस्तुतः व्याख्यान ही है, जिसे भारतेन्दु बाबू ने प्रयाग में हिन्दी वर्द्धिनी सभा के सम्मुख दिया था। हिंडोला तथा होली विवरणात्मक हैं।

दोहे भूमिका सम्बन्धी है। ये सात दोहे शरद ऋतु का आनन्द-प्रद वातावरण प्रस्तुत करते हैं—

सरद निसा, निरमल दिसा, गरद रहित नभ स्वच्छ
सबके मन आनँद बढ़यो, लखि आगम दिन अच्छ १
पित्र पक्ष को जानि कै, ब्राह्मन-मन सानंद
निरखहिं आश्विन मास सब, ज्यों चकोरगन चंद २
लखि आगम नवरात को, सबको मन हुलसात
लखन रामलीला ललित, सजि सजि सबही जात ३
छुट्टी भई अदालतन, आफिस सब भए बंद
फिरे पथिक सब भवन निज, धरि धरि हिए अनंद ४
बंगालिन के हूँ भयो, घर घर महा उछाह
देबी-पूजा की बढ़ी, चित्त चौगुनी चाह ५
नाच लखन मद-पान को, मिल्यो आइ सुभजोग
दुरगा के परसाद सों, मिलिहैं सबही भोग ६
कोउ गावत कोऊ हँसत, मंगल करन विचारि
आगत पतिका बनि रहीं, परदेसिन की नारि ७

एक ओर तो कवि ने यह आनंदप्रद वातावरण प्रस्तुत किया है, दूसरी ओर अत्यंत करुण बकरी है, जिसके बच्चे देवी को बलि होने वाले हैं—

ऐसे आनँद के समय, बकरी अति अकुलाय
निज सिसु-गन लै गोद में, करत दीन बनि हाय ८

इसके आगे मुख्य निबंध प्रारंभ होता है, जिसमें बकरी विलाप करती है। इस विलाप के भी कई अंग हैं, जो विभिन्न अनुच्छेदों की भाँति हैं—प्रारंभ में बकरी का विशुद्ध विलाप है—

घोर सरद साँपिनि समै, मोसों दुखिया कौन
जाके सुत सब नासिहैं, बलिदायक अघ-भौन ९

जो शरद ऋतु ऊपर की पंक्तियों में निरमल थी, आनंद बढ़ाने वाली थी, वही यहाँ घोर साँपिनी हो गई है।

माता को सुत सो नहीं, प्यारो जग में कोय
ताकैं परम वियोग में, क्यों न मरैं हम रोय १०
जिनके सिसु है कै मरें, ते जानहिं यह पीर
बाँझ गरभ की वेदना, जानै कहा सरीर ११

सच है— 'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो का जानै पीर पराई।'

दूध देत नित ,तृन चरत, करत न कछू बिगार
ताहूपै मम यह दसा, रे निर्दय करतार १३

बकरी ने यहाँ वही दलील दी है, जिसे नरहरि वंदीजन की गाय ने सम्राट अकबर के सामने दिया था।

बकरी ब्रह्मा से निवेदन करती है—

पुत्र-सोगिनी ही रह्यौ, जोपै करनो मोहिं
तो रे विधि मम रचन सों, कहा सिरान्यौ तोहिं १४
रे रे विधि सब विधि अविधि, आजु अविधि तैं कीन
बधि बधि कै मेरे सुअन, महा सोक मोहिं दीन १५

मनुष्यों के प्रति बकरी के विचार द्रष्टव्य हैं—

मानुस जन सों कठिन कोउ जंतु नाहिं जग बीच
बिकल छोड़ि मोहि पुत्र लै, हनत हाय सब नीच २०

बकरी के लिए हिंदू मुसलमान सब एक से हत्यारे हैं—

वृथा जवन कों दूसहीं, करि वैदिक अभिमान
जो हत्यारो सोइ जवन, मेरे एक समान २१

फिर बकरी अहिंसा की महिमा वर्णन करती है, परंतु संसार निर्बलों से अच्छी बातें भी नहीं सुनना चाहता—

धिक् धिक् ऐसो धरम जो हिंसा करत विधान
धिक् धिक् ऐसो स्वर्ग जो वध करि मिलत महान २२
शास्त्रन को सिद्धांत यह, पुण्य सु पर-उपकार
पर-पीड़न सों पाप कछु बढ़ि के नहिं संसार २३
जज्ञन में जप-जज्ञ बढ़ि अरु सुभ सात्विक धर्म
सब धर्मन सों श्रेष्ठ है, परम अहिंसा धर्म २४

फिर बकरी जगदीश्वर से प्रार्थना करती है कि क्या हम जग के बाहर हैं और आप हमारे ईश्वर नहीं हैं, जो हम पर आपके देखते अत्याचार हो रहे हैं—

हे विश्वंभर! जगत-पति, जग-स्वामी जगदीस
हम जग के बाहर कहा, जो काटत मम सीस २६

फिर जगदंबिका को स्त्री जान, उनसे प्रार्थना करती है—

जगन्मात ! जगदंबिके ! जगत-जननि जग-रानि
तुव सन्मुख तुव सुतन को सिर काटत क्यों जानि २७

अंत में उपसंहार स्वरूप यह दोहा है—जिसमें कवि ने स्वयं बकरी की ओर से उस करुणाकर से प्रार्थना की है—

एहि बिधि बहु बिलपत परी, बकरी अति आधीन
हे करुना-वरुनायतन, द्रवहु ताहि लखि दीन ३२

बकरी विलाप वस्तुतः अहिंसा के प्रचार के लिए लिखा गया है, फिर भी यह प्रचार-साहित्य में नहीं परिगणित किया जा सकता। कवि ने बकरी को भी वाणी दी है, इसलिए यह भाव-पूर्ण हो गया है। बकरी की शास्त्रीय दलीलें विचार प्रधान हैं। यह रचना एक वैष्णव के ही अनुकूल है।

२ हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान
(सं० १९३४)

इस व्याख्यान में ९८ दोहे हैं। प्रारंभ के चार दोहों में कवि ने अपनी प्रसन्नता, कृतज्ञता, विनम्रता प्रकट की है—

अहो अहो मम प्रान प्रिय, आर्य भ्रातृगन आज
धन्य दिवस जो यह जुड़ो, हिंदी हेत समाज १
तामें आदर अति दिए, मोहिं तुम निज जन जान
जो बुलवायो मोहिं इत, दर्शन हित सन्मान २
जदपि न मैं जानत कछू, सब बिधि सों अति दीन
तदपि भ्रात निज जानिकै, सबन कृपा अति कीन ३
भारत में यह देस धनि, जहाँ मिलत सब भ्रात
निज भाषा हित कटि कसे, हम कहँ आज लखात ४

ये चार दोहे भूमिका-स्वरूप हैं। इनके अनंतर भारतेंदु अपने मूल विषय पर आते हैं—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ५

सबसे पहले अपनी मातृ-भाषा की संस्कृत, पारसी और अंग्रेजी के ऊपर महत्ता प्रदर्शित की गई है, फिर कहा गया है कि माता जो शिक्षा पुत्र-पुत्रियों को बाल-काल में देती है, वही चिरस्थायी होती है। और माता केवल हिन्दी जानती हैं, इसलिए हमारे लिए हिन्दी सब भाषाओं की शिर-मौर है। पति ने अंग्रेजी फारसी पढ़ी है, पत्नी को केवल हिन्दी आती है। पति बाहर वालों को रिझा सकता है, अपनी स्त्री को नहीं; परिणाम स्वरूप गृहस्थी के सुखों का नाश हो जाता है। कबीर के शब्दों में—

खसम जो पूजै देहरा, भूत-पूजनी जोय
एकै घर में दो मता, कुसल कहाँ से होय २९

भारतेन्दु चाहते हैं कि सभी विद्याओं का प्रकाश हमारी हिन्दी में होना चाहिए—

विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहु भाषा माँहि प्रचार ३८

इस प्रसंग में भारतेन्दु अँगरेजों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं जो सर्व-ग्राही हैं, जिन्होंने तुलसी कृत रामायण का भी अपनी भाषा में अनुवाद कर रखा है। अनुवाद की महत्ता भारतेन्दु ने इस प्रकार प्रकट की है—

पै सब विद्या की कहूँ होइ जुपै अनुवाद
निज भासा महँ तो सबै, याको लहै सवाद ६८

जानि सकैं सब कछु सबहि, विविध कला के भेद
बनै बस्तु कल की इतै, मिटै दीनता खेद ६९

राजनीति समझैं सकल, पावहिं तत्व विचार
पहिचानैं निज धरम जो, जानैं शिष्टाचार ७०

दूजै के नहिं बस रहैं, सीखैं विविध विवेक
होइ मुक्त दोउ जगत के भोगैं भोग अनेक ७१

तासों सब मिलि छाड़िके दूजे और उपाय
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय ७२

भारतेन्दु चाहते हैं कि धर्म के भेद को समझने के लिए संस्कृत ग्रंथों का, शिष्टाचार सीखने के लिए फारसी का और कला-कौशल, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान सीखने के लिए अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद होना चाहिए।

भारतेन्दु के अनुसार निज-भाषा-उन्नति ही सब उन्नतियों की मूल है। इसलिए फूट बैर को छोड़, एकता से नाता जोड़, हमें अग्रसर होना चाहिए, तभी हम स्वतन्त्र हो सकेंगे।

भारतेन्दु की यह रचना राष्ट्रीयता की परम पोषिका है और भारतीय राष्ट्रीयता की अग्रदूती सी है। जन-जागरण के लिए ऐसी रचनाओं की परम आवश्यकता है।

परदेसी की वुद्धि अरु बस्तुन की करि आस
पर-बस ह्वै कब लौं कहो रहिहौ तुम ह्वै दास ७३

लहहु आर्य-भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन-खान ७४

३. प्रवोधिनी, (सं० १९३१)

इस रचना में २५ छप्पय व्यवहृत हुए हैं। इसमें भगवान को जगाया गया है जिससे वे शीघ्र ही भारत की दुर्दशा को आकर दूर करें। प्रथम छंद में भगवान के अनेक विशेषण युक्त नाम लेकर कहा गया है—'जागो' दूसरे तीसरे और चौथे छंदों में प्रभात का सरस वर्णन है।

दीप-जोति भइ मंद, पहरुगन लगे जँभावन
भई सँजोगिन दुखी, कुमुद मुद मुँदे सुहावन
कुम्हिलाने कच-कुसुम, वियोगिन लगि सचु पावन
भई मरगजी सेज, लगे सब भैरव गावन
तन अभरन-गन सीरे भए, काजर दृग बिकसित सजल
अधरन रस लाली साथ मुख पान स्वाद तजनो चहत ३

सोलहवें छंद तक यह कहा गया है कि विभिन्न प्रकार के लोग आपके जागरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, अब उठिए, देर न करिए। इस छंद तक यह रचना भक्ति प्रधान है। आगे के नौ छंदों में कवि पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हो जाता है और वह कह उठता है—

डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुझावहु, आलस त्यागो
अपुनो अपुनायो जानिकै, करहु कृपा गिरिवर-धरन
जागो बलि वेगहि नाथ अब, देहु दीन हिंदुन सरन १७

इन नौ छंदों में भारतेंदु की राष्ट्रीयता, उनका अतीत-गौरव के प्रति अत्यधिक अनुराग, भारत की वर्तमान दुर्दशा, कवि की अर्थ नीति आदि सब पर पूर्ण प्रकाश पड़ जाता है।

भारतेंदु काव्य में इस रचना का अत्यंत महत्व है।

२३

प्रकृति वर्णन

भारतेन्दु बाबू प्रकृत कवि हैं, पर वे प्रकृति के कवि नहीं हैं। वे सर्वत्र मानव-प्रकृति के कवि हैं। तब तक अंगरेजी कविता का प्रभाव हिंदी कविता पर नहीं पड़ पाया था। संभवतः भारतेंदु बाबू वर्ड्सवर्थ के काव्य से पूर्ण अपरिचित थे इसलिए विशुद्ध प्रकृति वर्णन उनमें अप्राप्य है। जहाँ कहीं भी वे प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन करने बैठे भी हैं, वहाँ अलंकारों के चक्कर में आ गए हैं। 'सत्य हरिश्चद्र' के अंतर्गत 'गंगा वर्णन' एवं 'चन्द्रावली' के अंतर्गत 'यमुना-वर्णन' प्रकृति के ऐसे ही अलंकृत वर्णन हैं, जहाँ संदेह और उत्प्रेक्षा की धूम है। शुक्ल जी के अनुसार कवि की प्रकृति प्रकृति के इन रूपों पर मुग्ध नहीं है, वह हट-हट जाती है।

भारतेंदु बाबू के पहले रीति कालीन कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन विभाव की दृष्टि से वर्णन किया था। प्रारंभ में भारतेंदु बाबू को भी प्रकृति इसी रूप में मिली और वसंत का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया:—

सखि आयो वसंत, रितून को कंत, चहूँ दिसि फूलि रही सरसों
बर सीतल मंद सुगंध समीर सतावनहार भयो गर सों
अब सुंदर साँवरो नंदकिशोर कहै 'हरिचंद' गयो घर सों
परसों को बिताय दियो बरसों, तरसों कब पायँ पिया परसों
—प्रेम माधुरी ९२.

'पावस' का भी एक मात्र कार्य उद्दीपन करना है—

गरजे घन, दौरि रहैं लपटाइ, भुजा भरिकै सुख पाती रहैं
'हरिचंद जू' भींजि रहै हिय में मिलि पौन चले मद जागी रहैं
नभ दामिनी के दमके सतराइ, छिपी पिय अंग सुहागी रहैं
बड़भागिनी वेई अहैं बरसात मैं, जे पिय कंठ सों लागी रहैं
—प्रेम माधुरी ८८.

भारतेंदु बाबू ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में ही नहीं देखा, वय वृद्धि के साथ ही उनका प्रकृति की ओर से यह रुख बदला और उन्होंने उसको आलंबन विभाव की दृष्टि से भी अपनाया। गंगा वर्णन, यमुना वर्णन में प्रकृति का रूप

विशुद्ध आलंबन विभाव की दृष्टि से है। परंतु जैसा कि कहा गया है, भारतेंदु बाबू के ये वर्णन भाव प्रधान न होकर अलंकार प्रधान हो गए हैं, इसलिए उनमें चित्र की संश्लिष्टता का अभाव है। उनकी इस प्रकार की रचनाओं के उदाहरण स्वरूप बृंदावन शोभा सम्बन्धी एक कवित्त उद्धृत किया जा रहा है—

बृंदावन सोभा कछु बरनि न जाय मोपैं
    नीर जमुना को जहँ सोहै लहरत सो
फूले फूल चारों ओर लपटै सुगंध तैसो
    मंद गंधवाह जिय तापहि हरत सो
चाँदनी में कमल कली के तरें बार बार
    'हरिचंद' प्रतिबिंब नीर बगरत सो
मान के मनाइबे को दौरि दौरि प्यारो आज
    नवल बधू के मानो पायन परत सो

—स्फुट कविताएँ, कवित्त १०.

'प्रात समीरन' भारतेन्दु बाबू की प्रकृति सम्बन्धी एक स्वतन्त्र रचना है, जो बँगला के पयार छन्दों में लिखी गई है। इसमें ८६ पंक्तियाँ हैं। यह कविता दो भागों में बाँटी जा सकती है। प्रथम ४६ पंक्तियाँ और अन्तिम ४० पंक्तियाँ। 'प्रात समीरण' पूर्वार्द्ध अत्यधिक अलंकृत है। प्रत्येक दो पंक्तियों में प्रातः समीरन को रूपक का कोई न कोई जामा अवश्य पहनाया गया है। वह सिंह, तुरंग, भौंर, गज, सज्जन, होरी का खिलार, साधु, महन्त, दाता, राजा, गुनी का अखाड़ा, मित्र-उपदेश, दूल्हा, धाय, प्रान तत्व, कपोत, भारवाही, स्नेह-स्पर्श, रेल, कवि-मन, कामिनी का पति सभी कुछ बारी बारी से है, यथा—

(१) विविध उपमा धुनि सौरभ को भौन
    उड़त अकास कवि मन किधौं पौन
(२) अंग सिहरात छूए उड़त अंचल
    कामिनी को पति प्रात पवन चंचल

इसका उत्तरार्द्ध अलंकृत नहीं है, यहाँ सीधा साधा वर्णन है। इसमें प्रभात के कार्य कलापों का विशद और अच्छा वर्णन है—यह वर्णन भी किसी देहात के प्रभात का नहीं है, यह नगर का प्रभात है; वह नगर भी सभी नहीं, केवल काशी—

जागैं नारी नर लगैं निज निज काम
पंछी चह चह बोलैं ललित ललाम
कोई भजै राम राम कोई गंगा न्हाय
कोई सजि वस्त्र अंग, काज हेत जाय
गावत प्रभाती बाजै मंद मंद ढोल
कहूँ करैं द्विजगन जय जय बोल
बजै सहनाई कहूँ दूर सों सुनाय
भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय

यह उस काशी के प्रभात का वर्णन है, जहाँ गंगा हैं, जहाँ स्नानार्थी चार बजे से ही 'काशी विश्वनाथ गंगा' करते हुए राजपथों को मुखरित करते हुए, सोनेवालों को अपने इस कोलाहल से जगाते हुए अग्रसर होते हैं, जहाँ ब्राह्ममुहूर्त में रसीली, सुरीली शहनाइयाँ बज उठती हैं। साथ ही यह तब की काशी का वर्णन है, जब विद्युत का प्रकाश नहीं फैला था—और म्यूनिसिपैलिटी का आदमी स्थान स्थान पर लालटेनें बुझाता फिरता था—

बुझी लालटेन लिए झुकि रहे माथ
पहरू लटकि रहे लंबो किए हाथ

जब मोटरों का अभाव था और अमीर लोग बग्घियों में बैठकर हवा खाने निकलते थे—

सड़क सफाई होत करि छिड़काव
बग्गी बैठि हवा खाते आवैं उमराव

नित्य के उपयोग की वस्तुएँ लाने वाले ग्रामीण जनों की टोलियों का भी वर्णन यहाँ है—

दही फल फूल लिए ऊँचे बोलैं बोल
आवत ग्रामीनजन चले टोल टोल

भारतेंदु बाबू को दो ऋतुओं से विशेष प्रेम है। ये हैं वर्षा और वसंत। इन ऋतुओं से संबंध रखनेवाली उनकी दो-दो काव्य पुस्तिकाएँ हैं। वर्षा से संबंध रखनेवाली कृतियाँ हैं, प्रेमाश्रु वर्षण और वर्षा विनोद; तथा वसंत से संबंध रखनेवाली रचनाएँ हैं—होली और मधु-मकुल। इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन ऋतुओं से संबंध रखनेवाली अन्य अनेक स्फुट रचनाएँ भी यत्र तत्र मिलती हैं। 'कार्तिक स्नान' में दीपावली का भी सुन्दर अलंकृत वर्णन है। भारतेंदु बाबू ने वर्षा और वसंत दोनो ऋतुओं में उपवन की छटा का मनोरम वर्णन किया है—

पावस में वृंदावन

सखी लखु यह रितु वन की शोभा
कुहकत कुंज कुंज में कोकिल लखिकै सब मन लोभा
नए नए वृक्ष, नए नए पल्लव, नए नए सब गोभा
नए नए पात, फूल फल नए नए, देत हिये में चोभा
सीतल चलत समीर सुहायो लेत सुगंध झकोर
तैसो सुख-घन उमड़ि रह्यो है, जमुना जू लेत हिलोर
नाचत मोर, सोर चहुँ ओरन, गुंजत अलि बहु भाँति
बोलत चातक सुक पिक चहुँ दिसि लखिके घन की पाँति
हरी हरी भूमि भरी सोभा सों देखत ही बनि आवै
जहँ राधा अरु माधव विहरत कुंजन छिपि छिपि आवै
वह सौदामिनि वह स्यामल घन वृंदा-विपिन बिहारी
जुगल चरन कमलन के नख पै 'हरीचंद' बलिहारी

प्रेमाश्रु वर्षण २४.

वसंत में वन

नवल वन फूली द्रुम बेली
लह लह लहकहिं, मह मह महकहिं, मधुर सुगंधहिं रेली
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई
आँचर उड़त बात-बस फहरत प्रेम धुजा लहराई
गूँजहिं भँवर, विहंगम डोलहिं, बोलहिं प्रकृति बधाई
पुतली सी जित तित तितलीगन फिरहिं सुगंध लुभाई
लहरहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी
लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहुँ कुलाहल भारी

—सती प्रताप

बादल में छिपते हुए चंद्रमा का बहुत सुंदर वर्णन देखिए—

देखि सखि चंदा उदय भयो
कबहूँ प्रगट लखात कबहुँ बदरी की ओट भयो
करत प्रकास कबहुँ कुंजन में छन छन छिपि छिपि जाय
मनु प्यारी मुख चंद देखि के घूँघट करत, लजाय

—प्रेमाश्रु वर्णन २७.

चंचल जल में चंद्रमा के पूर्णापूर्ण प्रतिबिंब का भी चित्रांकन भारतेंदु बाबू ने चंद्रावली के अंतर्गत यमुना वर्णन में अत्यंत सुंदर किया है:—

परत चन्द्र प्रतिबिंब कहूँ जलमधि चमकायो
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो
कबहुँ होत सत चंद, कबहुं प्रगटत, दुरि भाजत
पवन गवन बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि भारतेंदु में प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का अभाव न था, उनका उपयोग भी वे जानते थे। परंतु प्रकृति वर्णन की ओर उनका ध्यान अत्यधिक व्यस्त होने के कारण न जा सका।

वर्षा का अत्यंत सूक्ष्म वर्णन वर्षा-संबंधी दोनों लावनियों में हुआ है—

सूझै पंथ न कहीं, हाथ से हाथ न दिखलाता
एक रंग धरती अकास का, कहा नहीं जाता
किसी का बोल नहीं सुनाता
बूँद बजै टपटप मारग कोई नहिं जाता आता
सोए घर घर सब पट तानी
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी
सन सन करके रात खनकती झींगुर झनकारैं
कभी कभी दादुर रटकर जिय व्याकुल कर डारैं
साँप खँड़हर पर टनकारैं
गिरैं करारे टूट टूटके नदी छलक मारैं
पिया बिन सबही दुखदानी
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी

घन गर्जन के समय प्रिय परदेश जा रहा है, प्रिया की तत्कालीन व्याकुलता देखिए :—

अगगग अगगग अगगग घन गरजै
सुनि सुनि मोरा जिय लरजै
जुगुनूँ चमकै, बादल रमकै
बिजुरी दमकै झमकै तरजै
ऐसे समय चले परदेसवाँ
पिय नहिं मानत मोरी अरजै
ऐसन नहिं कोइ पटुका गहिकै
पिय 'हरिचन्दहि' जो बरजै

वर्षा विनोद, २

बरसात में मानिनियों का मान-भंग, विरहियों की प्रवर्द्धमान वेदना, मोर, दामिनी, नदी, नाले आदि सबका सुन्दर वर्णन भारतेन्दु-काव्य में मिलता है।

सावन में सखियाँ हिंडोले झूलती हैं। हिंडोले के अनेक पद भारतेन्दु की रचनाओं में उपलब्ध हैं। हिंडाला सम्बन्धी प्रायः १०० पंक्तियों की एक लम्बी रचना भी है। इसमें हिंडोले का अत्यन्त सूक्ष्म एवं संश्लिष्ट वर्णन किया गया है। संयोग वियोग सभी के चित्र यहाँ प्राप्त हैं। मेंह में भींगते हुए, एक दूसरे के गले लगे हुए, राधा कृष्ण का यह संयोग-चित्र अत्यन्त भव्य है :—

आजु तन भींजे बसनन सोहैं
देखि लेहु भरि लोचन सोभा जुगल अरी मन मोहैं
उघरे तन अनुरागहु उरके छिपे न जदपि लजौहैं
रति के चिन्ह जुगल तन बसनन ढँकेहु उघरि उलटौहैं
अंग प्रभा मनु बसन रुको नहिं प्रगटि खुली सब सौहैं
'हरीचन्द' हग भींजि रहे रुकि उड़ि न सकत ललचौहैं

—प्रेमाश्रु वर्णन ६.

जैसा कि कहा गया है भारतेन्दु वसन्त से भी अत्यधिक प्रभावित थे। परन्तु वसन्त की प्राकृतिक शोभा उनके लिए उतनी आकर्षक न थी जितना कि उसका उद्दीपक प्रभाव—

बन-बन आग सी लगाइ कै पलास फूले
सरसों गुलाब गुललाला कचनारो हाय
आइ गयो सिर पै चढ़ाय मैन बान निज
बिरहिन दौरि-दौरि प्रानन सम्हारो हाय
'हरीचन्द' कोइलैं कुहुकि फिरैं बन-बन
बाजै लाग्यौ जग फेरि काम को नगारो हाय
दूर प्रानप्यारो काको लीजिये सहारो अब
आयो फेरि सिर पै बसन्त बजमारो हाय

—प्रेम माधुरी ८९.

बसंत ऋतु के अंतर्गत होली का आकर्षण सर्वाधिक है। होली के विविध राग रंगों, हास विलासों, कुंकुम-केसर, फाग, होली की भीड़ भड़क्म, डफ आदि में भारतेंदु जी की मस्त प्रवृत्ति अत्यधिक रमती थी। इन सबका विशद वर्णन उन्होंने 'होली' और 'मधुमुकुल' में किया है—

बस करु अब ऊधम बहुत भयो
भींजि गई रँग सो मेरी सारी, अबीर गुलालन बसन छयो
झकझोरन मैं कर मेरो मुरक्यो, कंकन बाजू टूट गयो
'हरीचंद' तेरे पाँव परत, गारी मति दै, अपजस बहुत दयो

—होली ७७.

भारतेंदु बाबू ने प्रभात और संध्या का भी सुंदर बर्णन किया है। परंतु उनका संध्या-वर्णन प्रभात-वर्णन से अधिक सुंदर हुआ है। कर्पूर मंजरी में संध्या के तीन वर्णन हैं। उनमें से पूरबी राग में गाया हुआ यह गीत अत्यंत ललित है—

देखो बीत चल्यो दिन प्यारे
आइ गई रतियाँ हो रामा
दीपक बरे, निकस चले तारे हो
हिलत नाहीं पतियाँ हो रामा
दासिन महलन सेज बिछाई हो
मानमई मतियाँ हो रामा
काम छोड़ि घर फिरे सबै नर हो
लगीं तिय छतियाँ हो रामा

यहाँ पर भी मनुष्यों के कार्य-कलाप की ओर ही कवि का ध्यान है। संध्या की निरपेक्ष शोभा की ओर वह आकृष्ट नहीं है। वस्तुतः निर्जन प्रकृति भारतेंदु के लिए कोई अर्थ नहीं रखती—प्रकृति पुरुष के बिना निरर्थक है।

'प्रेमाश्रु वर्षण' के प्रारंभ में भी संध्या संबंधी तीन पद हैं। एक में संध्या का सुंदर रूप वर्णन करके दूती नायिका से कहती है—

'हरीचंद' इक तुव बिनु फीको सब मानत बलबीर

फिर वह उसे प्रोत्साहित करती है और उससे निधरक चलने की बात कहती है, क्योंकि अंधकार में अब उसे कोई न देख सकेगा—

सखी री साँझ सहायक आई
मेट्यो भय बैरी प्रकास को, सब कछु दीन दुराई
अवनि अकास एक भयो, मारग कहुँ नहिं परत दिखाई
सूने भए सबै थल, ब्रजजन घर मैं रहे दुराई
गरजि बुलावत तोहि चंचला, चमकत राह दिखाई
औरन के चकचौंधी लावत, तेरी करत सहाई
तैसेहि झींगुर झनकत नूपुर, जासों नाहिं सुनाई
वायु सुखद ता दिसि तेहि भेजत, तरु हिलि रहत बुलाई
बरसत नान्हीं बूँद हरन श्रम, कोकिल करत बधाई
'हरीचंद' चलि उत छिन भामिनि, रहु पिय अंकम लाई

—प्रेमाश्रु वर्षण २.

भारतेंदु का प्रकृति वर्णन बहुत उच्च कोटि का न हुआ हो, किंतु प्रकृति को भी उन्होंने काव्य का आलंबन बनाया यही क्या कम है ?

चतुर्थ खण्ड

शास्त्रीय-अध्ययन

२४

भाषा

भारतेन्दु की काव्य-भाषा प्रकृत है। कृत्रिमता उसे छू भी नहीं गई है। उसको अलंकृत करने के लिए कवि ने परिश्रम करना उचित नहीं समझा। इसीलिए उनकी रचनाएँ सरल एवं सरस हो सकी हैं। भारतेन्दु जी तद्भव शब्दों का प्रयोग खूब करते थे। तत्सम शब्दों के पास वे नहीं फटकते। प्राचीन काल के भुआल, बयन, चक्कवै, सायर, लोयन आदि जैसे अप्रचलित शब्दों का बहिष्कार कर भारतेन्दु बाबू ने काव्य की ब्रज भाषा का पूर्ण परिष्कार कर, उसे एक चलता एवं सर्व साधारण को बोधगम्य, निखरा रूप दे दिया। इसलिए उनकी कविता, विशेष कर उनके कवित्त सवैये सहज ही सर्वग्राह्य हो गए। उनकी भाषा का सहज रूप इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

(१) मारग प्रेम को को समुझै, 'हरिचन्द' यथारथ होत यथा है
 लाभ कछू न पुकारन में, बदनाम ही होन की सारी कथा है
 जानत है जिय मेरो भली विधि, और उपाय सबै बिरथा है
 बावरे हैं बृज के सगरे, मोहिं नाहक पूछत कौन बिथा है

इस सवैया में मार्ग, यथार्थ, व्यथा, वृथा के स्थान पर उन्होंने मारग, यथारथ, बिथा और बिरथा का प्रयोग ही समीचीन समझा है। इस प्रकार के सैकड़ों शब्द उनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं, यथा दरस, परमान, फागुन, दुरलभ, परकास, जुवति-जूथ, अगिन, कारन, गेह, थंभ, जोहिय, हरिचन्द, प्रान प्यारी, केस, अछत, फन, भँवर, पौन, मैन, नैन, श्रौन, पुरान, जग्य, ठाम, बिसराम, भाग इत्यादि।

(२) बृज के लता पता मोहिं कीजै
 गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै
 आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै
 श्री राधे राधे मुख यह बर 'हरीचन्द' को दीजै

—प्रेम मालिका ६७

(३) राज पाट हय गज रथ प्यादे बहुबिधि अन धन धाम सभी
 हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी

खाना पीना नाच तमाशा लाख ऐश-आराम सभी
जैसे बिंजन नमक बिना त्यों राम बिना बे-काम सभी

—स्फुट पृष्ठ ८६४.

भारतेन्दु बाबू को उर्दू के अत्यन्त प्रचलित, सर्व साधारण को बोधगम्य, सरल उर्दू शब्दों के ग्रहण से इनकार नहीं। ऊपर के उदाहरणों ही में नाहक, बदनाम, ऐश-आराम, बेकाम आदि शब्द उर्दू के हैं। उर्दू के और कुछ शब्द, जिनका व्यवहार हरिश्चन्द्र ने किया है, ये हैं—सलामी, औअल दर्जा, बहादुर, मुल्क, जीस्त, हराम, दम, तमाम, जलूस, नजर, दाग, दगा, गरीब, सूरत, मस्त, दिवानी, सुरख (सुर्ख), बहार, याद, खबर, बेदरदी, दरद, मुफुत, जुलफ (जुल्फ) इत्यादि।

कभी कभी अँगरेजी के शब्दों का भी प्रयोग भारतेन्दु काव्य में मिल जाता है, परन्तु ऐसा प्रयोग अधिकांश में हास्य रस की रचनाओं में ही हुआ है।

(१) क्रास बाथ इस्टार हुए महराज बहादुर नाम सभी
(२) टिकस पिया मोरि लाज को रखल्यो ऐसे बनो न कसाई
तुम्हें कैसर की दुहाई

—परिहासिनी

(३) लहँगा दुपट्टा नीक नहिं लागे
मेमन का गौन मँगाय नहिं देल्यो।

—परिहासिनी

(४) पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही
जब चुरुट है तो इलइची का खाना कैसा

—परिहासिनी

(५) ब्रांडी को अरु ब्रह्म को पहिलो अक्षर एक
तासों ब्राह्मो धर्म में यामें दोस न नेक

—वैदिकी हिंसा

(६) विष्णु वाहनी पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि
शैंपेन शिव, गौरी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि

—वैदिकी हिंसा

(७) होटल में मदिरा पियैं, चोट लगे नहिं लाज
लोट लए ठाढ़े रहत टोटल दैबे काज

—वैदिकी हिंसा

लोक गीतों में भारतेन्दु बाबू स्थानीय बनारसी शब्दों को भी नहीं भूलते। ये गीत सर्व साधारण में प्रचार के उद्देश्य से लिखे गए थे, इसलिए देशज शब्दों को इनमें प्रचुर स्थान दिया गया है—

(१) का करौं गोइयाँ अरुझि गईं अखियाँ
कैसे छिपाऊँ छिपत नहिं सजनी छैला मदमाती भईं मधु मखियाँ
साँवरो रूप देख परबस भईं इन कुल लाज तनिक नहिं रखियाँ
'हरीचंद' बदनाम भई मैं तो ताना मारत सब सँग की सखियाँ
—प्रेम तरंग १७.

(२) नैन फकीरिनि हो रामा अपने सैयाँ के करनवाँ
रूप भीख माँगन के कारन छानि फिरत बन-बनवाँ
रूप-दिवानी कल न परत कहुँ बाहर कबहुँ अगनवाँ
'हरीचंद' पिय-प्रेम-उपासी छोड़ि धाम धन जनवाँ

अँखियाँ, मधु-मखियाँ, रखियाँ, करनवाँ, बन-बनवाँ, अँगनवा, जनवाँ आदि पूर्वी प्रयोग हैं।

भारतेंदु बाबू ने कुछ स्तोत्रों की भी रचना की है। इनकी भाषा तत्सम पदावली से युक्त है। इनमें तद्भव शब्दों का उतना प्रयोग नहीं हुआ है—

जयति राधिकानाथ चंद्रावली-प्रानपति
घोष—कुल—सकल—संताप हारी
गोपिका-कुमुद—वन—चंद्र साँवर बरन
हरन बहु विरह आनंद कारी
त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृत वपु
विमल - वृंदा - विपिन भूमिचारी
गाय गिरिराज के हृदय आनँद करन
नित्य बिह्वल करन जमुनवारी
नंद के हृदय आनंद वर्धित-करन
भरनि जसुदा—मनसि मोद भारी
बाल क्रीड़ा-करन नंद मंदिर सदा
कुंज मैं प्रौढ़ लीला बिहारी
गोप सागर-रतन सकल गुन-गन भरे
कनित स्वर सप्त मुख मुरलिधारी
मंजु मंजीर पद कलित कटि किंकिनी
उरसि बनमाल सुंदर सँवारी

सदा निज भक्त संताप आरति हरन
करन रस-दान अपनो बिचारी
दास 'हरिचंद' कलि वल्लभाधीश ह्वै
प्रगट अज्ञात लीला बिहारी

—प्रेममालिका २१.

यह भाषा समास संयुक्त है। इसमें क्रिया पदों का प्रायः अभाव है। विशेषण पर विशेषण लदे चले आते हैं। कभी-कभी संस्कृत के शब्द रूपों तक का प्रयोग हुआ है, जैसे—'उरसि'। इस छंद में लिखी प्रायः सभी रचनाएँ चाहे वे स्तोत्र हो या अन्य, कुछ इसी प्रकार की पदावली में हैं—

आजु दुपहरी में श्याम के काम तू
बाम, छबि धाम भई नवल अभिसारिका
अतिहि कोमल चरन तपित धरनी धरन
गये कुम्हलाय मुख कमल सुकुमारिका
उरसि मुक्ताहार स्वेत सारी बनी
कहत कोमल बचन मनहुँ पिक सारिका
वदत 'हरिचंद' छल छंद एते किये,
कहाँ सीखी नई कोक की कारिका

—प्रेम मालिका ६६.

भाषा को श्रुति मधुर बनाने के लिए अनुप्रास, पुनरुक्तिवदाभास, वीप्सा, यमक आदि शब्दालंकारों का उचित प्रयोग हुआ है। भारतेंदु बाबू ने महावरों का भी सुंदर समावेश किया है। अन्य कवियों की रचनाओं की भाँति इनकी काव्य-भाषा में महावरों का अभाव नहीं है। कुछ उदाहरण लीजिए—

(१) करि याद पिया की हाय आंख भरि आई
(२) कह पायँन मिंहदी लगी जासों चल्यो न जाय
(३) तब मोहन हा हा खात करत मनुहारी
(४) यामें न और को दोष कछू, सखि चूक हमारी हमारे गरे परी
(५) 'हरिचन्द' न काहू को दोष कछू, मिलिहै सोई भाग मैं जो उतर्यो
(६) सबको जहाँ योग मिल्यौ वहाँ हाय, वियोग हमारे ही बाटे पर्यो
(७) नेह के वजाये बाज, छोड़ि सब लाज आज,
घूँघट उघारि ब्रजराज हेतु नाची मैं
(८) 'हरीचन्द' ब्रजचंद पिया पै अपनो तन मन वारैं
(९) सजन तेरी हो मुख देखे की प्रीति

(१०) 'हरीचन्द' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत
(११) वीरता याही में अटकी
(१२) याही हित नित कसे रहत कटि कसनि पीत पटुकी
(१३) चतुराई सब धूर मिठाई तौहू गरब बढ़ावत
(१४) आजु मेरे भोरहि जागे भाग
(१५) मानौ विलग न नेक साँवरे घट बढ़िकै नहिं कोऊ

महावरों के प्रयोग से भाषा में चलतापन आ जाता है और वह अधिक प्रभावोत्पादक हो-जाती है।

भारतेन्दु बाबू ने लोकोक्तियां का भी सुन्दर प्रयोग करके अपनी भाषा को सजीव बना दिया है—कुछ कहावतें जिनका प्रयोग उन्होंने किया है, ये हैं—

(१) माछर मारे जल ही हाथ
(२) जल पान कै पूछनी जाति नहीं
(३) ऊँची दुकान की फीकी मिठाई
(४) सो बनि पंडित ज्ञान सिखावत कूबरी तू नहिं ऊबरी जासों
(५) नौ घरी भद्रा, घरी में जरै घर

भारतेन्दु बाबू ने उर्दू-साहित्य का भी अध्ययन किया था और स्वयं 'रसा' नाम से उर्दू में कविता लिखते थे। इसीलिए उर्दू की जिंदादिली उनकी रचनाओं में स्वयमेव आ गई है।

भारतेन्दु की भाषा प्रसाद गुण पूर्ण है। वे शब्दों के तोड़ मोड़ के पक्षपाती नहीं थे। इसलिए वीर और रौद्र रस की रचनाओं में भी कर्ण कटु शब्दों एवं द्वित्व वर्णों का अभाव मिलता है—परन्तु इससे रस के परिपाक में कोई बाधा नहीं पड़ती। वस्तुतः ये तो ऊपरी साधन हैं, जो अकुशल कवियों के लिए हैं। कुशल कवि बिना इनकी सहायता के सरस स्वाभाविक रचना प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। एकाध ही स्थल पर तुक की लाचारी से शब्दों को विकलांग किया गया है।

२५

काव्य-रूप

भारतीय परंपरा के अनुसार भाषा-शैली की दृष्टि से काव्य की तीन श्रेणियाँ है—(१) गद्य काव्य (२) पद्य काव्य (३) चंपू। भारतेंदु साहित्य में इन तीनों श्रेणियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। भारतेंदु बाबू हिंदी वाङ्मय के एक महाकवि तो हैं ही, साथ ही वे आधुनिक हिंदी गद्य के पिता है। हरिश्चन्द्र चंद्रिका के अभ्युदय के साथ, १९३० विक्रमी में, हिंदी नए साँचे में ढली। उनके पहले हिंदी गद्य का कोई रूप निश्चित नहीं हो पाया था। भारतेंदु बाबू ने गद्य के अनेक रूपों का निर्माण किया। विषय के अनुसा उनकी भाषा शैली बदलती गई है। 'नाटक' ऐसे शास्त्रीय विषय के विवेचन के लिए उनकी भाषा संस्कृतमयी हो गई है। अन्य विषयों के लिए उर्दू के सामान्य चलते शब्दों का व्यवहार भी स्वीकृत हुआ है। परंतु सभी प्रकार के गद्य को काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। आजकल तो 'गद्यकाव्य' या 'गद्यगीत' का एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग होने लगा है। प्राचीन एवं नवीन दोनों अर्थों में भारतेंदु साहित्य में गद्य काव्य का प्रचुर वाङ्मय उपलब्ध है। प्राचीन अर्थ में भारतेंदु बाबू का 'सूर्योदय' नामक निबंध एवं उनके अनेक पत्र उल्लेखनीय हैं; नवीन अर्थ में 'प्रेम सरोवर' का समर्पण गद्य काव्य का अच्छा उदाहरण है—

"आज अक्षय तृतीया है, देखो जल-दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे? कहाँ! वरंच जलांजलि दोगे; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ! जिस चातक ने एक श्यामघन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियाँ तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुण्ड, बावली और झरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्रान बचे? देखो यह कैसी अनीति है, वही आनन्द घन जी का कहना—

"सब छोड़ि अहो हम पायो तुम्है,
हमैं छोड़ कहो तुम पायो कहा?"

यह देखो कैसे संशय की बात है कि मैं तो दोनों लोक के यावत् पदार्थ छोड़ बैठा, उस पर भी आप न पिघले तो इससे तुम्हारे ही विषय में संशय होते हैं जो चित्त के धैर्यों को हिलाते हैं। पर चाहे तुम कुछ कहो, मैं तो व्रत नहीं छोड़ने का। यह बड़ा हठ कौन मिटा सकता है? जो कहो कि 'तुम कच्चे हो, घर बैठे ही यह सम्पत लूटा चाहते हो और संसार की वासनाओं से दूषित होकर भी हमें खोजते हो, तो हम कैसे भी हों, तुम तो अच्छे हो और हम कहाते तो तुम्हारे हैं, तो फिर तुमको इससे क्या? भले आदमी हो बनो 'सतां सतपदी मैत्री' इसी का निबाह करो, किसी भाँति समझो। ए मेरे प्यारे कुछ तो मानो। जो कहो धर्म, तो तुम फल रूप हो। अब धर्म फिर कैसा? जो कहो कलंक, तो प्रथम तुमको कलंक ही नहीं और जो होता भी हो तो हम तुमको ढिंढोरा पीटने तो कहते नहीं। केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दो कि निराश न हो और इन अनिवार्य अश्रुओं को अपने अञ्चल से निवारण करो और भव-ताप से परम तापित इस दीन-हीन दुखी को अपने चरण-कल्प तरु की छाया में विश्राम दो, क्योंकि बैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य है।"

'चंपू' गद्य एवं पद्य की शैलियों का मिश्रण है। इस मिश्रित शैली में नाटक भी लिखे जाते हैं, पर वे चंपू नहीं हैं, उनकी संज्ञा दृश्य काव्य है। चंपू दृश्य काव्य नहीं होता वह सदैव श्रव्य काव्य की श्रेणी में आता है। चंपू के लिए एक बात और आवश्यक है उसमें कोई कथा प्रवाहित होनी चाहिए। भारतेन्दु बाबू ने 'रामलीला' नाम का एक चंपू भी प्रस्तुत किया है।

श्रवण एवं दर्शन की दृष्टि से काव्य के दो भेद है—'श्रव्य' एवं 'दृश्य'। प्राचीन काल में जब लिपि का उद्भव नहीं हुआ था, पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं, इसलिए दुर्लभ एवं बहुमूल्य हुआ करती थीं, तथा जब मुद्रण-यंत्रालयों का सर्वथा अभाव था, तब कविताएँ प्रायः सुनी ही जाती थीं। सुनाने वालों की एक अलग जाति ही थी जिसे चारण या भाट कहते हैं। इस प्रकार सुनाई जाने वाली रचनाओं की संज्ञा श्रव्य काव्य थी। परन्तु अब प्रेसों की बहुलता से पुस्तकों की बाढ़ आ गई है। अब हम कविताओं के सुनने के उतने अभ्यस्त नहीं रह गए, जितने कि पढ़ने के। हाँ, साल भर में दो चार कवि सम्मेलनों में कविताएँ सुन भी लेते हैं। इसीलिए प्रसाद जी ने अपने 'आरम्भिक पाठ्य काव्य' नामक निबन्ध में 'श्रव्य काव्य' नाम को 'पाठ्य काव्य' में बदलने का संकेत किया है। भारतेन्दु साहित्य में 'श्रव्य काव्य' या 'पाठ्य काव्य' के रूप में

छोटी बड़ी चालीस पुस्तकें हैं, जो अब नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'भारतेन्दु ग्रंथावली' द्वितीय भाग में संकलित हैं।

दृश्य काव्य वे हैं जिनका आनन्द चक्षुओं से देखने पर बढ़ जाय। दृश्य काव्य, श्रव्य तो हैं ही, साथ ही दृश्य भी हैं। दृश्य हो जाने पर उनका रस द्विगुण हो जाता है। पूरे, अधूरे, अनूदित और मौलिक सभी मिलाकर भारतेन्दु बाबू ने अट्ठारह दृश्य काव्य लिखे। इनका भी एक पुस्तक में संकलन हो गया है जो डाक्टर श्याम सुन्दरदास द्वारा संपादित होकर इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुई है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने भी 'भारतेन्दु ग्रंथावली' प्रथम भाग में इनका संचयन किया है।

प्राचीन साहित्य शास्त्र की दृष्टि से श्रव्य काव्य के दो प्रमुख उपभेद हैं—'प्रबन्ध काव्य' एवं 'मुक्तक'। प्रबन्ध काव्य में कोई कथा प्रबन्ध होना चाहिए। यह एक निरन्तर गतिशील प्रयास का परिणाम है जो वर्षों की साधना से सफल होता है। प्राचीनों की दृष्टि से यह प्रबन्ध काव्य भी दो प्रकार का होता है—एक तो वह जिसमें संपूर्ण जीवन का चित्रांकन हो, इसकी संज्ञा 'महाकाव्य' है। दूसरे वह जिसमें जीवन के एक खंड का चित्रांकन हो, इसे 'खंडकाव्य' कहते हैं। भारतेंदु साहित्य में महाकाव्य एवं खंड काव्य दोनों के उदाहरण अनुपलब्ध हैं। उनका जीवन ही इतना व्यस्त एवं अल्प था कि वे अपनी सारी संभवनाओं को रूप न दे सके।

प्राचीन काल में मुक्तक एवं प्रबंध काव्य के बीच की रचनाएँ जिन्हें हम आज निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य, काव्यकहानी आदि विविध नामों से अभिहित करते हैं, उपलब्ध नहीं थीं। इसीलिए हमारे साहित्याचार्य इन विषयों पर चुप हैं। हम इनको न तो प्रबंध काव्य की श्रेणी में ले सकते हैं और न ये मुक्तक ही हैं। हिंदी साहित्य में ऐसी रचनाओं का प्रारंभ भारतेंदु से होता है।

निबंध काव्य हम ऐसी रचनाओं को कहते हैं जो किसी विषय पर चिंतन करके पद्यबद्ध लेख के रूप में प्रस्तुत की गई हों। 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' बकरी विलाप, प्रातसमीरन, रिपनाष्टक आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। ऐसी रचनाओं में कथा का कोई सूत्र न होना चाहिए।

वर्णनात्मक काव्य से तात्पर्य ऐसी रचनाओं से है जिनमें किसी दृश्य का वर्णन समुपस्थित किया जाय। इसमें भी कथा-सूत्र का अभाव होना चाहिए। होली लीला (मधु मुकुल छंद ४८), हिंडोला (प्रेमाश्रु वर्षण छंद २३) एवं श्री पंचमी ऐसी ही रचनाएँ हैं।

विवरणात्मक काव्य में किसी घटना का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, इसमें कथा का एक लघु एवं क्षीण सूत्र वर्तमान रहता है। विजयिनी विजय वैजयंती, भारत वीरत्व, एवं भारत भिक्षा आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

काव्य कहानी में एक लघु कथा होती है। खंड काव्य एवं काव्य कहानी में स्पष्ट भेद करने की आवश्यकता है। वस्तुतः खंड काव्य महाकाव्य का एक खंड होता है। प्राचीन काल के प्रायः सभी खण्डकाव्य रामायण या महाभारत के लघु खण्ड हैं। इसलिए खण्डकाव्यों की वस्तु प्रख्यात होती है, काव्य कहानियों की वस्तु उत्पाद्य होती है। रानीछद्म लीला, तन्मय लीला, देवी छद्म लीला आदि काव्य कहानियाँ हैं।

मुक्तक वे रचनाएँ हैं जो किसी भी प्रकार के बंधन से मुक्त हों, जिनका एक एक छंद स्वतंत्र हो और पूर्ण रस देने में समर्थ हों। इन मुक्तकों का भी अपने यहाँ कोई वर्गीकरण नहीं हुआ है। ये मुक्तक भी दो प्रमुख भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक तो वे जो गाए जाने के लिए लिखे जाते हैं, जिनमें राग रागिनियों का बँधान हो। इनकी संज्ञा प्रगीत मुक्तक है। दूसरे प्रकार के मुक्तकों को हम साधारण मुक्तक या केवल 'मुक्तक' कहकर काम चला सकते हैं। भारतेन्दु बाबू संगीत के प्रेमी थे। साथ ही संगीतज्ञ भी थे। उनका कण्ठ भी अत्यन्त सुरीला था। वे स्वयं कई बाजे बजा सकते थे। संगीत शास्त्र पर उन्होंने 'संगीत सार' नामक एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक भी लिखी है। इसलिए उनकी आधी से अधिक रचनाएँ प्रगीत मुक्तकों की है। ये प्रगीत मुक्तक भी दो प्रकार के हैं। एक तो भक्तों की प्राचीन परम्परा से चली आती हुई पद-प्रणाली में, दूसरे लोक गीतों के रूप में। इन्हें हम पक्का गाना और कच्चा गाना की संज्ञा दे सकते है। भारतेन्दु बाबू ने पद-प्रणाली का ही अधिकांश में अनुसरण किया है और प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु-वर्षण, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविंदानंद, होली, मधु मुकुल, राग संग्रह, वर्षा विनोद, विनय-प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्ण चरित, देवी छद्मलीला, दैन्य-प्रलाप, उरहना, तन्मय लीला वेणु गीति, भीष्मस्तवराज आदि काव्य ग्रंथ पदों में ही हैं। भारतेन्दु बाबू ने साढ़े आठ सौ पदों की रचना की है। लोक गीतों में कजली, होली, दादरा, ठुमरी, साँझी, लावनी, गजल, चैती, पूरबी, बारहमासी आदि हैं। इनकी संख्या भी प्रायः दो सौ के लगभग है।

इनके अतिरिक्त भारतेन्दु बाबू के कुछ ऐसे भी मुक्तक हैं जिनमें कई कई छन्द एक ही सिलसिले में हैं, एक ही विषय पर हैं और एक छन्द को दूसरे छन्द से अलग कर देने पर पूर्ण रस की प्राप्ति असम्भव है। ये रचनाएँ अत्यन्त

सरस एवं सरल हैं। हम इनको निबन्ध काव्यों के अन्तर्गत नहीं रख सकते, क्योंकि निबन्ध काव्यों में कुछ न कुछ स्थूलता होती है, वे पूर्ण रूपेण वस्तु-परक होते हैं। ये रचनाएँ स्थूल नहीं हैं, ये भाव-प्रधान एवं आत्म-परक हैं। इनको वर्णनात्मक, विवरणात्मक और काव्य कहानी के भी अन्तर्गत नहीं ले सकते, क्योंकि इनमें न तो वस्तु वर्णन है, न किसी घटना का विवरण है और न कोई कथानक ही है। इन रचनाओं को हम 'संबद्ध मुक्तक' कह सकते हैं। दान लीला, कान्ह कान्ह गोहरावति हौ, राम बिना बेकाम सभी, क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी आदि ऐसे ही मुक्तक हैं।

इनके अतिरिक्त भारतेन्दु ने अनेक स्तोत्र भी लिखे हैं। यथा—प्रातः स्मरण मंगल पाठ, स्वरूप चिंतन, सर्वोत्तम स्तोत्र, प्रातः स्मरण स्तोत्र, अपवर्गदाष्टक, श्रीनाथ स्तुति, अपवर्ग पंचक, श्री सीता वल्लभ स्तोत्र। ये स्तोत्र भी मुक्तकों के प्रकार ही हैं।

रीति काल से चली आती हुई दोहा, कवित्त, सवैया आदि की प्रणाली का सुन्दर उपयोग भारतेन्दु जी ने किया है। भारतेन्दु ने प्रायः एक सहस्र दोहे लिखे हैं। पर उत्तम दोहे अधिक नहीं हैं। उन्होंने कवित्त सवैये भी प्रायः ढाई सौ प्रस्तुत किए हैं। जो एक से एक बढ़कर हैं और अत्यन्त प्रचलित हैं।

२६

छंदोविधान

भारतेंदु का अधिकांश काव्य प्रगीत-मुक्तकों के रूप में है। इन गीतों का छंदः विधान छंदः शास्त्र के ग्रन्थों में मिलना दुर्लभ है। ये छंद मात्रिक विषम के अंतर्गत आएँगे। इनकी गति मात्राओं पर ही निर्भर है। चरणों की संख्या असमान है। किसी पद में चार चरण हैं तो किसी में दस। प्रायः प्रथम पंक्ति और पंक्तियों से छोटी है। यही दशा अधिकांश लोकगीतों की भी है। इन पदों के भी अनेक छंदः प्रकार हैं। इनका विवेचन आज तक नहीं हुआ है। गति पर ध्यान देकर इनका विवेचन आवश्यक है। एक एक चरण में कई कई यतियाँ आकर छंद में विशेष प्रवाह डाल देती हैं—

फबी छबि, थोरे ही सिंगार
बिना कंचुकी, बिनु कर कंकन, सोभा बढ़ी अपार
खसि रहि तन तें, तन सुखसारी खुलि रहे सोंधे बार
हरीचंद मन मोहन प्यारे, रिझयो है रिझवार

—प्रेममालिका २१.

कभी-कभी मध्यानुप्रासों के द्वारा चरणों के प्रवाह में एक विशेष लोच आ जाती है यथा—

छाँड़ौ मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल,
हा हा तुम परसत तन औरन की नारी
आँगुरी मेरी मुरुक गई, परसत तन पीर भई,
भीर भई, देखत सब ठाढ़ी ब्रजनारी
बाट परौ ऐसी बात, मोहि तौ नाहीं सुहात,
काहे इतरात, करत अपनो हठ भारी
हरीचंद लेहु दान, नाहीं तौ परैगी जान,
नेक करो लाज, छाड़ौ अंचल गिरिधारी

—प्रेममालिका २६

जिस प्रकार कृष्ण काव्य की परंपरा से भारतेंदु जी ने पद-प्रणाली ग्रहण की, उसी प्रकार रीति परंपरा से उन्होंने दोहा, कवित्त, सवैया ग्रहण किया। भारतेंदु बाबू ने एक सहस्र से अधिक दोहे लिखे हैं—एक सोरठा भी लिखा है। भक्त सर्वस्व में ३२१, वैशाख माहात्म्य में ९४, प्रेमसरोवर में ४१, प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता में ९, वसंत होली में १६, मुँह देखावनी में २०, बकरी विलाप में ३२, श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन में ४१, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान में ९८, मानलीला फूल बुझौवल में ३१, विजय वल्लरी में ४२ सब ७४५ दोहे हैं। इनके अतिरिक्त कार्तिक स्नान में १९, भक्तमाल में ६९, गीत गोविंदानंद में १२ तथा श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र में १२, रानी छद्म लीला में ९, भारत भिक्षा में ४३, मनोमुकुल माला में २३, भारत वीरत्व में १९, विजयिनी विजय वैजयंती में ३३ कुल २३९ दोहों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी दोहे हैं, इनमें से अधिकांश अत्यन्त साधारण कोटि के हैं और साधारण से साधारण सतसई कार के दोहों की बराबरी करने में असमर्थ है। इनमें मुक्तक के गुणों का प्रायः अभाव है। घाव करने की क्षमता इनमें नहीं है। वस्तुतः भारतेन्दु मुक्तक दोहों के एक सफल कवि नहीं हैं। विरह और प्रेम के कुछ दोहे अवश्य उत्तम हुए हैं, परन्तु सरलता ही उनका भी आभूषण है—

तन तरु चढ़ि रस चूसि सब, फूली-फली न रीति
प्रिय अकास-बेली भई, तुव निर्मूलक प्रीति ५
प्रेम बनिज कीन्हो हुतो, नेह नफा जिय जान
अब प्यारे जिय की परी, प्रान-पुँजी में हान २

—स्फुट कविताएँ

भारतेन्दु बाबू ने सौ के लगभग कवित्त रचे हैं। इनमें से ४६ तो केवल 'प्रेम माधुरी' में है, २३ स्फुट कविताओं के अन्तर्गत हैं। शेष यत्रतत्र बिखरे हुए हैं। अधिकांश कवित्त शृङ्गार रस के ही हैं। इन कविताओं को पढ़कर बरबस घनानन्द, देव, पदमाकर आदि की याद आती है। भारतेन्दुजी स्वयं अपने को पदमाकर की कोटि का कवित्त कहने वाला मानते थे। वे कवित्त सवैया लिखने वाले सुकवियों की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। और सभी कवियों की भाँति भारतेन्दु ने भी ३१ अक्षरों के मनहरण का ही अधिक प्रयोग किया है। ३२ अक्षरों की रूपघनाक्षरी एवं ३३ अक्षरों की देव घनाक्षरी का प्रयोग यहाँ भी विरल है। प्रेम माधुरी से रूप एवं देव घनाक्षरियों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं —

रूप घनाक्षरी

बाजी करै बंशी धुनि बाजि बाजि श्रवनन
जोराजोरी मुख-छवि चितहि चुराए लेत
हँसनि हँसावत जगत सों तिहारी मुरि
मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत
'हरीचन्द' बोलनि चलनि बतरानि, पीत
पट फहरानि मिलि धीरज मिटाए लेत
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन तोरैं प्रान
प्यारे नैन सैन प्रान संग ही लगाए लेत

—प्रेम माधुरी ८.

देव घनाक्षरी

आजु कुंज मन्दिर मैं छके रंग दोऊ बैठे,
केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि
सखी जन कहत कहानी 'हरीचन्द' तहाँ
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि
एक टक बदन निहारैं बलिहार लै लै
गाढ़े भुज भरि लेत नेह सों लहकि लहकि
गर लपटाय प्यारी बारबार चूमि मुख,
प्रेम भरी बातें करै मद सों बहकि बहकि

भारतेन्दु बाबू ने सवैये भी सवा सौ से अधिक लिखे हैं। इनमें से ८५ प्रेम माधुरी में, २० स्फुट रचनाओं में हैं; शेष यत्र तत्र एवं नाटकों में बिखरे हैं। भारतेन्दु बाबू के सवैये अत्यन्त सरल तरल एवं रस की खान हैं। उनमें प्रसाद गुण कूट कूट कर भरा है। ब्रज भाषा की पुरानी पदावली का इनमें पूर्ण बहिष्कार हुआ है और चलती ब्रजभाषा का सुचारु रूप सम्मुख रखा गया है। इसी कारण उनके कवित्त सवैये उनके जीवनकाल ही में अत्यन्त प्रचलित हो गए थे।

भारतेन्दु बाबू ने चार प्रकार के सवैयों की रचना की है—

(१) मत्तगयन्द — ७ भगण २ गुरु
(२) अरसात — ७ भगण १ रगण
(३) सुन्दरी — ८ सगण
(४) किरीट — ८ भगण

इनमें भी मत्तगयन्द, अरसात एवं सुन्दरी को उन्होंने विशेष प्रश्रय दिया है। किरीट के केवल चार उदाहरण प्रेम माधुरी (३८, ४९, ६८, १०१) में हैं। अरसात, मत्तगयन्द और किरीट की गति में बहुत कम अन्तर है। अरसात का अन्तिम अक्षर गुरु एवं किरीट का लघु होता है; दोनों में २४ वर्ण होते हैं और शेष वर्णों का गुरु-लघुक्रम एक ही होता है; मत्तगयन्द में भी वर्णों का गुरु-लघु क्रम वही है, इसमें २३ वर्ण होते हैं। यदि अन्तिम गुरु वर्ण को लघु करके एक और वर्ण जोड़ दिया जाय तो वह अरसात सवैया हो जायगा। और अन्तिम गुरु को लघु करके अन्त में एक और लघु जोड़ देने से किरीट हो जाता है।

मत्तगयन्द—

बाढ़यो करै दिन ही छिन ही छिन कोटि उपाय करौ न बुझाई

अरसात—

राखत नैनन में हिय में भरि, दूरि भए छिन होत अचेत है

किरीट—

प्रान पियारे तिहारे लिए सखि बैठे हैं देर सों मालति के तर

सात भगण एक गुरु का मदिरा सवैया होता है। उसकी गति भी मत्तगयन्द अरसात और किरीट सी ही होती है। उसमें बाईस वर्ण होते हैं। इन बाईस वर्णों के पहले दो लघु वर्ण और रख देने से ८ सगण का सुन्दरी सवैया हो जाता है। इस प्रकार भारतेन्दु बाबू के सभी सवैयों की गति प्रायः एक सी है और उनके छन्दः विधान में बहुत कम अन्तर है।

भारतेन्दु बाबू ने कभी कभी ऐसे भी सवैये लिखे हैं जो दो विभिन्न कोटि के सवैयों के मिश्रण हैं। इनको उपजाति कहा जाता है। वस्तुतः यह कोई अशुद्धि नहीं है, क्योंकि इससे इनकी गति में कोई अन्तर नहीं आता। उदाहरण के लिए यह सवैया लीजिए—

बृज में अब कौन कला बसिये बिनु बात ही चौगुनो चाव करैं
अपराध बिना 'हरिचन्द जू' हाय चबाइनै घात कुदाव करैं
पौन मों गौन करे ही लरी परै हाय बड़ाई हियाव करैं
जौ सपनेहूँ मिलैं नँदलाल तौ सौतुख मैं ये चबाव करैं

—प्रेम माधुरी २०

इस सवैया के प्रथम दो चरण सुंदरी (८ स) के हैं, अंतिम दो चरण मदिरा (७ भ ग) के हैं। यदि अंतिम दोनों चरणों के प्रारंभ में दो दो लघु वर्ण बढ़ा दिए जायँ, तो सभी चरण समान हो जायँ। भरती के इन दो लघु

वर्णों के बढ़ाने से यह कहीं अधिक अच्छा है कि उनको छोड़ ही दिया जाय, क्योंकि इनके लगाने या न लगाने से गति में कोई व्यतिक्रम नहीं उपस्थित होता।

भारतेंदु बाबू ने बिहारी के ८५ दोहों पर १०५ कुंडलियाँ लगाई हैं। कुछ दोहों पर कई कई कुंडलियाँ लगाई गई हैं। बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ लगाने की पद्धति पहले से चली आ रही है। पठान कवि ने पहले भी बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ लगाई थीं। बाद में अंबिकादत्त व्यास और अन्यों ने भी उनके दोहों पर कुंडलियाँ लगाईं।

भारतेंदु साहित्य में छप्पयों का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। सब मिलाकर २६५ छप्पय तो उनके काव्य ग्रन्थों में ही हैं। उत्तरार्द्ध भक्तमाल में १४१ छप्पय हैं। इसकी रचना छप्पयों में इसीलिए की गई क्योंकि नाभादास का भक्तमाल भी छप्पयों में ही लिखा गया है। स्तोत्रों के लिए भारतेंदु ने इस छंद को विशेष रूप से चुन रक्खा था। उनके प्रायः सभी स्तोत्र इसी छंद में हैं। प्रातः स्मरण मंगल पाठ में २६, प्रबोधिनी में २५, स्वरूप चिंतन में १३, प्रातः स्मरण स्तोत्र में १२, अपवर्गदाष्टक में ८, श्रीनाथ स्तुति में ६, अपवर्ग पंचक में ५ छप्पय हैं। प्रशस्ति काव्य में भी छप्पयों का प्रयोग उन्होंने समीचीन समझा है और अलवरत अंतर्लापिका, जीवन जी महाराज तथा रिपनाष्टक छप्पयों में ही लिखे गए हैं।

वर्णनात्मक काव्य के लिए भारतेंदु बाबू ने रोला का प्रश्रय लिया है। गंगा-छवि इसी छंद में है।

इनके अतिरिक्त २२ मात्राओं का एक छंद इनकी लावनियों में विशेषकर व्यवहृत हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी के मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। पद, दोहा, कवित्त, सवैया, कुंडलिया, छप्पय उनके प्रिय छन्द हैं। 'प्रात समीरन' में बँगला का पयार छन्द प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु ने उर्दू की अनेक बहरों एवं संस्कृत के भी कुछ वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु बाबू ने असमान मात्राओं के चरणों को भी मिलाकर छंद रचना की है, यथाः—

> बीत चली सब रात न आए अब तक दिल जानी
> खड़ी अकेली राह देखती, बरस रहा पानी

अँधेरी छाय रही भारी
सूझत कहूँ न पंथ, सोच करै मन मन में नारी
न कोई समझावनवारी
चौंकि चौंकि के उझकि झरोखा झाँक रही प्यारी
विरह से व्याकुल अकुलानी
खड़ी अकेली राह देखती, बरस रहा पानी

उर्दू की बहर और हिंदी के दोहों को मिलाकर तरजीहबंद की नई सृष्टि की गई है—

चमक से बर्क के उस बर्क-वस की याद आई है
घुटा है दम, घटी है जाँ, घटा जब से ये छाई है
कौन सुनै कासों कहौं सुरति बिसारी नाह
बदाबदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह
बहुत इन जालिमों ने आह अब आफत उठाई है

दोहों को बीच-बाच में रखकर गीतों की सुंदर सृष्टि आगे चलकर प्रसाद जी ने भी खूब की।

२७

रस-निरूपण

भारतेंदु के दो रूप स्पष्ट हैं—भक्त और कवि। इस दृष्टि से वे मुख्यतया शांत और शृंगार रस के कवि हैं। भारतेंदु-काव्य में यही दो रस प्रधान हैं। साथ ही वे विनोदी प्रवृत्ति के थे, इसलिए उन्होंने हास्यरस की भी पर्याप्त रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। अन्य रसों की भी रचनाएँ भारतेंदु काव्य में मिलेंगी, पर वे संख्या में सीमित हैं।

शृंगार रसराज है क्योंकि उसका क्षेत्र सुख और दुख दोनों को छूता है और हृदय को सबसे अधिक स्पर्श करता है। इसके दो प्रकार हैं—संयोग और वियोग। भारतेंदु ने संयोग एवं वियोग दोनों की प्रचुर परिमाण में रचना प्रस्तुत की है, और वे और किसी रस के कवि होने के पहले शृंगार रस के कवि हैं।

आजु कुंज मंदिर अनंद भरि बैठे श्याम,
  श्यामा संग रंगन उमंग अनुरागे हैं
घन घहरात बरसात होत जात ज्यौं ज्यौं
  त्यौं ही त्यौं अधिक दोऊ प्रेम-पुंज पागे हैं
'हरीचंद' अलकैं कपोल पै सिमिट रहीं
  वारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे हैं
भींजि भींजि लपटि लपटि सतराइ दोऊ,
  नील पीत मिलि भए एकै रंग बागे हैं

—प्रेम माधुरी २२

उपर्युक्त कवित्त में युगल-स्वरूप का मधुर चित्रण है, जो बरसात की वारि बूँदों से रस सिक्त हो रहा है। यह मधुर फुहार इतनी उत्तेजक है कि न केवल श्यामा और श्याम लिपट लिपट कर एक रंग हो रहे हैं, बल्कि उनके नील पीत अंबर भी मिलकर एक रंग के होते जा रहे हैं। यह संयोग शृङ्गार का चित्र है।

हे हरि जू बिछुरे तुम्हरे, नहिं धारि सकी सो कोऊ बिधि धीरहिं
  आखिर प्रान तजे दुख सों, न सम्हारि सकी वा बियोग की पीरहिं

पै 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी सुनाऊँ कहा बलबीरहिं
जानि महा गुन रूप की रासि, न प्रान तज्यो चहैं वाके सरीरहिं
—प्रेम माधुरी १०१.

यह वियोग शृङ्गार का चित्रण है। नायिका मृत तुल्य हो गई है, परन्तु वह इतनी गुणवती एवं रूपवती है कि उसका प्राण भी उसके रूप गुण पर मुग्ध है और उसके शरीर को त्यागकर जाना नहीं चाहता। दूती नायक से अपनी स्वामिनी का विरह निवेदन कर रही है, साथ ही उसके कांतिमय अलौकिक रूप एवं गुण की भी चर्चा करती जा रही है।

भारतेंदु बाबू का शृङ्गार रीतिबद्ध है और साथ ही साथ स्वच्छन्द भी। जहाँ तक रीतिबद्धता का संबंध है, वे देव और पदमाकर का अनुसरण करते हैं; और जहाँ तक स्वच्छन्दता का संबंध है, वे घनानंद, रसखान, बोधा एवं ठाकुर की कोटि में आते हैं। रीति परंपरा के अनुकरण पर जो शृंगार-धारा उन्होंने बहाई है, वह कबित्त सवैयों में है। सूर और अष्टछाप के अन्य कवियों के अनुसरण पर जो शृङ्गार का प्रस्रोत उन्होंने प्रवाहित किया है, वह पदों में है; साथ ही लोक गीतों में भी उन्होंने शृङ्गार का अजस्र प्रस्रवण किया है। वस्तुतः वे लौकिक शृङ्गार के एक महान कवि हैं। मुख्यकर कवित्त सवैयों में वे विप्रलंभ शृङ्गार के एवं पदों में संयोग शृङ्गार के गायक हैं।

भक्त रूप में भारतेन्दु बाबू ने विनय के पदों की सृष्टि की है। वे वल्लभ-सम्प्रदाय के वैष्णव थे और राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। वे अपने को राधा रानी का गुलाम कहते थे। उनकी शान्त रस की कविता दो प्रकार की है, एक तो विनय, आत्म समर्पण एवं दैन्य सम्बन्धी, जो सूर-परम्परा में है, दूसरी संत परम्परा में है—इसमें वैराग्य की ओर अधिक निर्देश है।

नाथ तुम अपनी ओर निहारो
हमरी ओर न देखहु प्यारे, निज गुन-गनन बिचारो
जौ लखते अबलौं जन-औगुन, अपने गुन बिसराई
तौ तरते किमि अजामेल से पापी देहु बताई
अबलौं तो कबहूँ नहिं देख्यौ जन के औगुन प्यारे
तौ अब नाथ नई क्यों ठानत भाखहु बार हमारे
तुव गुन छमा दया सों मेरे अघ नहिं बड़े कन्हाई
तासों तारि लेहु नँद-नंदन 'हरीचंद' को धाई
—प्रेम प्रलाप ५

भारतेन्दु हास्य रस के भी उत्तम कवि हैं। उनके पहले और किसी कवि को हास्य रस लिखने में इतनी सफलता नहीं मिली। रीतिकालीन आचार्य परम्परा का निर्वाह करनेवाले कवि अपने ग्रंथों में शृंगार का विशद वर्णन करते थे, पर और रसों के साथ वे केवल खानापूरी का काम करते थे और शेष रसों के एक एक सफल-असफल उदाहरण लिखकर अपनी गाड़ी बढ़ाते थे। भारतेंदु की प्रवृत्ति परिहासशील थी, जैसा कि उनके जीवन की अनेक घटनाओं से स्पष्ट है, इसलिए वे हास्य रस की रचनाओं में सफल हुए हैं। अपने युग की दुर्बलताओं पर वे हास्य रस की अपनी रचनाओं से कशाघात करते चलते हैं।

भारत-भिक्षा, विजयिनी-विजय-वैजयंती, भारत-वीरत्व, विजय-वल्लरी आदि रचनाओं में वीर रस का भी यत्र तत्र पुट है। इन रचनाओं की विशेषता यह है कि इनकी भाषा अन्य रसों की रचनाओं की ही भाँति मधुर है, जान-बूझ कर खोज खोजकर कर्णकटु एवं द्वित्व वर्णों का प्रयोग इनमें नहीं किया गया है।

भारत के विनष्ट गौरव पर शोकोद्गार प्रकट करने के पश्चात कवि भारत-वासियों को उत्साहित करता है :—

अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए
लेहु करन करवाल काढ़ि रन-रंग समोए ५९
चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन रंग जमाओ ६०
परिकर कटि कसि उठौ बँदूकन भरि भरि साधौ
सजौ जुद्ध-बानो सबही रन-कंकन बाँधौ ६१
का अरबी को बेग, कहा वाको बल भारी
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ६२
पद-तल इनकहँ दलहु कीट-तृन सरिस नीच-चय
तनिकहु संक न करहु, धर्म जित जय तित, निश्चय ६३
उठहु बीर तरवार खींचि माड़हु घन संगर
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन-हृदय पर ६७
मारू बाजे बजैं कहीं धौंसा घहराहीं
उड़हि पताका सत्रु-हृदय लखि लखि थहराहीं ६८
चारन बोलहिं विजय सुयस बंदी गुन गावैं
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ६९

चमकहिं असि, भाले चमकहिं, ठनकहिं तन बखतर
हींसहिं हय, झमकहिं रथ, गज चिक्करहिं समर थर ७०
नासहु अरबी शत्रुगनन कहँ करि छन महँ छय
कहहु सबहि विजयिनी-राज महँ भारत की जय ७१

—विजयिनी विजय वैजयंती

और रसों के उदाहरण बहुत खोजने पर ही उपलब्ध होते हैं।

प्रहलाद के अपमान से क्रुद्ध होकर, भगवान नृसिंह बनकर, खंभ फाड़कर, निकल आए। उस समय का उनका रौद्र रूप अत्यंत भयानक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला था और यह दृश्य अत्यंत अद्भुत भी था। इन तीनों रसों का सम्मिश्रण इस एक रचना में दर्शनीय है—

आजु अपमान अति ही निरखि भक्त को
बैकुंठ बन सिंह बहुत कोप्यो
पटकि कर भूमि पै, झटकि सिर केश, रद
चाभि ओंठन, तेज गगन लोप्यो
खंभ को फारि, चिक्कारि केहरि-नाद,
गर्भिनी-गर्भ गरजन गिरायो
सटा फटकारि कै, नछत्र गन नभहिं
फेंकि, ईत सी, उतहि क्रोध छायो
कोटि मनु बिज्जु इक साथ ही गिरि परीं,
भयो अति घोर भुव सोर भारी
सिंधु जल उच्छल्यौ, गिरे पर्वत-शिखर,
वृक्ष जड़ सों सबै दिये उजारी
देव-दानव-मनुज गिरे भय भागि,
वस्त्र फटि गये कान, सुधि तनक नाहीं
आजु असमय प्रलय देखि शिव चौंकिकै
शूल धरि भ्रमत इत उत लखाहीं
सृष्टि को क्रम भंग जानि विधि बावरो
मूँड़ पै हाथ धरि बहुत रोयो
दिसा दहिबो लगी, भयो उल्कापात,
रुदित मूरति तेज अगिन खोयो

त्रस्त मधुकर पिवत नाहिं मधु वृक्ष को
गऊ निज वत्स-गन नाहिं चाटैं
हवि अग्नि नहिं हरत, डरत तहँ पौन, नहिं
गौन करि सकत, नभ धूरि पाटैं
चकित माया नटी, भूलि निज नट-कला,
जगत गति जीव जड़ रोकि लीनी
रमा श्रृंगार निज करत ही रहि गई,
मनो सब चातुरी हारि दीनी
जगत जाको खेल, बनत बिगरत, तनिक
भौंह के इत सों उत हलन माँहीं
सोई त्रैलोक्यपति आजु कोप्यो जबै
तबै अब सबै कहँ सरन नाँहीं
—राग संग्रह ७.

भयानक रस का दूसरा प्रसिद्ध उदाहरण 'सत्य हरिश्चंद्र' से लिया जा रहा है—

रुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी
अंधकार बस गिरत काक अरु चील करत रव
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावई
सँग दादुर झींगुर रुदन-धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई

'सत्य हरिश्चन्द्र' से ही वीभत्स रस का भी एक सुप्रसिद्ध उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उचारत
स्वान आँगुरिन काटि काटि के खात विचारत
कहुँ चील नोचि लै जात तुच, मोह बढ़्यो सबको हियो
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ, आजु भिखारिन कहँ दियो

'अद्भुत रस' का एक उदाहरण वामन भगवान के विचित्र रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है—

वेदन में निज महिमा थापन गए त्रिविक्रम आजु मुरारी
सब जग व्यापकता दिखराई सबन प्रत्यक्ष दीन हितकारी

औरहु एक भेद है यामें जो प्रगट्यो या भेष खरारी
बामनहूँ वपु सबसों ऊँचे, त्रिभुवन-दायक जदपि भिखारी
जग-दाता विराट वपु की फिरि कहो महिम को कहै बिचारी
'हरीचंद' छोट-पनहूँ में हैं जब सब ही सों बढ़ि बनवारी

—रागसंग्रह ८३.

विधवा नीलदेवी अपनी दीन दशा पर आँसू बहा रही है—

तजी मोहिं काके ऊपर नाथ !
मोहिं अकेली छोड़ि गए तजि बालपने को साथ
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकरयो मेरो हाथ
सो सब मोह आज तजि दीनो, कीनो हाय अनाथ

—नीलदेवी.

यह छन्द करुण रस का उदाहरण है।

भारतेंदु बाबू ने राधा और कृष्ण की बाललीला पर भी कुछ पद कहे हैं और बच्चों को जगाने और सुलानेवाली लोरियाँ भी प्रस्तुत की हैं—

मनिमय आँगन प्यारी खेलै
किलकि किलकि हुलसत मनहीं मन गहि अँगुरी मुख मेलै
बड़भागिनि कीरति सी मैया गोहन लागी डोलै
कबहुँक लै झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलै
अष्ट सिद्धि नव निधि जेहि दासी सो ब्रज सिसु-वपुधारी
जोरी अबिचल सदा बिराजो 'हरीचंद' बलिहारी

—रागसंग्रह ९०.

इस पद में राधा की बाल क्रीड़ा चित्रित की गई है। 'नीलदेवी' से बच्चों को सुलानेवाली एक लोरी भी नीचे दी जाती है। इसमें रात्रि का चित्रण उल्लेखनीय है—

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन
नैनन के तारे, दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।

भई आधीरात, बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हिलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सीरी पवन चलन।
सोए जग के सब नींद घोर,
जागत कामी, चिंतित, चकोर,
बिरहिन, बिरही, पाहरू, चोर,
इन कहँ छन रैनहुँ हाय कल न।

इन प्रसिद्ध रसों के अतिरिक्त भारतेंदु बाबू ने सख्य, भक्ति, आनंद और प्रेम नाम के चार और रसों की कल्पना की है। इनके भी उदाहरण उनकी रचनाओं से दिए जा सकते हैं। वस्तुतः ये शांत एवं श्रृंगार रसों के अंतर्गत आ जाते हैं। भारतेंदु बाबू केवल कोमल रसों के कवि हैं, उनमें भी विशेषकर श्रृंगार, शांत और हास्य के। और रसों की उनकी रचनाएँ परिमाण में बहुत कम हैं।

२८

अलंकार-निरूपण

भारतेंदु बाबू सीधी सादी भाषा में कविता लिखने के पक्षपाती थे और उनका सारा काव्य सरलता सरसता से संपन्न है। उन्हें काव्यालंकारों का मोह न था इसीलिए उनकी कविता में अलंकार भार स्वरूप होकर नहीं आए हैं। वे अलंकार को काव्य का मूल तत्व नहीं मानते थे, बल्कि उनके अनुसार अलंकार वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया आदि का प्रकर्ष दिखलाने के लिए हैं। यदि कोई अलंकार इस उत्कर्ष-साधन में सहायक नहीं सिद्ध होता, तो वह अपने कार्य के संपादन में असफल रहता है।

अनुप्रास एक ऐसा शब्दालंकार है जिससे कोई कवि बच नहीं सकता और यह नाद-सौंदर्य की सिद्धि में परम सहायक भी होता है। परंतु अनुप्रास के पीछे लट्ठ लेकर पड़ जाने से अर्थ के उत्कर्ष में गड़बड़ी पड़ सकती है। ध्वनि-साम्य के चक्कर में पड़कर अनुपयुक्त और असमर्थ शब्द रख देने से भावसौंदर्य में वृद्धि नहीं होती। भारतेंदु बाबू इस दोष से रहित हैं। उनके अनुप्रास सहज सरल एवं स्वाभाविक हैं, वे खोज-खोजकर नहीं लाए गए हैं। यथा—

(१) लाल यह नई निकाली चाल
(२) तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए
(३) रही सपने की संपत सी सब सुख खोई
(४) छबि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति

यमक का भी अभाव भारतेंदु में नहीं है—

(१) पिचकारिन सों रँग की बरसा बरसावैं
(२) पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विकटोरिया रानी

'मानलीला फूल बुझौवल' का प्रायः प्रत्येक दोहा यमकमय है—

खबर न तोहि संकेत की कही केतकी बार
चलि पथ कुञ्ज निकेत को कित को ठानत आर

इस दोहे में केतकी शब्द चार बार आया है—

दाऊ दीठि बचाय हरि गए कुञ्ज के भौन
लजवत दाऊदी उतै क्यों न करत तू गौन

यहाँ दाऊदी दो बार आया है।

सारी तन सजि बैजनी पग पैजनी उतारि
मिलु न बैजनी माल सों सजनी रजनी चारि

एक ही शब्द को दो-दो बार दुहराने की प्रवृत्ति भी भारतेंदु में बहुत अधिक है। यह 'पुनरुक्ति प्रकाश' नामक शब्दालंकार है। निम्नलिखित छंद में यह प्रवृत्ति पूर्ण रूप से परिलक्षित होती है—

वह बन बन बिहरन कुंज कुंज तरु पातैं
वह गल भुज डालन प्रीति रीति की बातैं
वह चंद चाँदनी और निराली रातैं
एक एक की सौ सौ जी में खटकती बातैं
'हरिचंद' बिना भई रो रो हाय दिवानी
पिय प्यारे की मैं कब लौं कहौं कहानी

'मुद्रालंकार' भी शब्दालंकारों के ही भीतर आना चाहिए। भारतेन्दु को भी जायसी की भाँति इस अलंकार का मोह है। 'मानलीला फूल बुझौवल' में ३१ दोहे हैं। प्रत्येक दोहा में किसी न किसी फूल का नाम अवश्य आया है, यहाँ यद्यपि अर्थ की दृष्टि से फूल का वर्णन अभीष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए मानलीला के प्रथम पाँच दोहे उद्धृत किये जा रहे हैं—

अमल कमल-कर-पद-वदन अमल कमल से नैन
क्यों न करत कमला विमल कमल-नाभ-सँग सैन १
निसि बीती मनवत सखी तू न नेक मुसकात
चटकत कली गुलाब की होन चहत परभात २
वह अलबेला कुंज में पर्‌यो अकेला हाय
उठि चलि बहु बेला गई रुक दृग-मेला धाय ३
अरी माधवी-कुंज में माधव अति बेहाल
मधु रितु माधव मास मैं तो बिनु व्याकुल लाल ४
पहिरि नवल चम्पाकली चंपकली से गात
रस लोभी अनुपम भँवर, हरि ढिग क्यों नहिं जात ५

प्रेममालिका का प्रथम पद 'प्यारी छबि की राशि बनी' भी मुद्रालंकार का सुन्दर उदाहरण है, इसमें राधा-रूप वर्णित है, साथ ही बारह राशियों का नाम भी आ गया है।

अनुप्रास की ही तरह उपमा अलंकार है। जिस प्रकार शब्दालंकारों में अनुप्रास से कोई काव्य रहित नहीं हो सकता, उसी प्रकार कोई कवि अर्थालंकारों में उपमा से अछूता नहीं रह सकता। भारतेन्दु बाबू ने भी नवीन नवीन उपमाओं की उद्भावना की है—

'साँचहि दीप-शिखा सी प्यारी' उनकी एक बहुत सुन्दर उपमा है।

बहुत सुने कपटी या जग मैं, पै तुमसे तो तुमही देखे'

—प्रेम मालिका ३२

इस पंक्ति में 'अनन्वय' का अत्यन्त सुंदर प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु बाबू रूपकों के कुशल स्रष्टा हैं, सांग रूपकों की रचना में उनको अत्यन्त सफलता मिली है।

अरी हौं बरजि रही, बरज्यौ नहिं मानत,
सबै छोरि कृष्ण - प्रेम - दीप जोरि
भरि अखंड सनेह एक लौ लगाइ वासों
मन-बाती राखु तासें नित्य बोरि
बिरह प्रगट करि, जोति सों मिलाइ जोति,
करि पतंग नेम धरम लाज ओट डारि छोरि
'हरीचंद' कह्यो मानि, देखिहै तू प्रीति-पंथ
भाजैगो वियोग-तम मुख मोरि

—कार्तिक स्नान, १२.

इस पद में कृष्ण प्रेम का प्रदीप है। जिसमें स्नेह का सनेह (तेल) डाला गया है, जिससे लौ (प्रेम) की लौ (ज्योति) प्रकाशित हो रही है। मन की बत्ती है। इस ज्योति में नेम धर्म का पतंग जलता है। इसके प्रकाश से वियोग का तम दूर होता है और प्रीति का पंथ उद्भासित होता है। 'सनेह' और 'लौ' शब्दों में श्लेष भी है।

हरि तन करुना-सरिता बाढ़ी
दुखी देखि निज जन बिनु साधन उमगि चली अति गाढ़ी
तोरि कूल मरजादा के दोउ न्याव-करार गिराए
जित तित परे करम फल-तरुगन जड़ सों तोरि बहाए

अचल विरुद गंभीर भँवर गहि महा पापगन बोरे
असहन पवन वेग अति वेगहि दीन महान हलोरे
भर दीने जन-हृदय-सरोवर तीनहुँ ताप बुझाई
'हरीचंद' हरि-जस-समुद्र में मिली उमगि हरखाई

—विनय प्रेम पचासा ८.

भगवान के हृदय में करुणा की नदी बढ़ी। उसने मर्यादा के कूल को तोड़ कर न्याय के किनारे को गिरा दिया। कर्मफल के वृक्षों को समूल उखाड़ दिया। उसमें विरुद का गंभीर भँवर है, जिसमें पाप डूब गए। अंत में हरि के यशरूपी समुद्र में यह नदी मिल जाती है।

प्यारी-रूप-नदी छबि देत
सुखमा-जल भरि नेह-तरङ्गनि बाढ़ी पिय के हेत
नैन-मीन कर-पद-पंकज से सोभित केस-सिवार
चक्रवाक जुग उरज सुहाए लहर लेत गल हार
रहत एक-रस भरी सदा यह जदपि, तऊ पिय भेंटि
'हरीचंद' बरसै साँवरु घन बढ़त कूल कुल मेटि

—प्रेमाश्रु वर्षण १८.

प्यारी के रूप की नदी में सुषमा का जल भरा हुआ है। उसमें स्नेह की तरंगे उठती हैं। नैन के मीन किलोल करते हैं। कर और पद के पंकज खिले हुए हैं। केश के सिवार लहराते हैं। उरोज युग्म चक्रवाक हैं, जो निरंतर एक दूसरे से विलग रहते हैं। गल-हार रूपी जल लहरें मारता रहता है। यह सर्वदा भरी रहती है। जब घनश्याम बरसता है, तब यह कुल के कूल को तोड़कर बढ़ जाती है। साँवल घन में श्लेष भी है।

आजु तन आनँद-सरिता बाढ़ी
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरङ्गनि काढ़ी
लोक वेद दोउ कूल तरोवर गिरे, न रहे सम्हारे
हाव भाव के भरे सरोवर, बहे होइकै नारे
बुझे दवानल परम बिरह के, प्रेम-पय भो भारी
मीन-बान के जे प्रेमीजन, जल लहि भए सुखारी
भई अपार, न छोर दिखावै, नीति-नाव नहिं चाली
'हरीचंद' वल्लभ-पद-बल वै अवगाहत सोइ आली

—प्रेमाश्रु वर्षण १९

आनंद की सरिता में प्रीति की तरंगें उत्पन्न हो रही हैं। इन तरंगों ने लोक वेद रूपी दोनों कूलों के तरुवरों को गिरा दिया है। हाव-भाव के सरोवर नाले बनकर बह निकले हैं। विरह की दावाग्नि बुझ गई है। प्रेम-पर्व के अवसर पर प्रेमीजन जल-स्पर्श करके सुखी हो रहे हैं। यह नदी अपार है, इसका छोर नहीं है, इसमें नीति-नाव नहीं चल पा रही है।

करुना-सरिता, रूप-नदी, आनन्द-सरिता ये तीन-तीन रूपक हैं, परन्तु इनमें पुनरुक्ति कहीं नहीं है। सभी रूपक एक से एक अनूठे हैं।

नयन की मत मारो तरवरिया
मैं तो घायल बिनु चोट भई रे, कहर करेजे करिया
काहे को सान देत भौंहन की, काजर नयनन भरिया
'हरीचंद' बिन मारे मरत हम, मत लाओ तीर कटरिया

—प्रेम तरंग, १८

नयन की तरवार भी क्या विचित्र है, बिना चोट किए हुए घायल कर देती है और कलेजे में कहर कर देती है। इस पर कज्जल शाण धरते हैं।

रूप दिखाइ कै मोल लियो मन, चाल-गुड़ी बहु रंगन जोरी
चाहत माँझो दियो 'हरिचंद जू', लै अपने गुन की रस डोरी
फेरि कै नैन परेतन पै, बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी
प्रीति की चंग उमंग चढ़ाय कै, सो हरि हाय बढ़ाय कै तोरी

—प्रेम माधुरी ८६

प्रीति की चंग अनेक रंगों की बनी है। गुण की डोरी से इसमें माँझा दिया जाता है, बदनामी की पूँछ लगी रहती है, नैनों के परेतों पर रस्सी फेरी जाती है और अनाड़ी खिलाड़ी उमंग से बढ़ाकर इसे तोड़ देता है।

एक बेर नैन भरि देखै जाहि, मोहै तौन,
माच्यो ब्रज गाँव ठाँव ठाँव में कहर है
संग लगी डोलैं, कोऊ घर ही कराहैं परी,
छूट्यो खान-पान, रैन चैन बन घर है
'हरीचंद' जहाँ सुनो, तहाँ चरचा है यही,
इक प्रेम-डोर नाथ्यो सगरो शहर है
यामैं न सँदेह कछू, दैया हौं पुकारे कहौं,
भैया की सौं, मैया री, कन्हैया जादूगर है

—प्रेम माधुरी ८२.

कन्हैया को किस कौशल से कुशल जादूगर कहा गया है।

(१)

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल माल गरें तन झालरि सी छाई है
भँवर गुँजार हरि-नाम को उचार तिमि
कोकिला सो कुहुकि वियोग राग गाई है
'हरिचंद' तजि पतझार घरबार सबै
बौरी बनि दौरि चारु पौन ऐसी धाई है
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है

(२)

पीरो तन परयो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझानो पतझार मनौ छाई है
सीरी स्वास त्रिविध समीर सी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधु झरि सी लगाई है
'हरीचन्द' फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदिकै बौराई है
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है

—प्रेम माधुरी ३४, ३५ तथा सती प्रताप

इन दोनों में प्रेम-योगिती को बसन्त बनाया गया है। इसी प्रकार 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में भी काल-कापालिक और पावस तथा संध्या-श्मशान के परम प्रसिद्ध रूपक हैं।

काल-कापालिक......

साँझ सोई पट लाल कसे कटि, सूरज खप्पर हाथ लह्यो है
पच्छिन के बहु शब्दन के मिस, जीअ उचाटन मंत्र कह्यो है
मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिंबहू धाइ गह्यो है
दै बलि जीव पसू यह मत्त है, काल कपालिक नाचि रह्यो है

संध्या श्मशान......

सूरज धूम बिना कि चिता, सोइ अंत में लै जल माँहि बहाई
बोलै घने तरु बैठि विहंगम, रोअत सो मनु लोग लुगाई

धूम अँधार, कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र, लहू सी ललाई
आनँद हेतु निशाचर के यह काल मसान सी साँझ सुहाई

पावस श्मशान......

चपला की चमक चहूँघा सों लगाई चिता
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है
हेती बगमाल, स्याम बादर सु भूमि कारी
बीरबधू लहू बूँद भुव लपटायो है
'हरीचंद' नीर-धार आँसू सी परत जहाँ
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है
दाहन वियोग दुखियान को मरेहूँ यह
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है

ये तीनों रूपक दुखद है, परन्तु इनकी पूर्व पीठिका का ध्यान रखने से ये उचित ही जान पड़ते हैं। 'संध्या-श्मशान' वाले रूपक में संदेह, उत्प्रेक्षा, उपमा का भी संकर हो गया है।

इसी प्रकार और अनेक सुन्दर रूपक भारतेंदु बाबू की रचनाओं में यत्र तत्र विकीर्ण हैं।

भारतेंदु-साहित्य में उत्तम उत्प्रेक्षाओं का भी अभाव नहीं है—

आजु तन नीलांबर अति सोहै
तैसे ही केश खुले मुख ऊपर देखत ही मन मोहै
मनु तम-गन लियो जीति चंद्रमा सो तिन मध्य बँध्यो है
कै कवि निज जिजमान जूथ में सुंदर आइ बस्यो है
श्री जमुना जल कमल खिल्यौ कोउ लखि मन-अलि ललच्यो है
जीति तमोगुन को ताके सिर मनु सतगुन निबस्यौ है
सघन तमाल कुंज मैं मनु कोउ कुंद फूल प्रगट्यो है
'हरीचंद' मोहन-मोहनि छबि बरनै सो कबि को है?

—प्रेम मालिका २.

यह नीलांबर धारिणी राधा के मुख का वर्णन है। इसी प्रकार का अलंकृत वर्णन गोवर्धन पर दीपावली का है:—

आजु गिरिराज के उन्नतर शिखर पर
परम शोभित भई दिव्य दीपावली
मनहुँ नगराज निज नाम नग सत्य किय
विविध मनि-जटित तन धारि हारावली

औषधी-गन मनहुँ परम प्रज्वलित भई
किधौं ब्रज-वास हित बसी तारावली
दास 'हरिचंद' मन मुदित छबि देखिकै
करत जै जै बरषि देव कुसुमावली
—कार्तिक स्नान १३.

'संदेह' भी भारतेंदु का प्रिय अलंकार है—

मोहि मोहि मोहन मई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भए कान्हमय
हिय मैं न जानि परै कान्ह है कि प्रान है
—प्रेम माधुरी ३.

प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है
—प्रेम माधुरी ६७.

चंद्रावली के अंतर्गत 'नारद की वीणा' और 'यमुना वर्णन' तथा सत्य हरिश्चन्द्र के अंतर्गत 'गंगा-वर्णन' उत्प्रेक्षा और संदेह के संकर के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

जिस प्रकार ठाकुर अपनी लोकोक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र भी। दोनों ने सवैयों में लोकोक्तियों का बहुत अच्छे ढंग से समावेश किया है—

(१) प्रान पियारे तिहारे लिये सखि बैठे हैं देर सों मालती के तर
तू रही बातैं बनाय बनाय, मिलै न वृथा गहिकै कर सों कर
तोहि घरी छिन बीतत है, 'हरिचंद' उतै जुग सो पलहू भर
तेरी तो हाँसी, उतै नहिं धीरज, नौ घरी भद्रा, घरी में जरै घर
—प्रेम माधुरी २८.

(२) जाहु जू जाहु जू, दूरि हटो, सो बकै बिन बात ही को अब यासों
वा छलिया नै बनाय कै खासो पठायो है याहि न जानै कहाँ सों
काहि करै उपदेस खरो, 'हरिचंद' कहै किन जाइ कै तासों
सो बनि पंडित ज्ञान सिखावत कूबरीहू नहिं ऊबरी जासों
—प्रेम माधुरी ७९.

यहाँ पर लोकोक्ति का चमत्कार इसलिए और भी बढ़ गया है कि यह अक्षरशः भी सत्य है।

(३) ऊधो जू सूधो गहो वह मारग, ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है
कोऊ नहीं सिख मानिहैं ह्याँ, इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है
ते बृजबाला सबै इक सी, 'हरिचंद जू' मंडली ही बिगरी है
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए, कूप ही में यहाँ भाँग परी है
—प्रेम माधुरी ८९.

प्रसाद जी ने भी इस लोकोक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया है—

भरा नैनों में, मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप
जल थल मारुत व्योम में जो छाया है सब ओर
खोज खोजकर खो गई मैं पागल प्रेम-विभोर
भाँग से भरा हुआ यह कूप
भरा नैनों में मन में रूप
—स्कंद गुप्त

(४) जानि सुजान मैं प्रीति करी, सहिकै जग की बहु भाँति हँसाई
त्यों 'हरिचंद जू' जो जो कह्यो, सो करयो चुप ह्वै, करि कोटि उपाई
सोऊ नहीं निबही उनसों, उन तोरत बार कछू न लगाई
साँची भई कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई
प्रेम माधुरी १०८.

(५) तुमरे तुमरे सब कोऊ कहैं, तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं
विरुदावली आपनी राखो, मिलौ मोहिं, सोचिबे की कछु बात नहीं
'हरिचंद जू' होनी हुती सो भई, इन बातन सों कछु हात नहीं
अपनावते सोचि विचारि तबै, जल-पान कै पूछनी जात नहीं
—प्रेम माधुरी १२४.

(६) दीन पै काहे लाल खिस्याने
अपुनी दिसि देखहु करुनानिधि हमपै कहा रिसाने
माछर मारे हाथ जलहि इक कहत बात परमाने
महा तुच्छ 'हरिचंद' हीन सों नाहक भौंहहिं ताने
—प्रेम प्रलाप १०.

परिशिष्ट

१

भारतेंदु युग : एक संक्रान्ति युग

भारतेंदु युग काव्य की दृष्टि से भी एक संक्रांति युग है। इस युग में प्राचीन काव्य धारा का प्राचुर्य तो रहा ही, नई काव्य धारा का भी प्रादुर्भाव हुआ। स्वयं भारतेन्दु जो आधुनिक काव्य के जनक हैं, प्राचीन काव्य-धारा के अत्यन्त सरस एवं श्रेष्ठ कवि हैं। इनकी प्राचीन प्रणाली पर लिखी हुई रचनाएँ नवीन रचनाओं की अपेक्षा कई गुना हैं। उनके काव्य में केवल सूफियों की दोहा चौपाई वाली प्रेमाख्यान-प्रणाली की रचनाएँ नहीं मिलतीं, और प्रत्येक काव्य धारा का प्रतिनिधित्व उनमें मिलता है।

भारतेंदु युग के समस्त कवियों को तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम कोटि में उन कवियों को रखा जा सकता है, जो प्राचीन परंपरा पर ही चलते गए, आधुनिकता से जिन्होंने अपने को अलग ही रखा। इन कवियों में अधिकांश वे हैं जो वय की दृष्टि से भारतेंदु से बड़े थे और पुरानी परंपरा में पूर्ण रूपेण अभिरत हो गए थे। सेवक, सरदार, हनुमान इस परंपरा के अत्यंत श्रेष्ठ कवि हैं।

द्वितीय कोटि में उन कवियों को रखा जा सकता है जिन्होंने प्राचीनता से प्रारम्भ किया और आधुनिकता से समाप्त। भारतेंदु युग इसी कोटि के कवियों के कारण संक्रांति युग बना। इन्हीं कवियों की रचनाओं में प्राचीन एवं नवीन का संक्रमण हुआ। इस कोटि के कवियों के नेता हैं स्वयं भारतेंदु, जिनकी महत्ता की स्वीकृति युग के नामकरण से स्वतः स्पष्ट है। भारतेंदु के अतिरिक्त अन्य प्रमुख कवि हैं—चौधरी बदरी नारायण 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र और राधाकृष्ण दास।

तीसरे वर्ग में वे कवि आते हैं, जिन्होंने केवल अर्वाचीन ढंग की रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इस वर्ग के कवि वय की दृष्टि से भारतेंदु से लहुरे थे। इस वर्ग में अधिक कवि आते भी नहीं। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व बाल मुकुंद गुप्त करते हैं।

भारतेंदु युगीन काव्य भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से संक्रमणकालीन काव्य है। इसके प्रमाण में द्वितीय वर्ग के कवियों की रचनाएँ उद्धृत की जा सकती हैं, विशेषकर भारतेंदु की।

हिंदी साहित्य का आदि काल वीरगाथा काल है। वीर गाथा के ढंग की वीर रस पूर्ण रचनाएँ भारतेंदु ने 'विजयिनी विजय वैजयंती' आदि के द्वारा प्रस्तुत कीं।

दूसरा युग भक्ति काल के नाम से प्रसिद्ध है, जिसकी चार प्रमुख धाराएँ हैं—निर्गुन संत काव्य, सूफी प्रेम काव्य, राम काव्य और कृष्ण काव्य। भारतेंदु की रचनाओं में कबीर की सी वैराग्यमूलक कुछ रचनाएँ भी उन्हीं की सी अक्खड़ता लिए हुए मिलती हैं। ये रचनाएँ उनके जीवन के सांध्य काल में रची गईं—

'साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है'

ऐसी ही रचनाओं का एक उदाहरण है। इस युग के और किसी कवि ने इस शैली की रचनाएँ नहीं प्रस्तुत कीं। भारतेंदु की भी इस प्रकार की रचनाओं की संख्या पर्याप्त नहीं हैं। इस युग के किसी भी कवि ने सूफी परंपरा पर दोहा चौपाई में कोई प्रेमाख्यान नहीं लिखा। राम काव्य धारा के एक श्रेष्ठ कवि रीवाँ के राजा रघुराज सिंह हैं जो इसी युग में हुए। भारतेंदु ने भी 'रामलीला' नामक चंपू लिखकर इस काव्य धारा में अपना योग दिया। जहाँ तक कृष्ण काव्य का संबंध है, भारतेंदु वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित भक्त थे, उन्होंने सूर-सी संप्रदाय-निष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोसाईं विट्ठलनाथ तथा बल्लभ कुल की प्रशस्तियाँ भी हैं। कृष्ण काव्य की परंपरागत प्रणाली पद-विरचन की है, भारतेंदु ने साढ़े आठ सौ पद लिखे हैं। प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन जी एवं राधाकृष्ण दास की रचनाओं में भी पदों का अभाव नहीं है। राग संग्रह, प्रेम फुलवारी, कृष्ण चरित आदि भारतेंदु के अत्यन्त श्रेष्ठ पद-संग्रह हैं।

रीतिकाल की परंपरा दो प्रकार की थी, एक तो रीति बद्ध काव्यों की, दूसरी रीति मुक्त काव्यों की। इस युग में दोनों श्रेणी के कवि मिलेंगे। रीति युग की रचना कवित्त सवैयों के क्रोड़ में सिमटी रही। भारतेंदु युग में भी रीति परंपरा की रचनाएँ होती रहीं। सेवक, सरदार, हनुमान इसी परंपरा के कवि थे, जिन्हें आधुनिकता छू भी नहीं गई थी। बाबा सुमेर सिंह साहबजादे भी इसी परंपरा के अत्यंत सरस एवं सहृदय कवि थे। 'द्विजदेव' के भतीजे प्रतापनारायण सिंह

विरचित 'रसकुसुमाकर' रस का एक अत्यंत श्रेष्ठ ग्रंथ है । स्वयं भारतेंदु ने अपने पिता के अधूरे रीति ग्रंथ को पूरा करना चाहा था, पर वे भी इसे अधूरा ही छोड़ गए । इसमें उन्होंने नायिकाओं के तीन भेदों के स्थान पर पाँच भेद किए हैं—स्वकीया, परकीया, तथा गणिका के साथ साथ कन्यका और कुलटा ।

भारतेंदु के सरस कबित्त सवैयों का संकलन-ग्रंथ 'प्रेम माधुरी' है। इसमें भाषा का अत्यंत परिष्कार हुआ है । परंपरा से प्रचलित, पर जन-साधारण में अप्रचलित, शब्दों का वहिष्कार करके भारतेंदु ने अपनी भाषा को अत्यंत चलती बना दिया, फलस्वरूप उनके कबित्त सवैए उनके जीवन काल में ही अत्यंत प्रचलित हो गए थे । प्रेमघन जी का भी इस प्रकार का संकलन 'प्रेम पीयूष वर्षा' है । ठाकुर जगमोहन सिंह के प्रेम सवैये भी बड़े सरस हैं । ये सभी रचनाएँ रीतिमुक्त हैं और घनानंद, रसखान, बोधा, आलम, ठाकुर की परंपरा में हैं । चलती भाषा और स्वच्छंदता इनकी बहुत बड़ी विशेषता है ।

इन प्रमुख काव्य धाराओं के अतिरिक्त और भी बातें हैं जो प्राचीनता की पोषक हैं, यथा प्राचीन कवियों का मूल्यांकन करने के दृष्टिकोण से सरस कवित्त सवैयों के संग्रह ग्रंथ प्रस्तुत करना, और पुराने दोहाकारों के दोहों पर कुंडलियाँ लगाना । सरस सवैयों का एक सुंदर संग्रह भारतेंदु ने 'सुंदरी तिलक' नाम से किया था ; 'शिवसिंह सरोज' भी एक संग्रह ग्रंथ ही है ; हफीजुल्ला खाँ का हजारा भी इसी युग के अंत में संकलित एवं प्रकाशित हुआ । भारतेंदु ने बिहारी के ८४ दोहों पर कुंडलियाँ लगाईं । अंबिका दत्त व्यास ने संपूर्ण बिहारी सतसई पर कुंडलियाँ लगाकर 'विहारी विहार' नाम से प्रकाशित कराया, राधाकृष्ण दास ने रहीम के उस समय तक प्राप्त सभी दोहों पर 'रहिमन विलास' नाम से एवं हरिऔध ने 'कबीर कुंडल' नाम से कबीर के कुछ दोहों पर कुंडलियाँ लगाईं । जोखूराम पंडा ने भी विहारी के कुछ दोहों पर कुंडलियाँ लगाई थीं । इनके अतिरिक्त भारतेंदु ने नाभादास के 'भक्तमाल' के ढंग पर एक ग्रंथ 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' नामक लिखा जिसमें एक एक छप्पय में एक एक भक्त का जीवन चरित एवं उनकी महत्ता का गुणानुवाद हुआ है ।

इन सब प्राचीन परंपराओं के संचरण के साथ साथ भारतेंदु युग में नवीन विचारणाएँ भी प्रारंभ हुईं । काव्य जो जन जीवन से विलग हो गया था अब पुनः उससे संलग्न हो गया, इसका सर्वाधिक श्रेय भारतेंदु बाबू को ही प्राप्त है । भारतेंदु ने न केवल प्राचीन काव्य प्रणालियों में अपनी काव्य-तरी प्रवाहित की, वरन् उन्होंने इस हेतु नई नई काव्य प्रणालियाँ भी खोज निकालीं । उन्होंने काव्य

के पथ को बदल दिया, विषय विस्तार किया। इस दृष्टि से उन्होंने पहला पथ राज-भक्ति का ग्रहण किया। इस प्रकार की उनकी पहली रचना 'अलवरत अंतर्लापिका' है, जो संवत १९१८ वि० (१८६१ ई०) में प्रकाशित हुई। उस युग के प्रत्येक कवि ने राजभक्ति संबंधी रचनाएँ कीं। भारतेंदु की इस प्रकार की रचनाएँ बहुत सी हैं। वे एक प्रकार से राजकवि थे। राजकुमार सुस्वागत पत्र, सुमनोऽञ्जलि, मानसोपायन, मनोमुकुल माला, जतीय संगीत, मुँह दिखावनी आदि उनकी राजभक्ति संबंधी रचनाएँ हैं। 'हार्दिक हर्षादर्श' प्रेमघन जी की, 'ब्रैडला स्वागत' प्रतापनारायण मिश्र की, और 'मेकडानेल पुष्पांजलि' 'विजयिनी विलाप' राधाकृष्ण दास की राजभक्ति संबंधी रचनाएँ हैं।

सन् १८७४ ई० आते आते भारतेंदु राष्ट्रीय कवि हो गए और उनकी राजभक्ति में देश भक्ति का अपूर्व सम्मिश्रण हो गया—भारत वीरत्व, विजय वल्लरी, विजयिनी विजय वैजयंती में राज भक्ति और देश भक्ति का पूर्ण संतुलन हुआ है। उनकी इस विशेषता की ओर आलोचकों का ध्यान बहुत विलंब से बीसवीं शताब्दी में गया। पितर प्रलाप, हार्दिक हर्षादर्श प्रेमघन जी की, भारत बारहमासा राधाकृष्ण दास जी की राष्ट्रीय रचनाएँ हैं। इन कवियों की राष्ट्रीयता बहुत कुछ हिंदू राष्ट्रीयता थी, इसमें भारत के गौरवपूर्ण अतीत का गुणगान, दीन हीन वर्तमान पर विक्षोभ एवं भविष्य के लिए मंगल कामना समान रूप से मिलती हैं।

इन कवियों में स्वदेशी प्रेम और हिंदी प्रेम कूट कूट कर भरा है। 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के ए समान रूप से हितैषी थे। अपनी रचनाओं में भी उन्होंने अपने इस प्रेम का प्राकट्य किया है। भारतेंदु का हिंदी भाषा पर दिया हुआ पद्यबद्ध व्याख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसीमें उन्होंने कहा है—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'

ए कवि उर्दू के भी शायर थे। भारतेंदु 'रसा' नाम से, प्रेमघन 'अब्र' और प्रतापनारायण मिश्र 'बरहमन' नाम से कहा करते थे। उन्हें उर्दू से विद्वेष नहीं था, पर उर्दू हिंदी के अधिकारों पर भी कुठाराघात करती जाय, यह उन्हें सह्य नहीं था। इसीलिए भारतेंदु ने 'उर्दू का स्यापा' लिखा और बालमुकुंद गुप्त ने 'बी उर्दू को उत्तर' लिखा। इन्हीं कवियों का प्रयत्न मूल में था कि हिंदी आज अपने अधिकारों को पा सकी है।

भाव की दृष्टि से तो भारतेंदु-युग संक्रांति-युग है ही, छंदों की दृष्टि से भी यह संक्रमण देखा जा सकता है। इस युग में पद, दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय, रोला आदि प्राचीन छंद तो प्रचलित ही रहे—लावनी, आल्हा, कजली आदि नए छंद भी प्रचलित हुए। लोक गीतों की ओर कवियों का ध्यान गया और उन्होंने स्वयं बहुत से गीत लिखे।

काव्य-भाषा की दृष्टि से भी यह संक्रमण काल रहा। काव्य रचना मुख्यतया ब्रजभाषा में होती रही, पर खड़ी बोली का प्रयोग भी प्रारंभ हो गया। स्वयं भारतेंदु ने इस प्रकार के प्रयोग किए, जिसमें उन्हें बहुत सफलता नहीं मिली। आगे चलकर द्विवेदी युग में खड़ी बोली ने वह अधिकार प्राप्त किया, जो आज काव्य क्षेत्र में उसे मिला हुआ है।

२

विविध भाषा काव्य

भारतेंदु के समय तक ब्रजभाषा हिंदी काव्य की प्रमुख स्वीकृत भाषा थी। सभी कवि ब्रजभाषा में रचना करते थे। इसलिए भारतेंदु बाबू भी ब्रजभाषा ही के कवि हैं। परंतु मस्ती में आकर उन्होंने स्वच्छंदता पूर्वक अनेक भाषाओं और हिंदी की विभिन्न बोलियों में भी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। वे अनेक भाषाओं एवं बोलियों के ज्ञाता थे। उन्होंने विद्यासुंदर का बँगला से छायानुवाद, कर्पूर मंजरी का प्राकृत से, मुद्राराक्षस, धनंजय विजय एवं पाखंड विडंबन तथा 'गीत गोविंद' का संस्कृत से, और मर्चेण्ट आफ वेनिस का अँगरेजी से अनुवाद किया था। इस प्रकार इन चार भाषाओं पर उनका अधिकार स्पष्ट है, बँगला और संस्कृत में तो उनकी कुछ काव्य रचना भी उपलब्ध है। प्रांतीय भाषाओं में बँगला के अतिरिक्त गुजराती एवं पंजाबी भी वे जानते थे, यत्र तत्र इन भाषाओं की रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। ब्रजभाषा के अतिरिक्त हिंदी के अन्य विभिन्न रूपों जैसे खड़ी बोली, अवधी, बनारसी, राजस्थानी, पुरानी हिंदी, उर्दू आदि की भी उनकी काव्य रचनाएँ पर्याप्त मात्र में प्राप्त हैं।

संस्कृत

'श्री सीतावल्लभ स्तोत्र' (३१ श्लोक) एवं श्री राजराजेश्वरी स्तुति (९ श्लोक) भारतेंदु बाबू की संस्कृत काव्य रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न पुस्तकों में उनकी निम्नांकित छह संस्कृत कविताएँ मिलती हैं—

(१) संस्कृत लावनी—सखी द्वारा राधा का मान-मोचन-प्रयत्न। छोटी रचनाओं में संकलित यह एक अत्यंत सुंदर, सरस, सरल, स्निग्ध रचना है। इसमें चार कड़ियाँ हैं। जयदेव की भाषा की मधुरता इसमें मिलती है।

(२,३) दो कजलियाँ 'वर्षा विनोद' में हैं—छंद संख्या १७, १८—ये दोनों भी अत्यंत सरस एवं सरल हैं। उदाहरण के लिए एक रचना उद्धृत की जाती है—

हरि हरि हरिरिह विहरत कुंजे मन्मथ मोहन वनमाली
श्री राधाय समेतो शिखिशेखर शोभाशाली
गोपी - जन - विधु-बदन-वनज - वन मोहन मत्ताली
गायति निज दासे 'हरिचंदे' गल-जालक माया-जाली

ये दोनों कजलियाँ हिंदी के मात्रिक छंद में हैं, संस्कृत के वर्ण वृत्त में नहीं।

(४) 'मधुमुकुल' का छंद ७४, राग बसंत, संस्कृत में है। इस रचना में भी जयदेव का शब्द-सौष्ठव मिलता है। इस रचना की सारी मधुरता अन्त्यानुप्रासों एवं सामासिक पदावली में है। शब्द समासों के कारण रूपों के जाल में नहीं फँसे हैं। अतः हिंदी वाले भी इसे समझने में समर्थ हैं।

(५) 'प्रेम प्रलाप' की ५७ संख्या की कविता संस्कृत की एक 'अष्टपदी' है। इसमें रासकालीन राधाकृष्ण का विहार-सुख वर्णित है। इस पर भी जयदेव का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है।

(६) 'भक्तमाल' के अंत में एक संस्कृत श्लोक उपसंहार रूप में है।

भारतेंदु जी ने जयदेव के 'गीत गोविंद' का पद्यानुवाद 'गीत गोविंदानंद' नाम से किया है। अपनी 'चरितावली' में उन्होंने जयदेव का जीवन चरित भी दिया है। वे जयदेव की शब्द माधुरी पर मुग्ध थे। जयदेव की भारती की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं—

"जयदेव जी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उनकी कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है। इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है, न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है। सुनने पढ़ने की बात है पर गूँगे का गुड़ है। निर्जन में जंगल पहाड़ में जहाँ बैठने को बिछौना भी न हो वहाँ गीत गोविंद सब आनंद सामग्री देता है, और जहाँ कोई मित्र-रसिक भक्त प्रेमी न हो वहाँ यह सब कुछ बनकर साथ रहता है। जहाँ गीत गोविंद है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृंदावन है, वहीं प्रेम सरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है, और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानंद है।"

भारतेंदु बाबू 'गीत गोविंद' का अनुवाद करके ही तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने जयदेव के अनुकरण पर ऊपर लिखी दोनों कजलियाँ, लावनी, अष्टपदी और राग बसंत ये ५ रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं।

बँगला

मल्लिका नाम की एक बंग देशीया कुलीन और शिक्षित विधवा भारतेंदु के संपर्क में रही। बँगला में 'चन्द्रिका' उपनाम से उसने बहुत से पद बनाए हैं। 'प्रेम तरंग' में ४७ रचनाएँ बँगला भाषा में हैं। छन्द संख्या ७१ एवं १०० के पश्चात १ से ४६ तक रचनाएँ बँगला में हैं। कवि ने १०० के पश्चात् १०१

अंक न देकर इन बँगला रचनाओं की गणना एक दम नए सिरे से की है। इनमें बँगला भाषा का माधुर्य कूट कूट कर भरा है। ये रचनाएँ सब की सब भारतेन्दु बाबू की नहीं हैं। इन रचनाओं में से अधिकांश 'चन्द्रिका' की हैं। उसके नाम की छाप इन रचनाओं में है। छन्द संख्या ७, १४, १८, १९, २८ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३७, ३८, ३९ इन १४ छन्दों में चन्द्रिका का नाम आया है। इनके अतिरिक्त 'प्रेम तरंग' की ९५, ९६, ९७ संख्यक हिन्दी कविताओं में भी चन्द्रिका का नाम आया है। निस्सन्देह अत्यंत स्नेह के कारण ही भारन्तेदु ने चन्द्रिका को अपने से अभिन्न मान कर उसकी भी रचनाएँ अपनी कृति में सम्मिलित कर ली हैं। बंग भाषा की इन ४७ रचनाओं में केवल तीन (संख्या २९, ४१, ४२) में हरिश्चन्द्र की छाप है। शेष तीस रचनाएँ बिना छाप की है और सम्भवतः चन्द्रिका की ही कोमल कृति हैं, क्योंकि इनमें भी नारी की ही कोमल विरह एवं आत्मसमर्पण की भावना की वर्णना है। इनमें प्रायः 'प्राननाथ' शब्द का प्रयोग हुआ है। कई रचनाओं में हरिश्चन्द्र के साथ नाथ, प्राननाथ, प्रानधन आदि विशेषण लगे हुए हैं। ये सभी रचनाएँ निश्चय ही चंद्रिका की हैं। इसी प्रकार 'होली' में भी ६१, ६८ संख्यक रचनाएँ उनकी दूसरी प्रेमिका माधवी की हैं। भक्तमाल के उत्तरार्द्ध में चौरासी वैष्णवों के प्रसंग में कुछ छन्द किसी ब्रजचंद द्वारा विरचित हैं। छन्द संख्या ८२ के पश्चात् एक दोहा है—

चौरासी परसंग में मम आयसु धरि सीस
छन्द रचे 'ब्रजचन्द' कछु सुमिरि गोकुलाधीस

अस्तु, चन्द्रिका के साहचर्य के कारण भारतेन्दु बाबू ने कुछ काव्य रचना बँगला में भी की। नीचे भारतेन्दु बाबू की बँगला कविता का एक उदाहरण दिया जाता है :—

निभृत निशीथे सई ओ बाँशी बाजिल।
पूरित करिया बन, भेदिया गगन घन,
जो काँपाईया समीरन, मधुर रवे गाजिल।
स्तंभित प्रवाह नीर, ताड़ित मयूर कीर,
झँकारिया तरुगन, एक तान साजिल।
'हरिश्चन्द्र' श्याम बाँशी-स्वर कामदेव फाँसी,
कुलबधु सुनियाई आर्यपथ त्याजिल।

—प्रेम तरंग ४१

गुजराती

गुजराती में भारतेन्दु बाबू की तीन कविताएँ उपलब्ध हैं। दो तो 'प्रेम-प्रलाप' (छन्द संख्या ५८, ५९) में हैं। इनमें प्रथम में कृष्ण सौंदर्य का निरूपण है, दूसरे में वल्लभाचार्य का गुणगान है। तीसरी रचना 'मानसोपायन' के अन्तर्गत है और राजकुमार के स्वागत में लिखी गई है। उदाहरण के लिए कृष्ण सौंदर्य सम्बन्धी 'गरबो' यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

थारे मुख पर सुन्दर श्याम, लट्टूरी लट लटके छे
जेने जोईने म्हारो मन लाल, जाइ जाइ अटके छे
थारा सुंदर नैन विशाल, प्यारा अति रूडा छे
जेने जोईने जग ना रूप, लागे भूँडा छे
थारा सुन्दर गोल कपोल, गुलाब जेव्हा फूल्या छे
जेने जोईने मन भ्रमर, जुवतिओ ना भूल्या छे
तारे कंठे बे बघनखा मनोहर सोहे छे
जेवा नव ससिना बे कंटकाँ लखताँ मोहे छे
तारा बोली अमृत सनी, करण-सुखदाई छे
जेने सांम्हड़ताँ मन जाय, एह्वी मिठाई छे
तारो नख सिख रूप अनूप, सोभा प्यारी छे
जेनी सोभा लखीने 'हरीचन्द' बलिहारी छे

—प्रेम-प्रलाप ५८.

पंजाबी

भारतेन्दु बाबू की पंजाबी में भी केवल तीन रचनाएँ हैं :—

(१) प्रेम तरंग—छन्द संख्या ७२
(२) होली— ,, २५
(३) मधु मुकुल— ,, ६४

तीनों सरस श्रृंगार की सुन्दर रचनाएँ हैं। यथा :—

तैंडे मुखड़े पर घोल घुमाइयाँ
साँवलिये साजन छल-बलिये तुझपर बल बल जाइयाँ
हुई दिवाणी मोहन दा जो इशक जाल गल पाइयाँ
'हरीचन्द' हँस हँस दिल लीता अब यह बे-परवाइयाँ

—मधु मुकुल ६४.

राजस्थानी

भारतेन्दु बाबू के सात पद राजस्थानी में मीरा की शैली में हैं—

(१) प्रेम मालिका—२९, ३०, ३१

(२) मधुमुकुल—६०, ६१, ६२

(३) वर्षा विनोद—४०

ये सभी पद सरस सरल श्रृंगार के सुन्दर उदाहरण हैं।

राग देश

हिंडोरा कौन झूलै थारे लार
तुम अटपटे, थारी झूलन अटपटी, हूँ तो घणी सुकुमार
तुम झूलो, थाने हूँ जू झुलाऊँ, थारो चरित अपार
'हरीचंद' ऐसी कहे छे राधिका, मोहन-प्रान-अधार

—वर्षा विनोद ४०.

पुरानी हिंदी

पुरानी हिन्दी के अनुकरण पर कुछ रचना 'पाखण्ड विडंबन' रूपक में है, जो संस्कृत से अनूदित है। जैनों के सिद्धान्त ग्रन्थ पुरानी हिन्दी में, जिसे अपभ्रंश भी कहते हैं, अधिक मिलते हैं और उनका छन्द भी प्राय: दूहा (दोहा) होता है। यहाँ जैनों के पाखण्ड सिद्धान्त का निरूपण ऐसी ही भाषा में किया गया है—

नव द्वारा रो देह धर तिसमां आतम दीप
जिनवर रो सिद्धांत यह देसी मोच्छ समीप

बनारसी बोली

भारतेंदु जी ने लोक गीतों की रचना प्रचुर मात्रा में की है। लोक गीतों को यद्यपि साहित्यिक रूप दिया गया है; परंतु फिर भी कुछ रचनाओं में बनारसी रूप स्पष्ट झलक जाता है। पियरवा, गरवा, हरवा, भँवरवा, निअरवा, कोइरिया, दवरिया, कटरिया, नयनवाँ, सयनवाँ, बयनवाँ आदि विकृत शब्द बनारसी बोली के नित्य व्यवहार के शब्द हैं।

ख्याल

न जाय, मोसों ऐसो झोंका सहिलो न जाय
झुलाओ धीरे, डर लागै भारी, बलिहारी हो,
बिहारी, मोसों ऐसो झोंका सहिलो न जाय।

देखो कर धर, मेरी छाती धर धर करै,
पग दोउ रहे थहराय हाय।
'हरीचंद' निपट मैं तो डरि गई प्यारे
मोहिं लेहु झट गरवाँ लगाय।
— { प्रेम तरंग ६५
वर्षाविनोद १३ }

'परिहासिनी' के अंतर्गत 'मुशायरा' में ठेठ बनारसी बोली की अनेक रचनाएँ हैं। उनमें से भी एक यहाँ उद्धृत की जा रही है :—

भौं चूमि लेईला केहू सुंदर जे पाईला
हम ऊ हई की हाँठे पै तरुवार खाईला
इन कैके अपने रोज तो रहिला चबाईला
राजा के अपने खुरमा औ बुँदिया चभाईला
सौ सौ तरह के मूँड़े पै जोखिम उठाईला
पै राजा तोहें एक बार देखि आईला
पुतरी मतिन रखब तोहें पलकन के आड़ में
तोहरे बदे हम आँखी में बैठक बनाईला
कहली कि काहे आँखी में सुरमा लगावल
हँसके कहै लैं छूरी के पत्थर चटाईला।
हम झारैवाला बाड़ी हजारन में राम घे
पै राजा तोसे बेंत मतिन थरथराईला।

खड़ी बोली

पहली अप्रैल १८८१ ई० के 'भारतमित्र' में भारतेन्दु जी ने एक पत्र छपाया था, जिसमें उन्होंने खड़ी बोली की काव्योपयुक्तता पर अपने विचार प्रकट किए हैं। वे लिखते हैं:—

"प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलंबन करने से इस भाषा में काव्य सुंदर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जायगा। तीन भिन्न भिन्न छंदों में, यह अनुभव करने ही के लिए कि किस छंद में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इससे संतुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं कहीं सौन्दर्य के हेतु दीर्घ

मात्राओं को लघु करके पढ़ने की चाल रक्खी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूँगा।'

—भारतेंदु हरिश्चंद्र (ब्रजरत्न दास), पृ० २५२.

इस पत्र से ज्ञात होता है कि १८८१ ई० से भारतेंदु बाबू ने खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखने का प्रयास प्रारंभ किया। इसके बाद वह प्रायः चार वर्ष तक जीवित रहे। इस अल्पकाल में वे खड़ीबोली हिंदी में बहुत कम रचनाएँ दे पाए। इन रचनाओं की भाषा मँजी नहीं है। केवल क्रिया के रूप को देखकर हम उन्हें खड़ी बोली की रचना कह लेते हैं। भारतेंदु बाबू उर्दू के भी अच्छे कवि थे और उर्दू खड़ी बोली हिंदी का ही फारसी मिश्रित रूप है। वे प्रारंभ से ही उर्दू में कविता लिखते आ रहे थे। जहाँ उर्दू की ये कविताएँ सरल हो गई हैं, हम उन्हें हिंदी खड़ी बोली की कविताएँ कह सकते हैं।

१८८१ ई० से पहले की खड़ीबोली रचनाएँ—

प्रेम तरंग—८०, ८१, ८२, ८७, ८९ लावनियाँ

प्रेम प्रलाप—५४, ५६ लावनियाँ, ६७.

१८८१ ई० के बाद की खड़ी बोली रचनाएँ—

मधु मुकुल—५६ लावनी

वर्षा विनोद—६, ६० लावनियाँ

विनय प्रेम पचासा—३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ४९, ५०.

स्फुट—राम बिना बे काम सभी, दशरथ विलाप

उदाहरण के लिये हम भारतेंदु बाबू की एक रचना उद्धृत कर रहे हैं—

मृत्यु नगाड़ा बाजि रहा है सुन रे तू गाफिल सब छन
गगन भुवन भरि पूरि रहा गंभीर नाद अनहद घन घन
उनपति पहिले बजता था, बजता है, औ बाजैगा
इसी शब्द में गुन लै होंगे, सदा एक मत राजैगा
यह जग के सामान, बीच ही भए, बीच मिट जावैंगे
परस रूप रस गंध अन्त में शब्दहि माहिं समावैंगे
काल रूप सच्चिदानन्द घन साँचो कृष्ण अकेला है
'हरीचन्द' जो और है कुछ वह चार दिनों का मेला है

इस पद में प्रयुक्त शब्दों के अध्ययन से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) दीर्घ को लघु बना देने की प्रवृत्ति—है (आठवीं पंक्ति)
(२) पूर्वकालिक क्रिया को अकारांत न रख, इकारांत रखना—बाजि, भरि, पूरि।
(३) शब्दों के ब्रज भाषा रूपों का प्रयोग—छन, गुन, साँचो, शब्दहि, माहिं,
(४) बाजेगा, राजेगा के स्थान पर बाजैगा, राजैगा ऐसे प्रयोग।

ये सभी दूषित प्रयोग भारतेन्दु बाबू की ढीली ढाली, लचर खड़ी बोली का रूप प्रस्तुत करते हैं और सिद्ध करते हैं कि वे अपने प्रयोग में असफल रहे। यदि भारतेन्दु अपने प्रयोग में सफल हो गए होते तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने के लिए इतने अथक परिश्रम की आवश्यकता न पड़ती।

उर्दू

भारतेन्दु बाबू जैसा कि कहा जा चुका है, उर्दू के भी अच्छे कवि थे। वे 'रसा' अपना तखल्लुस रखते थे। उर्दू में उनकी लिखी १९ लावनियाँ एवं ३४ गजलें प्राप्त हैं। लावनियों की न तो भाषा ठीक है और न तो तुक तथा गति। तुक तो कभी कभी निहायत वाहियात हो गए हैं। उनकी उर्दू रचनाओं की सूची यह है :—

लावनियाँ—१९

प्रेम तरंग—सं० ७९, ८३, ८४, ८५, ८६, ८८ कुल छह

फूलों का गुच्छा—१३ लावनियाँ

गजलें—३४

प्रेम तरंग—सं० ९९, १०० अन्त में सं० १, २

मधुमुकुल—सं०५७ होली की गजल

वर्षा विनोद—सं० ७

राजराजेश्वरी—१

स्फुट—कुल २७

प्रेम तरंग, मधुमुकुल एवं वर्षा विनोद में आई हुई गजलें अत्यन्त सुन्दर एवं सरल हैं। इन रचनाओं में उर्दू शायरी की सारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ उपलब्ध हैं। "बाबू हरिश्चन्द्र के शैरों में ख्यालात जरूर बहुत ऊँचे होते थे लेकिन चूँकि उन्होंने उर्दू जुबान बाकायदा नहीं सीखी थी इसलिए उनकी जुबान चुस्त नहीं थी"—ऐसा उनकी रचना पर इसलाह करनेवाले मौलवी फ़ायज़ का मत है।

उदाहरण के लिए 'प्रेम तरंग' से एक गजल उद्धृत की जा रही है—

दिल मेरा ले गया दग़ा करके
बेवफ़ा हो गया वफ़ा करके
हिज्र की शब घटा ही दी हमने
दास्ताँ ज़ुल्फ़ की बढ़ा करके
मुअल्लक़ कह दो क्या मिला तुझको
दिलजलों को जला जला करके
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर
ख़ूब रोए गले लगा करके
सर्वे क़ामत ग़ज़ब की चाल से तुम
क्यों क़यामत चले बपा करके
ख़ुद बख़ुद आज जो वो बुत आया
मैं भी दौड़ा ख़ुदा ख़ुदा करके
क्यों न दावा करे मसीहा का
मुर्दे ठोकर से वह जिला करके
क्या हुआ यार, छिप गया फिर क्यों
इक झलक सी मुझे दिखा करके
दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है 'रसा, रसा' करके

—प्रेम तरंग, भाग २.

२

निवानी
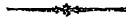
(१) चाहिबे की चाह, काहु की न परवाह, नेही–
नेह के, दिवाने सदा सूरत निवानी के

(२) हम चाकर राधा रानी के
ठाकुर श्री नँदनंदन के वृषभानु लली ठकुरानी के
निरभय रहत, बदत नहिं काहू, डर नहिं डरत भवानी के
'हरीचंद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के
—होली ११.

(३) निवानी तेरी सूरत मेरे मन बसी
नैन उदास, अलक अरुझानी, मेरे जिय सों फँसी
कोटि बनावट वारौं इनपैं सहजहि सोभा लसी
'हरीचंद' फाँसी गर डारत तनक मंद मृदु हँसी
—मधु मुकुल ३५.

(४) कहा भयो, मद है पीयो, कै गहिरी बिजया छानी सी
लाल लाल दृग, केस बिथुरि रहे, सूरत भई निवानी सी
झुक झुक झूमत, अल-बल बोलत, चाल मस्त बौरानी सी
काके रंग रँगी, ऐसी क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी
—स्फुट कविताएँ, पृष्ठ ८६१, समस्यापूर्ति १.

इन कविताओं में 'निवानी' शब्द आया है। इसका क्या अर्थ है, स्पष्ट नहीं। श्री ब्रजरत्नदास ने 'भारतेंदु सुधा' में 'होली' का ११ वाँ पद संकलित किया है और अंत में 'निवानी' का अर्थ 'सुंदर' दिया है। यह अर्थ ऊपर की सभी कविताओं में लगाया भी जा सकता है। यह शब्द किस प्रकार बना, अब यह देखना है। 'निवानी' से मिलते जुलते दो शब्द हैं 'नवीन' और 'नेवान'। 'नवीन' संस्कृत का शब्द है और इसका अर्थ है 'नया'। नेवान तद्भव है, इसका तत्सम रूप है 'नवान्न'। परंतु इन शब्दों से 'निवानी' का कोई संबंध नहीं दिखाई देता। भारतेंदु अर्द्धशती महोत्सव के अवसर पर (जनवरी १९३५ ई०) मेरे एक मित्र ने मुझसे आत्म परिचय वाले कवित्त के उपरोक्त

चरण का अर्थ करने के लिए कहा था और 'निवानी' शब्द पर विशेष जोर दिया था। उस समय मैं नवें दर्जे का विद्यार्थी था। मेरा मनमाना अर्थ सुन उन्होंने बताया था कि 'निवानी' एक मंगलामुखी थी। मैं नहीं जानता उन्हें यह जानकारी कहाँ से हुई। उनके किसी जीवनचरित में इसका उल्लेख नहीं हुआ है। माधवी और चंद्रिका की चर्चा शिवनंदनसहाय एवं ब्रजरत्नदास ने की है, निवानी की नहीं। हो सकता है मेरे मित्र का यह अनुमान अथवा जानकारी ठीक ही हो। ऊपर की कविताओं में यदि 'निवानी' को व्यक्तिवाचक संज्ञा मानकर अर्थ करें तो अर्थ विशेष रूप से खुल जाता है। इसी प्रकार—

नीलम औ पुखराज दोउ जद्यपि सुख हरिचंद;
पै जो पन्ना होइ तो बाढ़ै अधिक अनंद।
नीलम नीके रंग को हौं लाई हौं बाल;
कहुँ न देय तो होयगो अति अदभुत अहवाल।
जद्यपि है बहु दाम को यह हीरा री माय;
बनै तबै जब नीलमनि निकट जड़्यो यह जाय।

—स्फुट कविताएँ, पृष्ठ ८१९।९, १०, ११.

इन दोहों में भी नीलम, पुखराज, पन्ना, हीरा आदि शब्द विचारणीय हैं।

अ. प्रारम्भिक कविताएँ

(अ) प्रथम दोहा एवं प्रथम रचना—पाँच वर्ष की अवस्था में—

लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनुरुद्ध सुजान
बानासुर के सैन को, हनन लगे भगवान

—गिरिधरदास कृत 'बलराम कथामृत' में

(ब) प्रथम सवैया—गोकुल कवि की दी हुई समस्या की पूर्ति—

यह सावन सोक नसावन है, मनभावन यामैं न लाजै भरो
जमुना पै चलो सु सबै मिलिकै अरु गाय बजाय कै सोच हरो
इमि भाखत हैं 'हरिचंद' तिया अहो लाड़िली देर न यामें करो
बलि झूलो झुलावो, झुको उझको, इहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो

—प्रेम माधुरी १२०.

(स) प्रथम पद—

हमतो मोल लिए या घर के
दास दास श्री बल्लभ कुल के चाकर राधावर के
माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुनकर के
'हरीचंद' तुमरे ही कहावत, नहिं विधि के, नहिं हर के

—प्रेम मालिका ३५.

(द) प्रथम ठुमरी—

पछितात गुजरिया घर में खरी
अब लग श्याम सुँदर नहिं आए, दुखदाइन भइ रात अँधरिया
बैठत उठत सेज पर भामिनि, पिय बिन मोरी सूनो सेजरिया

—ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु हरिश्चद्र; पृष्ठ ८९–९०.

ब. अन्तिम कविता

डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे भुलाई
जब चलना ही निहचै है तब लै किन माल लदाई
'हरीचंद' हरिपद बिनु नहिं तो रहि जैहो मुँह बाई

—विनय प्रेम पचासा ४३.

—हरिश्चंद : शिवनन्दन सहाय पृष्ठ ३२३.

५

भारतेंदु पदावली

भारतेंदु बाबू वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव थे। अष्टछाप के कवियों की परंपरा पर चलकर उन्होंने प्रचुर परिमाण में पदों की रचना की है। अष्टछाप के कवियों के पश्चात् कृष्ण-काव्य की यह परंपरा एक प्रकार से टूट गई थी। भारतेंदु बाबू इस टूटी हुई शृङ्खला की अंतिम कड़ी हैं। प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्षण, जैन कुतूहल, प्रेम प्रलाप, राग संग्रह, विनय प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्ण चरित्र आदि बड़ी रचनाएँ, देवी छद्म लीला, दैन्य प्रलाप, उरहना, तन्मय लीला, दान लीला, निवेदन पंचक, वेणु गीत, पुरुषोत्तम पंचक, भीष्मस्तवराज आदि छोटी रचनाएँ पदों में हैं। प्रेम तरंग, होली, मधु मुकुल, वर्षा विनोद प्रधानतः लोक गीतों के ग्रंथ हैं, जिनमें ठुमरी, दादरा, चैती, पूरबी, होली, कजली, गजल आदि लोक-प्रचलित गीत परंपरा का अनुसरण किया गया है। इन ग्रंथों में भी पदों की संख्या नगण्य नहीं हैं, विशेषकर वर्षा विनोद का उत्तरार्द्ध तो पदों ही में है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त भारतेंदु ग्रंथावली के अंत में ६६ पद स्फुट रचनाओं के अंतर्गत हैं। इनमें से कुछ पद न होकर लोक गीत भी हैं। पदों वाली नौ बड़ी पुस्तकों में भी कहीं कहीं पद-प्रणाली से भिन्न अन्य प्रणाली की भी एकाध रचनाएँ हैं। कुछ रचनाएँ कई कई पुस्तकों में संकलित हो गई हैं। भारतेंदु बाबू के पदों की संख्या साढ़े आठ सौ से कुछ ही अधिक होगी; यह संख्या किसी भी दशा में नौ सौ से अधिक नहीं हो सकती। यदि प्रमाद से प्रेम तरंग, होली, मधु मुकुल एवं वर्षा विनोद की भी सभी रचनाएँ पद ही मान ली जायँ, तो भी ये सभी रचनाएँ बारह सौ से कुछ ही अधिक होती हैं। फिर भी अष्टछाप के कवियों के पश्चात् साढ़े आठ सौ प्रौढ़ पदों का निर्माण अन्य किसी कवि द्वारा नहीं हुआ।

भारतेंदु बाबू ने बचपन से ही पद-रचना की ओर ध्यान दिया था। विद्या सुन्दर में, जो उनकी १८ वर्ष की वय में प्रकाशित हुआ, १२ कविताएँ हैं, जिनमें से ९ पद हैं। इसमें एक पद है—

बावरी प्रीति करो मति कोय

यह पद सूर के प्रसिद्ध पद—

'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो'

की छाया-मात्र है। इससे प्रकट होता है कि सूर का प्रभाव 'भारतेंदु पर बचपन ही से था। 'प्रेम मालिका' इनका दूसरा ग्रंथ है जो उनकी २१ वर्ष की वय में प्रकाशित हुआ। इसमें १०० पद हैं जो परम प्रौढ़ हैं। इनसे भारतेंदु की काव्य प्रतिभा का अल्प वय में ही पूर्ण परिपक्व हो जाने का पता लगता है।

भारतेन्दु बाबू की किसी पुस्तक में कथाक्रम नहीं है। 'कृष्णचरित्र' में भी नहीं। सभी फुटकर रचनाएँ हैं। जैसे ही सौ-पचास पद हो जाते थे, चाहे वे एक प्रसंग के हों, चाहे अनेक प्रसंगों के, वे उन्हें विभिन्न नामों से प्रकाशित कर देते थे। जब तक इन पदों को एक सुन्दर क्रम नहीं दे दिया जाता, इनका अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसी दृष्टि से मैंने भारतेन्दु के पदों को एक क्रम दिया और तब सम्प्रदाय-निष्ठ काव्य, विनय पदावली एवं कृष्ण-पदावली नामक अध्यायों को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सका।

पद सूची

१. प्रेम मालिका १–५१, ५४–१०० — ९८

२. कार्तिक स्नान १–२५ — २५

३. प्रेमाश्रु वर्षण १–२२, २४–४६ — ४५

४. जैन कुतूहल १–३६ — ३६

५. प्रेम प्रलाप १–५२, ५५, ५८, ५९, ६२–६७ — ६१

६. होली ७, ९, १०, ११, १६, २१, २३, २४, ३२, ३९, ४१, ६२, ६४, ७९ — १४

७. मधु मुकुल १, ३, ४, ५, ६, ७, ५०, ५१, ७१, ७२, ७३, ७५ — १२
मधु मुकुल की ४६, ५८, ७८, ७९, ८१ संख्यक रचनाएँ भी पद हैं, पर ए 'होली' में भी हैं।
(हरिश्चंद कला वाला मधु मुकुल) २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११. १०

८. वर्षा विनोद ८, ३३, ३४, ३५, ३७, ३९, ४०, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५९, ६३, ६४, ६५, ६६, ६८–८४, ८६, ८७, ८८, ९०–११४, ११७–१३० — ७६

९. राग संग्रह १–११, १३–१७, १९–२५, २७–६६, ६८–९४, ९७–११०,

११२–१४१	१३५
१०. विनय प्रेम पचासा १, ३–१९, २६–३७, ३९–५०	४२
११. प्रेम फुलवारी १–३२, ३४–९३	९?
१२. कृष्ण चरित्र १–३०, ३२–४९	४७
१३. दैन्य प्रलाप	९
१४. निवेदन पंचक	५
१५. पुरुषोत्तम पंचक	५
१६. भीष्मस्तवराज	१०
१७. तन्मय लीला	७
१८. वेणु गीति	१३
१९. देवी छद्म लीला	१८
२०. उरहना	९
२१. रामलीला	९
२२. चंद्रावली	१६
२३. सती प्रताप	२
२४. हरिश्चंद्र–(शिवनन्दन सहाय, पृष्ठ ४८)	२
२५. स्फुट (ग्रं० पृष्ठ ८२७/१७,१८, १–३९, ५३–५७, ६२–६४ पृष्ठ ८३१/१, २	५२
	८५०

६

भारतेंदु कवित्तावली

साधारण तौर पर लोग भारतेंदु बाबू की दो ही काव्य प्रवृत्तियों से परिचित हैं। वे समझते हैं कि उन्होंने सरस शृंगार संबंधी सवैयों की अनुपम सृष्टि की है तथा प्राचीन काव्य धारा की शृंगार-प्रधान गति विधि को मोड़कर उसे राष्ट्रीयता का नया पथ दिखाया है। भारतेंदु के आलोचकों ने उनकी इस दूसरे प्रकार की कविताओं का ही विवेचन किया है, अतएव आधुनिक युग में वे एक प्रगतिवादी कवि के रूप में ही विशेषकर प्रसिद्ध हैं। किंतु अपने युग में वे एक शृंगारी कवि के रूप में ही प्रख्यात थे। उनके शृंगार परक सवैये अपनी सरसता एवं सरलता के कारण उनके जीवनकाल ही में अत्यंत प्रचलित हो गए थे और विभिन्न संग्रहों में उनको स्थान मिला था। स्वसंपादित 'सुंदरी तिलक' (सं० १९३१, द्वितीय संस्करण) में भी उन्होंने अपने कुछ सवैये संकलित कर दिए हैं। उन दिनों इस संग्रह का बहुत मान था, इसलिए भी उनके सरस सवैये लोगों की जबान पर चढ़ गए थे। ठाकुर शिवसिंह ने अपने 'सरोज' (सं० १९३४) में इसी 'सुंदरी तिलक' से दो सवैये हरिश्चंद्र की कविता के उदाहरण में उद्धृत किए हैं। उस युग के प्रसिद्ध संग्रहकार श्री हफीजुल्ला खाँ ने अपने 'हजारा' (१८८६ ई०) एवं 'नवीन संग्रह' (१८८२ ई०) में भी भारतेंदु के सवैये संकलित किए हैं। इससे भारतेंदु के कवित्त सवैयों की तत्कालीन लोकप्रियता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

भारतेंदु बाबू ने सब मिलाकर २६६ कवित्त सवैये लिखे हैं, इनमें से १७ प्रबंध-गत हैं और मुक्तक के गुणों से सर्वथा हीन हैं। ये विभिन्न नाटकों में आए हुए हैं। शेष २४९ छंद ही रसमय एवं स्वयं-पूर्ण मुक्तक हैं। इनमें से १३१ 'प्रेममाधुरी' में हैं शेष ११८ यत्रतत्र उनके नाटकों एवं अन्य काव्य ग्रंथों में बिखरे हुए हैं। भारतेंदु को कवित्त लिखने की अपेक्षा सवैया लिखने का विशेष शौक था। 'सुंदरी तिलक' में उन्होंने केवल सवैये संकलित किए हैं। भारतेंदु के कवित्त भी उतने ही सरस एवं कलापूर्ण हैं जितने उनके सवैये। उनके कवित्त सवैयों का एक सुसंपादित संस्करण निकलना आवश्यक है। यह ब्रजभाषा काव्य

की एक निधि होगा। इनका उपयोग एक स्वतंत्र अध्याय में पहले किया जा चुका है।

भारतेंदु के कवित्त सवैयों को मुख्यकर दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक भाग में शृंगार रस संबंधी उनकी वे रचनाएँ आएँगी जो शृङ्गार-रस के विभिन्न अंगों एवं नायक-नायिका भेद आदि के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। इसमें १६७ छंद आएँगे, दूसरे भाग में अन्य ८२ छंद हैं। इनको भी चार उप-विभागों में बाँटा जा सकता है—राम काव्य, कृष्ण काव्य, विनय एवं विविध। रामलीला नामक चंपू में १५ कवित्त सवैये हैं। इनका उल्लेख राम काव्य के अंतर्गत किया जा चुका है। कृष्ण लीला संबंधी १७ कवित्त सवैये हैं। सभी एक से एक सरस हैं—एक छंद में दान लीला, एक में नाग नथैया, एक में मुरली, सात में गोपी विरह एवं भ्रमर गीत, तीन में मथुरा वापस जाने पर उद्धव का कृष्ण को ब्रज वापस आने की राय और एक में द्वारका-प्रवासी कृष्ण के प्रति गोपियों का चिर वियोग निवेदित है। तीन छंद सुदामा के प्रलाप से संबंध रखते हैं। सुदामा ने द्वारिका से वापस आकर न अपनी टूटी कुटिया पाई और न अपनी बूढ़ी ब्राह्मणी ही। तब वे व्याकुल हो प्रलाप करने लगे। इसे भी कृष्ण काव्य का ही एक अंग समझना चाहिए। विनय संबंधी २६ कवित्त सवैये हैं, जिनमें एक मात्र गोपाल की अनन्य भक्ति पर जोर दिया गया है। विविध में २४ छंद हैं—१ हास्य रस संबंधी, ३ शांत रस संबंधी, ४ वीभत्स रस संबंधी, ३ अन्योक्तियाँ, ५ नीति संबंधी, १ चित्तौर के तत्कालीन महाराणा सज्जन सिंह की मीठी भाषा की प्रशंसा संबंधी, ५ राजभक्ति संबंधी, १ आत्म परिचय संबंधी, १ हिन्दी प्रेम संबंधी।

अ. कवित्त-सवैया सूची

भारतेंदु ग्रंथावली, द्वितीय भाग से

१. प्रेम माधुरी	१३१
२. प्रेम मालिका ५२, ५३	२
३. कार्तिक स्नान १, २ (पृष्ठ ७९)	२
४. प्रेम प्रलाप ६०, ६१, ६८—७६	११
५. गति गोविंदानंद ८, १२	२
६. वर्षा विनोद ८९	१
७. विनय प्रेम पचासा २१—२५	५
८. कृष्ण चरित्र ३८, ५०, ४१	३

९. सुस्वागत पत्र १, २	२
१०. ग्रहण के हेतु महाराज कुमार के आने के हेतु	१
११. स्फुट समस्या पृष्ठ ६७१/१	१०
१२. रामलीला	१५
१३. स्फुट कविताएँ—सवैया	१४
कवित्त	१९
सवैया ८४२/५१	१
समस्यापूर्ति	०
	२१९

भारतेंदु नाटकावली से—

१. धनंजय विजय	१
२. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	१
३. कर्पूर मंजरी	२
४. सत्य हरिश्चन्द्र	३
५. चन्द्रावली	१०
६. मुद्राराक्षस	६
७. सती प्रताप	१
	२४

अन्य ग्रंथों से

१. हरिश्चन्द्र—शिवनन्दन सहाय—पृष्ठ ११५, १२५, १२६, ३३३	४
२. भारतेंदु हरिश्चन्द्र—व्रजरत्नदास—पृष्ठ ८९	१
३. सुंदरी तिलक—संख्या १०७६	१
	६

पूर्ण योग २४९

भारतेंदु के अन्य कवित्त सवैये जो प्रबंध-गत होने के कारण इस सूची में ग्रहीत नहीं हुए—

१. विद्या सुंदर	१
२. रत्नावली	२
३. पाखंड विडंबन	८
	६
	१७

ब. 'सूक्ति सुधा' अर्थात् 'हफीजुल्ला खाँ का हजारा' में आए हुए भारतेन्दु के कबित्त सवैयों की सूची

श्री हफीजुल्ला खाँ ने अपने हजारा में भारतेन्दु की 'प्रेम माधुरी' से निम्नांकित १०२ रचनाएँ संकलित की हैं—

अ. श्री कृष्ण प्रेम वर्णन—(हजारा, पृष्ठ ५८ से ६८ तक)
प्रेम माधुरी—३, ४, ५, ६, ७, १९, २५, २९, ३०, १२१, ३१, ३२, ३९, १२५, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ६८, ६९, ७०, ७६, ८१, ८२, ८३, ८६, ९१, ९५, ९६, १३१, ९७, ९८, ९९, १००.

ब. कूबरी का वर्णन—(हजारा, पृष्ठ २३१)
प्रेम माधुरी—७, ७९.

स. लीला वर्णन—(हजारा, पृष्ठ २५९—२६०)
प्रेम माधुरी—९, १५, २२, २३, २४.

द. नाग लीला—(हजारा, पृष्ठ २८१)
प्रेम माधुरी—३३.

य. श्रृङ्गार आदि रस—(हजारा, पृष्ठ ३४२—४५)
प्रेम माधुरी—१, १०, ११, २०, ३७, ३८, ४०, १२४, ५७, ७४, ७७, ७८, ९३, ९४.

फ. विरह—(हजारा पृष्ठ ३९१—४००)
प्रेम माधुरी—१२, १४, १८, २६, २७, २८, ३४, ३५, १२२, १२३, ४७, ४८, १२६, १२७, ४९, ५०, ५१, ५२, १२८, ५४, १२९, ५६, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ७२, ८७, ८८, ८९, १०३, १०४, १०५.

ज. षट ऋतु वर्णन

(१) बसंत—(हजारा पृष्ठ ४३४)
प्रेम माधुरी—८४, ८५, ९२.

(२) पावस—(हजारा, पृष्ठ ४६१)
प्रेम माधुरी—२.

ह. दोहरे काफिये के छंद
प्रेम माधुरी—१३, २१, ३६.

स. श्री प्रभुदयाल मीतल प्रणीत 'ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद' में आए हुए भारतेंदु के कवित्त सवैयों की सूची

इस ग्रन्थ में भी सारी रचनाएँ 'प्रेम माधुरी' से ही संकलित हैं।

१. स्वकीया—प्रे० माधुरी ७५.
२. मुग्धा—प्रे० माधुरी ८०.
३. परकीया—प्रे० माधुरी ५४, १२८, ११४.
४. लक्षिता—प्रे० माधुरी ७०.
५. अन्य संभोग दुःखिता—प्रे० माधुरी ७२.
६. विप्रलब्धा—प्रे० माधुरी १०४.
७. प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्प्रेयसी—प्रे० माधुरी १५.
८. प्रौढ़ा प्रोषितपतिका—प्रे० माधुरी १०५, ६, १२०, १२, ६२, १२२.

उत्तरार्द्ध

अन्य सहयोगी कवि

१

बाबा सुमेरसिंह साहबज़ादे

बाबा सुमेरसिंह साहबजादे भारतेन्दु-काल के प्रमुख कवियों में थे। वे भारतेन्दु-मण्डल के अन्तर्गत थे, पर न जाने क्यों श्री ब्रजरत्नदास जी ने उन्हें अपनी 'भारतेन्दु मण्डल' नामक पुस्तक में स्थान नहीं दिया है। बाबा जी तो पुरानी परिपाटी के ही लोगों में थे, परन्तु उनकी प्राचीनता में पर्याप्त नवीनता थी। आज सामान्यतया उनके विषय में काव्यरसिकों की जानकारी प्रायः नहीं के बराबर है। इस युग में बाबा जी के जीवन और काव्य के सबसे प्रामाणिक अधिकारी हरिऔध जी थे। उन्होंने अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रन्थ में उनके विषय में निम्नलिखित दो अनुच्छेद दिए हैं—

'बाबा सुमेरसिंह सिक्ख गुरु और पटने के महन्त थे। जिला आजमगढ़ के निजामाबाद कस्बे में उनका निवास था। वे सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे। इसलिये साहबजादे कहे जाते थे। जाति के भल्ले खत्री थे। परमात्मा ने उनको बड़ा सुन्दर रूप दिया था। जैसा सुन्दर स्वरूप था, वैसा ही सुन्दर उनका हृदय भी था। हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी थे, इस भाषा का ज्ञान भी उन्हें अच्छा था। वे संस्कृत भी जानते थे। बाबू हरिश्चन्द्र से उनकी बड़ी मैत्री थी। बनारस के महल्ले रेशम-कटरे की बड़ी संगत में आकर वे प्रायः रहते थे और यहीं दोनों का बड़ा सरल समागम होता था। बाबा सुमेरसिंह ब्रजभाषा की बड़ी सरस कविता करते थे। उन्होंने इस भाषा में एक विशाल प्रबन्ध-काव्य लिखा था, जो लगभग नष्ट हो चुका है, केवल उसका दशम मंडल अब तक यत्र-तत्र पाया जाता है। इस ग्रन्थ का नाम 'प्रेम-प्रकाश' था। इसमें उन्होंने सिक्खों के दस गुरुओं की कथा दस मण्डलों में वृहत् रूप से बड़ी ललित भाषा में लिखी थी। दशम मण्डल में गुरु गोविन्दसिंह का चरित्र था। गुरुमुखी में वह मुद्रित हुआ और वही अब भी प्राप्त होता है। शेष नौ मण्डल कराल काल के उदर में समा गए। बहुत उद्योग करने पर भी न तो वे प्राप्त हो सके, न उनका पता चला। उन्होंने 'कर्णाभरण' नामक एक अलंकार-ग्रन्थ भी लिखा था। अब वह भी अप्राप्य है। गुरु गोविन्दसिंह ने फारसी में 'जफरनामा' लिखा था, उसका अनुवाद भी उन्होंने 'विजय-पत्र' के नाम से

किया था। वह भी लापता है। उन्होंने सन्त निहालसिंह के साथ दशम ग्रन्थ साहेब के 'जाप जी' की बड़ी वृहत् टीका लिखी थी जो बहुत ही अपूर्व थी। वह मुद्रित भी हुआ है, पर अब उसका दर्शन भी नहीं होता। उन्होंने छोटे छोटे और भी कई ग्रन्थ धार्मिक और रस सम्बन्धी लिखे थे। परन्तु उनमें से एक भी अब नहीं मिलता। उन्होंने जितने ग्रन्थों की रचना की थी, उन सबमें हिन्दू भाव ओत प्रोत था और यही उनकी रचनाओं का महत्व था। आजकल कुछ सिक्ख संप्रदाय वाले अपने को हिन्दू नहीं मानते, वे इनके विरोधी थे। इसलिये भी उनके ग्रन्थ दुष्प्राप्य हो गए। फिर भी उनकी स्फुट रचनाएँ 'सुन्दरी तिलक' इत्यादि ग्रंथों में मिल जाती हैं। जब वे पटने में महन्त थे तो वहाँ से उन्होंने एक कविता सम्बन्धी मासिक पत्रिका भी हिन्दी में निकाली थी। वह एक साल तक चलकर बन्द हो गई। उसमें भी उनकी अनेक कविताएँ अब तक विद्यमान हैं। उनकी दो कविताएँ मुझे याद हैं। उनको मैं यहाँ लिखता हूँ। उन्हीं से आप लोग उनकी कविता की भाषा और उनके विचार का अनुमान कर सकते हैं—

(१) सदना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ,
मालन के मनके सु फेरे गनिका ने कौन।
कौन तप साधना से सेवरी ने तुष्ट कियो,
सौचाचार कुबरी ने कियो कौन सुखभौन॥
त्यों 'हरि सुमेर' जाप जप्यो कौन अजामेल,
गज को उबारयो बार बार कबि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुनो साहब हमारे राम,
मेरी बार बिरद बिचारे कौन गहि मौन॥

(२) बातें बनावती क्यों इतनी, हमहूँ सो छप्यो नहिं आज रहा है।
मोहन के बनमाल को दाग, दिखाइ रह्यो उर तेरे अहा है॥
तू डरपै, करै सौहैं, 'सुमेर हरी' सुन साँच को आँच कहा है।
अंक लगी तो कलंक लग्यो, जो न अंक लगी तो कलंक कहा है॥

बाबा सुमेरसिंह ने आजीवन कविता देवी की ही आराधना की। उन्होंने न तो गद्य लिखने की चेष्टा की और न गद्य-ग्रंथ रचे। उनका जीवन काव्यमय था और वे कविता-पाठ करने और कराने में आनन्द लाभ करते थे। अपनी कविता के विषय में उनकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे उसका बहुत प्रचार चाहते थे और कहा करते थे कि हिन्दू सिक्खों की भेदनीति का संहार इसी

के द्वारा होगा। परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि अपने उद्योग में सफलता लाभ करने के पहले ही उनका स्वर्गवास हुआ और उनके स्वर्गवास होने पर उनकी कविता का अधिकांश लोप हो गया। जो कुछ शेष है वह यद्यपि उनकी वास्तविक कीर्ति के विस्तार के लिये पर्याप्त नहीं है, फिर भी अब उसी पर संतोष करना पड़ता है। काल की लीला ही ऐसी है।'

—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृष्ठ ५२२—५२४

बाबू शिवनंदन सहाय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'हरिश्चंद्र' के अंतिम अध्याय में भारतेंदु के मित्रवर्ग के अंतर्गत एक छोटी टिप्पणी बाबा जी पर भी लिखी है, जिससे कई नवीन सूचनाएँ मिलती हैं—विशेषकर दो तिथियाँ। हरिऔध जी ने अपने ग्रंथ में किन्हीं भी लेखकों एवं कवियों से सम्बन्ध रखनेवाली तिथियों का उल्लेख नहीं किया है, जिससे साहित्य के इतिहास के रूप में इस ग्रंथ की उपयोगिता कम हो जाती है। सहाय जी लिखते हैं—

'श्री बाबा सुमेरसिंह साहेबजादे

इनका निवासस्थान निजामाबाद जिला आजमगढ़ में था। यह सिक्ख संप्रदाय के तीसरे गुरु के वंशज थे। सिक्खों में इनका बड़ा मान था। श्रीमान् महाराज पटियाला के अनुरोध से १८८५ ई० में पटना के जज कर्कउड साहब ने इन्हें पटना हरिमन्दिर का महन्त नियत किया था। अपने धर्म के तत्त्वों के बड़े भारी ज्ञाता थे, काव्यशास्त्र के बोद्धा और बड़े मर्मज्ञ थे। इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना भी की है। कई एक पंजाबी भाषा में प्रकाशित हुई हैं। भारतेन्दु जब इनसे मिलते थे, धर्म वा काव्य ही की चर्चा करते थे। इन्होंने अपनी महन्ती के समय हरिमन्दिर स्थान के मकान का, जिसका अधिकांश भग्नावस्था में था, जीर्णोद्धार कराया है। फरवरी १९०३ ई० में अमृतसर में इन्होंने शरीरत्याग किया। आरा नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित 'सिक्ख गुरुओं की जीवनी' में इनका वृत्तांत विस्तारपूर्वक वर्णित है। वह जीवनी भी इसी ग्रंथकर्त्ता ने लिखी है।'

हरिऔध जी द्वारा उद्धृत प्रथम छन्द स्पष्ट ही बाबा जी के उदार धार्मिक दृष्टिकोण का सूचक है। जान पड़ता है जैसे यह किसी राम-भक्त वैष्णव कवि की रचना हो।

संग्रह-ग्रंथों में बाबा जी के शृङ्गारिक सवैए ही संकलित हैं। हरिऔध जी ने ऊपर जो सवैया दिया है वह 'सुन्दरी तिलक', 'शिवसिंह सरोज' तथा 'हफोजुल्ला खाँ का हजारा' में भी दिया हुआ है। भारतेन्दु जी ने 'सुन्दरी तिलक' का

द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण सं० १९३१ में प्रस्तुत किया था; शिवसिंहजी ने अपना 'सरोज' तीन वर्ष बाद सं० १९३४ में प्रतुत किया और वह सवैया उन्होंने 'सुंदरी तिलक' से लिया। 'सुन्दरी तिलक' में बाबा जी के आठ सवैए संकलित हैं, 'सरोज' में केवल एक ही छन्द उद्धृत है। 'कवियों के जीवन चरित्र' के अन्तर्गत पृ० ४९९ पर इनके विषय में इतना ही लिखा है—

'७५. सुमेरसिंह साहबजादे
इनके कवित्त सुन्दरी तिलक में हैं ॥ ३५३ ॥'

इससे कवि के जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। साथ ही 'कवित्त' शब्द भी ध्यान देने योग्य है। 'सुन्दरी तिलक' में, जैसा ऊपर कहा गया है, बाबा जी के आठ 'सवैए' संकलित हैं, 'कवित्त' नहीं। 'तिलक' १४५५ सवैयों का संग्रह है, इसमें कवित्त एक भी नहीं। यहाँ 'कवित्त' शब्द 'छन्द' या 'रचना' के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जैसा हरिऔध जी ने लिखा है, बाबा जी की बहुत कम रचनाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ उनकी काव्य-कला के परिचयार्थ 'सुन्दरी तिलक' में दिए हुए उनके सवैए उद्धृत किए जाते हैं—

(१)

जानै न बोल कुबोल भटू, चित ठानै सदा पति प्रीति सुहाई
केतो करै उपचार सखी, सतराय न नाह पै भौंह चढ़ाई
क्यों नहिं होय 'सुमेरहरी', हरि के हिय आनँद की अधिकाई
जाहि बिलोकत ही पुर की तिय, सीखि गईं पति की सेवकाई

—सुं० ति० सवैया १४

इस सवैए में अङ्कित नायिका स्वकीया है। यह परुष वचन बोलना नहीं जानती, सर्वदा पति-प्रेम में ही रत रहती है। सखियाँ बार-बार मान करने की सीख देती हैं, पर यह अपने पति पर सतराकर कभी भौंह तक नहीं चढ़ाती। वह ऐसी आदर्श पति-देवता है कि गाँव की स्त्रियाँ उससे पति की सेवा करना सीख गई हैं। ऐसी पतिप्राणा को पाकर पति का हृदय क्यों न आनंद से भर जाय? इस सरल और पवित्र दांपत्य-प्रेम-वर्णन में ऐसी कोई बात नहीं जो बीसवीं शती के श्रृङ्गार-विरोधी युग में भी नाक-भौं चढ़ाने योग्य हो।

यहाँ प्रसंगतः कवि की 'छाप' के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बाबा जी अपनी रचनाओं में 'सुमेरहरी', 'सुमरेस हरी' 'सुमरेस जू' आदि नामों का प्रयोग करते थे। 'सुमेरहरी' का प्रयोग उन्होंने 'सुन्दरी तिलक' के छह सवैयों में किया है, अन्य नामों का एक-एक छन्द में। निश्चय ही 'सुमरेस

हरी' और 'सुमेरस जू' छाप के दोनों सवैए भी बाबा जी के ही हैं। 'हरि' सिंह का वाचक है और उसी के स्थान पर सवैए में बैठाने के लिये प्रयुक्त हुआ है। कवित्त में प्रयोग-सुकरता के लिये हरिऔध जी ने भी बाबा जी की देखादेखी 'अयोध्या सिंह' को बदलकर विपर्यय द्वारा 'सिंह अयोध्या', फिर पर्याय द्वारा 'हरिऔध' कर दिया था।

(२)

जिहि तें तजि दीन कलिंदी को कूल औ भूलहूँ आई न जाय कै री
कुल कानि की आनिहूँ एती हुती सो भई दुखदानि बजाय कै री
अब कौन सो सोच रह्यो है 'सुमेर हरी' जी निसंक बनाय कै री
जौ कलंक लग्यो मोहिं धाय कै री, तौ सु अंकहू लागिहौं धाय कै री
—सुं० ति०, २०६

इसमें नायिका परकीया है। इसने कालिंदी-कूल पर अपना मन खोया अवश्य है, परंतु कुल-मर्यादा का ध्यान कर वह दुःख सहकर भी वहाँ जाना बिलकुल छोड़ देती है। फिर भी जब चवाइनें कलंक लगाने से नहीं चूकतीं, तब किसलिये अपने मन को बाँधकर वह इतनी जलन सहे? अतः अब वह निःशंक होकर हरि के अंक लगेगी। लोग किस प्रकार समाज में अपने संबंध में प्रचलित विचारों के अनुरूप अपना चरित्र बनाने में प्रवृत्त होते हैं, इसका भी यह अच्छा उदाहरण है।

(३)

गुरु लोग करैंगे चबाव घनौ, तिनकौं सुनि कै नहिं भाखिहौं मैं
करिहैं जुपै दंड प्रचंड तुपै, 'सुमरेस हरी' नहिं भाखिहौं मैं
बदनाम जो गाँव करै सिगरो, तऊ रूप सुधा रस चाखिहौं मैं
ब्रजराज जो आज मिलै सजनी, इहि लाज सों काज न राखिहौं मैं
—सुं० ति० १०७

इसमें भी नायिका परकीया है। गोपाल के रूप-सुधा-रस-पान की अभिलाषा इतनी उत्कट हो उठी है कि गुरुजनों से मिलनेवाली निंदा ही नहीं, प्रचंड दंड भी चुपचाप सह लेने को तैयार है, लाज से तो कोई मतलब ही नहीं।

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि लोक-वेद की मर्यादा का त्याग परा भक्ति की एक आवश्यक कसौटी है। परकीया-प्रेम की प्रगाढ़ता में मन अनायास इस मर्यादा के त्याग के लिये उद्यत हो जाता है। यदि इसी प्रकार भगवान के प्रेम में भी मन को लोक वेद की परवाह न रह जाय तो भक्ति सार्थक है। प्रेम की इसी एकांतता के कारण परकीया को भक्तों के बीच इतना मान मिला है।

(४)

यह 'सुंदरीतिलक' का २८२ संख्यक सवैया है जिसे हरिऔध जी ने उद्धृत किया है—'बातें बनावती क्यों इतनी......'। इसमें भी एक परकीया का चित्रण हुआ है। बाबा जी की यह सर्वश्रेष्ठ मुक्तक रचना है, इससे सभी लोगों ने इसी को उद्धृत किया है। भाव इसका सुस्पष्ट है।

(५)

कुल लाज गँवाय कै हाय, बलाय त्यों पाय, व्यथा को चितारहुगी
वह नीकी कहै ती 'सुमेरहरी', तब तो यह नीति निकारहुगी
अब तो इहि जोबन जोग में जालिम कान्ह के साथ सिधारहुगी
दिन बीते कछूक हमारी भटू, ये हमारियै बात बिचारहुगी
—सुं० ति०, ३२७

'जालिम कान्ह' के प्रेम की बावली को उसकी सखी सीख देती है कि अभी तुम यौवनोन्माद के कारण कुल-लाज का ध्यान नहीं कर रही हो, पीछे मेरी बात याद करके पछताओगी।

(६)

किधौं रूप सरोवर में ते कढ़यो लसै कंबु भरयो सुर सात को है
किधौं साँवरे जू गुन रावरे के या कपोत फँदूयो बड़ी जात को है
'सुमरेसजू' कीधौं सु कोकिला को सुर साध धरयो विधि हात को है
वर कंठ में गोरी के कंठा लसै सु कतारन तारन कांति को है
—सुं० ति०, ९३६

तारासमूह की कांति वाले कंठहार से युक्त सुंदर ग्रीवा के इस वर्णन में संदेहालंकार का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। क्या यह रूप-सरोवर में से निकला सप्तस्वरसंयुक्त कंबु है, अथवा गुन (गुण, फंदा) में फँसा हुआ कोई बड़ी जाति का कपोत, अथवा विधि के हाथों साधकर रखा हुआ कोकिला का स्वर।

(७)

बैठि बिचारि बिरंचि कियो रचि अंग सुढंग सबै उपमान को
हेरत ही बिरहानल ब्यापिहै, को पुनि थापिहै प्रान पयान को
है बसुधा में न औषधि आन, 'सुमेरहरी' सो भरयो सुखदान को
चंद चहेटि समेटि सुधा रस, कीन्हों तबै तिय के अधरान को
—सुं० ति०, ९६३

यह रीतिकालीन कवियों से मिलती-जुलती चमत्कारी सूझ-बूझ का नमूना है। अधर में सुधा कहाँ से आई? ब्रह्मा ने अनुपम लावण्ययुक्त रूप को रचकर

सोचा कि इसके विरहानल से मनुष्यों की प्राणरक्षा के लिये कोई औषध पृथ्वी पर तो है नहीं, अतः उसने आकाश में चंद्रमा को चहेटकर पकड़ा और उसकी सारी सुधा निचोड़ कर अधरों में भर दी।

(८)

बेसनी रावरे सुद्ध सनेह की, पूरी पकाय बनाय लखाइहौं
रीझि रहोगे बराबरि देखि, कढ़ी रसवारी तुम्हैं परसाइहौं
धीर धरौ न उतावले होउ, 'सुमेरहरी' मैं नहीं कनखाइहौं
चाहत जोई रसोई मैं सोई, रसोइन मैं रस राखि चखाइहौं

—सुं० ति०, १११८

इसमें परकीया की दूती द्वारा नायक से प्रणय-निवेदन इस प्रकार किया गया है कि सुननेवाला तो यह समझे कि यह नायक के लिये कहीं से भोजन का निमंत्रण लाई है, पर नायक उसका अभीष्ट अर्थ समझ ले। [बेसनी= बेसन; व्यसनी। सनेह=घी; प्रेम। पूरी=इस नाम का पक्वान्न; पूर्ण रूप से। बराबरी=बड़ा और बड़ी; बराबर में, सामने। कढ़ी=खाने की कढ़ी; निकलकर आई हुई। परसाइहौं=परोसवाऊँगी; स्पर्श कराऊँगी।]

उसी युग के एक अन्य कवि काशी-वासी सेवक ने भी इसी स्वर में कहा है—

दारि गली है भली विधि सों, बहु चाउर है जु सुगंध भरौ जू
देखि बराबरि रीझि रहौगे, सुपापरि पूरी करो, न डरौ जू
है तरकारी सवाद भरी बनी, गोरस 'सेवक' भूख हरौ जू
सौंधी सलोनी सुधा सी रसीली, सुकंत एकंत में भोग करौ जू

—सुं० ति०, १११७

ऊपर जितने भी छंद उद्धृत हैं उन सबके अध्ययन से बाबा जी के काव्य पर यह सम्मति दी जा सकती है कि उनकी रचनाएँ रीति-परंपरा पर लिखी गई हैं। उनमें ब्रजभाषा का सरल और सरस प्रयोग हुआ है। शब्दों का अंग-भंग नहीं किया गया है। सामान्यतया कवि रसवादी है। अलंकारों से उसे मोह नहीं; परंतु जब वह अलंकारों का प्रयोग करना चाहता है तो उनका सुंदर प्रयोग कर सकता है, फिर भी रस को हाथ से जाने नहीं देता। कविताएँ सभी प्रसाद-गुण-पूर्ण हैं। कवि चमत्कारवादी नहीं है, स्वाभाविकता से उसे सहज स्नेह है।

स्वर्गीय रत्नाकर जी ने 'बिहारी-सतसई संबंधी साहित्य' नामक अपने लेख में लिखा है कि बाबा सुमेरसिंह जी ने बिहारी-सतसई पर कुण्डलियाँ लगाई थीं। इस ग्रंथ का नाम उन्होंने 'बिहारी-सुमेर' रखा था। पं० अम्बिकादत्त व्यास के

'विहारी-विहार' के प्रकाशन-काल तक यह ग्रंथ अधूरा था। बाबा जी ने वह पूर्ण ग्रंथ रत्नाकर जी को काशी में दिखाया था। उस समय वे पटना से काशी होते हुए पंजाब जा रहे थे और अस्वस्थ थे। उसी यात्रा में उनका देहांत (अमृतसर, १९०३ ई०) हो गया। साथ ही 'बिहारी-सुमेर' भी नष्ट हो गया। उसकी आठ कुण्डलियाँ 'विहारी-विहार' में उद्धृत हैं, जिनमें से निम्न-लिखित चार रत्नाकरजी ने अपने लेख में अवतरित की हैं—

मेरी भव बाधा हरहु, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँईं परे, स्याम हरित दुति होय॥
स्याम हरित दुति होय, होय सब कारज पूरो।
पुरुषारथ सहि स्वारथ चारि पदारथ रूरो।
सतगुरु सरन अनन्य छूटि भय भ्रम की फेरी।
मनमोहन मित सुमरेस हरी गति मति मैं मेरी॥ १॥
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
एहि बानिक मो मन बसहु, सदा बिहारी लाल॥
सदा बिहारी लाल करहु चरनन को चेरो।
तुहि तजि अनत न जाइ कतहुँ प्रियतम मन मेरो।
मेरो तेरो मिटै मिलै तस संगत ईस।
बिहरहुँ ह्वै उनमत्त धारि ब्रजरज निज सीस॥ २॥
मोर मुकुट की चंद्रिकनि, यों राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद॥
किय सेखर सतचंद छंद रुचि काम बढ़ावत।
नव नारिन हिय नेह नवल नागर उपजावत।
धावति धामहि धाम बाम वह विरह की खटकी।
पूछति सुधि बौराय भाय भरि मोर मुकुट की॥ ३॥
मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान।
धरयो मनो हिय घर समर, ड्योढ़ी लसत निसान॥
ड्योढ़ी लसत निसान सान ताकी अति चोखी।
अबला को पिख ताँहि होत जु न रति रन रोखी।
चकित जकित चित थकित बकति नहिं करमन हकरा।
तकत इतै उत आइ तान रति जाल सुमकरा॥ ४॥

'बिहारी-सुमेर' का रचना-काल रत्नाकर जी ने अनुमान से संवत् १९५९ तथा १९६० के बीच माना है।

२

बद्रीनारायण उपाध्याय चौधरी, 'प्रेमघन'

(१)

जीवन चरित

'प्रेमघन' जी का जन्म भाद्रपद कृष्ण ६, सं० १९१२ को इनके पूर्वजों के गाँव दत्तापुर जिला गोंडा में हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा गोंडा, फैजाबाद एवं मिर्जापुर में हुई। संवत् १९२७ में इन्होंने पाठशाला जाना छोड़ा और घर पर ही अपने पिता के मित्र पं० रामानंद पाठक से संस्कृत पढ़ने लगे। इन्हीं पंडित जी के कारण प्रेमघन जी को काव्य-प्रेम हुआ और इन्हींको उन्होंने अपना काव्य-गुरु भी बनाया।

संवत् १९२५ में प्रेमघन जी के पितामह का देहांत हो गया, तब ये मिरजापुर में आए और अंत तक यहीं रहे। इनके पितामह मिरजापुर के सुसम्मानित रईस, जमींदार, व्यापारी और महाजन थे। प्रेमघन जी भी रईस थे। इनका अधिकांश समय आमोद प्रमोद में, संगीत एवं साहित्य चर्चा में, बीतता था—'काव्यशास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्'।

भारतेंदु जी के संपर्क में प्रेमघन जी सं० १९२९ में आए। यह संपर्क घनिष्ठता में बदल गया और साहित्य की सरिता में निरंतर अवगाहन होने लगा। भारतेंदु के जीवन सा ही प्रेमघन जी का भी जीवन था। अत्यंत लघु वय में जिस तरह भारतेंदु ने पुरी की यात्रा की थी, प्रेमघन जी ने भी १९२८ में १६ वर्ष की वय में, पूर्व की ही (कलकत्ते की) यात्रा की थी। जिस तरह भारतेंदु ने तदीय समाज आदि संस्थाएँ स्थापित की थीं, उसी प्रकार प्रेमघन जी ने भी सं० १९३० में मिरजापुर में एक 'सद्धर्म सभा' स्थापित की थी, फिर १९३१ में 'रसिक समाज' की स्थापना की थी जिसमें साहित्य चर्चा हुआ करती थी। जिस प्रकार भारतेंदु ने १९२५ में कवि वचन सुधा, १९३० में हरिश्चंद्र मेगजीन (बाद में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से अभिहित) और १९३१ में बालाबोधिनी पत्रिकाएँ निकाली थीं, उसी प्रकार साहित्यसेवा को ध्यान में रखकर प्रेमघन जी ने भी सं० १९३८ में आनंद कादंबिनी नामक मासिक पत्रिका निकाला थी और इसी नाम का प्रेस चलाया था। पत्रिका आठ नौ वर्ष चलकर बंद हो गई, तदनंतर १९४९ में 'नागरी नीरद' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। यह भी कई वर्षों तक चलकर

बंद हो गया। भारतेंदु ने जिस प्रकार की साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं, प्रायः उसी प्रकार की रचनाएँ प्रेमघन जी ने भी कीं। इनकी पत्रिका और पत्र प्रायः इन्हीं के लेखों से भरे रहते थे, इनमें दूसरों की सामग्री बहुत कम रहती थी। आत्माभिव्यक्ति ही के लिए इन्होंने इनको निकाला था।

प्रेमघन जी की समस्त रचनाएँ धीरे धीरे करके हिंदी साहित्य सम्मेलन से 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से प्रकाशित हो रही हैं। इनके संपादक हैं प्रेमघन जी के पौत्र—श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, और श्री दिनेश नारायण उपाध्याय साहित्य रत्न। 'प्रेमघन सर्वस्व' प्रथम भाग संवत् १९९६ में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेमघन जी की समस्त कविताएँ संकलित हैं। इसमें कुल ६३४ बड़े पृष्ठ हैं। प्रारंभ में आचार्य शुक्ल जी लिखित एक अच्छा 'परिचय' लगा हुआ है। इसके अनंतर 'प्रेमघन सर्वस्व' द्वितीय भाग निकला जिसमें इनके सभी महत्वपूर्ण निबंधों का संकलन हुआ है; 'प्रेमघन सर्वस्व' तृतीय भाग में इनके चार नाटक (१) भारत सौभाग्य (२) प्रयाग रामागमन (३) वारांगना रहस्य (४) वृद्ध विलाप रहेंगे। शुक्ल जी ने इनके भारत सौभाग्य की अच्छी प्रशंसा की है।

भारतेंदु का देहावसान ३४ ही वर्ष की अल्प आयु में हुआ था; प्रेमघन जी उनसे दूने वर्ष तक जिए। इनकी मृत्यु ६८ वर्ष की वय में, फाल्गुन शुक्ल १४, सं० १९७९ को हुई।

प्रेमघन जी अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हुए थे। जिन दिनों वे सभापति थे, उन दिनों (राजर्षि) पुरुषोत्तम दास टण्डन उसके मन्त्री थे।

(२)

काव्य परिचय

'प्रेमघन-सर्वस्व' प्रथम भाग प्रेमघनजी की समस्त कविताओं का संकलन है। यह सर्वस्व तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में प्रबन्ध काव्य, द्वितीय में स्फुट निबन्ध काव्य एवं तृतीय में संगीत काव्य है।

(क) प्रबन्ध काव्य

'प्रेमघन जी के दो प्रबन्ध काव्य हैं (१) जीर्णजनपद, और (२) अलौकिक लीला। 'जीर्ण जनपद' गोल्डस्मिथ के 'ऊजड़ गाम' (Deserted village) सदृश है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम है 'दुर्दशा दत्तापुर'। इसी दत्तापुर में प्रेमघन जी पैदा हुए थे। यह ग्रंथ आद्योपांत रोला छन्दों में है। इसमें कुल १२७४ चरण हैं। कवि का अपनी मातृ भूमि के प्रति सहज स्नेह इस ग्रंथ में

छलक रहा है। भाषा अत्यन्त सरल एवं ललित है। बीच-बीच में विभिन्न शीर्षक भी लगे हुए हैं—परिवार परिचय, जन्मभूमि प्रेम, दर्शनाभिलाषा, वर्तमान दीन दृश्य, पूर्व दशा, द्वार, सवारी, कचहरी दीवान, चौक, पूजागृह, सामाजिक न्याय, मोदीखाना, मकतबखाना, सिपाहखाना, सिपाहियों की रहनि, वर्षा ऋतु व्यवस्था, नागपंचमी, रामलीला, बिजयादशमी, वाटिका, कौवानारी, मदनाताल, बिजउर, बालविनोद, जाड़काल की क्रीड़ा, फाल्गुन और फाग, वसंत विहार, वर्षागमन, वर्षाबहार, मछरिमराव, निरवाही, बालकेलि, समय परिवर्तन, अवनति-कारण।

वर्षा के दिनों में धान के खेतों में निरवाही करनेवाली स्त्रियों का एक सरस वर्णन उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है—

खेतन में जल भरयो शस्य उठि ऊपर लहरत
चारहुँ ओरन हरियारी ही की छबि छहरत ५३४
भोरी भोरी ग्राम वधू इक सँग मिलि गावति
इक सुर में रस भरी गीत झनकार मचावति ५३५
कहँ नागरी नवेली ए तीखे सुर पावैं
रंग-भूमि को कोरस सो रस कब बरसावैं ५३६
किती युवति तिनमैं अति रूप सलोनो पाए
किए कज्जलित नैन सीस सिंदूर सुहाए ५३७
धान खेत मैं बैठी चंचल चखनि नचावति
बन मैं भटकी चकित मृगी सी छबि दरसावति ५३८
किते गाँव के छैल लट्टू ह्वै जिनहिं निहारैं
तिनकी ताकनि मुसकुरानि लखि तन मन वारैं ५३९

ग्राम्य जीवन का जितना सच्चा, सरस एवं सुन्दर चित्र इस काव्य ग्रंथ में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह ग्रंथ पूर्णरूपेण परंपरा-मुक्त एवं स्वच्छंद है। इस ग्रंथ का हिंदी काव्य जगत में परम समादर होना चाहिए था; पर हुआ नहीं, यह अत्यन्त खेद की बात है। देहात में प्रयुक्त शब्दों का इसमें ऐसा सुंदर प्रयोग हुआ है कि ग्राम जीवन बरबस नेत्रों के सामने आ जाता है। वर्षा के चित्रों में देहाती जीवन का चित्र इन दो पंक्तियों में देखिए और देहाती शब्दों पर ध्यान दीजिए—

पौला सबके पगन सीस घोघी कै छतरी
लैकर लाठी चलैं मेंड़ बाटैं सब पतरी

यह ग्रंथ संवत् १७६६ विं० में पूर्ण हुआ।

'अलौकिक लीला' अपूर्ण है। यह काव्य संवत् १९७२ वि० में लिखा जाना प्रारम्भ हुआ था। इसमें कृष्ण चरित है। सम्भवतः 'प्रिय प्रवास' के प्रकाशन से इसे प्रेरणा मिली थी। दोनों के विषय और काल पर ही ध्यान रख कर ऐसा कह रहा हूँ, अन्यथा दोनों की भाषा शैली में जमीन आसमान का अन्तर है। 'अलौकिक लीला' व्रज भाषा और मात्रिक छन्दों में तथा सरल पदावली में लिखित ग्रंथ है। इसका विवरण इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग—कंस अक्रूर परामर्श—आषाढ़ शु० ११, सं० १९७२ वै०—१४२ चरण रोला के, अन्त में दो चरण उल्लाला के हैं।

द्वितीय सर्ग—अक्रूर व्रज गमन—१४८ बरवै, अन्त में एक हरिगीतिका।

तृतीय सर्ग—श्रीकृष्ण सम्मेलन—१०१ सोरठा, अन्त में दो कबित्त।

चतुर्थ सर्ग—श्रीकृष्ण व्रज परित्याग—५२६ चरण पद्धरि के, अन्त में १ छन्द अरिल्ल।

पंचम सर्ग—मधुपुरी दर्शन—यह सर्ग अपूर्ण है। इसमें ६४ हरिगीतिका छन्द हैं।

यह ग्रंथ 'जीर्ण जनपद' के समान न तो पूर्ण है और न सुन्दर तथा सरस ही। द्वितीय सर्ग में बरवै और तृतीय सर्ग में सोरठा छंदों का प्रयोग हुआ है। ये दोनों छंद मुक्तकों के लिए हैं, प्रबन्ध काव्य के लिए ये उपयुक्त नहीं हैं। साथ ही वर्णन बहुत सीधे सादे हैं, कोई चमत्कार नहीं है।

भारतेन्दु ने कोई प्रबन्ध नहीं लिखा था; प्रेमघन जी की यह विशेषता है कि इन्होंने दो प्रबन्ध भी लिखे, जिनमें एक (जीर्ण जनपद) अत्यन्त सुन्दर एवं सफल रचना है। ये दोनों ग्रंथ द्विवेदी युग में लिखे गए, जब खड़ी बोली का बोलबाला था और व्रजभाषा बड़ी तेजी से लोगों की निगाह से गिराई जा रही थी।

ध्यान देने की बात है कि दोनों ग्रंथों में मंगलाचरण नहीं है।

(ख) स्फुट काव्य

—इस 'प्रेम घन सर्वस्व' के दूसरे खंड में स्फुट काव्य है।

(१) युगल मंगल स्तोत्र—यह प्रेमघन जी की प्रथम प्राप्त कविता है। यह संवत् १९३१ में लिखी गई थी, जब प्रेमघन जी १९ वर्ष के थे और उनका संपर्क भारतेंदु से स्थापित हो चुका था। इसमें दोहा (३), कुंडलिया (३), छप्पय (३), मालिनी (२), हरिगीतिका (१), नाराच (१), भुजंग प्रयात (१) सोरठा (३) आदि ९ प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमें कुल २०

छंदों में राधाकृष्ण की स्तुति है। इस कविता में कई बातें एक साथ देखी जा सकती हैं। कवि का प्रारंभिक प्रयास, छंदों का शीघ्र परिवर्तन, मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग, पुराने कवियों का प्रभाव, अनुप्रास और यमक के प्रति आसक्ति, भक्ति-भावना, घनश्याम का संस्कृत ढंग से 'न' को दीर्घ बनाकर उच्चरित करने का ढंग आदि इस स्तोत्र में उल्लेखनीय हैं। सबका सार संकलन यह है—

छहरैं मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर पखा फहरैं
उत गोल कपोलन पैं अति लोल अमोल लली मुकता थहरैं
इहि भाँति सो बद्री नारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरैं
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं

अंत में मंगल-कामना और पाठ फल भी दिया गया है—

मंजुल मंगल मूल, जुगल सुमंगल पाठ यह
पढ़त, रहत नहिं सूल, जुगल जलज पद अलि बनत

भारतेंदु के भी तीन स्तोत्र हैं—(१) श्री सर्वोत्तम स्तोत्र (२) प्रातः स्मरण स्तोत्र (३) श्री सीता वल्लभ स्तोत्र।

(२) बृजचंद पंचक—यह संवत् १९३२ की रचना है। इसमें १ दोहा, १ कुंडलिया, ३ छप्पय हैं। भारतेंदु के भी दो भक्तिभावपूर्ण पंचक हैं—अपवर्ग पंचक, पुरुषोत्तम पंचम।

(३) कलिकाल तर्पण—यह रचना २१ वर्ष की वय में १९४० में लिखी गई। इसमें १५ मात्राओं के चौपई छंद के २८६ चरण हैं। यह हिंदू राष्ट्रीयता संबंधी कविता है। इसमें भारत का स्वर्ण अतीत और दुखद वर्तमान चित्रित हुआ है।

(४) पितर प्रताप—यह रचना ३० वर्ष की वय में सं० १९४२ में लिखी गई। यह दोहा छंदों में है। इसमें कुल १४३ दोहे हैं। यह कविता भारतेंदु की रचना 'बकरी विलाप' से कुछ कुछ प्रभावित है। दोनों रचनाएँ 'विलाप' हैं, दोनों दोहे में लिखी गई हैं, दोनों का प्रारंभ शरद वर्णन से होता है। इस रचना में राष्ट्रीयता का स्वर परम प्रवल है।

(५) शोकाश्रु बिंदु—यह रचना संवत् १९४२ में भारतेन्दु के देहावसान पर लिखी गई थी। इसमें प्रारम्भ में १ शेर और १ सवैया, मध्य में १०३ दोहे, अन्त में ४ कवित्त, १ सोरठा, ४ छप्पय और १ दोहा हैं।

अथयो हरिचन्द अमंद सो भारत चन्द चहूँ तम छाय गयो
तरु हिंदुन के हित उन्नति को बढ़ते अबहीं मुरझाय गयो

गुन रासि जवाहिर की गठरी अनमोल सो कौन उठाय गयो
नित जाके गरूर से चूर रह्यो वह हिन्द ते हाय हेराय गयो

प्रेमघन जी के दो दोहे विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

(१) वल्लभ कुल के शिष्यगन मैं शोभा को हेत
अष्टछाप को नौ करन कविता भक्ति निकेत

(२) प्रेमिन को जो प्रानधन रसिकन को सिरताज
कविता को तो डूबि गो मानहु आज जहाज

(६) होली की नकल—यह रचना भी सं० १९४२ की है। भारतेन्दु कृत 'उर्दू का स्यापा' के ढंग पर लिखी गई है। प्रारम्भ में निम्नांकित शेर उद्धृत है—

"जबसे लागल इ टिकस हाय उड़ा होस मेरा
रोवै के चाही, हँसी ठीठी ठठाना कैसा"

यह शेर भारतेन्दु की प्रसिद्ध हास्य रचना 'मुशायरा' की एक गजल का है। इस रचना में 'टिकस' के नाम पर रोया गया है—

रोओ सब मुँह बाय बाय
हय हय टिकस हाय हाय
रोज कचहरी धाय धाय
अमलन के ढिग जाय जाय
× × ×
घुड़की उत्तर पाय पाय
खिसियाने घर आय आय

यह चार पृष्ठों की एक लघु कविता है।

(७) मन की मौज—यह रचना सं० १९४४ की है। इसमें खड़ी बोली का असफल और उर्दू से प्रभावित प्रयोग हुआ है। इसमें कुल २५ छन्द हैं। प्रत्येक छन्द का अन्तिम चरण एक ही है। सारी कविता में एक ही तुक है। उदाहरणार्थ इसका प्रथम छन्द उद्धृत है—

मन की मौज मौज सागर सी सो कैसे ठैराऊँ
जिस्का वारापार नहीं उस दर्या को दिखलाऊँ
तुमसे नाजुक दिल को भारी भौंरों में भरमाऊँ
कहो प्रेमघन प्रेम कहानी कैसे किसे सुनाऊँ

(८) प्रेम पीयूष वर्षा—यह प्रेमघन जी के कवित्त सवैयों का संकलन है। संभवतः इसको सं० १९४७ में संकलित करके यह नाम दिया गया। इसमें विभिन्न समयों पर लिखे गए इनके कवित्त सवैये संकलित हैं।

इनका रचनाकाल सं० १९४७ नहीं हो सकता। ग्रंथारंभ में तीन दोहे हैं। कुल ११० कवित्त सवैये इसमें हैं। यह भारतेंदु के 'प्रेम माधुरी' सा है। पर जो काव्य सौष्ठव एवं रस 'प्रेम माधुरी' में है, वह 'प्रेम पीयूष वर्षा' में नहीं।

इसके निम्नलिखित छंद में प्रेमघन जी ने आत्म-परिचय दिया है—

हमैं जो हैं चाहते निबाहते हैं प्रेमघन
उन दिलदारों ही से मेल मिला लेते हैं
दूर दुदकार देते अभिमानी पशुओं को
गुनी सज्जनों की सदा नेह नाव खेते हैं
आस ऐसे तैसों की करैं तो कहो कैसे
महाराज वृजराज के सरोज पद सेते हैं
मनमानी करते न डरते तनिक, नीच
निंदकों के मुँह पै खखार थूक देते हैं

—प्रेमघन सर्वस्व, पृष्ठ २०२.

मिलाइए भारतेंदु के आत्म परिचय से—

'हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के'

एक दूसरा छंद मिलाइए—

आनन इंदु अमंद चुराय चकोर चितै ललचाय न टालो
ठोढ़ी गुलाब प्रसून दुराय, अलिंदन लोचन सोच न सालो
हे घन प्रेम सदा बरसो रस के बस, बानि अनीति सँभालो
रूप अनूपम देहु दिखाय दया करि, हाय न घूँघट घालो

—प्रेमघन सर्वस्व, पृ० २०३.

देत असीस सदा चित सों यह साहिबी रावरी रोज बनी रहै
रूप अनूप महा धन है, हरिचन्द जू बाकी न नेकु कमी रहै
देखहु नेकु दया उर कै, खरी द्वार अरी यह जाचक भीर है
दीजियै भीख उघारि कै घूँघट, प्यारी तिहारी गली को फकीर है

—भा० ग्रंथावली १, पृ० ६२०

इस ग्रंथ के कुछ अत्यन्त सुन्दर छन्द ये हैं—

(१)

सजि सूहे दुकूलन झूलन झूलत बालम से मिलि भामिनियाँ
बरसावत सो रस, राग मलार अलापत मंजु कलासिनियाँ

बितिहैं किहि भाँतिन सावन की यह कारी भयंकर जामिनियाँ
'घन प्रेम' पिया नहिं आए दसौ दिसि हैं दमकैं दुरि दामिनियाँ

(२)

मृगलोचनि मंजु मयंकमुखी, धनि जोबन रूप जखीरनी तू
मृदु हासिनी फाँसिनी मोहन को, कच मचक जाल जँजीरनी तू
'घन प्रेम' पयोनिधिवासिहि बोरन नेह मैं, नाभि गँभीरनी तू
जगनायकै चेरो बनाय लियो, अरी वाह री वाह अहीरनी तू

(३)

बरसत नेह यह बरसत रूप, वह
बरसत मेह, साँझ समै, दूर धाम है
प्रेम घन मन उपजावै ललचावै यह
मंद मुसकाय छबि धरि सत काम है
गरजि गरजि बहु त्रास उपजावै उर
निपट अकेली दूसरी न कोऊ बाम है
कहा करूँ, कैसे जाऊँ, जानि न परत,
उतै घेरे घनस्याम, इतै घेरे घनस्याम है

(९) सूर्य स्तोत्र—संवत् १९४९ में विरचित। इसमें २५ दोहा, १ सोरठा और ३४½ रोला छन्द हैं। रचना साधारण है।

(१०) मंगलाशा—सं० १९४९ में विरचित। दादाभाई नौरोजी के पार्लियामेण्ट के सदस्य होने पर यह 'मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद' नामक रचना ५० रोला छन्दों में रची गई थी, अन्त में एक कवित्त और १ दोहा भी है। यह पहली रचना है जिसमें राजभक्ति की भी झलक है। यह राजभक्ति देशभक्ति से मिली हुई है। भारतेन्दु में यह देशभक्ति और राजभक्ति मिश्रित रूप में सहज ही देखी जा सकती है। इसी कविता में 'कारे' की प्रशंसा है, जिसका उल्लेख शुक्ल जी ने अपने प्रसिद्ध इतिहास में किया है—

कारे काम, राम, जलधर जल बरसनवारे
कारे लागत ताहीसन कारन कौं प्यारे
तासों कारे है तुम लागत औरहु प्यारे
यातै नीको है तुम कारे जाहु पुकारे
यहै असीस देत तुम कहँ, मिलि हम सब कारे
सफल होहिं मन के सबही संकल्प तुमारे

(११) हास्य बिंदु—इस शीर्षक के अंतर्गत हास्य रस संबंधी छोटी छोटी १७ रचनाएँ हैं, जो अधिकांश में व्यक्तिगत हैं। ये सभी विभिन्न समयों में रची गई रही होंगी और संवत् १९५५ में एकत्र हुई होंगी। यही संवत् इनका रचनाकाल दिया गया है। उर्दू, हिंदी, संस्कृत सभी भाषाओं एवं छंदों का यहाँ प्रयोग हुआ है। रचनाओं के आलंबन सर्वग्राह्य न होने के कारण साधारणीकरण नहीं हो पाता। हँसाने में ये रचनाएँ सक्षम नहीं हैं। इस दृष्टि से भारतेंदु अत्यधिक सफल हैं।

(१२) हार्दिक हर्षादर्श अर्थात् महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबिली के अवसर पर विरचित। जिस प्रकार भारतेंदु राजपरिवार के प्रति अनुकूल अवसरों पर अपनी राजभक्ति प्रकट किया करते थे उसी प्रकार प्रेमघन जी ने भी हीरक जयंती पर अपना हार्दिक हर्ष प्रकट किया है। यह रचना संवत् १९५७ की है। इसमें प्रारंभ में १ सवैया और ३ दोहे हैं, मूल निबंध में १५८३ रोले हैं। इस रचना में भी देशभक्ति राजभक्ति का मिश्रण है। सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य संग्राम की निंदा करते हुए प्रेमघन जी कहते हैं—

> देसी मूँढ़ सिपाह कछुक लै कुटिल प्रजा सँग
> कियो अमित उत्पात रच्यो निज नासन को ढँग

भारतेंदु की ही भाँति यह भी कहते हैं—

> तेरे सुखद राज की कीरति रहै अटल इत
> धर्मराज, रघु, राम, प्रजा हिय में जिमि अंकित

(१३) आनंद बधाई—१८ अप्रैल १९०० को हिंदी के कचहरी प्रवेश पर १५३३ रोला छंदों में यह आनंद बधाई लिखी गई है, अंत में एक हरिगीतिका छंद भी है। भारतेंदु युग में हिंदी को कचहरियों में प्रविष्ट कराने के लिए अनेक बार प्रयत्न किए गए, पर सफलता हाथ न लगी। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना इसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर हुई थी, जैसा कि सभा के नाम से स्वतः सिद्ध है। मालवीय जी महाराज के नेतृत्व में यह कार्य अंत में १९०० ई० में जाकर सफल हुआ और हिंदी-वालों को परम प्रसन्नता हुई। राधाकृष्णदास जी ने भी इस अवसर पर अपनी प्रसन्नता पद्य में प्रकट की थी। इसी कविता में फारसी लिपि की त्रुटियों का मज़ाक उड़ाया गया है—

"निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जामैं
पर भाषा को कहाँ पढ़ै कैसे कोउ तामैं
लिख्यो हकीम औषधी मैं 'आलू बोखरा'
उल्लू बनो मौलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा'
साहिब 'किस्ती' चही, पठाई मुनसी 'कसबी'
'नमक' पठायो, भई 'तमस्सुक' की जब तलबी
पढ़त 'सुनार' 'सितार', 'किताब' 'कबाब' बनावत
'दुआ' देतहूँ 'दगा' देनको दोष लगावत
मेम साहिबा 'बड़े बड़े मोती' चाह्यो जब
'बड़ी बड़ी मूली' पठवायी तसिल्दार तब"

जिस तरह बालमुकुंद गुप्त ने 'उर्दू बीबी' को हिंदी की उन्नति पर अधीर होते देख लिखा है—

न 'बीबी' जरा जी में घबराइए

उसी प्रकार यहाँ भी कचहरी में 'उर्दू बीबी' को दिखाया गया है—

पूरबवत सो बीच कचहरी उर्दू बीबी
बैठी ऐंठी करत अजहुँ सौ सौ बिधि सीबी
लखि आवत नागरी नागरी बरन बरन तकि
नाक सकोरति, भौंह मरोरति, औचकहीं चकि
× × ×
वह नखरे चोंचले नाज अदंज बला के
वह शीरीं गुफ्तार अजब सब ढंग अदा के

इस कविता में नागरी प्रचारिणी सभा, मदनमोहन मालवीय, राधाकृष्णदास और श्यामसुंदरदास को अत्यंत कृतज्ञ होकर बधाई दी गई है। उन पुराने हिंदी हितैषियों की भी चर्चा है जो अपने प्रयत्न में असफल रहे।

इस कविता को पढ़ते समय भारतेंदु की प्रसिद्ध रचना, 'हिंदी पर व्याख्यान', अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए—

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'

(१४) लालित्य लहरी—इस ग्रंथ में १०४ फुटकर दोहे हैं। प्रेमघन जी इस प्रकार ७०० दोहे लिखकर सतसई बनाना चाहते थे। इसके दो शृङ्गारी दोहे देखिए—

(१)

रति समुद्र मैं बूड़ि कहु को तिरतो किहि साथ
युगल कलस कुच तुव नहीं जु पै लागतो हाथ

(२)

एक बार काहू जुगुति दिखरायो वह बाल
मीठो अरु भर कठौती कैसे लहिए लाल

इसका रचना काल सं० १९१९ दिया गया है। लगता तो ऐसा है कि इस ग्रंथ में विभिन्न समयों पर लिखे हुए दोहों का संग्रह हुआ है।

(१५) भारत बधाई—सम्राट श्री सप्तम एडवर्ड के भारत साम्राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर यह रचना सं० १९६० में प्रस्तुत की गई। इसमें दोहा, हरिगीतिका, रोला, सवैया, सोरठा, द्रुतविलंबित, बरवै, त्रोटक, भुजंगप्रयात, नाराच आदि अनेक छंद व्यवहृत हुए हैं। यह राजभक्ति पूर्ण रचना है।

(१६) स्वागत पत्र—इसमें तीन स्वागत पत्र हैं—

(१) भारत की आठवीं जातीय सभा, प्रयाग में आए हुए प्रतिनिधियों की सेवा में विरचित।

(२) सरयूपारीण सभा के अवसर पर विरचित।

(३) काशी की इक्कीसवीं कांग्रेस में आए प्रतिनिधियों की सेवा में एक भेंट।

ये तीनों रचनाएँ देशभक्ति से परिपूर्ण हैं। अंतिम रचना का अंतिम छंद देखिए—

सब द्वीप की विद्या कला विज्ञान इत चलि आवई
उद्यम निरत आरज प्रजा रहि सुख समृद्धि बढ़ावई
दुष्काल रोग अनीति नसि, सद्धर्म उन्नति पावई
भट, विबुध, अन्न, सुरत्न भारत भूमि नित उपजावई

लगता है जैसे यह किसी सुखांत नाटक का भरत वाक्य हो।

(१७) आनन्द अरुणोदय—सं० १९६३ में, खड़ी बोली में लिखित। इसमें भारतीयों को उद्बुद्ध किया गया है—

'उठो आर्य संतान सकल मिलि, बस न विलंब लगाओ'

(१८) आर्याभिनन्दन—अर्थात् श्रीमान् युवराज जार्ज फ्रेडरिक अर्नेस्ट अलबर्ट प्रिंस आफ वेल्स के भारत शुभागमन पर स्वागतार्थ सं० १९६३ में विर-

चित । पर साथ ही भारत की रीति नीति पर इसमें अत्यन्त क्षोभ प्रकट किया गया है—

ठटे विदेसी ठाट सब, बनयो देस विदेस
सपनेहूँ जिनमैं न कहुँ भारतीयता लेस

(१९) सौभाग्य समागम अथवा भारत सम्राट सम्मिलन—श्री पंचम जार्ज के दिल्ली में साम्राज्याभिषेक पर बधाई और स्वागत सम्बन्धी कविता, सं० १९६९ में लिखित।

(२०) मयंक महिमा—सं० १९७९ में खड़ी बोली में लिखित। यह प्रेमघन जी की अन्तिम कविता है। प्रेमघन जी ने अपने पौत्र श्री दिनेश उपाध्याय के बाल्यकाल में, उनके द्वारा चन्द्रमा की कालिमा के ऊपर प्रश्न पूछे जाने पर यह कविता लिखी थी।

द्वितीय खण्ड में संकलित ये बीस कविताएँ रचना-प्रकार की दृष्टि से दो भागों में बाँटी जा सकती है—

(क) निबन्ध काव्य—एक विषय पर सुसम्बद्ध काव्य। इस कोटि में आएँगे—(१) कलिकाल तर्पण, (२) पितर प्रलाप, (३) शोकाश्रु विन्दु, (४) होली की नकल, (५) मन की मौज, (६) सूर्य स्तोत्र, (७) मंगलाशा, (८) हार्दिक हर्षादर्श, (९) आनन्द बधाई, (१०) भारत बधाई, (११) तीनों स्वागत पत्र, (१२) आनन्द अरुणोदय, (१३) आर्याभिनन्दन, (१४) सौभाग्य समागम, (१५) मयंक महिमा।

(ख) संग्रह काव्य—(१) युगल मंगल स्तोत्र, (२) बृज चंद पंचक, (३) प्रेम पीयूष वर्षा, (४) हास्य विन्दु, (५) लालित्य लहरी।

इन बीस रचनाओं में मन की मौज, आनन्द अरुणोदय और मयंक महिमा ए तीन रचनाएँ खड़ी बोली में हैं, शेष व्रजभाषा में। १५ निबंध काव्यों में से अधिकांश विभिन्न अवसरों के लिए लिखित हैं, अतः उनमें स्थायित्व बहुत नहीं है। इन रचनाओं में 'प्रेम पीयूष वर्षा' श्रेष्ठतम है।

(ग) संगीत काव्य

'प्रेमघन सर्वस्व' के तृतीय खण्ड में संगीत काव्य है। यह संगीत काव्य निम्नलिखित विंदुओं में विभक्त है—

(१) शृंगार विंदु—कुल १५५ छंद
(२) उर्दू विंदु— १८ गजलें आदि
(३) वर्षा विंदु— २९६ कजलियाँ
(४) स्फुट विंदु— १५८ रचनाएँ
(५) वसंत विंदु— ६९ होलियाँ
(६) स्वदेश विंदु— ५ रचनाएँ
६०१

इन सबका रचनाकाल सं० १९३२ से १९७९ वि० तक है। ए सभी विभिन्न समयों की रचनाएँ हैं जो बाद में एकत्र कर दी गई हैं।

शृंगार विंदु में शृंगार और भक्ति दोनों प्रकार की रचनाएँ हैं। कृष्ण एवं राम संबंधी कुछ पद भी हैं। शृंगार विन्दु की रचनाएँ भारतेंदु कृत 'प्रेम प्रलाप' एवं 'प्रेम फुलवारी' के ढंग की हैं। प्रेमघन जी ने बाल्यावस्था में संगीत का रियाज किया था। ए रचनाएँ राग रागिनियों में बँधी हुई हैं। अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जो स्पष्ट ही भारतेंदु की रचनाओं को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गई हैं। भारतेंदु ने बारातों में गाए जाने के लिए उर्दू के 'सेहरा' के ढंग पर एक 'बनरा' लिखा था, प्रेमघन जी ने भी ५ बनरे लिखे हैं, (प्रेमघन सर्वस्व पृ० ४५८—४६०)।

बनरा का ससि आया बनरा
सबके चखनि चकोर बनाया।
जामा सुभग सियो दरजी तुव,
बाग रुचिर रँगरेज सुहाया।
सुखमा सीस तिहारी माली
सजि सेहरा अति अधिक बढ़ाया।
गर लगाय माला तू अपनी
करि टोना जनु चितहि चुराया।
चिरजीओ सौ बरस 'प्रेमघन'
बरसि बरसि रस हिय हुलसाया।

—पृष्ठ ४६०

भारतेंदु बाबू ने विवाह के समय, ज्यौनार के अवसर पर गाने के लिए गाली लिखी है, प्रेमघन जी ने भी तीन सुहाती, रुलाती और हँसाती गालियाँ लिखी हैं।

सुहाती गाली

गारी देन जोग नहिं कबहूँ समझि परौ तुम प्यारे
सब सदगुन सों भरे पुरे हौ तुम सारे के सारे
लहियत नहिं उपमा सुखमा तुव घर की बात बिचारे
सब दिन तुम सत्कारयो सब विधि अति उदारता धारे
झूठ नाहिं रतिहू जाचत जे जाय आय के द्वारे
सो सौभग सत्कार सदा लहि पीटत सुजस नगारे
गिने विबुध सौ जन में तुम वंदित जाहु बिठारे
सुखदायक गुनि बन सदा प्रेमघन रस बरसावनवारे

—पृष्ठ ४६०-६१.

रुलाती गाली में संपूर्ण हिंदू जाति के ऊपर चोट है—

पितामही भारती तुम्हारी तुम सो समुझि निकारी
सात सिंधु तरि म्लेच्छन के घर जाय बसी करि यारी

शृङ्गार विंदु का अंतिम गीत समधिन संबंधी है। भारतेंदु ने भी समधिन के लिए ऐसा ही एक गीत लिखा है। प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध से एक ओर शृङ्गारी ध्वनि निकलती है—

सुनिए समधिन सुमुखि सयानी
आवहु दौरि देहु दरसन, जनि प्यारी फिरहु लुकानी
फैली सुभग सरस कीरति तुव सुन सबहिन सुखदानी
आए हम सब करै निवेदन यहै जोरि जुग पानी
जनि संकोच करहु अब सुंदरि लेहु सुयश मनमानी
दया वारि बरसाय 'प्रेमघन' बनहु विनोद बढ़ानी
सम समधी तुव सदन द्वार यह आनि भीड़ भड़रानी
पुरवहु काम सबन के वेगहि उर उदारता आनी

ये सभी रचनाएँ भारतेंदु युगीन जिंदादिली की सबूत हैं। जैसा कि कहा गया है, शृङ्गार विंदु में कुछ पद भी हैं, पर वे भारतेंदु के एक हजार पदों के सामने नगण्य ही हैं—संख्या में भी, सरसता में भी।

(२) उर्दू विंदु—इसके अंतर्गत १० गजलें, ५ रेखते और तीन लावनियाँ हैं। जिस प्रकार भारतेंदु ने 'रसा' नाम से उर्दू में भी कहा, उसी प्रकार प्रेमघन जी ने भी 'अब्र' नाम से उर्दू में कुछ रचनाएँ कीं। एक ग़ज़ल उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

मेरी जान ले, क्या नफ़ा पाइएगा
छुड़ाकर ए दामन किधर जाइएगा।
जो कहता हूँ अब रह्म हो जाय मुझपर
तो कहते हैं फिर आप आ जाइएगा।
किया कत्ल तेगे निगह से जो मुझको
कदम रंजा मरकद पै फरमाइएगा।
इनायत करो हुस्न के जोश में वरना
फिर हाथ मल मल के पछताइएगा
वो हँसते हैं सुनकर जो कहता हूँ उनसे
जलाकर मुझे आप क्या पाइएगा।
निकलवा के छोड़ेंगे बदरीनरायन
अगर आप मेरे तरफ़ आइएगा।

(३) वर्षा बिंदु में कजलियाँ हैं जिनकी संख्या १९६ है। लिखने के लिए भारतेंदु ने भी कजलियाँ लिखी हैं; पर वे संख्या में बहुत कम हैं, साथ ही उनमें वह विविधता नहीं। जो लोग कजली नामक लोकगीतों से परिचित हैं, वे सहज ही इनके सौंदर्य पर मुग्ध हो जायँगे। कजलियों की अनेक 'लय' हैं, भाषा-भेद से भी अनेक प्रकार की कजलियाँ प्रस्तुत की गई हैं। ये सभी छोटी छोटी सरस रचनाएँ हैं। भारतेंदु ने कुछ कजलियाँ संस्कृत में लिखी हैं, प्रेमघन जी ने भी एक कजली संस्कृत में लिखी है—

जय जय राधा वदन सरोरुह मधुकर मोहन बनमाली
विहरति युवति समूह समेतो नव शोभाशाली
कुसुमित वकुल कदंब निकुंजे गुंजति भ्रमराली
कंस विमर्दन कालिय मंथन कुंचित कच जाली
प्रसरतु सदा प्रेमघन हृदि तव नव पद प्रेम प्रणाली। २।

संस्कृत की यह कजली, कजली की सामान्य लय पर है। इसमें ५ चरण हैं, यह विषमता भी ध्यान देने योग्य है।

नटिनों की लय वाली एक कृष्ण चरित सम्बन्धी कजली देखिये—

बन बन गाय चरावत घूमो, ओढ़े कारी कमरी
तुम का जानो रस की बतियाँ, हौ बालक रगरी
बेईमान, दान.कस माँगत, गहि बहियाँ हमरी
सीखौ प्रेम 'प्रेमघन' अबहीं, छोड़, मोरी डगरी। ७।

बनारसी लय में मन-स्थित ब्रह्म का निर्गुन रूप देखिए—

तोहसे यार मिलै के खातिर सौ सौ तार लगाईला।
गंगा रोज नहाईला, मंदिर में जाईला,
कथा पुरान सुनीला, माला बैठि हिलाईला हो।
नेम धरम औ तीरथ बरत सब करत थकि जाईला,
पूजा कै कै देवतन से कर जोरि मनाईला हो।
मसजिद में जाईला, ठाढ़ होय चिल्लाईला,
गिरजाघर घुसिकै लीला लखि लखि बिलखाईला हो।
नई समाजन की बक बक सुनि सुनि घबराईला,
पिया 'प्रेमघन' मन तजि तोहके कतहुँ न पाईला हो।१२।

जिस प्रकार भारतेन्दु ने एक तरजाहबंद लिखा है जिसमें बीच-बीच में दोहे हैं, प्रेमघन जी ने भी उसी प्रकार एक 'साखी बद्ध' लिखा है—

घिरि घिरि आए बदरा कारे, प्यारे पिय बिन जिय घबराय
आह दई! बचिहैं कला कौन वियोगी प्रान
चहुँ ओरन मोरन लगे, अबहीं सों कहरान
झिल्लीगन झनकारत, मारत बैरी दादुर सोर सुनाय।
अँधियारी कारी निसा, निपट डरारी होय
बाढ़त विरह विथा जुरी जोति जोगिनी जोय
पी! पी! रटत पपीहा पापी, सुनि धुनि धीर धरो नहिं जाय।
इंद्र धनुष धनु, बूँद सर, बरसावत यह आज
बरखा व्याज बनो बधिक, मदन चल्यो सजि साज
सहत न बनत पीर अब आली! कीजै कैसी कौन उपाय।
चखचौंधी दै चंचला, चमकि रही बढ़ि चाव
करि करवाली काम के, करवाली उर घाव
पिया 'प्रेमघन' सों कहु आली आवैं, मोहिं बचावैं धाय।१७।

कन्हैया जी के ऊधम सम्बन्धी एक कजरी तिनतुकिया सुनिए—

गुय्यां देखो री कन्हैया रोकैं मोरी डगरी।
ओढ़े कारी कमरी, सिर पर टेढ़ी पगरी,
गारी बंसी बीच बजावै, देखो ऐसो रगरी।

भाजै मारि मारि कँकरी, रोजै फोरै गगरी,
यह अंधेर मचाए घूमै सारी गोकुल की नगरी।
लखि के सुंदर गुजरी, तजिकै सखियाँ सगरी,
गर लगि मेरे सब रस लूटै, दैया, कारो ठग री।
कीजै जतन कवन अब री, लखि लखि हँसै सबै जग री,
प्रेमी बनो 'प्रेमघन' घूमै मेरे संग संग लग री। ३१।

प्रेमघन जी ने कजलियों में गुण्डों के बड़े अच्छे चित्र खींचे हैं—गुण्डे मिरजापुरी और बनारसी दोनों हैं। दोनों के रंग-ढंग और बोली-टोली की बहार इनमें है। कजलियाँ उर्दू, हिन्दी, ब्रज, खड़ी, गँवारी सभी बोलियों में हैं। पुरुषों की कजलियाँ हैं, तो स्त्रियों की भी हैं। स्त्रियों की कजलियों में भी कई भेद हैं—गृहस्थिनियों की कजली और नटिनों, रण्डियों, गवनहारिनों आदि की कजली। प्रेमघन जी ने कुछ सामाजिक कजलियाँ भी लिखी हैं। फैशन-परस्तों का खाका इस कजली में खींचा है—

'सोहै न तोके पतलून साँवर गोरवा
कोट, बूट, जाकट, कमीच क्यों पहिनि बने बैबून[1] साँवर गोरवा
काली सूरत पर काला कपड़ा देत किए रँग दून साँवर गोरवा'
—पृष्ठ ५४२-४३.

कजली में प्रयुक्त 'साँवर गोरिया' का रूप 'साँवर गोरवा' भी क्या बनाया है ?

इस प्रकार की उनकी अन्य रचनाएँ हैं—गोरी गोरिया, चंडू बाबू, बाल्य विवाह, अनमेल विवाह, बाल वृद्ध विवाह सम्बन्धी।

(४) स्फुट बिंदु—इसमें १५८ गीत हैं जिनमें ठुमरी, काफी, खिमटा, लावनी, ख्याल, रेखता, ध्रुपद आदि हैं। रचनाएँ शृङ्गारी हैं। उदाहरणार्थ एक शहाने की ठुमरी सुनिए—

ठगि गए आज ब्रजराज सों नयनवाँ ॥टेक॥
बिक बिन दाम गए, ध्यान ही को काम लए,
बिवस भए सुनि सरस बयनवाँ।
बद्रीनाथ वीर हाय, वेदना कही न जाय,
चित चुभि गयो जुग दृग के सयनवाँ।
—पृष्ठ ५७५

1. Baboon = बंदर

(५) बसंत बिंदु—भारतेंदु बाबू की होली संबंधी दो पुस्तकें हैं—'होली' और 'मधु मुकुल'। प्रेमघन जी की होली संबंधी ६९ रचनाएँ 'बसंत बिंदु' में संकलित हैं। उदाहरणार्थ एक होली, एक चैता और एक कबीर उद्धृत किए जा रहे हैं।

होली डफ की—

तरसाय जनि रूप भिखारी को।
दै दिखाय मुख-चंद, टारि टुक प्यारी घूँघट सारी को।
बरसि आज रस बिहँसि 'प्रेमघन', सौहैं तोहि बनवारी को।

—पृष्ठ ६२५

घाटो व चैती—

कैसे लागी लगनियाँ हो रामा, मोरी तोरी ॥टेक॥
मिलत बनै न, चैन बिछुरत नहिं,
कीजै कौन जतनियाँ हो रामा।
श्री बद्री नारायन जू यह,
अजब नैन उलझनियाँ हो रामा।

—पृष्ठ ६२३

कबीर—

कबीर झर र र र र र र हाँ।
होरी हिंदुन के घर भरि भरि धावत रंग
सब के ऊपर नावत, गारी गावत, पीए भंग
भला—भले भागैं बेधरमी मुँह मोरे।

भारतेंदु ने कबीर नहीं लिखे—वे कुंदा बाँध के गलियों में गाते फिरते थे। यह थी उस युग के साहित्यकारों की मस्ती।

(६) स्वदेश बिंदु—इसमें देश भक्ति संबंधी ६ गीत हैं।

(१) जातीय गीत—वंदे मातरम्—

"जय जय भारत भूमि भवानी।
जाकी सुयश पताका जग के दसहू दिसि फहरानी"।

यह बाईस पंक्तियों की कविता है और पृष्ठ ६३० पर तीसरी पंक्ति के बाद समाप्त हो जाती है।

(२) क्षत्रिय क्रंदन—

"काहे रोवत हो छत्रीगन.अपने करतब के फल पाय"

यह एक कजली है ।

(३) स्त्रियों की कीर्ति—

"धनि धनि भारत की भामिनियाँ जिनको सुजस रह्यो जग छाय।"

यह भी कजली है, २२ चरण हैं, तुक एक ही है ।

(४-५) चरखे की चमत्कारी—इस प्रसंग के दो गीत हैं ।

(क) "चल चल चरखा तू दिन रात
चलना चरख[1] बनाता निस दिन ज्यों प्रीसम बरसात"

(ख) "ज्यों ज्यों चपल चरखा चलत
बसन व्यापारी बिदेसी लखि बिलखि कर मलत"

(६) भारत दशा पर होली, राग काफी—

"मची है भारत में कैसी होली, सब अनीति गति हो ली
पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब धो ली"

सब १६ चरण हैं, तुक एक ही है ।

(३)

प्रेमघन-काव्य की विशेषताएँ

(१) प्रेमघन जी का काव्य भारतेंदु काव्य की सुखद एवं शीतल छाया है । यह छाया विचार-धारा की अधिक है, शैली की भी पर्याप्त है, पर भाव-धारा की बहुत कम । बीसवीं शताब्दी में आकर प्रेमघन जी ने एक पूर्ण और एक अपूर्ण प्रबंध काव्य लिखा; पर यह भारतेंदु-युग की परंपरा का प्रभाव नहीं है, यह द्विवेदी युग की परंपरा का प्रभाव है । भारतेंदु युग मुख्यतया निबंध एवं मुक्तक काव्य तक ही सीमित रहा । प्रेमघन जी की भी इस समय की रचनाएँ इन्हीं दो प्रवृत्तियों में बँटी हैं ।

(२) प्रेमघन जी के काव्य में प्राचीनता का तत्व कम, नवीनता का अधिक है । भारतेंदु के साहित्य में यह क्रम ठीक इसके विपरीत है । भारतेंदु-काव्य में परिमाण की दृष्टि से पुरानापन अधिक है, नवीनता कम; पर इसमें संदेह नहीं कि वे ही नवीनता के आदि स्रोत हैं । प्राचीनता का तत्व इनके अपूर्ण प्रबंध अलौकिक लीला, कवित्त सवैयों के संग्रह 'प्रेम पीयूष वर्षा', दोहों के संग्रह 'लालित्य लहरी' और 'श्रृंगार बिंदु' के अंतर्गत संकलित कतिपय पदों तक सीमित है । शेष सारा काव्य नवीनता का उद्घोष करता है ।

---

१. चर्ख (उर्दू) = आसमान ।

(३) प्रेमघन जी के काव्य में नवीनता के निम्नलिखित तत्व मिलते हैं—

(क) राजभक्ति—मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, भारत बधाई, आर्याभिनंदन और सौभाग्य समागम, इन पाँच रचनाओं में प्रेमघन जी की राजभक्ति देखी जा सकती है।

(ख) देशभक्ति—कलिकाल तर्पण, पितर प्रलाप, मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, भारत बधाई, स्वागत पत्र, आनंद बधाई, आनंद अरुणोदय और आर्याभिनंदन आदि निबंध रचनाओं में तथा अन्य अनेक फुटकर संगीत काव्यों, कजली होली आदि में स्वतंत्र देश भक्ति और राजभक्ति से मिश्रित देशभक्ति देखी जा सकती है। भारतेंदु युग एक ऐसा युग था जहाँ देशभक्ति और राजभक्ति साथ साथ चला करती थीं। इन लोगों की राजभक्ति भी देशभक्ति का अंग हुआ करती थी।

(ग) हिंदी के प्रति अनन्य प्रेम—यह प्रेम 'आनन्द बधाई' शीर्षक कविता में भली भाँति देखा जा सकता है।

(घ) सामाजिक विषयों का काव्य क्षेत्र में प्रवेश—बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, गोरी गोरिया, साँवर गोरवा, चंडूबाबू आदि पर प्रेमघन जी की कजलियाँ उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु युगीन कवि अपनी कविताओं से समाज सुधार भी करना चाहता था। उसने साहित्य और समाज की विच्छिन्न कड़ी को पुनः संलग्न कर दिया था।

(ङ) हास्य—भारतेन्दु युगीन कवि अत्यन्त जिंदादिल थे, प्रेमघन भी। 'हास्य विंदु' में उनकी हास्य रस की रचनाएँ हैं; पर उनमें वह तरलता नहीं है। 'होली की नकल' इस दृष्टि से एक अत्यन्त सफल रचना है।

(४) प्रेमघनजी मुख्यतया ब्रजभाषा के कवि थे। भारतेन्दु युगीन काव्य की भाषा 'ब्रजी' ही थी। पर अपनी मौज में आकर उन्होंने उर्दू में भी कुछ रचनाएँ की। उर्दू में वे प्रायः अपना पूरा नाम दिया करते थे, पर कभी-कभी 'अब्र' तखल्लुस भी रखते थे। 'अब्र' 'घन' (बादल) का पर्याय है। देहाती भाषा में भी उन्होंने जन साधारण के लिए कजलियाँ लिखी हैं। इनमें बनारसी और मिरजापुरी बोलियों का सहज रूप मन मोह लेता है। अन्तिम दिनों में, भारतेंदु युग के पश्चात् प्रेमघनजी ने दो-चार

रचनाएँ खड़ी बोली में भी प्रस्तुत की थीं, जैसे मन की मौज, आनन्द अरुणोदय, मयंक महिमा।

(५) प्रेमघन जी का काव्य प्रचुर परिमाण में सामयिक है, जिसकी निंदा नहीं की जा सकती। प्रेमघन जी धरती के कवि थे, आसमान के नहीं। धरती के कवि के रूप में उनका उज्ज्वलतम रूप 'जीर्णजनपद' 'वर्षाबिंदु' और 'प्रेमपीयूष वर्षा' में देखा जा सकता है—प्रेम पीयूष वर्षा में पारम्परिकता की झलक मिल सकती है, और है भी; पर प्रथम दो रचनाएँ तो पूर्ण-रूपेण अभिनव एवं स्वच्छंदता के मार्ग पर चलने वाली हैं।

(६) प्रेमघनजी वर्षा को सर्वश्रेष्ठ ऋतु मानते थे। इसीलिए उन्होंने अपना उपनाम 'प्रेमघन' और 'अभ्र' रक्खा; अपने पत्रों के नाम 'आनन्द कादंबिनी' और 'नागरी नीरद' रखे; और कजलियों की ऐसी अजस्र धारा बहाई जैसी आजतक कोई ख्यातिलब्ध कवि नहीं बहा सका। निश्चय ही इसमें विंध्याचल का बहुत बड़ा हाथ है।

(७) प्रेमघन जी अत्यन्त जिंदादिल और रसिक कवि थे, अतः संगीत से दूर न थे। उन्होंने स्वयं संगीत सीखा था और संगीत रचना की थी, जिसकी संख्या बहुत अधिक है। होली, कजली, ठुमरी, दादरा, खेमटा, लावनी, गजल, रेखता आदि सभी कुछ उन्होंने लिखा।

(८) शुक्ल जी के अनुसार—"वे कलम की कारीगरी के कायल थे। जिस काव्य में कोई कारीगरी न हो, वह उन्हें फीका लगता था।"

(९) प्रेमघन जी भारतेन्दु को छोड़, भारतेन्दु युग के सबसे बड़े कवि थे। और किसी कवि की रचना न तो इतने अधिक परिमाण में है, और न इतने उच्च कोटि की। केवल प्रताप नारायण उनके समक्ष लाए जा सकते हैं। पर उनकी भी रचनाएँ परिमाण में प्रेमघन जी की रचनाओं की एक तिहाई ही हैं।

३

प्रताप नारायण मिश्र

(१)

जीवन-रेखा

प्रताप नारायण मिश्र का जन्म क्वार बदी ९, संवत् १९१३ को कानपुर में पं० संकटा प्रसाद मिश्र, ज्योतिषी, के घर हुआ था। मिश्र जी १९ वर्ष की बय तक तो विभिन्न पाठशालाओं में पढ़ते रहे, पर इनकी पढ़ाई कभी ठीक ठिकाने से नहीं हुई। स्कूल में इन्होंने हिन्दी पढ़ी थी, साथ साथ अँगरेजी भी; पर बाद में स्वाध्याय से उर्दू, फारसी और बँगला भी सीख ली थी।

पाठशाला में पढ़ते समय ही इनका परिचय 'कवि वचन सुधा' से हुआ था। उन दिनों कानपुर में लावनीबाजों के दंगल प्रायः हुआ करते थे, जिनमें प्रताप नारायण जी बराबर आया जाया करते थे। इस युग में कानपुर में ललिताप्रसाद त्रिवेदी नामक एक सुकवि थे, जो 'ललित' नाम से रचनाएँ करते थे। इनके बनाए हुए सवैये रामलीला वालों के बड़े काम के हैं। सवैयों में इनके धनुषयज्ञ संबंधी संवाद बहुत ललित हैं। मिश्र जी इनके काव्य पर भी मुग्ध हुए। इस प्रकार काव्य की ओर इनके आकर्षण के तीन हेतु हुए। बाद में इन्होंने ललित जी से पिंगल के कुछ नियम भी सीखे और स्वयं रचना करने लगे।

भारतेंदु जी की ओर मिश्र जी का झुकाव विद्यार्थी जीवन ही में 'कवि वचन सुधा' के द्वारा हो गया था। भारतेंदु जी मिश्र जी के आदर्श और परम श्रद्धास्पद थे। भारतेंदु ने इनकी प्रेम पुष्पावली की प्रचुर प्रशंसा इन शब्दों में की है—

"हमने पंडित प्रताप नारायण मिश्र जी की बनाई हुई 'प्रेम पुष्पावली' देखी। इसके विषय में कुछ विशेष लिखना नहीं चाहता केवल इतना ही लिख देता हूँ कि इसमें वह सुगंध है जो औरों में स्वप्न में भी नहीं पाई जाती

और जो मेरे ऐसे चित्त वालों को लुभाती है अन्यको चाहे रुचे या न रुचे। इस भूमिका के अधिकारियों को यह एक अमूल्य रत्न होगी।

—हरिश्चंद्र"

भारतेंदु ने मिश्र जी की इतनी जो प्रशंसा कर दी, इससे उन्हें बहुत बल मिल गया और उन्होंने लिखा—

श्री मुख जासु सराहना कीन्ही श्री हरिचंद
तासु कलम-करतूति लखि, लहै न को आनंद

प्रताप नारायण जी बड़े मौजी आदमी थे। वे सामाजिक नियमों के प्रति उदार थे। यद्यपि सनातन धर्मी थे, पर आर्य समाज, ब्राह्म समाज सभी के उत्सवों में सोत्साह सम्मिलित होते थे। गोरक्षा पर व्याख्यान दिया करते थे। लावनीबाजों के दंगल में जाया करते थे। नाटकों में अभिनय करते थे, मूँछ मुड़ाकर स्त्री पात्र का भी अभिनय किया है और वह भी स्वयं अपने पिता से आज्ञा लेकर। सुँघनी सूँघने का व्यसन था। स्वदेशी का प्रयोग करते थे। आलसी परले दरजे के थे। मनोनुकूल बात न होने पर प्रतिवाद के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे। हिंदी हिंदू हिंदुस्थान के कट्टर हामी थे।

मिश्र जी ने हिंदी की सेवा के लिए १५ मार्च १८८३ ई० को, होली के दिन, 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारंभ किया था। इसमें बारह पृष्ठ रहा करते थे। मिश्र जी की लापरवाही से यह कभी भी ठीक समय पर नहीं निकला। होली के दिन यह पत्र जन्मा था, अतएव यह सदैव लोगों को हँसाता रहा, और उन पर हँसता रहा। सन् १८८७ ई० में यह पत्र मृतप्राय हो गया था कि इसे खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर पटना, के स्वामी श्री रामदीनसिंह जी ने सहारा दिया और इसका प्रकाशन अब पटना से, उक्त प्रेस से, होने लगा। यह पत्र किसी प्रकार १० वर्ष तक चलता रहा।

'ब्राह्मण' के अतिरिक्त मिश्र जी का संबंध राजा रामपाल सिंह के 'हिंदोस्थान' से भी था। सन् १८८९ ई० में ये इसके सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए थे, पर बहुत दिनों तक यहाँ ठहर नहीं सके। यहीं इनका संपर्क बा० बालमुकुंद गुप्त से हुआ।

मिश्र जी का शरीर व्याधि मन्दिर था। ये कई बार बीमार हुए थे और बुरी तरह बीमार हुए थे, पर बचते आए थे। अन्त में ३८ वर्ष की अल्प आयु में इनका देहावसान संवत् १९५१, आषाढ़ शुक्ल ४, रविवार को रात्रि में दस बजे हुआ। मिश्रजी निःसंतान मरे, पर उनका कृतित्व ऐसा है कि उनके नामलेवा सदा बने रहेंगे, पानीदेवा भले ही कोई न हो।

(२)

साहित्य-सूत्र

मिश्र जी भारतेन्दु युगीन अन्य साहित्यकारों के समान साहित्य के सभी क्षेत्रों को अपने कृतित्व का दान दे गए हैं। उस युग का साहित्यकार हिंदी को किसी भी प्रकार दीन नहीं देखना चाहता था, अतः यथाशक्ति हर ओर हाथ पाँव मारता था और उससे जो कुछ बनता था, माँ भारती की अकिञ्चनता को दूर करने के लिए कर जाता था। मौलिक रचनाएँ तो वह करता ही था, अनुवाद का भी सहारा लेने में नहीं चूकता था। नीचे मिश्रजी की समस्त कृतियों की सूची दी जा रही है।

नाटक—(१) भारत दुर्दशा—राष्ट्रीय नाटक

(२) कलि कौतुक—(१८८६ ई०)
(३) गो संकट
(४) कलि प्रभाव
} सामाजिक नाटक

(५) जुआरा खुआरी—प्रहसन

(६) हठी हमीर—ऐतिहासिक नाटक

उपन्यास—(१) राजसिंह
(२) इंदिरा
(३) राधारानी
(४) युगलांगुलीय
} बंकिम बाबु के उपन्यासों का बँगला से अनुवाद.

विविध—(१) चरिताष्टक—आठ महापुरुषों का जीवन-चरित

(२) पंचामृत—पाखंडियों का मत खंडन और सदुपदेश

(३) वर्ण परिचय

(४) सूबे बंगाल का भूगोल

(५) नीति रत्नावली—बालकों के लिए उपदेश, अनूदित।

(६) कथामाला—बालकों के लिए उपदेश भरी लघु कथाएँ, अनूदित।

(७) सेनवंश—प्रसिद्ध सेनवंश का इतिहास, अनूदित।

(८) बोधोदय।

(९) सुचाल शिक्षा—बालकोपयोगी प्रबन्ध।

(१०) शिशु विज्ञान।

(११) शैव सर्वस्व—(शिव पूजा युक्तियों से सिद्ध और नास्तिकों का शंका खण्डन)।

निबंध—प्रताप नारायण जी मिश्र हिंदी के श्रेष्ठतम निबन्ध लेखकों में हैं। इनके निबन्ध 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुए हैं, उन सबका कोई पूर्ण संकलन अभी तक नहीं हो पाया है। मिश्र जी अपने निबंधों के लिए ही अमर हैं। उनके कुछ निबंधों का संग्रह 'निबंध नवनीत', 'प्रताप समीक्षा' 'प्रताप पीयूष' नामक ग्रंथों में हुआ है।

कविता—(१) प्रेम पुष्पावली

(२) मन की लहर—(१८८५ ई०)—उर्दू, खड़ी बोली हिन्दी, संस्कृत, ब्रजभाषा, फारसी आदि विविध भाषाओं में २१ लावनियाँ।

(३) शृङ्गार विलास

(४) दंगल खंड (आल्हा)

(५) ब्रैडला स्वागत

(६) लोकोक्ति शतक—१०० कहावतों पर देश-प्रेम भरी कविता।

(७) सांगीत शाकुंतल (अनुवाद)

(८) दीवाने बरहमन (उर्दू कविताओं का संग्रह)

(९) रसखान शतक (संभवतः रसखान के १०० छन्दों का संकलन। संपादित ग्रंथ)

मिश्र जी की प्रायः समस्त उपलब्ध कविताओं का एक संकलन 'प्रताप लहरी' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसका संकलन श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा और श्री सत्यभक्त ने किया है। यह सन् १९४९ में 'भीष्म एण्ड ब्रदर्स' पटकापुर, कानपुर की ओर से प्रकाशित हुआ है। मूल्य ३) है। ग्रन्थ में सामान्य पुस्तकों के आकार के कुल २७२ पृष्ठ हैं, जिनमें कविता के कुल २४८ पृष्ठ हैं। प्रयत्न अच्छा हुआ है, पर इसमें प्रताप नारायण जी की सम्पूर्ण कविताएँ नहीं संकलित हो सकीं हैं। ऊपर गिनाई ९ पुस्तकों में से इसमें निम्नलिखित पाँच पुस्तकें हैं—

(१) लोकोक्तिशतक

(२) मन की लहर

(३) ब्रैडला स्वागत

(४) प्रेम पुष्पावली

(५) दंगल खण्ड आल्हा

निम्नलिखित चार पुस्तकें इसमें नहीं हैं—

(१) शृङ्गार विलास—संभवतः इस ग्रंथ में मिश्र जी के शृङ्गारी कवित्त सवैयों का संकलन रहा होगा। यह ग्रंथ मेरे देखने में नहीं आया।

(२) संगीत शाकुंतल—यह कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का प्रबंध काव्य के रूप में स्वच्छंद अनुवाद है, जिसमें कवि ने कहीं छोड़ दिया है, कहीं जोड़ दिया है।

(३) दीवाने बरहमन—प्रताप नारायण जी भारतेंदु एवं प्रेमघन के समान उर्दू में भी रचनाएँ करते थे। इनका तखल्लुस बरहमन था। दीवाने बरहमन उनकी उर्दू की कविताओं का संकलन था।

(४) रसखान शतक—अनुमान तो यह होता है कि इसमें रसखान की १०० कविताएँ रही होंगी, मिश्र जी ने इनका सम्पादन किया रहा होगा। मेरे पास 'मन की लहर' की एक अलग प्रति है, जो १९१४ ई० को खड्ग-विलास प्रेस की छपी है। इसके अंत में मिश्रजी के १७ ग्रंथों की समूल्य सूची है। इस सूची में 'रसखान शतक' भी है। इसके विवरण में यह लेख है—'(भक्ति और शृङ्गार रस की हृदय ग्राहिणी कविता)'। किसकी कविता?—यह उल्लेख नहीं है। हो सकता है इसमें स्वयं प्रतापनारायण जी मिश्र के १०० शृङ्गारी और भक्ति संबंधी कवित्त सवैये संकलित रहे हों। रस पूर्ण कबित्त सवैयों को 'रसखान' कहने की पद्धति अभी तक देहातों में बनी हुई है। हो सकता है प्रसिद्ध रसखान के ही उस समय तक उपलब्ध १०० कवित्त सवैये इसमें संकलित हुए रहे हों।

'भारतेंदु मंडल' में श्री ब्रजरत्नदास जी ने इनकी ५ कविता पुस्तकों का नाम गिनाया है—"प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, शृङ्गार विलास, शैव सर्वस्व, दंगल खण्ड (आल्हा) आदि।" भारतेंदु की एक रचना 'वैष्णव सर्वस्व' पद्य में है, उसी प्रकार ब्रजरत्नदास जी ने 'शैव सर्वस्व' को भी पद्य कृति समझ लिया है। उक्त 'मन की लहर' वाली १७ ग्रंथों की सूची में 'शैव सर्वस्व' भी है। इसके विवरण में निम्नलिखित उल्लेख है—

"शैव सर्वस्व—(शिव पूजा युक्तियों से सिद्ध और नास्तिकों का शंका-खण्डन)"

युक्तियों से समर्थन एवं खण्डन-मण्डन गद्य में ही होता है, अतः उक्त ग्रंथ गद्य का प्रतीत होता है, पद्य का नहीं।

अस्तु, 'प्रताप लहरी' के एक और सुंदर संस्करण की आवश्यकता है जिसमें प्रताप नारायण जी की समस्त कविताओं को खोजकर संकलित किया

जाय, यह कार्य असंभव नहीं है; अभी बहुत दिन नहीं बीते हैं। उनके समस्त ग्रंथ लगन से खोजने पर मिल सकते हैं। इस 'प्रताप लहरी' में कविताओं का कोई सुन्दर क्रम नहीं है। होना तो यह चाहिए कि प्रतापनारायण जी के जीवनकाल में प्रकाशित समस्त काव्य पुस्तकें प्रकाशनक्रम से दे दी जायँ, तदनन्तर उनकी फुटकर रचनाएँ जो इस प्रताप लहरी में ब्राह्मण की प्रतियों से उद्धृत की गई हैं, दी जायँ। मेरे पास प्रतापनारायण मिश्र के १५ कवित्त हैं जो 'कवि वचन सुधा' के १४ वें वर्ष के किसी अंक में प्रकाशित हुए थे। ये इस प्रताप लहरी में नहीं संकलित हैं। फिर भी इस ग्रन्थ के संपादकों ने जो कुछ कर दिया है, वही क्या कम है। कम से कम ब्राह्मण की संपूर्ण फाइल का उन्होंने सदुपयोग कर लिया है; यह फाइल ही किसको, और कहाँ सुलभ है।

(३)

काव्यालोचन

प्रताप नारायण मिश्र ·प्रताप, प्रतापहरी, परतापनरायन, प्रेमदास आदि उपनामों से कविता करते थे। उर्दू में इनका तखल्लुस था 'बरहमन'। यद्यपि इनका काव्य प्रचुर परिमाण में है, पर भारतेंदु एवं प्रेमघन की तुलना में बहुत कम है। मिश्र जी में भारतेंदु एवं प्रेमघन की अपेक्षा पुरानापन और भी कम है। उनमें नवीनता बहुत है।

(१) प्राचीनता के नाम पर इनके दो भजन हैं जिनमें कबीर का रंगढंग है, जिनमें संसार की निस्सारता की चर्चा है। ऐसे कतिपय भजन भारतेन्दु ने भी लिखे हैं।

(क) साधो मनुवाँ अजब दिवाना
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप भुलाना
—प्रताप लहरी, पृ० १९.

(ख) जागो भाई जागो रात अब थोरी
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी
—प्र० लहरी, पृ० १९.

(ग) बाद विवादन में फँसि प्रानी नाहक जनम गँवावै रे
सुख चाहै तो दुविधा तजिकै काहे न हरि गुन गावै रे
—प्र० लहरी, पृ० १८३

तीसरा गीत तो उन्होंने कबीर साहेब की चाल पर ही लिखा है—
"जिय मति मारयो, मुआ मति लायो, माँस बिना मति आयो रे।"

(२) मिश्रजी ने कुछ पद भी लिखे हैं, पर इनमें भी बहुत पुरानापन नहीं है। कुछ पद तो दुर्गा सम्बन्धी हैं, इन्हीं को पुराना कहा जा सकता है। ये पद 'नवरात्र के पद' शीर्षक से युक्त है। इनका संख्या ५ है।

> जय जय जय त्रिभुवन महरानी
> विबुधवृन्द पूजित पद-पंकज नेहमई जननी जग जानी।
>
> —प्रताप लहरी, पृष्ठ २०.

(३) प्रतापनारायण जी को पुराने गीतों की लय बहुत पसन्द थी। उन्हीं की धुन पर उन्होंने बहुत से गीत लिखे हैं और उन प्राचीन गीतों के प्रथम चरण देकर सूचित भी कर दिया है कि किस चाल पर उन्होंने रचना की है। ऐसा कर देने से यह लाभ है कि पाठक तुरन्त उस सुप्रसिद्ध धुन को पकड़ लेता है, और उसी धुन में, उसी चाल पर उसे पढ़ने, और इच्छा हो तो गाने, लगता है। यह हमारे पुराने कवियों की ईमानदारी थी जो वे अपने प्रभाव-केन्द्र, प्रेरणा-सूत्र, की सूचना दे देते थे; आज के कवि और साहित्यकार जहाँ से लेते हैं, उसका नाम नहीं लेते, और लेते भी हैं तो निन्दा के स्वर में। मिश्र जी द्वारा प्रयुक्त कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) (कैसे कै दरसन पाऊँ देवी तोरी सँकरी दुवरिया माँ) की धुन

> धनि धनि आदि भवानी, तोरी गति का कोई जाने
> इक दुरगा, नव कोटि रूप धरे, मोहेउ बड़े बड़े ज्ञानी
> तोरी सँकरी दुवरिया माँ।
>
> —पृ० २१.

(ख) (देवी तोरा अच्छा बना चौमहला) की चाल

> देवी तोरी सेवा न जानै कोई
> अपने स्वारथ मा बौराने, हिंदुन अक्किल खोई
>
> —पृ० २१

(ग) (कान्हा खेलत फागु जागु उठु देखु ननदिया) की चाल पर

> खेलैं सब फागु, भाग-हत भारतवासी
> धन बल की नित धूरि उड़ावत, गौरव पर धरि आग
> खेलैं सब फागु०।
>
> —पृ० १३७

(घ) (सुनि आई री आज मैं तो होरी की भनक) वाली धुन में
कैसी भाई हो चढ़ी है तुम्हें होरी की सनक
इन ढँगन लाज नहिं रहिहै तनक

—पृ० १३८.

(ङ) गंगापारी चाल, तर्ज

(कहुँ परी अबीरा की मार बिरज में भूले हमार कान्हैया)
होरी खेलो भारत भाय तुम्हारे नित्त नए आनंद बढ़े

—पृ० १३९

(च) ('श्यामा शाम सों होरी खेलत आज नई') की धुन
प्यारे आज तो इक बार गले लगि जाहु
होरिहि के मिस दूरि करौ कछु या छतिया को दाहु

—पृ० १४२

(छ) (रँगी मैं तो रंग तिहारे, औरो रंग जिन डारो)' वाली धुन
बहुत दिन जिय तरसायो, अब न मानिहौं आज
जिय भरि तुमहि भेंटिहौं, प्यारे परी लाज पै गाज

—पृ० १४२

(ज) (सुधि श्याम बिसारी रे, सोचै दरवजवा ठाढ़ी माय) की चाल
अब तो प्रभु मेरे तुम बिन नहिं कोऊ और अधार

—पृ० १२९

(४) समस्यापूर्ति की एक पुरानी पद्धति है। बहुत दिनों से समस्याएँ दी जाती रही हैं और उनकी पूर्ति कवित्त सवैयों में होती रही है। एतदर्थ भारतेंदु युग में कई संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं। कानपुर का 'रसिक समाज' ऐसा ही था। मिश्र जी इसके जीवन थे। इसमें प्रताप नारायण जी ने अनेक पूर्तियाँ सुनाई होंगी, पर वे आज सब सुलभ नहीं। प्रताप लहरी में तो मुश्किल से १५ कवित्त सवैये होंगे। मिश्र जी बड़ी अच्छी पूर्तियाँ करते थे। इनकी पूर्तियों की विशेषता इनकी सरसता है। 'पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ' की इनकी पूर्ति बहुत प्रसिद्ध है—

बनि बैठी है मान की मूरति सी, मुख खोलत बोले न 'नाहीं', न 'हाँ'
तुमही मनुहारि कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ
बरसा है 'प्रताप जू' धीर धरौ, अबलों मन को समझायो जहाँ
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू, 'पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ

एक दूसरी पूर्ति देखिए—'धुरवान की धावन सावन में'

सिर चोटी गुँधावती फूलन सों, मेंहदी रचि हाथन पाँवन में
'परताप' त्यों चूनरी सूही सजी, मन मोहती हावन भावन में
निस द्यौस बितावति पीतम के सँग, झूलन में औ झुलावन में
उनहीं को सुहावन लागत है, धुरवान की धावन सावन में

'कवि वचन सुधा' वाले जिन १५ कवित्तों का हवाला ऊपर दिया गया है, और जो 'प्रताप लहरी' में नहीं है, समस्यापूर्तियाँ ही हैं।

(५) विविध भाषा रचना—भारतेन्दु युगीन कवि मुख्यतया ब्रजभाषा में लिखते थे, साथ ही वे संस्कृत, उर्दू, तथा स्थानीय बोलियों में भी रचना करते थे। मिश्र जी यद्यपि ब्रजभाषा के कट्टर हिमायती थे, पर उनकी अधिकांश रचनाएँ कानपुर की स्थानीय बोली बैसवाड़ी में हैं। ब्रजभाषा के सम्बन्ध में मिश्र जी का निश्चित मत था—

"जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावण्य कवियों की उस स्वतंत्र भाषा में है जो ब्रजभाषा, बुन्देलखंडी, बैसवारी और अपने ढंग पर लाई गई संस्कृत व फारसी से बन गई है, जिसे चन्द्र से लेके हरिश्चन्द्र तक प्रायः सभी कवियों ने आदर किया है, उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बैठी बोलियों में ला सके, यह किसी कवि के बाप की मजाल नहीं।"

खड़ी बोली के सम्बन्ध में उनका अभिमत है—

"सिवाय फारसी छन्द और दो तीन चाल की लावनियों के और कोई छन्द उसमें बनाना भी ऐसा है जैसे किसी कोमलांगी सुन्दरी को कोट बूट पहनाना।"

उर्दू के सम्बन्ध मेंउनकी रायजनी देखिए—

"कविता के लिए उर्दू बुरी नहीं है। कवित्व रसिकों को वह भी बार-ललना के हाव भाव का मजा देती है।"

(क) संस्कृत—संस्कृत में 'प्रेम पुष्पावली' के अन्तर्गत मिश्र जी की चार रचनाएँ,'मन की लहर' में एक लावनी और प्र० ल० पृष्ठ २४५ पर एक गजल है। उदाहरणार्थ उनकी संस्कृत लावनी का एक पद उद्धृत किया जा रहा है—

किमप्यन्यत्तु न याचेऽहम्
देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम्

वैभवस्याकांक्षानैवास्ति
ममत्वीप्सिता प्रेम भिक्षास्ति
नमोक्षस्याप्यस्मत्तृष्णास्ति
प्रेम जाले मतिः प्रसन्नास्ति
दृढ़म्बधीष्व प्रार्थयेहम्
देहि मे नाथ दृढ़स्नेहम्

—पृ० ८४.

(ख) फारसी—इस युग में मिश्र जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिसने फ़ारसी में भी कुछ दखल दिखाया है—'मन की लहर' में एक लावनी फ़ारसी में है; और पृष्ठ १६१ पर एक 'गजल फ़ार्सी' है। गजल की दो पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं।

चरादर गर्दिशे गर्दूं शके बज्र दस्त बिगुज़ारम्
ख़ुदा दारम् चिग़िम् दारम् ख़ुदादारम् चिग़म् दारम्

(ग) उर्दू—मिश्र जी की उर्दू रचनाएँ पयाप्त हैं। उनकी उर्दू कविताओं का संग्रह 'दीवाने बरहमन' नाम से छपा था, ऐसा उल्लेख 'भारतेंदु मंडल' में हुआ है। 'बरहमन' जी के कुछ उर्दू शेर देखिए—

मिलते ही करने लगते हैं बातें वह प्यार की
ता यह न मिलने का न करे कुछ गिला शुरू। १।
मुसकिरा देते हैं वह हमको हम उनको देखकर
आशिको माशूक की है बस यह तसलीमात अर्ज। २।
समझकर बेसमझ बनते हो तुम तो
करूँ क्या फिर मैं अपना मुद्दआ अर्ज। ३।
पूछे है कौन ख़ाक़नशीनों का हाले ज़ार
रहता है आसमान पै सरकार का दिमाग़। ४।

—पृ० १०७.

मिश्र जी ने हसन हुसेन की मृत्यु पर मरसिया भी लिखा है—

फ़लक यह जुल्म तेरे और अजबराय हुसैन
कलेजा फटता है सुनने से माजराय हुसैन
गजब है सख्त मुसीबत में, जी से जाय हुसैन
कहाँ तलक न कहूँ हर जमा में हाय हुसैन

—पृ० २४४.

(२) बैसवाड़ी—बैसवाड़ी मिश्र जी के घर की बोली है। इसमें उन्होंने बहुत सी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। दंगल खंड, कानपुर का आल्हा, बुढ़ापा, आदि इसी भाषा में हैं। बुढ़ापा की विरूपता बैसवाड़ी में विलोकिए—

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तौ हम नकन्याय गयन
करत धरत कछु बनतै नाहीं, कहाँ जान औ कैस करन
छिन भर चटक, छिनै मा मद्धिम, जस बुझात खन होय दिया
तैसे निखवख देखि परत हैं हमरी अक्किल के लच्छन

—पृ० ३९

(ङ) खड़ी बोली—मिश्र जी ने खड़ी बोली के लिए उर्दू बहरों का सहारा लिया है। इनकी एक हिंदी गजल के कुछ बंद देखिए—

दयानिधान ! हमारी विथा सुनो तो सही,
पुकार पुत्र की अपने, पिता सुनो तो सही।
जो अपने लोगों के ऊपर दया नहीं करते,
कहेगा आपको संसार क्या, सुनो तो सही।

—पृ० १९५

(च) ब्रज भाषा—मिश्र जी ब्रजभाषा के तो कवि ही हैं। उसीको उन्होंने अपना प्रेम प्रदान किया है। उनकी ब्रज भाषा की भी एक कविता ले लीजिए—

प्रीति किए को यह फल पायो
जिनकी हमहिं सुरति निसि बासर, तिन हमकहँ सब विधि बिसरायो
जिन हित लोक वेद सब छाड़्यो, तिन मुखहू कबहूँ न दिखायो
द्वार परेहु 'परताप' न पूछ्यो, काको, कौन, कहाँ ते आयो

—पृ० २४०

(६) प्रताप नारायण जी को भी भारतेन्दु एवं प्रेमघन के समान लोक गीतों से प्रेम था। इन्होंने भी कजली, लावनी, होली, दादरा लिखे हैं। आल्हा एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रबन्धगीत है। भारतेंदु युग में प्रताप नारायण मिश्र को छोड़ और किसी ने आल्हा नहीं लिखा, बाद में तो आचार्य द्विवेदी तक कल्लू अल्हइत बन गए।

(क) कजली—मिश्र जी ने दो ही तीन कजलियाँ लिखी हैं।

कसकैं मोरे रे करेजवा तोरे नैना बाँके बान
नहिं भूलति जस वह दिन तानी बाँकी भह कमान

जादू भरी रसीली चितवन, प्रेम भरी मुसकान
छिन छिन पलपल पर सुधि आवत, बिसरावत सब ज्ञान
अब 'परताप' न जीवत रहिहैं बिना अधर रस दान
धाय आय गर लागु पियरवा, नाहित निकसै प्रान

—पृ० २५६

एक अन्य कजली 'विषाद पंचक' है, जो पृष्ठ १२९ पर है।

(ख) होली—मिश्र जी ने एक दर्जन के लगभग होलियाँ लिखी हैं, जिनमें अधिकांश में देश की दुर्दशा का ही चित्र है। होली का एक सरस चित्र लीजिए—

आजु फगुवानो डोलै छैल
रँग-राते रसिया के मारे, चलि न सकै कोउ गैल
जैसो आप सखा सँग तैसो, काहू को न दबैल
आवत लखि कै कुल जुवतिन को, लगै मचावन फैल
तकि तकि गात हनै पिचकारी, निधरक निलज अरैल
गावत निपट कुफारी गारी, लावत नहिं मन मैल
सबकी लाज लेन मैं दैया, गिनै सधारन सैल
'प्रेमदास' धौं काह करैगो, जसुमति को बिगरैल

—पृ० १४४.

(ग) लावनी—'मन की लहर' नामक पुस्तक लावनियों का ही संग्रह है, जैसे भारतेन्दु का 'फूलों का गुच्छा'। उदाहरणार्थ इनकी एक लावनी का एक छन्द दिया जाता है—

रसहू अनरस में एक सरिस रस राखै
सोइ सरस हृदय बस प्रेम सुधा रस चाखै

चित ते बिसरावे चिंता दुहु लोकन की
सब संक तजै निज जीवन और मरन की
समुझै इक ही सी प्रीति बैर जग जन की
मन-भावनमै सब करै भावना मन की
भोरे भावनहू और न कछु अभिलाखै
सोइ सरस हृदय बस प्रेम सुधा रस चाखै ॥ १ ॥

—पृ० ८७

(घ) दादरा—मिश्रजी ने बहुत कम दादरे लिखे हैं।

तोहिं छैला मैं छाती लगाए रहिहौं
आँखिन ते कछु दूरि न करिहौं, पुतरी प्यारे बनाए रहिहौं
पलकन ते नित पाँय दाबि कै, उर पर सदा सोआए रहिहौं
जो कछु भौंह चढ़ी देखिहौं तौ, परि परि पैयाँ मनाए रहिहौं
डारि गरे तोरे अपनी बहियाँ, प्रेम के जाल फँसाए रहिहौं
प्रिय 'प्रताप' तोरी इक इक छबि पर, दूनो लोक लुटाए रहिहौं

—पृ० २५७

(ङ) आल्हा—कानपुर माहात्म्य और 'दंगल खंड' मिश्र जी के दो प्रसिद्ध आल्हा हैं। इनकी भाषा बैसवाड़ी है। कानपुर माहात्म्य का कुछ अंश सुन कर कानों को पवित्र कर लेना चाहिए।

भुम्याँ गैए कानपूर की, माता नाउँ न जनौं तुम्हार
जग माँ महनामथ करिबे कौं, दुसरी बेला को औतार
तुम्हरी महिमा जग जानत है, अक्किल देउतन कै चकराय
बहिनी लागौ तुम कलियुग की, सबके राखे चित्त डुलाय

× × ×

मर्यादा पुरुषोत्तम कहिए, राजा राम धरम अवतार
जिनको नाम लेत मनई के, सिगरे पाप होंय जरि छार
उनके भैया बीर लच्छिमन, जानै चारि वेद की बात
रोवत छोड़ि गए सीता को, वन माँ भूलि जनम को नात
यह ना संका कोऊ करियो, सहजै सिया जगत की माय
लछिमन उनके देवर हैंकै, कैसे दओ सील बिसराय
एकै जोजन पर कंपू[1] ते, परिअर बसै रिसिन को गाँव
सीता छोड़ी तहँ लछिमन ने, यह सब धरती को परभाव
सील ते देउता जहँ मुँह फेरैं, तहँ मनइन को कौन हवाल
तोता चसमी कानपूर की, है यह त्रेता जुग ते चाल

× × ×

कहँ लगि बरणौं मैं कंपू को, मोरे बुते कही ना जाय
धनि धनि भुम्याँ कानपूर की, सत कर्मन की विषम बलाय
सतजुग त्रेता ते चलि आए, जहँ सब कलिजुग के ब्यौहार
ऐसी धरती पर बसियत है, बेड़ा राम लगावै पार

---

१. कानपूर को आस पास के अशिक्षित देहाती 'कंपू' कहते हैं।

(७) प्रताप नारायण जी भारतेंदु को अपना परम श्रद्धेय इष्ट देव मानते थे और उन्हीं के आदर्शों का पालन करते थे। उन्होंने अनेक कविताओं में भारतेंदु को अनेक प्रकार से स्मरण किया है—

(क) कियो घोर कलि माहिं जिहिं स्नेह सुपथ स्वच्छंद
सहृदय संपूजित सदा नौमि देव हरिचंद
—नमो प्रेम भगवान, पृष्ठ १४.

(ख) श्री भारत-शशि सरिस ऋषि उपदेशै जब मर्म
प्रेमहि गनै 'प्रताप' किन सब धर्मन को धर्म
—प्रेम स्तोत्र, पृष्ठ ७२.

(ग) 'बरहमन' क्यों न हो मुक़िर इसका
मजहबे हज़रते 'रसा' है इश्क़
—प्रेम प्रसंग, पृष्ठ १०४.

(घ) परम पूज्य प्रेमीन के सुहृद सभा सुखकंद
जग दुखहर, शिव सीस मणि, नमो देव हरिचंद
—पृष्ठ २५९.

(ङ) भारतेंदु पर मिश्र जी ने सन् १८८३ ई० में एक कसीदा लिखा था, जिसके कुछ शेर हैं—
बनारस की ज़मीं नाज़ाँ है जिस्की पायबोसी पर
अदब से जिस्के आगे चर्ख ने गर्दन झुकाई है
वही महताबे हिंदुस्ताँ, वही गैरत दिहे नैयर
कि जिस्ने दिल से हर हिंदू के तारीकी मिटाई है

× × ×

बहुत लोगों को है दावा, वतन की खैरख्वाही का
कोई पूछे तो इनसे, चाल यह किस्की उड़ाई है
—पृ० १०९

(च) भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की मृत्यु पर मिश्र जी ने हिंदी उर्दू दोनों में अनेक कविताएँ लिखी थीं। ये 'प्रताप लहरी' में तीन विभिन्न स्थलों पर छपी हैं।

(१) पृष्ठ १२२-१२३, हिंदी में, 'भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का मर्सिया'
(२) पृष्ठ १९२-१९४, उर्दू में, 'शोकाश्रु'
(३) पृष्ठ २३०-२३७, हिंदी में, 'शोकाश्रु'

(छ) मिश्र जी की 'नूतन भक्तमाल' नामक एक रचना है। इसमें भारतेंदु हरिश्चन्द्र, ब्राह्म समाज के बंगाली महापुरुष केशवचंद्र और एक संन्यासी गोविन्दाश्रम स्वामी की प्रशस्ति एक एक छप्पय में है। दुर्भाग्य से भारतेन्दु वाला छप्पय अधूरा है—उसकी प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ नहीं हैं, उपलब्ध प्रथम पंक्ति भी गड़बड़ है।

निज भाषा निज देश(भक्ति पथ)कियो भूषित वल्लभ कुल
भारत भुव हित हेत रहत निसि दिन अति आकुल
कवितामृत द्वारा प्रकट कृत हृदि प्रछन्न परमेस छवि
भारत ससि श्री हरिचंद जू अग्रवाल कुल कमल रवि

—पृष्ठ २४५.

भारतेन्दु ने 'भक्तमाल उत्तरार्द्ध' लिखा था, तो मिश्र जी ने भी 'नूतन भक्तमाल' लिखा, भले ही यह प्रयास पूर्ण नहीं हो सका।

(ज) ब्राह्मण में मिश्र जी भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् भारतेन्दु संवत् का प्रयोग करते थे।

(८) राजभक्ति—भारतेन्दु युगीन प्रत्येक हिन्दी कवि देशभक्त था, राजभक्त था। मिश्र जी की भी कुछ रचनाएँ राजभक्ति पूर्ण हैं अथवा राजभक्ति प्रेरित हैं। जैसे 'युवराज कुमार स्वागतंते'। राजकुमार विक्टर का आगमन सन् १८९० ई० में जाड़े के दिनों में हुआ था।

हरि शशि संवत पाँच मँह, सित पख अगहन मास
श्री विकटर आगमन ते भयो हिंद सुख रास

इन शब्दों में मिश्र जी ने समय की सूचना दी है। 'ब्रैडला स्वागत' और लार्ड रिपन सम्बन्धी कुछ कविताएँ राजभक्ति प्रेरित हैं, जिनमें देश-भक्ति भी सम्मिलित है।

(९) देशभक्ति—मिश्र जी कट्टर देशभक्त थे। स्वदेशी का व्यवहार करते थे। कांग्रेस के अधिवेशनों में दो बार कानपुर नगर से प्रतिनिधि होकर गए थे। 'कांग्रेस की जय' नामक उनकी एक कविता कांग्रेस की स्तुति में है, जिसमें वे कहते हैं—

'जय जयति भगवति काँगरेस असेस मंगल कारिनी'

—पृ० १७

भारतेंदु एवं प्रेमघन के समान इनकी भी राष्ट्रीयता, हिन्दू राष्ट्रीयता थी। इन्होंने 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का नारा दिया—

चहहु जो साँचहु निज कल्यान
तौ सब मिलि भारत संतान
जपो निरंतर एक जबान
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान

—पृष्ठ २६०

मुसलमानों से इन्हें क्यों चिढ़ थी, इसका कुछ कारण इस कविता से जाना जा सकता है—

अँगरेजन के राज जवनगण, रहे नवाबी ठान हो
अब की अपने त्योहारन में, कियो घोर अपमान हो
जब ताजिया क्वार में परिहै, तब नहिं बचिहैं प्राण हो
हिन्दू सब अपने रँग माते, समझैं लाभ न हानि हो

—पृष्ठ २०३

(१०) हिन्दी प्रेम—भारतेंदु युगीन हिन्दी साहित्य सेवियों का तो जन्म ही मानो हिंदी सेवा के लिए, हिंदी के अधिकारों के हेतु संघर्ष के लिए, हुआ था। ये सब हिन्दी के दीवाने थे। प्रतापनारायण ने जो नारा 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का दिया, उसमें सब से पहले उन्होंने हिन्दी को रक्खा है।

एक होली में वे देवनागरी को गले लगाने का आदेश भारतीयों को देते हैं—

देवनागरिहि गरे लगाओ पैहो मोद महान
रहो निशंक प्रेम मद माते श्री परताप समान

—पृष्ठ १४०

अन्यत्र वे कहते हैं—

सिखहिं नागरी नागरी, नागर बनहिं सु लोय
ब्राह्मण की आसीस ते, घर घर मंगल होय

—पृष्ठ २६०

'भारत रोदन' नामक कविता प्रताप लहरी में आधी पृ० १८–१९ पर और आधी पृ० २५४–५६ पर छपी है। इसमें हिन्दी उर्दू का विवेचन है।

उरदू काहू देस की, भाषा होति न सिद्ध
केवल आर्यं अभाग ते, ह्याँ है रही प्रसिद्ध १४

कछु न लाभ याके रहे, केवल हानिहि हानि
कौन पिष्ट पेषण करै, सब बुध चुके बखानि १५
हेर फेर नुकतान को, एक ओर धरि देहु
'प्रेत' 'प्रीति' लिखि मौलवी, सों पढ़ाय तो लेहु १६

'चाहे गाना समझो, चाहे रोना' शीर्षक दो रचनाएँ हैं, दोनों में हिंदी की चर्चा है—

"निज भाषा तक को बैठो खो, यह राज वंश का न्याय है"
—पृष्ठ १९०

हक में हिंदी के नहीं अहले कमीशन देते राय
छूटे हैं खरगोश पर कुत्ते शिकारी हाय हाय
× × ×
बख्ते काफिर नागरी भी छीनती है या खुदा
थी बुजुर्गों की यह एक यादगारी हाय हाय
—पृष्ठ १९२

काश भारतेंदु-युगीन हिन्दी के ये प्रेमी आज अपनी आँखों हिंदी के मुक्त स्वरूप को देखते। उसे भारत की भारती के रूप में प्रतिष्ठित देख उन्हें कितनी प्रसन्नता न होती।

(११) परिहास-प्रियता—भारतेंदु युगीन कवियों में प्रताप नारायण जी मिश्र सबसे अधिक हँसोड़ थे। उनकी हास्य और व्यंग्य संबंधी अनेक रचनाएँ हैं, यथा—बुढ़ापा, जन्म सुफल कब होय, ककाराष्टक, हर गंगा, तृप्यंताम, इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना, कलियुग ककहरा तथा अन्य अनेक फुटकर रचनाएँ। परिहास तो प्रताप नारायण मिश्र की घुट्टी में पड़ा प्रतीत होता है। 'इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना' में कनवजिया, खत्री, माड़वारी, मुंशी, गोरंड, यवन, आजाद, ब्राह्मण आदि की उक्तियाँ हैं। एक कनवजिया के मुँह से सुनिए कि कनौजिया कितना और क्या चाहता है—

कनवजियाउवाच
मरे नित्त एक नारि, बिटेवा होय ना
बकरा भच्छत चिकवा समझै कोय ना
करि धाकर घर ब्याह रुपैया रोलना
इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना।
—पृष्ठ १८८

'जन्म सुफल कब होय' में लार्ड रिपन, गौरांगदेव, पादरी साहब, भँड़राज, गोरंडदास, हजरत, सेठ, अमीर, राजा, बुढ़ऊ, लिकपिट्टन, पुरोहित, कनवजिया, बाल विधवा, कान्यकुब्जा कन्या, वकील, जमीदार, पुलिस, वैद्यराज, भँड़सारी आलसी, बगुला भक्त, हरिश्चंद, संपादक, 'ब्राह्मण' आदि की उक्तियाँ है। कुछ उक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धृत हैं—

गोरंडदासउवाच

जग जानै इंगलिश हमैं, वाणी बस्त्रहिं जोय
मिटै बदन कर श्याम रँग, जन्म सुफल तब होय

सेठउवाच

बुधि विद्या बल मनुजता, छुवहिं न हमकहँ कोय
लछिमिनियाँ घर में बसै, जन्म सुफल तब होय

गौरांगदेवउवाच

नित हमरी लातैं सहैं, हिंदू सब धन खोय
खुलै न इँगलिश पालसी, जन्म सुफल तब होय

पादरी साहबउवाच

हम जो चाहैं सो करैं, पै दुलखै मति कोय
जग हमार चेला बने, जन्म सुफल तब होय

मिश्रजी 'ब्राह्मण' का चंदा हरगंगा कहनेवाले ब्राह्मणों की पदावली में माँगा करते थे—

आठ मास बीते जजमान
अब तो करो दच्छिना दान, हर गंगा
हँसी खुशी ते रुपया देव
दूध पूत सब हमते लेव, हर गंगा

—पृष्ठ ४६.

(१२) प्रताप नारायण जी मिश्र प्रेम के दास थे और अपने को 'प्रेमदास' कहते भी थे। प्रेम की प्रशस्ति इनके काव्य में बहुत है। वे कहते हैं—

प्रेम बिना नहिं देखेहु भावत, पूत कपूत जो आतम जात है
प्रेम भए निज सर्बसु वारिए, तापर जासों न नेकहु नात है
ब्रह्म सदा सबही ते परे, सोउ प्रेम के नाते सखा पितु मात है
'नेह सगा तो सगा' बस सत्य है, सत्य है, प्रेमहि ते सब बात है

—पृष्ठ २०२

(१३) अहिंसा-प्रेम—मिश्र जी अहिंसा प्रेमी थे। भारतेंदु के 'बकरी विलाप' के ढंग पर दोहों ही में इन्होंने भी 'पशु प्रार्थना' लिखी है। 'गो गुहार' तो इनकी इस संबंध की अत्यंत प्रसिद्ध रचना है—

'बाँ बाँ करि तृन दाबि दाँत सों दुखित पुकारति गाई है'

(१४) लोकोक्ति-प्रेम—मिश्र जी के काव्य में लोकोक्तियों, मुहावरों एवं लोक शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग की तो उनकी 'लोकोक्ति शतक' नामक अत्यंत सुन्दर एक काव्य पुस्तक ही है। लोकोक्तियों का इतना अधिक प्रेम जयपुरी कवि राय शिवदास को था, जिन्होंने 'लोकोक्ति रस कौमुदी' (सं० १८०९ वि०) में लोकोक्तियों ही में नायिका भेद लिखा है। इन दोनों ग्रंथों में लोकोक्तियों का अत्यंत सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति शतक तो देश भक्तिपूर्ण अत्यंत भव्य रचना है।

(१)

छोड़ि नागरी, सुगुन आगरी, उर्दू के रँग राते
देसी वस्तु विहाय, विदेसिन सों सर्वस्व ठगाते
मूरख हिंदू, कस न लहैं दुख, जिनकर यह ढंग दीठा
'घर की खाँड़ खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा' ४३

(२)

तन मन सों उद्योग न करहीं
बाबू बनिबे के हित मरहीं
परदेसिन सेवत अनुरागे
'सब फल खाय धतूरन लागे' ५७

(३)

सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लातैं खाव
'राजा करै सो न्याय है, पासा परै सो दाँव' २०

(१५) मिश्र जी ने सर्वत्र मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है, केवल कवित्त और सवैया वर्णिक छन्द हैं, जो हिन्दी के परम्परा-प्राप्त छन्द है और जिनमें मात्रिक छन्दों की सी नमनीयता है।

(१६) मिश्र जी ने 'संगीत शाकुंतल' नाम से कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुंतल का प्रबन्ध रूप में अनुवाद किया है, जिसमें अपना भी जोड़ तोड़ है। उनके अनुवाद का एक अंश मूल के साथ श्री व्रजरत्न दास जी ने भारतेन्दु मण्डल के अंतर्गत पृष्ठ १०९–११० पर दिया है, जिससे तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

मिश्र जी भारतेन्दु युग के अत्यन्त श्रेष्ठ कवियों में हैं, इसमें सन्देह नहीं। इनके समस्त काव्य का एक नवीन सुसम्पादित संस्करण अपेक्षित है।

४

ठाकुर जगमोहन सिंह

(१)

जीवन सूत्र

ठाकुर जगमोहन सिंह राजवंश के थे। इसके पिता ठाकुर सरयू प्रसाद बहुत बच्चे थे और राज्य का प्रबन्ध एक अँगरेज मैनेजर के हाथ में था। सन् १८५७ के गदर में वह मैनेजर मार डाला गया। बालक सरयू प्रसाद को काले पानी भेज दिया गया और उनका राज्य विजयराघवगढ़ जब्त कर लिया गया। विद्रोह के ही दिनों में जगमोहन सिंह जी का जन्म विजयराघवगढ़ दुर्ग (मइहर, बुन्देलखण्ड) में श्रावण शुक्ला चतुर्दशी (सं० १९१४ वि०) को हुआ था। इनके पिता की उम्र उस समय १६ वर्ष की थी और वे कालापानी में थे, जहाँ उन्होंने तत्काल आत्महत्या कर ली। पिता की मृत्यु के समय बालक जगमोहन केवल ६ माह के थे।

जगमोहन सिंह की शिक्षा दीक्षा वार्ड्स इंस्टिच्यूट क्वींस कालेज काशी में हुई। यहाँ यह इक्कीस वर्ष की उमर तक रहे। यहीं यह भारतेन्दु के सम्पर्क में आए और उस युग के अमर साहित्यकार बनने का इन्हें सुअवसर मिला। अपने विद्यार्थी जीवन ही में इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे थे, जो उसी समय प्रकाशित भी हो गए थे। काशी में यह बारह वर्ष तक रहे थे। यहाँ इन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी और बँगला तथा उर्दू भाषाओं की अच्छी जानकारी कर ली थी। इन्हें सरकार की ओर से आजीवन १००) मासिक पेंसन मिलती रही थी।

१८७८ ई० में अध्ययन समाप्त कर यह अपने घर गए। सन् १८८० ई० में यह मध्यप्रदेश के रामगढ़ जिले में धनतरी नामक तहसील के तहसीलदार हुए। नौकरी के सिलसिले में इन्हें अनेक स्थानों पर घूमने का अवसर मिला। प्रकृति के जिन मनोरम दृश्य खण्डों ने इन्हें प्रभावित किया, उनका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है। इनका प्रकृति वर्णन संस्कृत कवियों के समान संश्लिष्ट है। शुक्ल जी ने अपने प्रसिद्ध इतिहास में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सन् १८८२ में जगमोहन जी अपनी योग्यता के बल पर एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर बनाए गए। कुछ ही दिनों बाद ये प्रमेह से पीड़ित हो गए, जिसने अंत तक इनका साथ नहीं छोड़ा। रोग के पीछे इन्होंने सरकारी नौकरी भी शीघ्र ही छोड़ दी थी। नौकरी छोड़ने के अनंतर यह दो वर्ष तक कूचबिहार की स्टेट-कौंसिल के मंत्री रहे। उक्त कूचबिहार नरेश इनके काशी के सहपाठी थे। ठाकुर साहब के रुग्ण जीवन की समाप्ति ४ मार्च सन् १८९९ ई० को ४२ वर्ष की उम्र में हुई। इनके एक पुत्र और एक पुत्री थी। इनके पुत्र ठाकुर ब्रजमोहन सिंह बी. ए. बैरिस्टर हैं और अपने घर पर ही रहते हैं।

(२)

रचनाएँ

ठाकुर साहब की अधिकांश कृतियाँ पद्यबद्ध हैं। 'भारतेंदु मंडल' के आधार पर इनके ग्रंथों की सूची यह है—

काव्य—

अ—अनूदित

(१) ऋतु संहार
(२) कुमार संभव
(३) मेघ दूत
(४) हंस दूत
} संस्कृत से अनूदित

(५) शिलन का बिन्दी, अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि बाइरन के **Prisoner of Chillon** का अनुवाद।

(६) ज्ञान प्रदीपिका—महर्षि कपिल के सांख्य सूत्रों का आर्या छंदों में अनुवाद।

ब—मौलिक

(१) प्रलय—जब ठाकुर साहब छत्तीसगढ़ के अंतर्गत शबरीनारायण तहसील में थे, उस समय महानदी की बाढ़ ने हाहाकार मचा दिया था। इसपर उन्होंने 'प्रलय' नामक मार्मिक रचना प्रस्तुत की थी।

(२) ओंकार चंद्रिका—जब आप खंडवा में थे, तब वहाँ के प्रसिद्ध ओंकार मांधाता नामक तीर्थ पर उन्होंने यह काव्य ग्रंथ लिखा था।

(३) सज्जनाष्टक—यह कोई छोटी कविता प्रतीत होती है, जिसमें सज्जनों की प्रशंसा के आठ छंद होने चाहिए।

(४) संपत्ति पचासा—इसमें संपत्ति संबंधी ५० छंद होने चाहिए।

(५) बोनीवार्ड विलाप—बोनीवार्ड ही शिलन का बन्दी था। शिलन के बंदीगृह में वह इतने अधिक दिन तक रहा था कि उसे उससे कुछ मोह

हो गया था। वहाँ से मुक्त किए जाने पर उसे दुःख हुआ था। यही कथा 'शिलन का बन्दी' में है। बोनीवार्ड विलाप उसी से प्रभावित कोई स्वतन्त्र रचना प्रतीत होती है।

(६) श्यामा लता—इसमें कुल १३२ छन्द हैं। ग्रन्थ में बरवै, शिखरिणी, त्रिभंगी आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। ग्रन्थ इनकी प्रिय श्यामा को समर्पित है। यह उस समय की रचना है, जब यह शबरीनारायण में तहसीलदार थे। इसकी रचना २५ दिसम्बर १८८५ को प्रारम्भ हुई। ग्रन्थ १५ दिनों में पूर्ण हो गया था। इसमें संयोग वियोग दोनों के चित्र हैं। एक बारहमासा भी है।

(७) देवयानी—यह काव्य देवयानी का प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है। प्रारम्भ में कथा गद्य में दी गई है। यह ग्रंथ सं० १९४२ (१८८५ ई०), ज्येष्ठ बदी १३ को प्रारम्भ किया गया और आषाढ़ में समाप्त हो गया। यह ग्रन्थ रोला छंदों में है। ग्रंथान्त में इन्होंने कुछ अपना वृतान्त भी दे दिया है। प्रारम्भ के आठ रोलों में इन्होंने अपनी ९-१० पुस्तकों की चर्चा की है।

(८) श्यामा सरोजनी—यह सन् १८८६ ई० की रचना है। इसमें २०४ छंद हैं। अधिकांश सवैये हैं; कुछ कवित्त, छप्पय और बरवै तथा दोहे भी हैं। यह विप्रलंभ श्रृङ्गार की रचना है। यह भी शबरीनारायण नामक स्थान पर ही लिखी गई।

(९) श्यामा विनय—यह श्रृङ्गारी सवैयों का एक लघु, पर सरस, संकलन है। इसमें विप्रलंभ श्रृङ्गार प्रधान है।

(९) प्रेम रत्नाकर
(१०) प्रेम लता
(११) प्रेम संपत्ति लता
} प्रेम पूर्ण काव्य ग्रंथ हैं।

गद्य रचनाएँ—

(१) श्री रामलोचन प्रसाद जी का जीवन चरित

(२) प्रमिताक्षर दीपिका

(३) जब कभी—यह गद्य पद्य मय अपूर्ण रचना है।

(४) श्यामा स्वप्न—यह उपन्यास के ढंग की रचना है। रात्रि के चार यामों की भाँति इसमें चार याम हैं। इसमें इन्होंने स्वप्न रूप में अपनी प्रणय-कहानी ही गद्य काव्य की शैली में लिखी है। इनकी प्रणयिनी श्यामा नामक एक ब्राह्मण कन्या थी। इसके नाम पर ठाकुर साहब ने अनेक काव्य ग्रंथ लिखे हैं।

इधर हाल ही में श्यामा स्वप्न का एक सुंदर संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने प्रकाशित किया है। हमारी रुचि भारतेंदु युगीन साहित्य की ओर जा रही है, पर बहुत धीरे धीरे। इस समय ठाकुर साहब की यही एक सुलभ रचना है। और रचनाएँ तो देखने में भी नहीं आतीं।

(३)

काव्य-समीक्षा

ठाकुर जगमोहन सिंह के ग्रंथ आज सर्वत्र उपलब्ध नहीं हैं। इनका एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'श्यामा स्वप्न' है, जिसमें बीच बीच में कुछ कविताएँ भी आ गई हैं। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित इस 'श्यामा स्वप्न' के अंत में ठाकुर साहब की एक अन्य काव्यकृति 'श्यामा विनय' परिशिष्ट रूप में जोड़ दी गई है। इन्हीं रचनाओं के आधार पर इनके काव्य पर विचार करना होगा; और तबतक उसी पर धैर्य धारण करना होगा, जब तक इनकी समस्त ग्रंथावली सुसंपादित होकर सुलभ नहीं हो जाती।

(१) ठाकुर जगमोहन सिंह रसखान, घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि हिंदी के परम प्रसिद्ध स्वच्छंद कवियों की परंपरा में हैं। ठाकुर साहब ने इन्हीं स्वच्छंदतावादी कवियों के समान स्वच्छंद जीवन बिताया और इन्हीं के समान स्वच्छंद काव्य सृष्टि की। इन्होंने श्यामा से प्रेम किया, और उसी के विरह में श्यामा स्वप्न, श्यामा विनय, श्यामालता, श्यामा सरोजनी आदि रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनका काव्य इनके जीवन का प्रतिबिंब है। यह इनके हृदय का स्वच्छ अनलंकृत उद्‌गार है। इनकी सुंदरतम रचनाएँ सन् १८८५—८६ में, जब यह श्यामा के विरह में पागल थे, लिखी गईं।

श्यामा गाँव की बेटी थी। फिर भी लगन ही तो है, लग गई। इसका चित्र जगमोहन जी इस प्रकार अंकित करते हैं—

सु मायके में नव जोबनी बाला, सनेह सकै किहि भाँति दुराय
कहूँ बगरावति चीर अधीर, समीर उड़यो गहिकै लपटाय
कभू गृह काज के व्याज चढ़ी, उत ऊँचे अटा निरखै पिय आय
विलास सहास प्रमाद भरी, जगमोहन प्रीति छकी दरसाय

गाँव के छोर पर नदी है, स्नान वेला में यह प्रेम व्यापार किस तरह लुक छिप कर चला करता है, देखिए—

(१)

कबहुँ नीर मज्जन कबहुँ, नदी तीर की भीर
तौहू धीर सरीर नहिं, चलत नैन जिमि तीर

(२)

नदी तीर एँड़ी घिसति, झुकि झुकि, झझकि हटै न
पियहिं हँसति निरखति रहति, चलत चपल चहुँ नैन

(३)

कभू न्हात, बतरात कहुँ, कहुँ निरुवारत केस
कभू घिसत एँड़ीन झुकि, निरखत पिय को बेस

(४)

तजति न सो ठाँवहिं मुरकि, निरखति पिय मुख चंद
बसन दाबि दंतन डुबिच, पैरत सलिल अमंद

(५)

कै आगू, पाछू कबहुँ, आवत पिय के संग
जौं अचाँक मग भेंटती, बिहँसति करि बहु रंग

श्यामा की संरक्षिका उसकी वृद्धा रुग्णा माँ है। मिलन के सभी सुपास हैं—

प्यारे पुरान सुनो चित लायकै, पाछे यहीं करियो सुख सैनहिं
गाँव के सोय गए, अधरात, सुनात परोसन बात कहूँ नहिं
खोर को देखत ही डर लागत, चोरहु आयो सुन्यो हम रोरहिं
माय को मेरी न चिंता कछू, बसि रात इतै, उठि जाइयो भोरहिं

परन्तु—

उठनि, हँसनि, बतरानि अरु, निरखन, चलन सुजान
जौं न आगमन प्रति दिवस, तऊ गए सब जान

जब बात प्रगट हो गई, उस समय बेचैनी, उपहास का भय, लोक-लाज, कितनी आफतें एक जी पर आ गईं—

नेकु अवलोकैं जाके लोक उपहास होत,
ताही के बिलोकिबे को दीठि ललचात है
जाहि बिरहागि से दयार सी लगी है देह,
गेह सुधि भूली, नेह नयो दिन रात है

कैसे धरों धीर, 'सिंह', बिकल सरीर भयो
पीर कहा जानै री, अहीर वाकी जात है
मन समुझाय, कीन्हों केतिक उपाय, तऊ
हाय कथा एते पर वाही की सुहात है

आगे प्रवास हुआ, विरह व्यथा ने कवि के हृदय को झकझोर दिया—

तब दरसन ऐसे हते, दिन में सौ सौ बार
अब दरसन ऐसे भए, आड़ै परत पहार
आड़ै परत पहार, हार जिय धरिकै बैठे
कीन्हे पूरब पाप कौन, जे मो मग बैठे
काको कीन्ह बिगार जौन दुख झेले बरसन
दुर्लभ हाय बिचारि अहो श्यामा तव दरसन

और संभोग की स्नेह सनी पुरानी बातें, रातें, घातें सब स्वप्नवत हो गईं—

अब कौन रह्यौ मुहि धीर धरावनो, को लिखिहै रस की पतियाँ
'सब कारज धीरज में निबहै, निबहै नहिं धीर बिना छतियाँ
फलिहै कुसमै नहिं, कोटि करो, तरु, केतिक नीर सिंचौ रतियाँ,
जगमोहन वे सपने सी भईं, सु, गईं तुअ नेह भरी बतियाँ

प्रिया के बहते आँसू स्मरण आते हैं—

यही तेरे आँसू, गिरत धरनी जर्जर कना
कहौं बातैं कासूँ, बिखर मनु मोती मन धना
भयो भारी तेरो विरह, जिय घेरो घहरिकै
कहै चेतो मेरो अधर तुअ नासा थहरिकै

प्रथम दर्शन के समय प्रिया का प्रकंप याद आता है—और उसकी बेकली बढ़ जाती है—

तन काँपे, लोचन भरे, अँसुआ झलके आय
मनु कदंब फूल्यो अली हेम वल्लरी जाय
हेम वल्लरी जाय कनक कदली लपटानी
अति गभीर इक कूप निकट जेहि व्यालि बिलानी
निकसि जुगल गिरि तीर जासु पंकज जुग थापे
खेलत खंजन मीन तरल पिय लखि तन काँपे

वर्षा में प्रवासी विरही की व्यथा की कथा और करुण हो जाती है—

श्यामल श्याम लखात चहूँ, नभ मंडल में बग पाँति सुहाई
दूब हरी हरी, गैलैं गईं मुदि, हा हा हरी सुधिहू बिसराई

त्यों जगमोहन पीरी परी, बिरहानल ने सब देह जगाई
तेरे बिना घन घेरि घटा, तरवार लै बिज्जु अटा चढ़ि धाई

और वह प्रार्थना करता है—

को रन पावस जीति सकै, लहकारै जबै इत मोरन सोरन
सोरन सों पपिहा अधरात उठै, जिय पीर अधीर करोरन
रोरन मेघ चमंकत बिज्जु, गसे अब नैन सनेह के डोरन
डोर न प्रेम की आय गहो, जगमोहन श्याम करो दृग कोरन

जगमोहन सिंह के प्रेम काव्य में निश्छलता एवं अकृत्रिमता है, अतः वह सहज ही संवेद्य है।

(२) श्याम-स्वप्न के गद्य खण्डों में जहाँ प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र हैं, वहाँ पद्य में भी कतिपय सुन्दर चित्र हैं। इनमें विंध्याटवी और पावस के चित्र परम रमणीय हैं। पावस के एकाध चित्र उदाहरणार्थ पर्याप्त होंगे—

जलनिधि जल गहि जलधर धारन धरनीधर धर आए
पटल पयोधर नवल सुहावन इत उत नभ घन छाए
फरफरात चंचल चपला मनु घन अवली दृग राजै
गरजत घूमि भूमि छ्वै बादर धूम धूसरे साजै

× × ×

वारिद वृन्द बीच बिजुरी बलि चंचल चारु सुहानी
छिन उघरत, छिपि जात छिनक छिन, छटा छकित सुखदानी

(३) ठाकुर जगमोहन सिंह ने अनेक काव्यों का पद्यानुवाद किया है। इनके सम्बन्ध में श्री व्रजरत्नदास जी का यह अभिमत है—

"अनुवाद करने में यह इतने कुशल थे कि इनके अनुवादों में मौलिक सा आनन्द आता है।"

अनुवाद की सफलता का यही रहस्यमय प्रमाण है।

(४) ठाकुर साहब समस्या पूर्तियाँ भी अच्छी करते थे। रत्नाकर जी 'समस्यापूर्ति' नामक एक पत्रिका के सम्पादक थे। इसमें ठाकुर साहब की भी पूर्तियाँ प्रकाशित हुआ करती थीं।

५

पं० अंबिकादत्त व्यास

(१)

जीवन-वृत्त

पं० अंबिकादत्त जी व्यास का जन्म चैत्र शुक्ल ८ सं० १९१५ को जयपुर में हुआ था। जब यह एक वर्ष के थे, तभी माता पिता के साथ काशी चले आए। इनके पिता पं० दुर्गादत्त जी संस्कृत और हिंदी के अच्छे विद्वान थे और 'दत्त' नाम से कविताएँ भी लिखा करते थे। तत्कालीन काव्य संग्रहों में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। इनके घर की स्त्रियाँ भी शिक्षिता थीं। अतः लड़कपन ही से व्यास जी को संस्कृत का अभ्यास कराया गया। गोस्वामी जीवनलाल जी के यहाँ यह लड़कपन से ही आते जाते थे। यहाँ और भी बहुत से कवि आया जाया करते थे, अतः बहुत कम उम्र में इन्हें कविता से शौक हो गया। बचपन से ही इन्होंने कथा कहना भी सीखा और यह 'व्यास', जो अब उनके नाम का अंग हो गया है, कथा-वाचक का सूचक है। संवत् १९३७ में यह संस्कृत राजकीय पाठशाला से आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। इन्होंने संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त बँगला मराठी तथा गुजराती का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था।

सं० १९३१ में इनकी माता का और १९३७ में इनके पिता का देहांत हुआ। इनके बड़े भाई इनसे रुष्ट रहते थे, अतः यह काशी छोड़ कलकत्ता चले गए, जहाँ यह तीन महीने रहे। संवत् १९४० में इन्होंने मधुबनी, बिहार की संस्कृत पाठशाला का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लिया। इसके बाद इनका जीवन बिहार ही में बीता। यह मधुबनी, मुजफ्फरपूर, भागलपुर, छपरा आदि संस्कृत विद्यालयों में प्रधानाध्यापक रहे। सं० १९५५ वि० में यह पटना कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर हुए। पर अक्सर रुग्ण रहने लगे थे। अतः एक वर्ष के भीतर ही यह काशी चले आए। यहीं १९ नवंबर १९०० ई० को इनका शरीरांत हुआ।

व्यास जी सनातन धर्मी और परम वैष्णव थे। इन्होंने बिहार में अनेक सभाएँ स्थापित की थीं। यह शास्त्रार्थ करने में परम पटु थे। आर्यसमाजियों से

इन्होंने अनेक बार शास्त्रार्थ किया था और उन्हें हराया था। शास्त्रार्थ के लिए यह दूर दूर तक जाया करते थे।

(२)

साहित्य सेवा

व्यास जी दस बारह वर्ष की ही वय से कविता करने लगे थे। इनकी सरस कविताओं को सुन लोग शंका करते थे कि कविताएँ इनके पिता सुकवि दत्त की हैं, जिन्हें ए पढ़ते हैं। सं० १९२६ वि० में, जब व्यास जी ११ ही वर्ष के थे, एक बार जोधपुर के राजगुरु तुलसीदत्त ओझा काशी आए। वे कवि तथा पहलवान थे। उन्होंने एक समस्या दी थी 'जनि तोरहु नेह को काचो तगा।' व्यास जी इसकी दो पूर्तियाँ लेकर गए। ओझा जी दंग रह गए। उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि ये श्रृंगारी उक्तियाँ इस ग्यारह वर्ष के बालक की हैं। उन्होंने परीक्षार्थ 'मूँदि गईं आँखैं तब लाखैं कौन काम को' समस्या दी और अपने सामने ही पूर्ति करने के लिए कहा। व्यास जी ने वहीं निम्न-लिखित छंद रचकर सुना दिया —

'चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु,
सोहत चहूँघा धूमधाम धन धाम की
फूल फुलवारी फल फैलिके फबे हैं तरु,
छबि छटकीली यह नाहिन अराम की
काया हाड़ चाम की लै, राम की बिसारि सुधि,
जाम की को जानै बात करत हराम की
'अंबादत्त' भाखैं अभिलाखैं क्यों करत झूठ,
मुँदि गईं आँखैं तब लाखैं कौन काम की'

व्यास जी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। ओझा जी ने पुरस्कार में वस्त्र आदि तथा प्रशंसा पत्र दिए।

'चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी' की पूर्ति व्यास जी ने भारतेन्दु के सामने की थी। यह पूर्ति सं० १९२७ के कार्तिक की 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु ने अपनी 'कविता-वर्धिनी सभा' की ओर से इन्हें इस १२ वर्ष की आयु में 'सुकवि' की उपाधि दी थी। इस तरह व्यास जी १२ वर्ष की उम्र में 'सुकवि' हो गए। अपने आशु-कवित्व के लिए व्यास जी अनेक बार पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए थे। इन्हें 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। यह एक घटिका में १०० श्लोक बना लेते थे।

व्यास जी ने अपनी कविताओं में 'अंबादत्त' और 'अंबिकादत्त' दोनों नामों का प्रयोग किया है। कभी कभी 'सुकवि' छाप भी दी है। इन्होंने कुल ७८ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें २०–२२ संस्कृत में हैं, शेष हिन्दी गद्य पद्य में।

नाटक—

(१) ललिता नाटिका—(ब्रजभाषा में) सं० १९३५
(२) गोसंकट—सं० १९१९
(३) कलयुग और घी
(४) मन की उमंग
(५) वेणी संहार—भट्टनारायण की प्रसिद्ध संस्कृत कृति का हिन्दी अनुवाद
(६) देव पुरुष दृश्य
(७) भारत सौभाग्य
(८) मरहट्ट नाटक (अपूर्ण)

विविध गद्य—

(१) चतुरंग चातुरी
(२) ताश कौतुक पचीसी
(३) महाताश कौतुक पचासा
(४) अवतार मीमांसा
(५) धर्म की धूम
(६) मूर्ति पूजा
(७) विभक्ति विलास (व्याकरण)
(८) भाषा ऋजुपाठ
(९) गद्य काव्य मीमांसा
(१०) छन्द प्रबन्ध
(११) सांख्य तरंगिणी
(१२) तर्क संग्रह

कविता—

(१) रसीली कजरी
(२) आनन्द मंजरी
(३) पावस पचासा
(४) सुकवि सतसई—श्रीकृष्ण की बाललीला पर ७०० दोहे।
(५) विहारी विहार—विहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ।

(६) समस्या पूर्ति सर्वस्व

साहित्य सेवा ही के लिए व्यास जी ने सं० १९३९ में 'वैष्णव पत्रिका' निकाली, दो वर्षों के अनन्तर इसका नाम 'पीयूष-प्रवाह' हो गया। यह व्यास जी के जीवन काल में बराबर निकलती रही।

(३)

काव्यालोचन

व्यास जी का साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। पुराने पुस्तकालयों में विहारी विहार ही मिल पता है। इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इनके काव्य के सम्बन्ध में बहुत अधिक कहना सम्भव नहीं; फिर भी कुछ तथ्य रक्खे जा सकते हैं।

(१) शुक्ल जी के इतिहास के अनुसार भारतेन्दु युग में ही व्यास जी ने हिन्दी में अतुकांत लिखने का प्रयोग किया था, किन्तु उन्होंने हिन्दी का ही कोई मात्रिक छन्द लिया था, अतः उन्हें सफलता नहीं मिली थी।

(२) व्यास जी आशु कवि थे और समस्या पूर्तियाँ सरस एवं सत्वर किया करते थे। ये पूर्तियाँ प्रायः कवित्त सवैया छन्दों में हुआ करती थीं। अतः इन पर रीतिकालीन छाप होना सहज है। 'सुन्दरी तिलक' नामक संग्रह में इनके आठ सवैये होली के हैं। सभी एक से एक सरस हैं।

नायिका पिचकारी लिए हुए छिपती छिपाती न जाने किसे सरस, सिक्त और रंगमय करने के लिए चली आ रही है—

धरती धरती डरती पद कों, घुँघुरू नहिं नेकु बजावती हो
झुकी झाँकती भौंह चलावती हो, नकबेसर झूमि झुमावती हो
कवि अंबिकादत्तहि हेरि, चितै, छिपती सी हहा मुसकावती हो
कर में पिचकारी लिए किनकों तुम रंग भिगावन आवती हो

छिप छिपा के जैसे तैसे पहुँची, पर हरि को देखते ही उसकी क्या दशा हुई।

गई आजु हुती ब्रज बाट सखी, सु कहा कहूँ साध धरी की धरी रही
हरि आय अचानक धौं कित सों, म हिं अंक भरी मैं खरी की खरी रही
कवि अंविकादत्त के हाथ परी, भरी झोरी अबीर परी की परी रही
लरकी लरी हार, चुरी कर की करकी, पिचकारी भरी की भरी रही

(३) रसीली कजरी व्यास जी की कविता पुस्तकों में परिगणित है। लगता है भारतेन्दु युगीन अन्य कवियों की भाँति इनका भी ध्यान लोक गीतों की ओर गया था। और भी दूसरे ढंग के लोक गीत—होली, चैती, दादरा,

लावनी आदि भी उन्होंने लिखे थे कि नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता ; पर उन्होंने कजलियाँ लिखी थीं, यह स्पष्ट है ।

(४) विहारी सतसई पर व्यास जी ने 'विहारी विहार' नाम से कुंडलियाँ लगाई थीं । यह उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है । विहारी के एक दोहे पर इनकी कुंडलिया का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

इन दुखिया अँखियान कों सुख सिरजोई नाहिं
देखे बनै न देखते, अनदेखे अकुलाहिं
अनदेखे अकुलाहिं, हाय आँसू बरसावत
नेह भरेहू रूखे है अति जिय तरसावत
'सुकवि' लखतहू पलक कलप सत सरिस सुहाइ न
प्रान जाइ जो तोउ, दोउ दृग को दुख जाइ न

(५) श्री ब्रजरत्नदास जी के अनुसार व्यास जी ने भी, उस काल के अनुरूप, अन्य भारतेंदु युगीन कवियों के समान, अनेक नए विषयों पर फुटकर कविताएँ लिखी थीं, जो तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं । आज इन कविताओं की भी उपलब्धि का कोई साधन नहीं है । व्यास जी की ऐसी एक कविता काशी वर्णन है जो पर्याप्त सुंदर है, इसका कुछ अंश अवलोकनार्थ अवतरित है । यह व्यास जी के निबंध-काव्य का नमूना है ।

बरनि सकै को विश्वनाथ की पुरी सुहावनि
देवन चित तरसावन, मुनिजन हिय हरखावन
दूरहि ते दरसात बिलच्छन वाकी सोभा
चलत चलत लखि ठठकि जात पथिकहु मन लोभा
सीतल लखि कै गंगा तट हर गिरि जनु सोयो
मनहु मेघ को वृंद भूमि तल आय समोयो
अहै मनहु साकेत पुरी जल थल सों ऊँची
कैधौं है बैकुंठपुरी सुखदानि समूची
ऊँचे ऊँचे कलस दूर ही सों अति चमकत
चंद सूर की किरन परैं दूनी दुति दमकत
अमृत घट सिर लिए मनहु गृह देवी ठाढ़ी
जात्रीगन को मंगलमय छबि दीखत बाढ़ी

६

रामकृष्ण वर्मा

(१)

वृत्त

रामकृष्ण वर्मा का जन्म आश्विन कृष्ण सप्तमी, सं० १९१६ को काशी में एक खत्री परिवार में हुआ था। यह १ वर्ष १ महीने के ही हो पाए थे कि इनके पिता का देहान्त हो गया। इनके बड़े भाई राधाकृष्ण उस समय १६ वर्ष के थे। इनके एक भाई जयकृष्ण और थे। इनकी माता ने बड़े आर्थिक कष्ट से अपने बच्चों का लालन पालन किया था।

वर्मा जी ने जयनारायण हाईस्कूल से इंट्रेंस की परीक्षा पास की थी। इसके पश्चात् यह क्वींस कालेज में प्रविष्ट हुए। यहाँ बी० ए० तक पढ़ा, पर परीक्षा में असफल रहे। संस्कृत इनका एक प्रिय विषय था, इसने और इनके घर पर संस्कृत पढ़ाने वाले पं० हरिभट्ट मानेकर ने इन्हें ईसाई होने से बचाया, जो कि जयनारायण स्कूल की बाइबिल शिक्षा का प्रभाव था। अँगरेजी, संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त इन्होंने उर्दू और बँगला भी भलीभाँति सीखी थी। प्रायः इन सभी भाषाओं से इन्होंने बाद में हिंदी में अनुवाद करके प्रकाशित किए थे।

वर्मा जी ट्यूशन करके पढ़ते थे। क्वींस कालेज छोड़ने के अनन्तर यह कुछ दिनों तक हरिश्चन्द्र स्कूल में अध्यापक रहे। शीघ्र ही अध्ययन कार्य छोड़, इन्होंने पुस्तकों की एक दूकान खोल ली, जो अच्छी चली। सन् १८८४ ई० में इन्होंने एक पत्र निकाला और एक प्रेस चलाया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने पत्र का नाम 'भारत जीवन' रखा था। और इस प्रेस का नाम 'भारत जीवन प्रेस' इस भारत जीवन प्रेस ने हिन्दी की अपार सेवा की है। प्राचीन कवियों के सैकड़ों काव्य ग्रन्थ इस प्रेस से प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों का उद्धार करने का पथ-निर्देश रामकृष्ण वर्मा ने किया था।

वर्मा जी बड़े परिश्रमी थे। अपने अध्यवसाय से ही यह इतना बढ़े थे। इनका स्वभाव भी अत्यन्त कोमल साहित्यिक का स्वभाव था। अपनी वृद्धावस्था के दिन बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने इन्हीं के प्रेस में काटे थे। बा० हरिकृष्ण जौहर और उनके भाई श्रीकृष्ण हसरत तथा बा० रामचन्द्र वर्मा का साहित्य-

प्रवेश इन्हींके प्रेस में हुआ था। 'रत्नाकर' इन्हींके प्रयत्न से अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी हुए थे।

मृत्यु के दो-तीन साल पहले से इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। अन्त में यह जलोदर मे पीड़ित हुए और २५ दिसम्बर १९०६ ई० को इनका देहावसान हो गया। अपने पीछे सन्तान के नाम पर यह एक कन्या छोड़ गये थे।

(२)
साहित्य सेवा

रामकृष्ण वर्मा 'बलबीर' अथवा 'बीर' के नाम से कविता लिखते थे। इन्हें कविता का बहुत शौक नहीं था, पर यह सुकवि थे। यह प्रायः समस्या-पूर्तियाँ किया करते थे। उन दिनों गोपाल मन्दिर के गोस्वामी जीवनलाल जी बड़े साहित्य रसिक थे। उन्होंने एक कवि समाज की स्थापना कर रखी थी। इसके अधिवेशन हर पन्द्रहवें दिन हुआ करते थे। वर्मा जी इस कवि समाज में अपनी पूर्तियाँ सुनाया करते थे। ये पूर्तियाँ काशी कवि समाज की समस्या-पूर्तियों के अन्तर्गत प्रकाशित मिल सकती हैं। वर्मा जी की पूर्तियों का कोई स्वतन्त्र संग्रह नहीं है। इनके दो काव्य संग्रह 'बलवीर पचासा' सं० १९५१ एवं 'बिरहा नायिका भेद' सं० १९५७ में प्रकाशित हुए थे। वर्मा जी की गद्य कृतियाँ प्रायः अनुवाद हैं, जिनकी सूची यह है—

नाटक—(१) कृष्णाकुमारी—माइकेल मधुसूदन दत्त कृत बँगला के ऐतिहासिक नाटक का अनुवाद—१८८३ ई०

(२) पद्मावती—राजकिशोर दे रचित बँगला नाटक का अनुवाद १८८८ ई०

(३) वीर नारी—द्वारिकानाथ गांगुली रचित बँगला नाटक का अनुवाद। यह भी ऐतिहासिक नाटक है, सिंधु के राजा दाहिर की पत्नी का जौहर इसमें दिखाया गया है। सन् १८८९ ई०।

उपन्यास—(१) ठग वृत्तांत माला—कर्नल मेडोज़ हेलर की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद, १८८९ ई०। यह सवा सात सौ पृष्ठों की एक रोमांचकारी कृति है।

(२) पुलीस वृतांतमाला—सन् १८९० ई०।

(३) अमला वृत्तांत माला—सन् १८९४ ई०। काजी अजीजुद्दीन की उर्दू पुस्तक 'समरै दियानत' का अनुवाद।

(४) कानिस्टबल वृतांतमाला

(५) संसार दर्पण—उक्त काजी साहब के एक उर्दू उपन्यास का अनुवाद।

(६) अकबर—डा० वान लिंबर्ग ब्राडअर की अँगरेजी पुस्तक का दो भागों में अनुवाद। यह जीवनी नहीं है, उपन्यास है।

(७) हिंदी कथासरित्सागर—संस्कृत के उक्त नाम के ग्रंथ का हिंदी रूपांतर। ग्रंथ के केवल १० भागों का अनुवाद वर्मा जी ने कर पाया था। इसका प्रकाशन सन् १९०४ ई० में प्रारंभ हो गया था। यह बाद में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी द्वारा पूरा होकर भारत जीवन प्रेस से ही प्रकाशित हुआ था।

विविध—(१) ताशकौतुक पचीसी—वर्मा जी ताश के अच्छे खिलाड़ी थे। ताश संबंधी २५ खेलों का वर्णन इन्होंने इस पुस्तक में किया है। यह पुस्तक सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हुई थी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है रामकृष्ण वर्मा का हिंदी के प्रति सब से बड़ा उपकार पुराने ग्रंथों का स्वल्प मूल्य में प्रकाशन है। कुछ ग्रंथों का संपादन इन्होंने स्वयं किया, कुछ का औरों से कराया। डुमराँव निवासी नकछेदी तिवारी 'अजान' ने अनेक ऐसे ग्रंथों का संपादन किया जो भारत जीवन प्रेस से छपे थे। इनके यहाँ से प्रकाशित कुछ प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ ये हैं—(१) रसलीन कृत अंगदर्पण, (२) पद्माकर कृत जगद्विनोद, (३) हृदय राम कृत हनुमन्नाटक, (४) शृङ्गारी सुंदर कृत सुंदर शृङ्गार, (५) कृपाराम कृत हित तरंगिणी, (६) प्रताप साहि कृत व्यंगार्थ कौमुदी, (७) पजनेस की कविताओं का संग्रह 'पजनेश पचासा', फिर परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण 'पजनेश प्रकाश', (८) ठाकुर कवि की कविताओं का संग्रह 'ठाकुर शतक', (९-१०-११) महाकवि देव के 'भाव विलास' 'भवानी विलास' और 'अष्टयाम', (१२-१३) मनियार सिंह कृत 'सुंदर कांड' और 'हनुमत छब्बीसी', (१४) रामसहाय कृत 'राम सतसई', (१५) दूलह कृत 'कविकुलकंठाभरण, (१६) दीन दयाल गिरि कृत अन्योक्ति कल्पद्रुम, (१७) गोविंद कवि कृत कर्णाभरण, (१८) भिखारीदास कृत काव्य निर्णय, (१९) पद्माकर के पौत्र गदाधर भट्ट कृत छंदोमंजरी, (२०) बिहारी सतसई, (२१) वृंद सतसई, (२२) रहीम कृत बरवै नायिका भेद, (२३) बलभद्र कृत 'नखशिख', (२४-२७) पुराने कवियों के नीति और हास्य रस संबंधी मुक्तकों के संग्रह, चार भागों में, 'भड़ौआ संग्रह' नाम से, (अजान द्वारा संपादित), (२८) लछिराम कृत 'राम

चंद्र भूषण', (२९-३२) मनोज मंजरी, चार भाग, (३३) अनुराग लतिका, (३४) गोविंद लहरी, (३५) पावस प्रमोद, (३६) प्रेम तरंग, (३७) अलंकार दर्पण, (३८) दीप प्रकाश, (३९) बोधा कृत इश्क नामा, (४०) हठी कृत श्री राधा सुधा शतक, और (४१) गोविंद गिल्लाभाई कृत 'राधा मुख षोड़शी' इत्यादि। प्राचीन काव्य ग्रंथों की उक्त प्रेस से प्रकाशित यह कोई पूर्ण सूची नहीं है।

(३)

काव्य-समीक्षा

जैसा कि कहा गया है बलवीर जी सुकवि थे, इसमें सन्देह नहीं; पर उनका काव्य मात्रा में अधिक नहीं है। उनके दो ही छोटे छोटे काव्य ग्रंथ 'बलवीर पचासा' और 'बिरहा नायिका भेद' उन्हीं के यहाँ से प्रकाशित हुए थे। उनकी समस्या पूर्तियाँ सुन्दर हुआ करती थीं। 'भारतेन्दु मण्डल' में श्री ब्रजरत्नदास जी ने दो समस्यापूर्तियाँ उद्धृत की हैं—

(१)

देखु री लाल बेहाल परयो, तकि तेरी सु भौंह की तीखी मरोर है
तू गुरु मान की आन मैं 'बीर', अनाहक ही चित कीनो कठोर है
सोर अहै चहुँ ओर यहै, वह जो घनस्याम पै तेरोई सोर है
है अरविंद पै तेरो मलिंद री, 'है ब्रज चंद पै तेरो चकोर है।'

(२)

घर बार बिसारि दियो सिगरौ, गुरु लोगन की नहिं भीति करी
सखियान की सीख सुनी ना कछू, कुछ न्यारी ही लोक तें रीति करी
समझावति ही बहु भाँति हमैं, सब भूलि कै हा परतीति करी
हमही यह लाल अनीति करी, तुम ते बिनु जाने जो प्रीति करी

'बलबीर पचासा' में इनके ५० मुक्तक छंद—संभवतः कवित्त सवैये, वह भी समस्यापूर्ति वाले—संग्रहीत होंगे, ऐसा मेरा अनुमान है। ग्रंथ मैंने देखा नहीं। 'बिरहा नायिका भेद' मेरे पास है। इसमें कुल ५९ छन्द हैं। प्रारम्भ में दो पृष्ठों की अच्छी भूमिका भी है, जिसमें बिरहा छन्द पर विचार किया गया है। यह २६ वर्णों का वर्णिक छन्द बताया गया है, जिसमें १६, १० वर्णों पर विराम है। इनकी भाषा ठेठ भोजपुरी है। अहीर गड़रियों में साक्षरता फैलाने के उद्देश से ये बिरहे रचे गए थे।

'बलबीर' जी के बिरहे अत्यन्त सरस हैं, पदावली सानुप्रास है। अधिकांश बिरहे पूर्ववर्ती कवियों के भावों पर लिखे गये हैं। उदाहरणार्थ कुछ बिरहे यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१)

गोरा गोरा रँग हौ, भभुतवा रमौले मानो
सेली लाल ललिया लकीर
रूपवा क भिखिया पलकिया में माँगै
बलबिरवा क अँखिया फकीर

(२)

झप झप झपकैलीं सोई मानो गोरिया री
झुकि झुकि करैंली सलाम
(तोरे) गोड़वा क धुरवा बरौनियाँ से पोछैं
बलबिरवा क अँखिया गुलाम

(३)

नायिका

रुपवा के भरवा त गोरी से पयरवा रे
सोझवा धरल नहीं जाय
लचि लचि जाला दैया गोरी की कमरिया
जोबनवाँ के बोझवा दबाय

(४)

विश्रब्धनवोढ़ा

धुकुर पुकुर सब अपनै छुटल अब
रसे रसे जियरा थिरान
सेजिया के धोरे गोरी जाके देवे लागल
बलबिरवा के हथवा में पान

(५)

मध्या

लजिया क बतिया मैं कैसे कहौं ए भौजी जे
मोरे बूते कहलो न जाय
परु के फगुनवाँ की सिअली चोलियवा में
असों न जोबनवाँ समाय

इन बिरहों में शृङ्गारिकता अधिक है। 'जोबन' आदि शब्द भी आज की सुरुचि के प्रतिकूल पड़ते हैं। रामकृष्ण जी वर्मा, 'बलबीर' में सब कुछ पुराना है, बस भाषा और छन्द नए हैं।

७

श्री राधाचरण गोस्वामी

(१)

जीवन-रेखा

श्री राधाचरण जी का जन्म फाल्गुन बदी ५, सं० १९१८, (तदनुसार २५ फरवरी, १८५९ ई०) को वृंदावन में गोस्वामी गल्लू जी उपनाम गुणमंजरी-दास के घर में हुआ इनके पिताजी स्वयं सुकवि थे। यह गोस्वामी वंश गौड़ ब्राह्मण है। सं० १९२३ में यह मातृहीन हो गए। अतः इन्हें अपने पिताजी के साथ प्रायः बाहर जाना पड़ता था। सं० १९३० में यह फर्रुखाबाद में संस्कृत पढ़ते थे। यहाँ इन्होंने अँगरेजी भी पढ़नी शुरू की। पर शिष्यों ने इस बात को उचित नहीं समझा कि उनके गुरु का बेटा और भावी गुरु म्लेच्छ भाषा पढ़े, अतः इन्हें स्कूल से नाम कटा लेना पड़ा। बाद में गोस्वामी जी ने घर पर ही छिपाकर हिंदी अंग्रेजी शिक्षक जैसी किसी पुस्तक से अपने आप अँगरेजी पढ़ी।

सं० १९३० में हरिश्चंद्र चंद्रिका प्रकाशित होने लगी थी। राधाचरण जी का अनुराग हिंदी और हरिश्चंद्र की ओर इसी पत्रिका से हुआ। हिंदी प्रचार के लिए इन्होंने 'कवि कुल कौमुदी' नामक एक संस्था स्थापित की थी। राधा चरण जी भारतेंदु को साहित्य जगत् में गुरु तुल्य समझते थे। एक बार यह काशी में अपने पिता जी के साथ आए थे। तब तक भारतेंदु अपनी स्वतंत्र विचारधारा के लिए बदनाम हो चुके थे। अतः अपने पिता के सो जाने पर राधाचरण जी रात में छिपकर भारतेंदु से मिलने गए थे। ऐसी थी भारतेंदु दर्शन की उनकी उत्कट लालसा।

राधाचरण जी उदार वैष्णव थे। ये ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। सन् १८८३ ई० में हिंदी के पक्ष में शिक्षा कमीशन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने २१ हजार हस्ताक्षर कराए थे।

कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर यह सन् १८८६ ई० में कलकत्ता कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। बहुत दिनों तक यह वृंदावन म्यूनिसिपैलिटी के सदस्य रहे।

सं० १९८१ में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन देहरादून में हुआ था। गोस्वामी जी इसके सभापति हुए थे।

गोस्वामी जी ब्रजभाषा के दिग्गज पण्डित, प्रेमी और सुकवि थे। आपका निधन ६४ वर्ष की वय में, पौष बदी १२, सं० १९८२ वि० को वृन्दावन में हुआ। आपके पौत्र श्री गो० अद्वैतचरण जी ने अपने पितामह की पुण्य स्मृति में 'श्री राधाचरण पुस्तकालय, वृन्दावन' की स्थापना की है, जिसका उद्घाटन २६ मार्च १९४६ ई० को श्री वियोगीहरि जी ने किया था।

(२)
साहित्य-सेवा

सं० १९३८ की वसन्त पंचमी को लाहौर से 'भारतेन्दु' नामक पत्र निकला था। यह किसी प्रकार एक साल चला, फिर बन्द हो गया। राधाचरण जी भारतेन्दु के भक्त थे, वे इस पत्र को चैत्र पूर्णिमा सं० १९४० से अपने सम्पादन तथा प्रबन्ध में वृन्दावन से निकालने लगे। यहाँ भी यह श्रावण पूर्णिमा १९४३ तक चला, फिर धनाभाव के कारण बन्द हो गया। सं० १९४७ में यह फिर निकला, पर पाँच अंक के ही बाद सदा के लिए सो गया। गोस्वामी जी ने सं०१९६८ में 'श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्रिका' नामक पत्रिका निकाली थी, यह भी शीघ्र समाप्त हो गई। भारतेन्दु में राधाचरण जी ही के लेख अधिकांश में रहा करते थे।

गोस्वामी जी ने लगभग तीन दर्जन गद्य-पद्य के ग्रंथ लिखे, जिनमें नाटक, कविता, उपन्यास आदि सभी हैं। इनकी सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

नाटक—

१. सरोजिनी—(अनुवाद)
२. श्रीदामा—(सुदामा का दारिद्र्य मोचन)
३. सती चंद्रावली—(दुखांत नाटक, मुस्लिम अत्याचार की करुण कहानी)
४. अमर सिंह राठौर—(ऐतिहासिक)
५. तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण—प्रहसन
६. भंग तरंग—प्रहसन
७. बूढ़े मुँह मुँहासे—प्रहसन

उपन्यास और कहानी—

(१) जावित्री
(२) विधवा विपत्ति
(३) सौदामिनी

(४) विंदो चतुरा (अनूदित कहानी)

विविध गद्य ग्रंथ—

(१) विदेश यात्रा विचार
(२) विधवा विवाह विवरण
(३) देशोपकारी
(४) ब्रजेंद्र विजय
(५) शिक्षा सार
(६) हिंदी बँगला वर्ण शिक्षा
(७) पतितपावन श्री गौरांग
(८) शिक्षामृत
(९) श्री वैष्णव बोधिनी

कविता—

(१) नव भक्तमाल
(२) दामिनी दूतिका
(३) शिशिर सुषमा
(४) इश्क चमन—प्रेम संबंधी दोहे
(५) भ्रमर गीत
(६) निपट नादान बारहमासी
(७) प्रेम बगीची—१७ पद
(८) भारत संगीत—१९ पद
(९) विधवा विलाप—५० दोहे
(१०) भू-भार-हरणार्थ-प्रार्थना—१२ छप्पय
(११) श्री गोपिका गीतम् (संस्कृत में)
(१२) नापित स्तोत्र
(१३) रेलवे स्तोत्र
(१४) यमलोक की यात्रा

} परिहास पूर्ण रचनाए

(३)

काव्य-समीक्षा

(१) गोस्वामी जी व्रजभाषा के परम प्रेमी थे । व्रजभाषा के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

> ब्रजभाषा भाषा ललित, कलित कृष्ण की केलि
> या ब्रज मंडल में उटी, ताकी घर घर बेलि १

ह्यीं से चहुँ दिसि बिस्तरी पूरब पच्छिम देस
उत्तर दक्षिण लौं गई ताकी छटा असेस २
सूर सूर, तुलसी ससी, उडगन केशवदास
देव, बिहारी, दयानिधि, पद्माकर, हरिदास ३
श्री हरिवंश, हरिप्रिय, आनँदघन, हरिचन्द
ललित किशोरी माधुरी, ब्रजवासी अरु वृन्द ४
इन कविजन कविता करी, कलि उद्धारन हेत
कृष्ण कृपा भव-सिंधु के उद्धारन हित सेत ५

उनके अनुसार ब्रजभाषा स्वर्ग द्वार की सीढ़ा है—और है भी यही बात। ब्रजभाषा में जो भक्ति का साहित्य है, अन्यत्र कहाँ है? खड़ी बोली का युग तो भक्ति के प्रतिकूल ही है।

जब खड़ी बोली और ब्रजभाषा का हिंदी काव्य के सिंहासन के लिए संघर्ष हुआ था, तब ब्रजभाषा के प्रेमियों की यह धारणा थी कि खड़ी बोली में केवल उर्दू के छन्द व्यवहृत हो सकते हैं। उन्हें आशंका थी कि गद्य की भाँति पद्य भी उर्दू न हो जाय। इसी विचारधारा वाले राधाचरण जी भी थे। इस संबंध में उन्होंने लिखा था—

"आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आंदोलन आरंभ किया है,······हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली की कविता की चेष्टा की जाय तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाय, इधर गद्य में सरकारीपुस्तकों में फारसी शब्द घुस ही पड़े उधर पद्य में भी फारसी भरी गई तो सहज ही झगड़ा निबटा।"

(२) गोस्वामी जी हिंदी के कट्टर हिमायती थे। सन् १८८३ ई० में हिंदी के पक्ष में २१ हजार हस्ताक्षर कराकर शिक्षा कमीशन के समक्ष इन्होंने प्रस्तुत किया था। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। हिंदी के संबंध में यह कहते हैं—

कवि, पंडित, परिजन प्रभृति, छात्र, रसिक रिझवार
राजा प्रजा सुप्रेम बस करि हिंदी को प्यार १
हिंदी हिंदुस्तान की भाषा विशद विशाल
जन्म लेत सबसों कहैं 'माँ! माँ! दा! दा!' बाल २
घर की, औघट घाट को, खेत प्रेत समसान
हाट बाट दरबार की, भाषा ये ही जान ३
पितु ऋण सोध सकें सहज, कठिन मातु ऋण जान
ताही के उद्धार हित, यज्ञ रची समहान ४

जासे जो कुछ बन सके, माता पद अरविंद
भक्ति-भाव से पूजिए, रहहु सदा आनंद ५

(३) गोस्वामी जी भारतेंदु के अनन्य भक्त थे। हिंदी के संबंध में इनकी इस प्रकार प्रशस्ति इन्होंने की है—

कविता कामिनि भाल में, हिंदी विंदी रूप
प्रगट अग्रवन में भई, ब्रज के निकट अनूप १
लाल करी जिहि अंकुरित, शिवप्रसाद द्वै पात
कुसुमित भारत इंदु ने रचना रचि विख्यात २†

'नव भक्तमाल' में भारतेंदु के संबंध में यह छप्पय इन्होंने लिखा है—

बनिज वंस अवतंस धैर्य धीरज वपु धारी
चौंसठ कला प्रवीन प्रेम मारग प्रतिपारी
विद्या विनय विशिष्ट शिष्ट समुदाय सभाजित
कविता कल कमनीय कृष्ण लीला जग प्लावित
कई लच्छ बानी, भगतमाल उत्तरारध करन
आदि अन्त सोभित भए हरिश्चंद्र प्रातः स्मरन

(४) गोस्वामी जी भारतेंदु युगीन अन्य कवियों के ही समान अत्यंत भारतभक्त थे, यद्यपि राजभक्ति का पूर्ण अवसान नहीं हुआ था। इन्होंने अपनी रचनाओं में शासन की कटु आलोचना की है, देश-दुर्दशा का अंकन किया है और स्वदेश की प्रशंसा की है। उस समय भारतीयता पर पश्चिमी आधुनिकता ने धावा बोल दिया था। लगता था भारतीय संस्कृति की नाव डूब जायगी। इसका चित्रण लावनी के इस खंड में देखिए—

मैं हाय हाय दै धाय पुकारौं कोई
भारत की डूबी नाव उबारो कोई
उड़ गए वेद के बादवान अति भारे
ऋषिजन रस्सा नहिं रहे खैंचनेहारे
यामैं चिंतामणि सदृश रत्न की ढेरी
यामैं अमृत सम औषधीन की फेरी
बह चली सकल यूरोप, हाय मति भोई
भारत की डूबी नाव उबारो कोई

---

† अग्रवन = आगरा; लाल = लल्लू जी लाल, प्रेम सागर के रचयिता; शिव प्रसाद = राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद; भारत-इंदु = भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र।

८

महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी

(१)

इतिवृत्त

सुधाकर जी का जन्म सं० १९१७ वि०, चैत सुदी ४, (२६ मार्च, १८६० ई०) को काशी में हुआ। इनके पितृका द्वार पर बैठे हुए थे, डाकिया 'सुधाकर' पत्र लेकर आया, इसी समय भीतर से पुत्रोत्पत्ति का समाचार आया। उस दिन सोमवार भी था। अतः लड़के का नाम सुधाकर रक्खा गया। नौ महीने के ही यह हुए थे कि इनकी माता दिवंगत हो गईं और इनका लालन पालन इनकी दादी ने किया।

इन्होंने ८ वर्ष की वय में शिक्षा प्राप्त करनी प्रारम्भ की। पर इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। इन्होंने ज्योतिष के साथ गणित पढ़ी और योग्यता के कारण, अपने अध्यापकों का, आशीर्वाद पाया।

सुधाकर जी १८८३ ई० में संस्कृत कालेज के पुस्तकालयाध्यक्ष नियत हुए। सन् १८८९ ई० में गणित के अध्यापक। पं० बाबूदेव शास्त्री के पेंशन लेने पर यह उक्त पद पर नियुक्त हुए। इसके दो वर्ष पहले १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की जयन्ती के अवसर पर इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि मिल चुकी थी।

सुधाकर जी भारतेन्दु के मित्रों में से थे। एक बार दोनों व्यक्ति राजघाट का पुल देखने गए थे। उस समय यह पुल बन रहा था। लौटने पर सुधाकर जी ने यह दोहा सुनाया—

राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन की ढेर
आज गए कल देखिके, आजहिं लौटे फेर

'कुलीन' और 'कल' के विचित्र प्रयोगों पर रीझकर भारतेन्दु ने इन्हें पुरस्कृत भी किया था।

सुधाकर जी का देहावसान, ५१ वर्ष की वय में, सन् १९१० ई० में हुआ।

(२)
साहित्य सेवा

सुधाकर जी का सम्बन्ध नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रारम्भ ही से रहा। सन् १८९९ ई० से १९०२ तक ये उसके उपसभापति और तदनन्तर निज मृत्यु तक उसके सभापति रहे। १८९८ में कचहरी में में नागरी लिपि के प्रवेश के लिए जो प्रतिनिधि-मंडल छोटे लाट से मिला था, उसमें सुधाकर जी भी गए थे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के यह एक वर्ष तक सम्पादक रहे थे। हिंदी शब्द सागर, वैज्ञानिक कोष तथा हिंदी व्याकरण की योजना समितियों के यह सदस्य थे।

सुधारक जी ने संस्कृत में लगभग तीस पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से अधिकांश गणित और ज्योतिष की हैं। इनकी हिंदी की पुस्तकें भी प्रचुर संख्या में हैं, जिनकी सूची निम्नलिखित है—

गणित के ग्रन्थ—

(१) चलन कलन
(२) चलराशि कलन
(३) समीकरण मीमांसा
(४) गति विद्या
(५) ग्रहणकरण

साहित्य ग्रंथ—

(१) भाषा बोधक, दो भाग।
(२) हिंदी भाषा का व्याकरण।
(३) तुलसी कृत विनय पत्रिका का संस्कृत में अनुवाद।
(४) तुलसी कृत रामचरित मानस के बालकाण्ड का संस्कृत अनुवाद।
(५) मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत के प्रायः तृतीयांश का 'सुधाकर चन्द्रिका' नाम से संपादन और बंगाल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशन।
(६) दादूदयाल की रचनाओं का संपादन और नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशन।
(७) राम कहानी—दो भागों में—सरलातिसरल हिन्दी गद्य में राम कथा। प्रथम भाग में बालकांड तक की कथा है।
(८) लोकोक्ति रस कौमुदी—जयपुर के राय शिवदास के लोकोक्ति अलंकार से पूर्ण 'लोक–उक्ति–रस–युक्ति' नामक रस ग्रंथ का संपादन। यह

ग्रंथ १८९० ई० में भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित हुआ था। इसकी रचनाएँ बड़ी सरस हैं।

काव्य—सुधाकर जी संस्कृत और हिंदी दोनों में कविता करते थे। दोनों में बड़ी त्वरा से समस्या पूर्ति भी करते थे। पर गणित में व्यस्त रहने के कारण काव्य के लिए इनके पास अवकाश कम था। तुलसी सतसई के दोहों पर इन्होंने तुलसी सुधाकर नाम से कुंडलियाँ जोड़ी थीं। 'माधव पंचक' और 'राधाकृष्ण दानलीला' इनके अन्य काव्य हैं। राम कहानी प्रथम खंड में कुल २९ कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी के अंत में एक दोहा अवश्य है। अंतिम कहानी के अंत में तो चार दोहे हैं। इनकी हिन्दी कविताओं का कोई संकलन नहीं हुआ है।

(३)

काव्यालोचन

(१) सुधाकर जी पंडित आदमी थे, पर इनकी भाषा अत्यंत सरल है। यह सदैव सरल हिंदी के प्रेमी रहे। भाषा के संबंध में उनका यह अभिमत था—

> अनुचित है या उचित यह, यह समझत नहिं कोय
> घर घर जो बोलत फिरैं भाषा कहिए सोय

(२) सुधाकर जी को विक्टोरिया की हीरक जयंती पर 'महामहोपाध्याय' की पदवी मिली थी। अतः उनकी राजभक्ति में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता, जैसा कि भारतेन्दु के संबंध में बहुत लोगों को था। अँगरेजी राज की प्रशंसा करते हुए यह लिखते हैं—

> एहि सुराज महँ एक रस, पीअत बकरी बाघ
> छन महँ दौरत बीजुरी, सागरहूँ को लाँघ ?

अँगरेजी न्याय ने सबको समान कर दिया है।

> छपि छपि के परकास भे लुप्त रहे जे ग्रंथ
> पढ़ि पढ़ि के पंडित भए, बने नए बहु पंथ २

विद्या का प्रचार बढ़ गया है।

> आगि पानि दोऊ मिले, जान चलावत जान
> बिना जान सब जन लिए, राजत लखहु सुजान ३

रेलगाड़ी चल गई है।

> अरनी की करनी गई, चकमक चकनाचूर
> घर घर गंधक गंध में, आगि रहत भरपूर ४

दियासलाई अस्तित्व में आ गई है।

ये सब अँगरेजी हुकूमत की नियामतें हैं। सुधाकर जी इतना न सोच सके कि ए सब अँगरेजी राज्य की बरकतें नहीं थीं; समय की बरकतें थीं।

(३) इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें देशभक्ति नहीं थी। भारतेन्दु युगीन अन्य कवियों के समान आप भी देशभक्त-राजभक्त थे। भारत दुर्दशा के कारण पर विचार करते हुए आप लिखते हैं—

बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर
भारत को गारत किये मतवाले, बरजोर

(४) सुधाकर जी ने नए युग के उपकरणों को लेकर नीति के दोहे लिखे हैं—

काज पड़े सबही बड़ा, बिना काज सब छोट
पाई हेत भँजावते रुपया मोहर लोट ॥ १
गुन लखि सब कोउ आदरै, गारी धक्का खाय
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु हे भाय ॥ २
देखत देखत रात दिन, गुनिजन को नहिं मान
रेल छाँड़ि अब चहत हैं, उड़न लोग असमान ॥ ३
(अब तो उड़ने भी लगे हैं)
अपनी राह न छाड़िये, जो चाहहु कुसलात
बड़ी प्रबल रेलहु गिरत, और राह में जात ॥ ४
समरथ चाहै सो करै, बड़ो खरो, लघु खोट
नोहर मोहर से बढी, लघु कागज की लोट ॥ ५

(५) सुधाकर जी भक्त भी थे। इसीलिए उन्होंने 'तुलसी-सुधाकर' लिखा, 'राम कहानी' लिखी और रामचरित सम्बन्धी कुछ पद भी लिखे सीता ने राम से कुछ पद कहे हैं। मेरे देखने में तीन पद आए, जो अत्यन्त सरस एवं सरल हैं।

(१) पिया हो, कसकत कुस पग बीच
लखन लाज, सिय पिय सन बोली, हरुए आइ नगीच
(२) पिया, जब देखी मैं फुलवरियाँ
अस मन भयो धाइ गर लागौं, त्यागि सकल कुल गलियाँ
(३) पिया हो, मन की मन ही माहिं रही
तुव सन निज कर केस सँवारन, लाजन नाहिं कही

९

राधाकृष्णदास

(१)

इतिवृत्त

राधाकृष्णदास जी भारतेंदु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। यह उनसे उम्रमें १५ वर्ष छोटे थे। इनका जन्म संवत् १९२२ की श्रावण पूर्णिमा (७ अगस्त, १८६५ ई०) को काशी में हुआ था। यह एक वर्ष के भी नहीं हुए थे कि इनके पिता श्री कल्याणदास जी का देहान्त हो गया। अतः इनकी देख भाल स्वयं भारतेंदु ने की थी इनका स्वास्थ्य बचपन से ही ठीक नहीं था, अतः ठीक से पढ़ाई लिखाई नहीं हो पाई। इन पर भारतेंदु की छत्र छाया थी अतः ये साहित्य की ओर प्रवृत्त हुए; साथ ही भारतेन्दु जी के छोटे भाई दुनियादार श्री गोकुचन्द्र जी की भी निगाह इनपर थी, अतः यह व्यवसाय-बुद्धिवाले भी हुए। यह प्रायः इमारतें बनवाने का ठीका लिया करते थे।

राधकृष्णदास जी उन व्यक्तियों में हैं, जिन्हें नागरी प्रचारिणी सभा काशी के उन्नयन का श्रेय दिया जा सकता है। सभा की स्थापना सन् १८९३ ई० में हुई थी। दूसरे वर्ष ये सभा के सभापति चुने गए थे। आपने जीवन पर्यंत सभा की सेवा की। सन् १८९५ ई० में भारत सरकार ने रोमन लिपि प्रचलित करने का विचार किया। आपने उस समय एक पुस्तिका लिखी, जिसमें उर्दू लिपि के दोष, रोमन की अपूर्णता और हिंदी के गुणों को स्पष्ट किया। अदालतों में नागरी प्रवेश के लिए जो आंदोलन मालवीय जी महाराज की अध्यक्षता में हो रहा था, राधाकृष्णदास जी का उसमें बहुत बड़ा योग था। 'आनन्द बधाई' नामक कविता में 'प्रेमघन' जी ने राधाकृष्णदास जी का इस कार्य के लिए बड़े प्रेम से स्मरण किया है—

हे प्रिय राधाकृष्णदास ! विश्वास न ऐसो
रह्यो, तिहारे साहस तें देख्यो हम जैसो

हिन्दी हस्त-लिखित ग्रन्थों की खोज का कार्य भी आपके ही समय में शुरू हुआ था। खोज की सन् १९०० ई० वाली पहली रिपोर्ट आपने हिन्दी में लिखी थी, जिसका अंग्रेजी• अनुवाद बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने किया था।

आपके ही समय में बाबू गदाधर सिंह ने अपना बहुत बड़ा आर्य भाषा पुस्तकालय सभा को दे दिया था और अपनी सम्पत्ति की सभा के नाम वसीयत कर दी थी। इसके लिए राधाकृष्णदास जी को बाद में काफी कष्ट उठाना पड़ा था। सन् १९०० ई० में राधाकृष्णदास एवं बाबू श्यामसुन्दरदास जी के उद्योग से 'सरस्वती' पत्रिका इंडियन प्रेस से निकली, जिसके प्रारम्भ में ५ सम्पादक थे, जिनमें यह दोनों भी थे। एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के लिए भी प्राचीन पुस्तकों की खोज में इन्होंने बराबर सहायता की थी।

४२ वर्ष की वय में, २ अप्रैल सन् १९०७ ई० को, लकवे की बीमारी से इनका देहान्त काशी ही में हुआ।

(२)

कृतित्व

बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने राधाकृष्णदास जी की समस्त रचनाओं के संकलन एवं प्रकाशन की एक योजना बनाई थी। इसमें दो खण्ड होनेवाले थे। इसका प्रथम खण्ड जिसमें कविता, लेख, जीवन चरित और नाटक हैं, प्रकाशित भी हुआ; पर द्वितीय खण्ड जिसमें इनका जीवन चरित, उपन्यास और आख्यायिकाएँ रहनेवाली थीं, प्रकाशित नहीं हो सका। राधाकृष्णदास ग्रन्थावली के अनुसार इनका समस्त कृतित्व इस प्रकार है—

(क) कविता— पृ० १–६८

(१) मेकडानेल पुष्पांजलि
(२) विजयिनी विलाप
(३) पृथ्वीराज प्रयाण
(४) भारत बारहमासा
(५) जुबिली
(६) देशदशा
(७) छप्पन की विदाई, नए वर्ष की बधाई
(८) राम जानकी
(९) प्रताप विसर्जन
(१०) रहिमन विलास
(११) विनय
(१२) फुटकर कविता
(१३) सुनीति

अन्य ग्रंथ जो ग्रंथावली रूप में नहीं प्रकाशित हो सके, उनकी सूची यह है—

उपन्यास—

(१) निस्सहाय हिंदू (मौलिक)
(२) रामेश्वर का अदृष्ट
(३) स्वर्णलता
(४) दुर्गेश नंदिनी

(२)–(४) बँगला से अनूदित

संपादित ग्रंथ—

(१) सूरसागर—वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से प्रकाशित
(२) सूदनकृत 'सुजान चरित्र'
(३) ध्रुवदासकृत 'भक्त नामावली'
(४) नंददास कृत 'रास पंचाध्यायी'
(५) श्रीधर कृत 'जंगनामा'
(६) रामचरित मानस

अनूदित आख्यायिकाएँ—लैम्ब कृत 'शेक्सपियर की आख्यायिकाओं' (Tales from Shakespeare) में से निम्नलिखित चार का हिंदी अनुवाद—

(१) सिंबेलिन
(२) एथंसवासी टाइमन
(३) पेरिक्लिस
(४) कौतुकमय मिलन

ये चारों आख्यायिकाएँ सरस्वती में प्रकाशित हुई थीं।

(३)

काव्य-समीक्षा

(१) राधाकृष्णदास जी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित कृष्णभक्त थे। कृष्णभक्ति सम्बन्धी उनकी कुछ कविताएँ उपलब्ध हैं। इन कविताओं में राधा सम्बन्धी तीन पद हैं—

(क) हमरो चौथ चंदा का करिहै
श्री वृजचंद चंद मुख प्रेमी, औरन सों का डरिहै
कुल बोरिन सब कहत गाँव में, और नाम का धरिहै
'दास' कलंकहु हम प्रेमिन के ढिग आवत थरहरिहै

(ख) हौं बलि जाउँ मानिनी छबि पर
बैठी भौंह चढ़ाय रिस भरी, गोल कपोलनि कर धर
नैन बंद, अलकावलि छूटी, अंचल पट खसक्यो सर
लाल मनावत मानहिं रहि गए, 'धरिके प्यारी के पग पै कर
विह्वल देखि प्रान प्रीतम को, मिली मान तजि प्यारे के गर
बरनि सके या छबिहिं 'दास' जो, जग में ऐसो नाहिन कोउ नर

(ग) लाड़िली ऐसी मति मोहिं दीजै
चरन छोड़ि नहिं जाउँ अनत कहुँ, सरन आपनी दीजै
नित उठि दरस करूँ पिय प्यारी, हृदय-पखान पसीजै
इतनी अरज 'दास' की सुनिए, निज जन कृपा करीजै

ये तीनों पद अत्यन्त सरस हैं। इनमें सहज प्रवाह है।

राधाकृष्णदास जी का एक पद चित्रकूट स्थित राम जानकी सम्बन्धी भी है—

'कहो पिय साँचे काके बैन ?
तुम भाख्यो घर रहो जहाँ है सबही विधि सुख चैन।'

इसमें चित्रकूट के सुखों की चर्चा है। पद मौलिक, सरस, सहज एवं सुन्दर है।

(२) रीतिकालीन परम्परा के नाम पर राधाकृष्णदास जी के दो कवित्त और कतिपय दोहे हैं—पर इन पर भी भक्ति की ही छाप है, शृङ्गार की नहीं। एक कवित्त में राधाकृष्ण को हिंडोले में झूलते हुए दिखाया गया है—

झीनी झीनी बूँदनि परति बड़ी सोभा अति
चमकि चमकि बिज्जु जिय डरपावै है
लाल मखमली बीर बहू भूमि डोलैं मानो
बूँद अनुराग नेह मेह बरसावै है
भरे अनुराग बैठे प्यारे प्यारी झूले माहिं
सखीजन गावत बजावत झुलावै हैं
'दास' देखि सोभा यह भूलि जात दुःख सबै
प्यारी जू डरति प्यारो अंग लपटावै है

दूसरे कवित्त में राधा के मुख-चंद्र की नभ-चंद्र से तुलना की गई है—

जनम लियो है ब्रज प्रेम सुधा सागर, वा
बापुरो मयंक प्रगट्यो है जल खारी को
घटत बढ़त तेजहीन तेजमान होत
बाढ़ै दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को
वह सकलंक 'दास' दुखद चकोर, यह
मेटत कलंक भव, पोषत विहारी को
घन में छिपत, यह घनस्याम संग सदा
मंद करै चंदहिं अमंद दुति प्यारी को

ये दोनों कवित्त ब्रज-भाषा के अच्छे से अच्छे कवित्त लिखने वालों के कवित्तों के साथ तुलना में रक्खे जा सकते हैं।

इनके कुछ सरस दोहे भी देखिए—

लागे पै मानत न कछु, करहु जु लाख उपाय
इत उत चितवैं नहिं तनिक, नैन निगोरे हाय १
मन सों मन अरु हार सों, हार उरझि रहि देह
धनि उरझनि यह प्रेम की, धन्य धन्य यह नेह २
रात जगी सँग लाल के, भे दृग दोऊ लाल
मानहु होन प्रभात सों, भई क्रुद्ध अति बाल ३

इस प्रकार प्राचीन शैली की इनकी मौलिक रचनाएँ बहुत कम हैं।
(३) इन्होंने संस्कृत के १४ नीति श्लोकों का अनुवाद दोहों में किया है, उदाहरणार्थ एक दोहा उद्धृत है—

नदी, शस्त्रधारी, नखी, श्रृंगी, राजा, नारि
भूलि न इन्हैं पतीजिए, बुधजन कहत बिचारि

(४) इस प्रकार इन्होंने उस समय तक उपलब्ध रहीम के ११३ दोहों पर कुंडलियाँ लगाई थीं। भारतेंदु ने भी बिहारी के कुछ दोहों पर कुंडलियाँ लगाई थीं। उस युग में कुंडलियाँ लगाने की एक परंपरा सी चल गई थी। इस प्रकार की एक कुंडलिया का भी उदाहरण लीजिए—

दीरघ दोहा अरथ के, अखर थोरे आहिं
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं
सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं, देखि अचरज जिय आवै
घट तैं सिंधुहिं बाँधि, मनो निज बस मैं लावै
सार - पूर्ण, उपदेस - पूर्ण, गुन-पूरन सोहा
कैसे कहे रहीम, अरथ के दीरघ दोहा

ए सभी रचनाएँ प्राचीन परिपाटी के ही भीतर अएँगी। इनकी कुल कविता ६८ पृष्ठों में है, यदि इन पुराने अंशों को छाँट दिया जाय तो नवीनता से सम्बन्धित रचनाएँ ३१ पृष्ठों में सिमटकर रह जाती हैं। ये कविताएँ मुख्यतया दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—राजभक्ति संबंधी रचनाएँ और देशभक्ति संबंधी रचनाएँ।

(५) राजभक्ति संबन्धी इनकी दो रचनाएँ हैं 'जुबिली' और 'विजयनी विलाप'। 'जुबिली' में ४ छप्पय हैं, जिनमें विक्टोरिया की हीरक जयन्ती का वर्णन है।

परम दुःखमय तिमिर जबै भारत मैं छायो
गृह-विछेद, बहु खंड राज्य, सब प्रजा सतायो
तबहि कृपा करि ईश बृटिश सूरज प्रगटायो
जिन उजरत करि कृपा बहुरि यह देस बसायो
सोइ बृटिश वंश उज्ज्वल करन, विकटोरिया प्रकास भो
आनँद छायो सब देस मैं, अरु दुख तिमिर विनास भो

'विजयिनी विलाप' में विक्टोरिया की मृत्यु पर शोक-प्रकाश है—

तिरसठ बरस जासु छाया सुख कीनो भारतवासी
ताकों अनायास हरि लीनी, सब कछु आसा नासी
रे बीसवीं सदी तेरो पैरो कैसो जग आयो
या वसुधा को अमल चंद्र हरि, चहुँ दिसि तम फैलायो

(६) राधाकृष्णदास की देशभक्ति तीन रूपों में व्यक्त हुई है—(१) वर्तमान दुःख दैन्य के प्रति हार्दिक सहानुभूति, (२) हिंदी के प्रति प्रेम, (३) अतीत गौरव।

(क) वर्तमान दुःख दैन्य को प्रगट करने वाली उनकी तीन रचनाएँ हैं—

(१) भारत बारहमासा—

लायो असाढ़ सुहावना सब देस मिलि आनँद करैं
यूरप अमेरिक फ्रांस जरमन मोद जिय में नहिं धरैं
एक हम अभागे देस भर के बैठि के रोवत रहैं
नहिं काम कोउ करनो हमैं, बस व्यर्थ दिन खोवत रहैं

(२) देश दशा—

कौन नाज का कहैं ठिकाना, कौन घास औ चारे का
जल का टोटा, प्रान बचै क्यों जल बिन हाय बिचारे का

(३) छप्पन की बिदाई, नए वर्ष की बधाई—

दीन, दुखी, आरत विपत्ति के मारे भारतवासी
सहमि उठे सुनिकै आगम छप्पन की छई उदासी
पण्डित कहैं महाभारत के ग्रह सब एकत आवैं
भारत में भारत मचवावैं महाप्रलय घहरावैं

(४) विनय—

'प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए
अपुने या प्यारे भारत को पुनि दुख दारिद हरिए

(ख) उस समय के पश्चिमोत्तर प्रदेश के गवर्नर मेकडानेल साहब की न्याय प्रियता से सन् १९०० की १८ अप्रैल को हिंदी को कचहरियों में प्रवेश मिला। इससे कृतज्ञ होकर राधाकृष्णदास जी ने 'मेकडानेल पुष्पांजलि' नामक कविता लिखी—

"धनि मेकडानेल लाट प्रजा के दुःख निवारे
कचहरिया लीला सों सबके प्रान उबारे
धन उनइस सौ सन, धन धन यह मास एपरिल
धन तारीख अठारह, जन हिय कमल गए खिल
जब लौं हिंदू हिंदी रहै, यह शुभ दिन न बिसारिहैं
मेकडानेल नाम पवित्र यह, नित सादर उच्चारिहैं

(ग) अतीत गौरव संबंधी दो रचनाएँ हैं 'पृथ्वीराज प्रयाण' और 'प्रताप विसर्जन'। दोनों करुण रस परिपूर्ण हैं अतः अत्यंत प्रभावपूर्ण हैं। पृथ्वीराज बँधकर गजनी जा रहे हैं, उस समय भारत माता से बिदा लेते हुए वह कहते हैं—

जननी हमैं सीख अब दीजै
परम कुपूत पूत तेरो यह ताहि बिदा अब कीजै

'प्रताप विसर्जन' नंददास के 'भ्रमर गीत' की शैली पर लिखा गया है। अपने पुत्र अमर सिंह की विलासी रुचि से परिचित राणा को मृत्यु समय भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है, शांतिमय मृत्यु भी नहीं मिलना चाहती। उन्हें बड़ा कष्ट है। उन्होंने अपने सरदारों को सम्बोधित कर कहा—

"अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम
बेचि, सिसोदित कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम
रुके हम सोच एहि।"

जब वीरों ने चित्तौर की स्वाधीनता की रक्षा का व्रत पुनः लिया, तब कहीं जाकर राणा के प्राण-पखेरू उड़े।

राधाकृष्ण दास जी ने बहुत कम कविताएँ लिखी हैं, पर उनकी 'पृथ्वीराज प्रयाण' और 'प्रताप विसर्जन' कविताएँ सदा आदर के साथ पढ़ी जायँगी।

इनकी सभी कविताएँ फुटकरिया हैं। इनका कोई काव्य ग्रन्थ नहीं। सम्भवतः न तो इनके जीवन काल में और न बाद ही इनकी कविताओं का कोई संकलन स्वतन्त्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ, अतः कवि रूप में इन्हें कोई ख्याति नहीं मिली।

१०

कुछ अन्य कवि

(१)

'माधवी'

भारतेंदु पारस थे। लोहा भी इन्हें छू लेता था, तो सोना हो जाता था। माधवी जगतगंज निवासी किसुन सिंह की लड़की थी। परिस्थिति वश यह 'अलीजान' हो गई थी। भारतेंदु जी के छोटे भाई गोकुलचंद जी के यहाँ कुछ लेन देन के सिलसिले आती थी। इसने भारतेंदु को ही खरीद लिया. भारतेंदु ने इसको सुँड़िया महल्ले में इसके लिए एक घर ले दिया। वहीं उनकी रातें कटने लगीं। माधवी गायिका थी, नर्तकी थी, कवि भी हो गई। अब वह अपने प्रिय के वियोग में कुहकने लगी—

(१)

उड़ि जा पंछी खबर ला पी की
जाय विदेस मिलो पीतम से, कहो बिथा विरहिन के जीकी
सोने की चोंच मढ़ाऊँ मैं पंछी, जो तुम बात करो मेरे ही की
'माधवी' लाओ, पियको सँदेसवा, जरनि बुझाओ वियोगिन ती की

(२)

बीती जात बहार री, पिय अबहुँ न आए
कैसे कै मैं दिन बितवौं आली, जोबन करत उभार री, पिय०
कहा करौं, कित जाओं बताओ, यह समयो दिन चार री, पिय०
अली 'माधवी' पिय-बिनु व्याकुल, कोउ न सुनत पुकार री, पिय०

---

(२)

चंद्रिका

मल्लिका नाम की एक बंगदेशीय कुलीन विधवा भारतेंदु के घर के पास आकर टिकी। यहाँ गली इतनी सँकरी है कि ऊपर ही ऊपर अनायास एक ओर के घर से दूसरी ओर के घर पर आया जाया जा सकता है। भारतेंदु की नज़र उस पर पड़ी। वह भारतेंदु की आश्रिता, तदनंतर रक्षिता हो गई। वह शिक्षिता थी। भारतेंदु के समागम् से हिंदी में भी पारंगत हो गई—और हिंदी

तथा बँगला दोनों में 'चंद्रिका' नाम से रचना करने लगी। इसने हिंदी में बँगला के तीन उपन्यासों का अनुवाद भी किया है।

इसके पद भारतेन्दु कृत 'प्रेम तरंग' में संकलित हैं, जो ४० से अधिक हैं।

(१)

अब ना आओ पिया मोरि सेजरिया
जात विदेश छोड़ि तुम हमको, हनि हनि हिय मैं बिरह कटरिया
कहत 'चंद्रिका' हरीचंद पिय, जाओ वहीं जहाँ लाए नजरिया

चंद्रिका के बँगला गीतों में भावोच्छ्वास अत्यधिक हैं—

(१)

आमार जे दशा नाथ आसिया हे देख ना
हरिश्चंद्र नाथ जार, केन हेत दशा तार,
बल ओहे गुन मनि आमार हे बलो ना।
सदा मन उचाटन, दहिते छे जीवन मन,
असह्य 'चंद्रिका' जीवने सहेना यातना।

(२)

ए प्रेम राखिते केन करिछ जतनो रे
सेई प्रेम राखा गिया जथा बाँधा मनो रे
सेई विनोदिनी धनि तुमि तार प्रेमे रिणी
बाँधा आछो गुन मनि ताहारई प्रेम डोरे
छाड़ो एई प्रेम आशा जाना गेल भालो बासा
हृदय सब नैराश 'चंद्रिकार' एखनो रे

---

(३)

रूप रतन

'रूप रतन' भोपाल की बेगम साहिबा का हिन्दी काव्य में व्यवहृत उपनाम है। आप उर्दू में अच्छा कहती थीं। भारतेन्दु ने आपकी उर्दू गजलें स्वसंपादित 'चमनिस्तान पुरबहार' और 'गुलजारे पुरबहार' में प्रकाशित की थीं। ये दोनों संग्रह नागरी लिपि में प्रकाशित हुए थे। इनके कई हिन्दी पद भी भारतेन्दु के पास आए थे, जिन्हें उन्होंने प्रकाशित करा दिया था। भारतेन्दु के पास आया हुआ इनका एक पद देखिए—

सजि आई है राज दुलारी राधा प्यारी
आज होरी खेलो श्याम विहारी
घर घर से सब बनि बनि निकसी, पहिरि नवल तन सारी
केसर रंग संग लै गागरि, करन उनके पिचकारी
जुरि जुरि आई नंद द्वार पर, टेरत ही दै तारी
काल लाल करि गए अचगरी, आज हमारी पारी
फंद पड़ोगे जब सखियन के, बंसीधर बनवारी
भूलि जाओगे श्याम सुँदर तब, गउवन की रखवारी
लैहैं चमक दै मुकुट लकुटिया, पीत पिछौरी उतारी
मुरली छीन, दैहों दृग अञ्जन, तो हम गोप कुमारी
'रूप रतन' यों मान करत मिलि, जोबन की मतवारी
गलियन गलियन ढूँढ़ति डोले, प्रान प्रिया गिरिधारी

---

(४)

हुस्ना 'नागरी'

हुस्ना, 'नागरी' भारतेंदु कालीन एक वारवधू थी, जो भारतेंदु की महफिलों को कभी कभी रंगीन बनाया करती थी। भारतेन्दु की मृत्यु पर इसे जो कलक हुआ, इस कवित्त में देखिए—

कौन अब पुस्तक छपाय पढ़वैहै हाय
राग रागिनी की रीत भावत निते गयो
कोउ न दिखात नेक हिंदू में समझदार
जैसी हरिचंद्र कर कीरती छिते गयो
प्रेम के प्रवाह में बहनहार आछो आज
काल ग्राह तीखे दंत, धोखै धरि लै गयो
कैसे नैन लखब सु-श्याम घुँघुरारे बार
हाय 'नागरी' के नाह छाड़ि कै किते गयो

नागरी के अर्थ-गर्भत्व पर ध्यान दीजिए।

---

(५)

मन्नालाल, 'द्विज'

पंडित मन्नालाल को तासी ने तमन्नालाल के नाम से याद किया है। 'सुन्दरी तिलक' नामक सवैयों का संग्रह, जो भारतेन्दु कृत कहा जाता है, इन्हीं

का किया हुआ है। तासी के इतिहास से यह बात स्पष्ट है। इस संग्रह का पहला संस्करण संवत् १९२५ में हुआ था। दूसरा परिवर्द्धित संस्करण १९२६ में।

मन्नालाल जी 'द्विज' नाम से स्वयं बहुत सुन्दर लिखा करते थे। सुन्दरी तिलक के परिवर्द्धित संस्करण में इनके तेरह सवैये हैं जिनमें से तीन उद्धृत किया जा रहे हैं—

(१)

अपवाद कोऊ किन कीबो करो, हम नेकु नहीं सक मानती हैं
वहि छैल छबीले की चाहन ते, 'द्विज' प्रेम की बारुनी छानती हैं
वेइ फूँकि के पाँव धरैं सिगरी, अपने को सदा जे बखानती हैं
नहिं काज भली औ बुरी ते कछू, हम जानती हैं कि अजानती हैं

(२)

मदमाती रसाल की डारन पै चढ़ी, आनँद सों यों विराजती हैं
कुल आनि की कानि करैं न कछू, मन हाथ परायेहि पारती हैं
कोउ कैसी करै 'द्विज' तू ही कहै, नहिं नेकौ दया उर धारती हैं
अरी कैलिया कूकि, करेजन की किरचै किरचैं किए डारती हैं

(३)

घेरि घटान तें आयो उनै, धुरवान की डोरन लागी कगारन
मोरन के गन सोर करैं, चहुँ ओर ते चातिक लागे चिकारन
ऐसे समै छबि देखिबे को 'द्विज', तूहूँ चलै किन दौरि अगारन
झूलत हेम हिंडोरन मैं दोऊ, कालिंदी कूल कदंब की डारन

---

(६)

फ्रेडरिक पिंकाट

श्री फ्रेडरिक पिंकाट महोदय भारतेंदु युगीन हिंदी प्रेमी व्यक्ति थे, जो इंगलैंड में रहकर हिंदी की सेवा करते थे। उस समय के प्रायः सभी हिंदी साहित्य सेवियों से आपका पत्रालाप था। संवत् १९४७ में आपने 'आइने सौदागरी' नामक एक व्यापारिक पत्र निकाला था, जिसमें कुछ पृष्ट हिंदी के भी रहा करते थे। खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से आपकी लिखी 'विक्टोरिया चरित्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। यह नवंबर १८९५ ई० में भारत आए थे। यहीं लखनऊ में ७ फरवरी १८९६ को आपका देहांत हुआ। आपका जन्म १८३६ ई० में हुआ था।

श्रीं पिंकाट महोदय ने एक पत्र ब्रजभाषा पद्य में भारतेन्दु के नाम लिखा था, जिसका एक अंश यह है—

(१)

श्रीयुत सकल कविंद कुल, नुत बाबू हरिचंद
भारत हृदय सतार नभ, उदय रहो जनु चंद

(२)

विनय हमारे भारतेंदु हरिचंद जू सों
नखत कविंद सों अनंद रहिबो करौ
सींचि वसुधा को निज सुखद सुधा की धार
यार उपकारन के भार सहिबो करौ
दूर करि सारो अंधकार जगतीतल को
सीतल कै सुजस अपार लहिबो करौ
चाहते चकोरन कों कोरन कृपा के चाहि
ऐबो चहुँ ओर सों सप्रेम कहिबो करौ

---

(७)

रावकृष्ण देव शरण सिंह 'गोप'

राव कृष्ण देव शरण सिंह भरतपुर के जाट राजवंश से थे। यह क्वींस कालेज के 'वार्ड स इंस्टिच्यूट' में ठाकुर जगमोहनसिंह के समान पढ़ने के लिए आए थे। यहीं भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र से इनकी मित्रता हुई। रावसाहब शिवपुर स्थित भरतपुर कोठी में रहते थे। बड़े भावुक, सहृदय, कलाप्रेमी और साहित्य मर्मज्ञ थे। यह श्रीकृष्ण के परम भक्त और विनोदी प्रकृति के रसिक व्यक्ति थे। गाने बजाने का भी शौक था। रईस तो थे ही। इनका देहावसान सन् १८९६ या १८९७ में हुआ।

राव साहब की रचनाएँ आज सुलभ नहीं। यह 'गोप' नाम से सुन्दर रचनाएँ करते थे। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में इनके कुछ लेख और कविताएँ मिल सकती हैं। श्री ब्रजरत्न दास जी ने 'भारतेंदु मंडल' में बड़े प्रयास से इनकी कुछ रचनाओं का उल्लेख किया है।

(१) प्रेम संदेसा—हरिश्चन्द्र मेगजीन में दिसम्बर १८७२ ई० के अंक में यह कविता छपी है। इसमें १६ पद आसावरी तथा इतने ही सारंग के हैं। इसमें गोपी का विरह-संदेश है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद देखिए—

मोहन क्यों अनीति मन भाई
सबसों तोरि नेह, चरनन में जोरि, यहै मन आई
ताहू पैं परतीति न मानी, जग उपहास कराई
यद्यपि हती अधम निंदित अति, पै निज ओर लगाई
'गोप' निरास होय जग जीवति, पूरे झूठ चलाई
वेदहु मानत जाकी बातें, तिनही हाथ ठगाई

(२) मान चरित्र—हरिश्चन्द्र मेगजीन जनवरी १८७४ के अंक में प्रकाशित। यह वार्तालाप रूप में गद्य-पद्य रचना है, जिसमें पद्य ही अधिकहैं। इसमें कुल ३५ पद और दोहे हैं। इसका एक पद है—

प्यारी मोहिं अचंभो आयो
सुनि त्रिभुवन में कोउ सरि नाहीं, देखन ही मन भायो
सो पटतर औरहु कोउ कहँ ते, बिधि दूजो सिरजायो
प्यारी मोपै रह्यो गयो नहिं, यह सुनि हौं उठि धायो
पूछि देखिए सखी आपुकी, मैं जो झूठ कहायो
'गोप' स्वामिनी भोरें जी को, सब साँची करि पायो

(३) दोहावली—हरिश्चंद्र चंद्रिका दिसंबर १८७८ में प्रकाशित। इसमें विरह संबंधी कुल ३१ दोहे हैं। कई दोहे मुरली-उपालंभ पर भी हैं—

बिबस करत आधीन पुनि, बैरी छुटवति लाज
बैरिन यह ब्रज-मुरलिका, जारत जिय बेकाज

(४) माधुरी—यह एक लघु एकांकी नाटक है। इसमें माधुरी नामक गोपी का कृष्ण के प्रति प्रेम प्रदर्शित है। यह विरह पूर्ण, अपूर्ण रचना है। प्रमाद से 'हरिश्चंद्र कला' में यह भातेन्दु के नाटकों में सम्मिलित हो गई है।

मोपै यह नहिं जात सही
तुमते बिहरि रैनि दिन सुख लहि बिछुरि उसाँस रही
जगत कहत यह होय एक की जीवत निलज वही
'गोपराज' तन त्यागि राखि पन मिलिहै तुरत सही

(५) 'स्वप्न'—यह एक निबंध है जो 'आनन्द कादंबिनी' में प्रकाशित हुआ था। यह अपूर्ण है।

(६-७) ब्रह्म—निरूपण संबंधी एक गद्य ग्रंथ इन्होंने लिखा था और 'चंद्रावली' नाटिका को ब्रजभाषा में इन्होंने लिखा था; पर अब ये दोनों ग्रंथ नहीं मिलते।

मुद्रक—बालकृष्ण शास्त्री, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस। ५८७